संयम स्वर्ण महोत्सव (२०१७-१८) की विनम्र प्रस्तुति क्र० २८

# पूज्यपाद भारती

[आचार्य पूज्यपाद स्वामी के दशभक्ति, समाधितन्त्र, इष्टोपदेश, सिद्धिप्रिय-स्तोत्र का अन्वयार्थ एवं तत्त्वार्थवृत्ति (सर्वार्थसिद्धि) मूल का संकलन]

प्रकाशक

**जैन विद्यापीठ**

सागर (म० प्र०)

# आद्य वक्तव्य

युग बीतते हैं, सृष्टियाँ बदलती हैं, दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। कई युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन कुछ व्यक्तित्व अपनी अमर गाथाओं को चिरस्थाई बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, जो असंख्य जनमानस के जीवन को घने तिमिर से निकालकर उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे ही निरीह, निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युगपुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का, जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को श्रृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के ढाँचे में ढाला। अनुशासन को अपनी ढाल बनाया और तैयार कर दी हजारों संयमी युवाओं की सुगठित धर्मसेना। सैकड़ों मुनिराज, आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी भाई-बहिनें। जो उनकी छवि मात्र को निहार-निहार कर चल पड़े घर-द्वार छोड़ उनके जैसा बनने के लिए। स्वयं चिद्रूप, चिन्मय स्वरूप बने और अनेक चैतन्य कृतियों का सृजन करते चले गए जो आज भी अनवरत जारी है। इतना ही नहीं अनेक भव्य श्रावकों की सल्लेखना कराकर हमेशा-हमेशा के लिए भव-भ्रमण से मुक्ति का सोपान भी प्रदान किया है।



महामनीषी, प्रज्ञासम्पन्न गुरुवर की कलम से मूकमाटी जैसे क्रान्तिकारी-आध्यात्मिक-महाकाव्य का सृजन हुआ। जो अनेक भाषाओं में अनुदित हुआ साथ ही अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलायी परिणामतः मूकमाटी मीमांसा के तीन खण्ड प्रकाशित हुए। आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर लगभग ५० शोधार्थियों ने डी॰ लिट्॰, पी-एच॰ डी॰ की उपाधि प्राप्त की।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य भगवन् की कलम से जहाँ अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद किए गए तो वहीं नवीन संस्कृत और हिन्दी भाषा में छन्दोबद्ध रचनायें भी सृजित की गई। सम्पूर्ण विद्वत्जगत् आपके साहित्य का वाचन कर अचंभित हो जाता है। एक ओर अत्यन्त निस्पृही, वीतरागी छवि तो दूसरी ओर मुख से निर्झरित होती अमृतध्वनि को शब्दों की बजाय हृदय से ही समझना श्रेयस्कर होता है।

प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पड़े उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों पर वर्षायोग, शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में प्रवास करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पुनर्जागृत हो गए। श्रावकवृन्द अब आये दिन तीर्थों की वंदनार्थ घरों से निकलने लगे और प्रारम्भ हो गई जीर्णोद्धार की महती परम्परा। प्रतिभास्थलियों जैसे शैक्षणिक संस्थान, भाग्योदय तीर्थ जैसा चिकित्सा सेवा संस्थान, मूकप्राणियों के संरक्षणार्थ सैकड़ों गौशालाएँ, भारत को इण्डिया नहीं 'भारत' ही कहो का नारा, स्वरोजगार के तहत 'पूरी मैत्री' और 'हथकरघा' जैसे वस्त्रोद्योग की प्रेरणा देने वाले सम्पूर्ण जगत् के आप इकलौते और अलबेले संत हैं।

कितना लिखा जाये आपके बारे में शब्द बौने और कलम पंगु हो जाती है, लेकिन भाव विश्राम लेने का नाम ही नहीं लेते।

यह वर्ष आपका मुनि दीक्षा का स्वर्णिम पचासवाँ वर्ष है। भारतीय समुदाय का स्वर्णिम काल है यह। आपके स्वर्णिम आभामण्डल तले यह वसुधा भी स्वयं को स्वर्णमयी बना लेना चाहती है। आपकी एक-एक पदचाप उसे धन्य कर रही है। आपका एक-एक शब्द कृतकृत्य कर रहा है। एक नई रोशनी और ऊर्जा से भर गया है हर वह व्यक्ति जिसने क्षणभर को भी आपकी पावन निश्रा में श्वांसें ली हैं।

आपकी प्रज्ञा से प्रस्फुटित साहित्य आचार्य परम्परा की महान् धरोहर है। आचार्य धरसेनस्वामी, समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंकदेव, स्वामी विद्यानंदीजी, आचार्य पूज्यपाद महाराज जैसे श्रुतपारगी मुनियों की श्रृंखला को ही गुरुनाम गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, तदुपरांत आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने यथावत् प्रतिपादित करते हुए श्रमण संस्कृति की इस पावन धरोहर को चिरस्थायी बना दिया है।

यही कारण है कि आज भारतवर्षीय विद्वतवर्ग, श्रेष्ठीवर्ग एवं श्रावकसमूह आचार्यप्रवर की साहित्यिक कृतियों को प्रकाशित कर श्रावकों के हाथों में पहुँचाने का संकल्प ले चुका है। केवल आचार्य भगवन् द्वारा सृजित कृतियाँ ही नहीं बल्कि संयम स्वर्ण महोत्सव २०१७-१८ के इस पावन निमित्त को पाकर प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का भी प्रकाशन जैन विद्यापीठ द्वारा किया जा रहा है।

जिस तरह प्राकृत भाषा में निबद्ध अध्यात्म और भक्तियों के रचयिता के लिए आचार्य कुन्दकुन्ददेव का नाम सर्वोपरि स्थान में है। उसी तरह संस्कृत भाषा में अध्यात्म ग्रन्थ एवं भक्ति संग्रह के रचयिता के रूप में आचार्य पूज्यपाद स्वामी प्रतिष्ठित हैं। आचार्य पूज्यपाद द्वारा रचित भक्ति-पाठ आदि का उच्चारण प्रत्येक साधु-संघ में सदैव होता है। इसलिए सर्वार्थसिद्धि टीका सहित समस्त उपलब्ध साहित्य को एक साथ समायोजित करके पूज्यपाद भारती सभी सुधी पाठकों के करकमलों में प्रस्तुत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

समस्त ग्रन्थों का शुद्ध रीति से प्रकाशन अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस संशोधन आदि के कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाई-बहिनों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन्हें जिनवाणी माँ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला, जो सातिशय पुण्यार्जन तथा कर्मनिर्जरा का साधन बना।

जैन विद्यापीठ आप सभी के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है और आभार व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ है।

**गुरुचरणचंचरीक**

# देवनन्दि पूज्यपाद और उनका साहित्यिक अवदान

कवि, वैयाकरण और दार्शनिक इन तीनों व्यक्तित्वों का एकत्र समवाय देवनन्दि पूज्यपाद में पाया जाता है। आदिपुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन ने इन्हें कवियों में तीर्थकृत लिखा है–

**कवीनां तीर्थकृद्देवः किं तरां तत्र वर्ण्यते।**
**विदुषां वाङ्मलध्वंसि तीर्थं यस्य वचोमयम् ॥**

आदिपुराण १/५२

जो कवियों में तीर्थंकर के समान थे अथवा जिन्होंने कवियों का पथप्रदर्शन करने के लिये लक्षण ग्रन्थ की रचना की थी और जिनका वचनरूपी तीर्थ विद्वानों के शब्द सम्बन्धी दोषों को नष्ट करने वाला है, ऐसे उन देवनन्दि आचार्य का कौन वर्णन कर सकता है ?

ज्ञानार्णव के कर्ता आचार्य शुभचन्द्र ने इनकी प्रतिभा और वैशिष्ट्य का निरूपण करते हुए स्मरण किया है–



**अपाकुर्वन्ति यद्वाचः कायवाक्चित्तसम्भवम्।**
**कलङ्कमङ्गिनां सोऽयं देवनन्दी नमस्यते[1]॥**

जिनकी शास्त्रपद्धति प्राणियों के शरीर, वचन और चित्त के सभी प्रकार के मल को दूर करने में समर्थ है, उन देवनन्दि आचार्य को मैं प्रणाम करता हूँ।

आचार्य देवनन्दि–पूज्यपाद का स्मरण हरिवंशपुराण के रचयिता जिनसेन प्रथम ने भी किया है। उन्होंने लिखा है–

**इन्द्रचन्द्रार्कजैनेन्द्रव्याडिव्याकरणेक्षिणः ।**
**देवस्य देववन्द्यस्य न वन्द्यन्ते गिरः कथम्॥[2]**

अर्थात् जो इन्द्र, चन्द्र, अर्क और जैनेन्द्र व्याकरण का अवलोकन करने वाली है, ऐसी देववन्द्य देवनन्दि आचार्य की वाणी क्यों नहीं वन्दनीय है ?

इससे स्पष्ट है कि आचार्य देवनन्दि प्रसिद्ध वैयाकरण और दार्शनिक विद्वान् थे। इनके सम्बन्ध में आचार्य गुणनन्दि ने इनके व्याकरण सूत्रों का आधार लेकर जैनेन्द्र प्रक्रिया में मंगलाचरण करते हुए लिखा

१. ज्ञानार्णव १/१५, रायचन्द्र शास्त्रमाला संस्करणं, वि० सं० २०१७
२. हरिवंशपुराण १/३, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वि० सं० २०१९

है–

**नमः श्रीपूज्यपादाय लक्षणं यदुपक्रमम्।**
**यदेवात्र तदन्यत्र यन्नात्रास्ति न तत्क्वचित्॥**[१]

जिन्होंने लक्षणशास्त्र की रचना की है, मैं उन आचार्य पूज्यपाद को प्रणाम करता हूँ। उनके इस लक्षणशास्त्र की महत्ता इसी से स्पष्ट है कि जो इसमें है, वह अन्यत्र भी है और जो इसमें नहीं है, वह अन्यत्र भी नहीं है।

उनके साहित्य की यह स्तुति–परम्परा धनंजय, वादिराज आदि प्रमुख आचार्यों द्वारा भी अनुभूति हुई। पूज्यपाद की ज्ञानगरिमा और महत्ता का उल्लेख उक्त स्तुतियों में विस्तृत रूप से आया है।

उनसे स्पष्ट है कि देवनन्दि–पूज्यपाद कवि और दार्शनिक विद्वान् के रूप में ख्यात हैं।

## जीवन-परिचय

इनका जीवन–परिचय चन्द्रय्य कवि के 'पूज्यपादचरिते' और देवचन्द्र के 'राजावलिकथे' नामक ग्रन्थों में उपलब्ध है। श्रवणबेलगोला के शिलालेखों में इनके नामों के सम्बन्ध में उल्लेख मिलते हैं। इन्हें बुद्धि की प्रखरता के कारण 'जिनेन्द्रबुद्धि' और देवों के द्वारा चरणों की पूजा किये जाने के कारण 'पूज्यपाद' कहा गया है।

**यो देवनन्दि-प्रथमाभिधानो बुद्ध्या महत्या स जिनेन्द्रबुद्धिः।**
**श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभिर्यत्पूजितं पादयुगं यदीयं॥**
**जैनेन्द्रे निज-शब्द-भोगमतुलं सर्वार्थसिद्धिः परा।**
**सिद्धान्ते निपुणत्वमुद्धकवितां जैनाभिषेकः स्वकः॥**
**छन्दस्सूक्ष्मधियं समाधिशतक-स्वास्थ्यं यदीयं विदा-**
**माख्यातीह स पूज्यपाद-मुनिपः पूज्यो मुनीनां गणैः**[२]**॥**

अर्थात् इनका मूलनाम देवनन्दि था, किन्तु ये बुद्धि की महत्ता के कारण जिनेन्द्रबुद्धि और देवों द्वारा पूजित होने से पूज्यपाद कहलाये थे। पूज्यपाद ने जैनेन्द्र व्याकरण, सर्वार्थसिद्धि, जैन अभिषेक, समाधिशतक आदि ग्रन्थों की रचना की है।

शिलालेख नं० १०५ से भी उक्त तथ्य पुष्ट होता है।

---

१. जैनेन्द्र प्रक्रिया, जैन सिद्धान्तप्रकाशनी संस्था, कलकत्ता संस्करण, मंगलपद्य।

२. जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, अभिलेख संख्या ४०, पृ. २४, श्लोक १०, ११

**प्रागभ्यधायि गुरुणा किल देवनन्दी बुद्ध्या पुनर्विपुलया स जिनेन्द्रबुद्धिः।**
**श्रीपूज्यपाद इति चैष बुधैः प्रचख्ये यत्पूजितः पदयुगे वनदेवताभिः[1]॥**

पूज्यपाद और जिनेन्द्रबुद्धि इन दोनों नामों की सार्थकता अभिलेख नं० १०८ में भी बतायी है।

इनके पिता का नाम माधवभट्ट और माता का नाम श्रीदेवी बतलाया जाता है। ये कर्नाटक के 'कोले' नामक ग्राम के निवासी थे और ब्राह्मण कुल के भूषण थे। कहा जाता है कि बचपन में ही इन्होंने नाग द्वारा निगले गये मेढ़क की तड़पन देखकर विरक्त हो दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली थी। पूज्यपादचरित्त में इनके जीवन का विस्तृत परिचय भी प्राप्त होता है तथा इनके चमत्कार को व्यक्त करने वाले अन्य कथानक भी लिखे गये हैं, पर उनमें कितना तथ्य है, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

पूज्यपाद किस संघ के आचार्य थे, यह विचारणीय है। "राजावलिकथे" से ये नन्दिसंघ के आचार्य सिद्ध होते हैं। शुभचन्द्राचार्य ने अपने पाण्डवपुराण में अपनी गुर्वावलि का उल्लेख करते हुए बताया है–

**श्रीमूलसंघेऽजनि नन्दिसंघस्तस्मिन् बलात्कारगणोऽतिरम्यः।**
**तत्राभवत्पूर्वपदांशवेदी श्रीमाघनन्दी नरदेववन्द्यः[2]॥**

अर्थात् नन्दिसंघ, बलात्कारगण मूलसंघ के अन्तर्गत हैं। इसमें पूर्वों के एकदेश ज्ञाता और मनुष्य एवं देवों से पूजनीय माघनन्दि आचार्य हुए।

माघनन्दि के बाद जिनचन्द्र, पद्मनन्दि, उमास्वामी, लोहाचार्य, यशःकीर्ति, यशोनन्दि और देवनन्दि के नाम दिये गये हैं। ये सभी नाम क्रम से नन्दिसंघ की पट्टावलि में भी मिलते हैं। आगे इसी गुर्वावलि में ग्यारहवें गुणनन्दि के बाद बारहवें वज्रनन्दि का नाम आया है, पर नन्दिसंघ की पट्टावलि में ग्यारहवें जयनन्दि और बारहवें गुणनन्दि के नाम आते हैं। इन नामों के पश्चात् तेरहवाँ नाम वज्रनन्दि का आता है। इसके पश्चात् और पूर्व की आचार्य परम्परा गुर्वावलि और पट्टावलि में प्रायः तुल्य है। अतएव संक्षेप में यह माना जा सकता है कि पूज्यपाद मूलसंघ के अन्तर्गत नन्दिसंघ बलात्कारगण के पट्टाधीश थे। अन्य प्रमाणों से भी विदित होता है कि इनका गच्छ सरस्वती था और आचार्य कुन्दकुन्द एवं गृद्धपिच्छ की परम्परा में हुए हैं।

## कथानुश्रुति

कहा जाता है कि पूज्यपाद के पिता माधवभट्ट ने अपनी पत्नी श्रीदेवी के आग्रह से जैनधर्म स्वीकार कर लिया था। श्रीदेवी के भाई का नाम पाणिनि था। उससे भी उन्होंने जैनधर्म स्वीकार कर लेने

---

१. जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, अभिलेखसंख्या १०५, श्लोकसंख्या २०

२. पाण्डवपुराण, १।२

का अनुरोध किया, पर प्रतिष्ठा की दृष्टि से वह जैन न होकर मुडीकुण्डग्राम में वैष्णव संन्यासी हो गया। पूज्यपाद की कमलिनी नामक छोटी बहन थी और इसका विवाह गुणभट्ट के साथ हुआ, जिससे गुणभट्ट को नागार्जुन नामक पुत्र लाभ हुआ।

एक दिन पूज्यपाद अपनी वाटिका में विचरण कर रहे थे कि उनकी दृष्टि साँप के मुँह में फँसे हुए मेंढ़क पर पड़ी। इससे उन्हें विरक्ति हो गयी। प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि अपना व्याकरण ग्रन्थ रच रहे थे। वह न हो पाया था कि उन्हें अपना मरण काल निकट दिखलाई पड़ा और पूज्यपाद से अनुरोध किया कि तुम इस अपूर्ण ग्रन्थ को पूर्ण कर दो। उन्होंने उसे पूर्ण करना स्वीकार कर लिया। पाणिनि दुर्ध्यानवश मरकर सर्प हुए। एक बार उन्होंने पूज्यपाद को देखकर फूत्कार किया, इस पर पूज्यपाद ने कहा– ''विश्वास रखो, मैं तुम्हारे व्याकरण को पूरा कर दूँगा।'' इसके पश्चात् उन्होंने पाणिनि–व्याकरण को पूर्ण कर दिया। पाणिनि–व्याकरण के पूर्ण करने के पहले पूज्यपाद ने जैनेन्द्र व्याकरण, अर्हद्प्रतिष्ठालक्षण और वैदिक ज्योतिष के ग्रन्थ लिखे थे।

गुणभट्ट की मृत्यु के पश्चात् नागार्जुन अतिशय दरिद्र हो गया। पूज्यपाद ने उसे पद्मावती का एक मन्त्र दिया और सिद्धि करने की विधि भी बतलाई। इस मन्त्र के प्रभाव से पद्मावती ने नागार्जुन के निकट प्रकट होकर उसे 'सिद्धिरस' की जड़ी–वनस्पति बतला दी। इस 'सिद्धिरस' के प्रभाव से नागार्जुन सोना बनाने लगा। उसके गर्व का परिहार करने के लिए पूज्यपाद ने एक मामूली वनस्पति से कई घड़े 'सिद्धिरस' बना दिया। नागार्जुन जब पर्वतों को सुवर्णमय बनाने लगा, तब धरणेन्द्र पद्मावती ने उसे रोका और जिनालय बनाने का आदेश दिया। तदनुसार उसने एक जिनालय बनवाया और उसमें पार्श्वनाथ की प्रतिमा स्थापित की।

पूज्यपाद अपने पैरों में गगनगामी लेप लगाकर विदेह क्षेत्र जाया करते थे, उस समय उनके शिष्य वज्रनन्दि ने अपने साथियों से झगड़ा कर द्रविड संघ की स्थापना की।

नागार्जुन अनेक मन्त्र–तन्त्र तथा रसादि सिद्ध करके बहुत प्रसिद्ध हो गया। एक बार उसके समक्ष दो सुन्दर रमणियाँ उपस्थित हुईं, जो नृत्य–गान कला में कुशल थीं। नागार्जुन उन पर मोहित हो गया। वे वहीं रहने लगीं और कुछ समय बाद ही उसकी रसगुटिका लेकर चलती बनी।

पूज्यपाद मुनि बहुत दिनों तक योगाभ्यास करते रहे। फिर एक देव–विमान में बैठकर उन्होंने अनेक तीर्थों की यात्रा की। मार्ग में एक जगह उनकी दृष्टि नष्ट हो गयी थी। अतएव उन्होंने शान्त्यष्टक रच कर ज्यों–की–त्यों दृष्टि प्राप्त की। अपने ग्राम में आकर उन्होंने समाधिमरण किया।

इस कथा में कितनी सत्यता है, यह विचारणीय है।

## समय-विचार

पूज्यपाद के समय के सम्बन्ध में विशेष विवाद नहीं है। इनका उल्लेख छठी शती के मध्यकाल से ही उपलब्ध होने लगता है। आचार्य अकलंकदेव ने अपने 'तत्त्वार्थवार्तिक' में 'सर्वार्थसिद्धि' के अनेक वाक्यों को वार्तिक का रूप दिया है। शब्दानुशासन सम्बन्धी कथन की पुष्टि के लिए इनके जैनेन्द्र व्याकरण के सूत्रों को प्रमाणरूप में उपस्थित किया है। अतः पूज्यपाद अकलंकदेव के पूर्ववर्ती हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

'सर्वार्थसिद्धि' और 'विशेषावश्यक भाष्य' के तुलनात्मक अध्ययन से यह विदित होता है कि 'विशेषावश्यकभाष्य' लिखते समय जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के समक्ष 'सर्वार्थसिद्धि' ग्रन्थ अवश्य उपस्थित था। सर्वार्थसिद्धि अध्याय १, सूत्र १५ में धारणामतिज्ञान का लक्षण लिखते हुए बताया है–

**''अवेतस्य कालान्तरेऽविस्मरणकारणं धारणा''॥**

विशेषावश्यकभाष्य में इसी आधार पर लिखा है–

**''कालंतरे य जं पुणरणुसरणं धारणा सा उ''॥ गा. २९१॥**

चक्षु इन्द्रिय अप्राप्यकारी है, बतलाते हुए सर्वार्थसिद्धि में लिखा है–

**मनोवदप्राप्यकारीति। १/१९**

विशेषावश्यक भाष्य में उक्त शब्दावली का नियोजन निम्नप्रकार हुआ है–

**लोयणमपत्तविसय मणोव्व। गाथा २०९**

इससे ज्ञात होता है कि जिनभद्रगणि के समक्ष पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि विद्यमान थी। इस दृष्टि से पूज्यपाद का समय जिनभद्रगणि (वि० संवत् ६६६) के पूर्व होना चाहिए।

कुन्दकुन्द और पूज्यपाद का तुलनात्मक अध्ययन करने से अवगत होता है कि पूज्यपाद के समाधितन्त्र और इष्टोपदेश कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थों के दोहन ऋणी हैं। यहाँ दो-एक उदाहरण उपस्थित किये जाते हैं–

**(१) जं मया दिस्सदे रूवं तण्ण जाणादि सव्वहा।**
**जाणगं दिस्सदे णं तं तम्हा जंपेमि केण हं॥**[1]

× × ×

**यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा।**
**जानन्न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम्**[2]**॥**

---

१. मोक्षपाहुड, गाथा २९

२. समाधितन्त्र, वीरसेवा मन्दिर संस्करण, पद्य १८

**(२) जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।**
**जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे[1]॥**
**× × ×**
**व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।**
**जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे॥[2]**

यहाँ समाधितन्त्र के दोनों पद्य मोक्षपाहुड के संस्कृतानुवाद हैं। पूज्यपाद ने अपने सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में 'संसारिणो मुक्ताश्च' [त० सू० २/१०] सूत्र की व्याख्या में पंच परावर्तनों का स्वरूप बतलाते हुए, प्रत्येक परावर्तन के अन्त में उनके समर्थन में जो 'उक्तं च' कहकर गाथाएँ लिखी हैं, वे उसी क्रम से कुन्दकुन्द के 'बारसअणुवेक्खा' ग्रन्थ में पायी जाती हैं।

इसके अतिरिक्त पूज्यपाद ने कुन्दकुन्द के उत्तरवर्ती गृद्धपिच्छाचार्य उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र पर तत्त्वार्थवृत्ति-सर्वार्थसिद्धि लिखी है। अतएव इनका समय कुन्दकुन्द और गृद्धपिच्छाचार्य के पश्चात् होना चाहिए। कुन्दकुन्द का समय विक्रम की द्वितीय शताब्दी का पूर्वार्द्ध है और सूत्रकार गृद्धपिच्छाचार्य का समय विक्रम की द्वितीय शताब्दी का अन्तिम पाद है। अतः पूज्यपाद का समय विक्रम संवत् ३०० के पश्चात् ही सम्भव है।

पूज्यपाद ने अपने जैनेन्द्र व्याकरण के सूत्रों में भूतबलि, समन्तभद्र, श्रीदत्त, यशोभद्र और प्रभाचन्द्र नामक पूर्वाचार्यों का निर्देश किया है। इनमें से भूतबलि तो 'षट्खण्डागम' के रचयिता प्रतीत होते हैं, जिनका समय ई. सन् प्रथम शताब्दी है। प्रखर तार्किक और अनेकान्तवाद के प्रतिष्ठापक समन्तभद्र प्रसिद्ध ही हैं। श्रीदत्त के 'जल्पनिर्णय' नामक ग्रन्थ का उल्लेख विद्यानन्द ने अपने 'तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक' में[3] किया है। अतः स्पष्ट है कि पूज्यपाद इन आचार्यों के उत्तरवर्ती हैं।

पंडित जुगलकिशोरजी मुख्तार ने अपने 'स्वामी समन्तभद्र' नामक निबन्ध में तथा 'समाधितन्त्र' की प्रस्तावना में बताया है कि पूज्यपाद स्वामी गंगराज दुर्विनीत के शिक्षागुरु थे, जिसका राज्यकाल ई. सन् ४८५-५२२ तक माना जाता है और इन्हें हेब्बुरु आदि के अनेक शिलालेखों में 'शब्दावतार' के कर्ता के रूप में दुर्विनीत राजा का गुरु उल्लिखित किया है।

वि. संवत् ९९० में देवसेन ने दर्शनसार नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ पूर्वाचार्यकृत-गाथाओं को एकत्र कर लिखा गया है। इस ग्रन्थ में बताया है कि पूज्यपाद का शिष्य पाहुडवेदी, वज्रनन्दि, द्राविडसंघ का कर्ता हुआ और यह संघ वि० सं० ५२६ में उत्पन्न हुआ।

---

१. मोक्षपाहुड, गाथा ३१

२. समाधितन्त्र, पद्य ७८

३. ''द्विप्रकारं जगौ जल्पं तत्त्वप्रातिभगोचरम्।
त्रिषष्ठेवादिनां जेता श्रीदत्तो जल्पनिर्णये''॥ -तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, पृ. २८०,पद्य ४५

**सिरिपुज्जपादसीसो दाविडसंघस्सकारगो दुट्ठो।**
**णामेण वज्जणंदी पाहुडवेदी महासतो॥**
**पंचसए छब्वीसे विक्क मरायस्स मरणपत्तस्स।**
**दक्खिणमहुराजादो दाविडसंघो महामोहो[1]॥**

वज्रनन्दि देवनन्दि के शिष्य थे। अतएव द्रविड़ संघ की उत्पत्ति के उक्तकाल से दस-बीस वर्ष पहले ही उनका समय माना जा सकता है। पंडित नाथूरामजी प्रेमी ने पूज्यपाद-देवनन्दि का समय विक्रम की छठी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना है। युधिष्ठिर मीमांसक ने भी देवनन्दि के समय की समीक्षा करते हुए इनका काल विक्रम की छठी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना है।[2]

नन्दिसेन की पट्टावली में देवनन्दि का समय विक्रम संवत् २५८-३०८ तक अंकित किया गया है और इनके अनन्तर जयनन्दि और गुणनन्दि का नाम निर्देश करने के उपरान्त वज्रनन्दि का नामोल्लेख आया है। पाण्डवपुराण में आचार्य शुभचन्द्र ने नन्दि-संघ की पट्टावली के अनुसार ही गुर्वावली दी है। देवनन्दि पूज्यपाद के गुरु का नाम एक पद्य में यशोनन्दि बताया गया है। यथा-

**यशकीतिर्यशोनन्दी देवनन्दी महामतिः।**
**पूज्यपादापराख्यो यो गुणनन्दी गुणाकरः[3]॥**

अजमेर की पट्टावली में देवनन्दि और पूज्यपाद ये दो नाम पृथक्-पृथक् उल्लिखित हैं। इस पट्टावली के अनुसार देवनन्दि का समय विक्रम संवत् २५८ और पूज्यपाद का वि॰ सं॰ ३०८ है। यहाँ पट्टसंख्या भी क्रमशः १० और ११ है। यह भी कहा गया है कि देवनन्दि पोरवाल थे और पूज्यपाद पद्मावती पोरवाल। पर संस्कृत पट्टावली के अनुसार दोनों एक हैं, भिन्न नहीं हैं। डॉ॰ ज्योतिप्रसाद ने विभिन्न मतों का समन्वय किया है।[4]

इस विवेचन से आचार्य देवनन्दि-पूज्यपाद का समय ईसा सन् की छठी शताब्दी सिद्ध होता है, जो सर्वमान्य है।

**रचनाएँ—**पूज्यपाद आचार्य द्वारा लिखित अब तक निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं-

१. दशभक्ति, २. जन्माभिषेक, ३. तत्त्वार्थवृत्ति (सर्वार्थसिद्धि), ४. समाधितन्त्र, ५. इष्टोपदेश, ६. जैनेन्द्रव्याकरण, ७. सिद्धिप्रिय-स्तोत्र।

**१. दशभक्ति—**जैनागम में भक्ति के द्वादश भेद हैं-(१) सिद्ध-भक्ति, (२) श्रुत-भक्ति, (३)

---

१. दर्शनसार, गाथा २४, २८

२. युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा लिखित जैनेन्द्रशब्दानुशासन तथा उसके खिलपाठ जैनेन्द्रमहावृत्ति, ज्ञानपीठ संस्करण, पृ. ४४

३. अनेकान्त वर्ष १४ किरण ११-१२, प॰ ३४९॥

४. Jaina Antiquary. Vol.XXI. Page 24.

चारित्र-भक्ति, (४) योगि-भक्ति, (५) आचार्य-भक्ति, (६) पञ्चगुरुभक्ति, (७) तीर्थंकर-भक्ति, (८) शान्ति-भक्ति, (९) समाधि-भक्ति, (१०) निर्वाण-भक्ति, (११) नन्दीश्वर-भक्ति और (१२)चैत्य-भक्ति। पूज्यपाद स्वामी की संस्कृत में सिद्ध-भक्ति, श्रुत-भक्ति, चारित्र-भक्ति, योगि-भक्ति, निर्वाण-भक्ति और नन्दीश्वर-भक्ति ये सात ही भक्तियाँ उपलब्ध हैं। काव्य की दृष्टि से ये भक्तियाँ बड़ी ही सरस और गम्भीर हैं। सर्वप्रथम नौ पद्यों में सिद्ध-भक्ति की रचना की गयी है। आरम्भ में बताया है कि आठों कर्मों के नाश से शुद्ध आत्मा की प्राप्ति का होना सिद्धि है। इस सिद्धि को प्राप्त करने वाले सिद्ध कहलाते हैं। सिद्ध-भक्ति के प्रभाव से साधक को सिद्ध-पद की प्राप्ति हो जाती है। अन्य भक्तियों में नामानुसार विषय का विवेचन किया गया है।

**२. जन्माभिषेक—**श्रवणबेलगोला के अभिलेखों में पूज्यपाद की कृतियों में जन्माभिषेक का भी निर्देश आया है[१]।

वर्तमान में एक जन्माभिषेक मुद्रित उपलब्ध है। इसे पूज्यपाद द्वारा रचित होना चाहिए। रचना प्रौढ़ और प्रवाहमय है।

**३. तत्त्वार्थवृत्ति—**पूज्यपाद की यह महनीय कृति है। तत्त्वार्थसूत्र पर गद्य में लिखी गयी यह मध्यम परिमाण की विशद वृत्ति है। इसमें सूत्रानुसारी सिद्धान्त के प्रतिपादन के साथ दार्शनिक विवेचन भी है। इस तत्त्वार्थवृत्ति को सर्वार्थसिद्धि भी कहा गया है। वृत्ति के अन्त में लिखा है–

**स्वर्गापवर्गसुखमाप्तुमनोभिरार्यै -**
**जैनेन्द्रशासनवरामृतसारभूता ।**
**सर्वार्थसिद्धिरिति सद्भिरूपात्तनामा**
**तत्त्वार्थवृत्तिरनिशं मनसा प्रधार्या[२]॥**

जो आर्य स्वर्ग और मोक्ष सुख के इच्छुक हैं, वे जिनेन्द्रशासनरूपी श्रेष्ठ अमृत से भरी सारभूत और सत्पुरुषों द्वारा दत्त 'सर्वार्थसिद्धि' इस नाम से प्रख्यात इस तत्त्वार्थवृत्ति को निरन्तर मनोयोगपूर्वक अवधारण करें।

इस वृत्ति में तत्त्वार्थसूत्र के प्रत्येक सूत्र और उसके प्रत्येक पद का निर्वचन, विवेचन एवं शंका-समाधानपूर्वक व्याख्यान किया गया है। टीकाग्रन्थ होने पर भी इसमें मौलिकता अक्षुण्ण है।

इस समग्र ग्रन्थ की शैली वर्णनात्मक होते हुए भी सूत्रगत पदों की सार्थकता के निरूपण के कारण भाष्य के तुल्य है। निश्चयतः पूज्यपाद को तत्त्वार्थसूत्र के सूत्रों का विषयगत अनुगमन गहरा और तलस्पर्शी था।

---

१. जैन शिलालेख-संग्रह, प्रथम भाग, अभिलेख संख्या ४०, पृ. ५५, पद्य-११।

२. सर्वार्थसिद्धि, ज्ञानपीठ संस्करण, अन्तिम अंश, पद्य १, पृ. ४७४

**४. समाधितन्त्र—**इस ग्रन्थ का दूसरा नाम समाधिशतक है। इसमें १०५ पद्य हैं। अध्यात्म विषय का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है। आचार्य पूज्यपाद ने अपने इस ग्रन्थ की विषयवस्तु कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थों से ही ग्रहण की है। अनेक पद्य तो रूपान्तर जैसे प्रतीत होते हैं। यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं–

**यदग्राह्यं न गृह्णाति गृह्णीतं नापि मुञ्चति।**
**जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम्॥**[1]

इस पद्य की समता निम्न गाथा में है–

**णियभावं ण वि मुंचइ परभावं णेव गिण्हए केइं।**
**जाणदि पस्सदि सव्वं सोहं इदि चिंतए णाणी॥**[2]

बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा के स्वरूप का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। बहिरात्मभाव–मिथ्यात्व का त्याग कर अन्तरात्मा बन कर परमात्मपद की प्राप्ति के लिए प्रयास करना साधक का परम कर्तव्य है। आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और कर्मसंयोग का इस ग्रन्थ में संक्षेप में हृदयग्राही विवेचन किया गया है।

**५. इष्टोपदेश—**इस अध्यात्म काव्य में इष्ट–आत्मा के स्वरूप का परिचय प्रस्तुत किया गया है। ५१ पद्यों में पूज्यपाद ने अध्यात्मसागर को गागर में भर देने की कहावत को चरितार्थ किया है। इसकी रचना का एकमात्र हेतु यही है कि संसारी आत्मा अपने स्वरूप को पहचानकर शरीर, इन्द्रिय एवं सांसारिक अन्य पदार्थों से अपने को भिन्न अनुभव करने लगे। असावधान बना प्राणी विषय–भोगों में ही अपने समस्त जीवन को व्यतीत न कर दे, इस दृष्टि से आचार्य ने स्वयं ग्रन्थ के अन्त में लिखा है—

**इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्,**
**मानापमानसमता स्वमताद्वितन्य।**
**मुक्ताग्रहो विनिवसन्सजने वने वा,**
**मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः॥**[3]

इस ग्रन्थ के अध्ययन से आत्मा की शक्ति विकसित हो जाती है और स्वात्मानुभूत के आधिक्य के कारण मान–अपमान, लाभ–अलाभ, हर्ष–विषाद आदि में समताभाव प्राप्त होता है। संसार की यथार्थ स्थिति का परिज्ञान प्राप्त होने से राग, द्वेष, मोह की परिणति घटती है। इस लघुकाय ग्रन्थ में

१. समाधितंत्र, पद्य ३०, वीरसेवामन्दिर–संस्करण।
२. नियमसार, गाथा ९७।
३. इष्टोपदेश, सूरत–संस्करण, पद्य ५१।

समयसार की गाथाओं का सार अंकित किया गया है। शैली सरल और प्रवाहमय है।

**६. जैनेन्द्र व्याकरण**—श्रवणबेलगोला के अभिलेखों एवं महाकवि धनंजय के नाममाला के निर्देश से जैनेन्द्र व्याकरण के रचयिता पूज्यपाद सिद्ध होते हैं। गुणरत्नमहोदधि के कर्ता वर्धमान और हेमशब्दानुशासन के लघुन्यासरचयिता कनकप्रभ भी जैनेन्द्र व्याकरण के रचयिता का नाम देवनन्दि बताते हैं।

अभिलेखों से जैनेन्द्रन्यास के रचयिता भी पूज्यपाद अवगत होते हैं। पर यह ग्रन्थ अभी तक अनुपलब्ध है।

जैनेन्द्र व्याकरण के दो सूत्रपाठ उपलब्ध हैं—एक में तीन सहस्र सूत्र हैं और दूसरे में लगभग तीन हजार सात-सौ। पंडित नाथूरामजी प्रेमी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि देवनन्दि या पूज्यपाद का बनाया हुआ सूत्रपाठ वही है, जिस पर अभयनन्दि ने अपनी वृत्ति लिखी है।

## सिद्धिप्रियस्तोत्र

इस स्तोत्र में २६ पद्य हैं और चतुर्विंशति तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है। रचना प्रौढ़ और प्रवाहयुक्त है। कवि वर्धमानस्वामी की स्तुति करता हुआ कहता है—

**श्रीवर्धमानवचसा परमाकरेण**
**रत्नत्रयोत्तमनिधेः परमाकरेण।**
**कुर्वन्ति यानि मुनयोऽजनता हि तानि**
**वृत्तानि सन्तु सततं जनताहितानि[१]॥**

यहाँ यमक का प्रयोग कर कवि ने वर्धमानस्वामी का महत्त्व प्रदर्शित किया है। 'जनताहितानि' पद विशेषरूप से विचारणीय है। वस्तुतः तीर्थंकर जननायक होते हैं और वे जनता का कल्याण करने के लिये सर्वथा प्रयत्नशील रहते हैं।

इन प्रमुख ग्रन्थों के अतिरिक्त पूज्यपाद के वैद्यक सम्बन्धी प्रयोग भी उपलब्ध हैं। जैनसिद्धान्तभवन आरा से 'वैद्यसारसंग्रह' नामक ग्रन्थ में कतिपय प्रयोग प्रकाशित हैं। छन्दशास्त्र सम्बन्धी भी इनका कोई ग्रन्थ रहा है, जो उपलब्ध नहीं है।

## वैदुष्य एवं काव्यप्रतिभा

जीवन और जगत् के रहस्यों की व्याख्या करते हुए, मानवीय व्यापार के प्रेरक, प्रयोजनों और उसके उत्तरदायित्व की सांगोपांग विवेचना पूज्यपाद के ग्रन्थों का मूल विषय है। व्यक्तिगत जीवन में

---

१. सप्तम गुच्छक, काव्यमाला सीरीज, सन् १९२६, पद्य २४

कवि आत्मसंयम और आत्मशुद्धि पर बल देता है। ध्यान, पूजा, प्रार्थना एवं भक्ति को उदात्त जीवन की भूमिका के लिये आवश्यक समझता है। आचार्य पूज्यपाद की कविता में काव्यतत्त्व की अपेक्षा दर्शन और अध्यात्मतत्त्व अधिक मुखर है। शृङ्गारिक भावना के अभाव में भी भक्तिरस का शीतल जल मन और हृदय दोनों को अपूर्व शान्ति प्रदान करने की क्षमता रखता है। शब्द विषयानुसार कोमल हैं, कभी–कभी एक ही पद्य में ध्वनि का परिवर्तन भी पाया जाता है। वस्तुतः अनुराग को ही पूज्यपाद ने भक्ति कहा है और यह अनुराग मोह का रूपान्तर है। पर वीतराग के प्रति किया गया अनुराग मोह की कोटि में नहीं आता है। मोह स्वार्थपूर्ण होता है और भक्त का अनुराग निःस्वार्थ। वीतरागी से अनुराग करने का अर्थ है, तद्रूप होने की प्रबल आकांक्षा का उदित होना। अतएव पूज्यपाद ने सिद्धभक्ति में सिद्धरूप होने की प्रक्रिया प्रदर्शित की है।

उनके वैदुष्य का अनुमान सर्वार्थसिद्धिग्रन्थ से किया जा सकता है। नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, वेदान्त, बौद्ध आदि विभिन्न दर्शनों की समीक्षा कर इन्होंने अपनी विद्वत्ता प्रकट की है। निर्वचन और पदों की सार्थकता के विवेचन में आचार्य पूज्यपाद की समकक्षता कोई नहीं कर सकता है।

आचार्य पूज्यपाद ने कवि के रूप में अध्यात्म, आचार और नीति का प्रतिपादन किया है। अनुष्टुप् जैसे छोटे छन्द में गम्भीर भावों को समाहित करने का प्रयत्न प्रशंसनीय है।

आचार्य पूज्यपाद ने सकल परमात्मा अर्हन्त को नमस्कार करते हुए उनकी अनेक विशेषताओं में वाणी की विशेषता भी वर्णित की है। यह विशेषता उदात्त अलंकार में निरूपित है। कवि ने बताया है कि अर्हन्त इच्छारहित हैं। अतः बोलने की इच्छा न करने पर भी निरक्षरी दिव्य–ध्वनि द्वारा प्राणियों की भलाई करते हैं, जो सकल परमात्मा की अनुभूति करने लगता है, उसे आत्मा का रहस्य ज्ञात हो जाता है। अतः कवि ने सूक्ष्म के आधार पर इस चित्र का निर्माण किया है। कल्पना द्वारा भावना को अमूर्तरूप प्रदान किया गया है। धार्मिक पद्य होने पर भी, छायावादी कविता के समान सकल परमात्मा का स्पष्ट चित्र अंकित हो जाता है। काव्यकला की दृष्टि से पद्य उत्तम कोटि का है–

**जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारतीविभूतयस्तीर्थकृतोऽप्यनीहितुः।**
**शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः॥**

इच्छारहित होने पर तथा बोलने का प्रयास न करने पर भी जिसकी वाणी की विभूति जगत् को सुख–शान्ति देने में समर्थ है, उस अनेक नामधारी सकल परमात्मा अर्हन्त को नमस्कार हो।

❑ ❑ ❑

# अनुक्रमणिका

# दश-भक्ति संग्रह

## सिद्धभक्ति

(स्रग्धरा)

**सिद्धानुद्धूत-कर्मप्रकृति-समुदयान् साधितात्म-स्वभावान्**
**वन्दे सिद्धि - प्रसिद्ध्यै तदनुपम-गुण-प्रग्रहाकृष्टि-तुष्टः।**
**सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुण-गुण-गणोच्छादि-दोषापहाराद्**
**योग्योपादान-युक्त्या दृषद इह यथा हेम-भावोपलब्धिः ॥१॥**

**अन्वयार्थ—(तत्-अनुपम-गुण-प्रग्रह-आकृष्टि-तुष्टः)** मैं (पूज्यपाद आचार्य) उन सिद्धों के अनुपम गुण रूपी रस्सी से आकृष्ट हो सन्तुष्ट होता हुआ **(सिद्धि-प्रसिद्ध्यै)** उसी सिद्धि की प्राप्ति के लिए **(सिद्धान्)** उन सिद्धों की **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ **(उद्धूत-कर्म-प्रकृति-समुदयान्)** जिन्होंने कर्मप्रकृतियों के समूह को धो दिया है **(साधितात्म-स्वभावान्)** जिन्होंने अपने-आत्म स्वभाव को प्राप्त कर लिया है। **(प्रगुण-गुण-गणोच्छादि-दोषापहारात्)** उत्कृष्ट गुण समूह को आच्छादित करने वाले दोषों के दूर हो जाने से **(स्वात्मोपलब्धिः)** अपने आत्मा की उपलब्धि होना **(सिद्धिः)** सिद्धि कहलाती है। **(यथा)** जिस प्रकार **(इह)** इस लोक में **(योग्योपादान-युक्त्या)** योग्य उपादान से सहित होने से **(दृषदः)** स्वर्णपाषाण की **(हेम-भावोपलब्धिः)** सुवर्ण भाव से उपलब्धि होती है।

**नाभावः सिद्धि-रिष्टा, न निज-गुण-हतिस्तत् तपोभिर्न युक्ते-**
**रस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक्तत्क्षयान् मोक्षभागी।**
**ज्ञाता द्रष्टा स्वदेह-प्रमिति-रुपसमाहार-विस्तार-धर्मा**
**ध्रौव्योत्पत्ति-व्ययात्मा, स्वगुणयुत इतो, नान्यथा साध्यसिद्धिः ॥२॥**

**अन्वयार्थ—(अभावः)** आत्मा का अभाव है, ऐसी **(सिद्धिः)** सिद्धि **(न इष्टा)** इष्ट नहीं है। **(निजगुणहतिः)** अपने गुणों का नाश **(तत्तपोभिः)** उन तप आदि के द्वारा भी **(न)** नहीं होता है, **(न युक्तेः)** क्योंकि यह युक्ति से सिद्ध नहीं है। **(आत्मा)** आत्मा **(अस्ति)** है। **(अनादिबद्धः)** वह अनादिकाल से बद्ध है। **(स्वकृतजफलभुक्)** वह अपने कर्म से उत्पन्न फलों का भोक्ता है। **(तत्क्षयात्)** उन कर्मों के क्षय से **(मोक्षभागी)** मोक्ष को प्राप्त होता है। **(ज्ञाता-द्रष्टा)** वह आत्मा ज्ञान दर्शन स्वभाव वाला है। **(स्वदेह-प्रमितिः)** वह आत्मा अपने शरीर प्रमाण है। **(उपसमाहार-विस्तार-धर्मा)** वह संकोच-विस्तार स्वभाव वाला है। **(ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा)** वह ध्रौव्य, उत्पाद, व्यय रूप है। **(स्वगुण-युतः)** वह अपने गुणों से सहित है। **(इतः अन्यथा)** इससे अन्य प्रकार से

**(साध्य-सिद्धिः न)** साध्य की सिद्धि नहीं है।

**स त्वन्तर्बाह्य - हेतु - प्रभव-विमल-सद्दर्शन-ज्ञान-चर्या-**
**संपद्धेति-प्रघात-क्षत-दुरिततया व्यञ्जिताचिन्त्य-सारैः।**
**कैवल्यज्ञानदृष्टि-प्रवर-सुख-महावीर्य - सम्यक्त्वलब्धि-**
**ज्योतिर्वातायनादि-स्थिर-परमगुणै - रद्भुतैर्भासमानः ॥३॥**

**अन्वयार्थ—(तु)** तथा **(स)** वह आत्मा **(अन्तर्बाह्य-हेतु-प्रभव-विमल-सद्दर्शन-ज्ञान-चर्यासंपत्-हेति-प्रघात-क्षत-दुरिततया)** अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग कारणों से उत्पन्न निर्मल-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की सम्पत्तिरूपी शस्त्र के तीव्र घात से पाप कर्मों के क्षय हो जाने से **(व्यञ्जिता-चिन्त्यसारैः)** अचिन्त्य सार (फल) प्रकट होने के साथ **(कैवल्यज्ञानदृष्टिप्रवर-सुख-महावीर्य-सम्यक्त्वलब्धिज्योतिर्वातायनादिस्थिर-परमगुणैः-अद्भुतैः)** केवलज्ञान, केवलदर्शन, उत्कृष्टसुख, महाशक्ति, सम्यक्त्व, लब्धि, भामण्डल, चँवर आदि अद्भुत उत्कृष्ट गुणों से **(भासमानः)** शोभायमान होता है।

**जानन् पश्यन् समस्तं सम-मनुपरतं संप्रतृप्यन् वितन्वन्**
**धुन्वन् ध्वान्तं नितान्तं निचित-मनुसभं प्रीणयन्नीशभावम्।**
**कुर्वन् सर्व-प्रजाना-मपर-मभिभवन् ज्योति-रात्मानमात्मा**
**आत्मन्येवात्मनाऽसौ क्षण-मुपजनयन् सत्स्वयम्भूः प्रवृत्तः ॥४॥**

**अन्वयार्थ— (समं)** एक साथ **(समस्तं)** समस्त पदार्थों को **(जानन् पश्यन्)** जानते देखते हुए **(अनुपरतं)** निरन्तर **(संप्रतृप्यन्)** सुख से सन्तुष्ट होते हुए **(वितन्वन्)** विस्तार को प्राप्त करते हुए **(नितान्तं निचितं)** अत्यन्त खचित **(ध्वान्तं)** मोह अन्धकार को **(धुन्वन्)** दूर करते हुए **(अनुसभं)** सम्पूर्ण सभा को **(प्रीणयन्)** प्रसन्न करते हुए **(सर्वप्रजानां)** समस्त प्रजा का **(ईशभावं)** स्वामित्व **(कुर्वन्)** करते हुए **(अपरं ज्योतिः)** तथा अन्य प्रकाशमान पदार्थों की ज्योति को **(अभिभवन्)** तिरस्कृत करते हुए **(हि)** निश्चय से **(आत्मानं)** आत्मा को **(आत्मनि)** आत्मा में **(एव)** ही **(आत्मना)** अपनी आत्मा के द्वारा **(उपजनयन्)** प्राप्त करते हुए **(क्षणं)** क्षण भर में **(असौ आत्मा)** वह आत्मा **(सत् स्वयम्भूः)** समीचीन स्वयम्भू **(प्रवृत्तः)** हो जाता है। क्या करते हुए वह स्वयम्भू हुए हैं, यह कहते हैं।

**छिन्दन् शेषानशेषान्- निगल-बल-कलींस्तै-रनन्त-स्वभावैः**
**सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहा- गुरु-लघुक-गुणैः, क्षायिकैः शोभमानः।**
**अन्यैश्चान्य-व्यपोह- प्रवण-विषय-सम्प्राप्ति-लब्धि-प्रभावै-**
**रूर्ध्वं व्रज्यास्वभावात् समय-मुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्र्ये ॥५॥**

**अन्वयार्थ—** वह आत्मा **(शेषान्)** शेष बची **(अशेषान्)** समस्त **(निगल-बल-कलीन्)** बेड़ी के समान बलवान कर्म प्रकृतियों को **(छिन्दन्)** नष्ट करते हुए **(तैः अनन्तस्वभावैः)** उस अनन्त स्वभाव के साथ **(क्षायिकैः)** क्षायिक **(सूक्ष्मत्वाग्र्या-वगाह्य-गुरुलघुकगुणैः)** सूक्ष्मत्व, अग्र्यावगाह, अगुरुलघु गुणों से **(च)** एवं **(अन्यैः)** अन्य **(अन्यव्यपोह-प्रवण-विषय-सम्प्राप्ति-लब्धि-प्रभावैः)** अवशिष्ट इतर कर्म प्रकृतियों के विनाश से स्वात्मा को प्राप्ति की महिमा के प्रभाव से **(शोभमानः)** शोभित होता है। **(ऊर्ध्वं व्रज्यास्वभावात्)** ऊर्ध्वगमन स्वभाव से **(समय-मुपगतः)** एक समय में **(अग्र्ये धाम्नि)** लोक के अग्र स्थान पर **(सन्तिष्ठते)** स्थित हो जाता है।

**अन्याकाराप्ति-हेतु-र्न च भवति परो येन तेनाल्प-हीनः**
**प्रागात्मोपात्त-देह- प्रति-कृति रुचिराकार एव ह्यमूर्तः।**
**क्षुत्-तृष्णा-श्वास-कास-ज्वरमरण-जरानिष्ट-योग-प्रमोह-**
**व्यापत्याद्युग्र-दुःख-प्रभवभवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता ॥६॥**

**अन्वयार्थ— (येन)** चूँकि वह सिद्ध भगवान् **(परः)** दूसरे किसी **(अन्याकाराप्तिहेतुः)** अन्य आकार की प्राप्ति में कारण **(न च)** नहीं **(भवति)** होता है **(तेन)** इसलिए **(अल्पहीनः)** वे कुछ कम **(प्राक्-आत्म-उपात्त-देह-प्रतिकृति-रुचिरा-कारः एव)** पहले प्राप्त शरीर की प्रतिकृति रूप मनोहर आकार वाले ही होते हैं। **(हि अमूर्तः)** वे निश्चय से अमूर्तिक होते हैं। **(क्षुत्-तृष्णा-श्वास-कास-ज्वर-मरणजरा-निष्ट-योग-प्रमोह-व्यापत्त्या-द्युग्र-दुःख-प्रभव-भव-हतेः)** भूख, प्यास, श्वास, खाँसी, ज्वर, मरण, बुढ़ापा, अनिष्ट, संयोग, तीव्र मोह, व्यापत्ति आदि उग्र दुःखों से उत्पन्न संसार का नाश हो जाने से **(अस्य सौख्यस्य)** इन सिद्ध भगवान् के सुख को **(माता)** जानने वाला **(कः)** कौन है ? अर्थात् कोई नहीं।

**आत्मोपादान-सिद्धं, स्वय-मतिशय-वद्- वीत-बाधं विशालं,**
**वृद्धि-ह्रास-व्यपेतं विषय-विरहितं निःप्रतिद्वन्द्व-भावम्।**
**अन्य-द्रव्यानपेक्षं निरुपमममितं शाश्वतं सर्व-कालं**
**उत्कृष्टानन्त-सारं परम-सुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ॥७॥**

**अन्वयार्थ— (अतः)** इसलिए **(तस्य सिद्धस्य)** उन सिद्ध भगवान् का **(परमसुखं)** श्रेष्ठ सुख **(आत्मोपादानसिद्धं)** अपने आत्म उपादान से उत्पन्न हुआ है **(स्वयमतिशयवत्)** स्वयं अतिशय वाला है **(वीतबाधं)** बाधा से रहित है **(विशालं)** बहुत विस्तृत है **(वृद्धिह्रास-व्यपेतं)** हीनाधिकता से रहित है, **(विषयविरहितं)** विषयों से रहित है **(निःप्रतिद्वन्द्वभावं)** प्रतिपक्षी भाव से रहित है **(अन्यद्रव्यानपेक्षं)** अन्य द्रव्य की अपेक्षा नहीं रखने वाला है, **(निरुपमं)** उपमा रहित है **(अमितं)** माप रहित है **(शाश्वतं)** स्थायी है **(सर्वकालं)** हमेशा रहने वाला **(उत्कृष्टानन्तसारं)** उत्कृष्ट-

अनन्त सार वाला **(जातम्)** होता है। उनका सुख किन विशिष्टताओं वाला है, यह कहते हैं–

**नार्थः क्षुत्-तृट्-विनाशाद्, विविध-रसयुतै- रन्न-पानै-रशुच्या**
**नास्पृष्टे-र्गन्ध-माल्यै- र्न हि मृदुशयनै-र्ग्लानि-निद्राद्यभावात्।**
**आतङ्कार्ते-रभावे तदुपशमन- सद्- भेषजानर्थतावद्**
**दीपानर्थक्य-वद् वा व्यपगत-तिमिरे दृश्यमाने समस्ते ॥८॥**

**अन्वयार्थ– (क्षुत्-तृट्-विनाशात्)** भूख प्यास का नाश हो जाने से **(विविधरसयुतैः)** अनेक प्रकार के रसों से युक्त **(अन्नपानैः)** भोजन-पानी का **(न अर्थः)** कोई प्रयोजन नहीं है। **(अशुच्या)** अशुचि से **(अस्पृष्टेः)** स्पर्श न होने से **(गन्धमाल्यैः)** गन्धमाला से **(न)** कोई अर्थ नहीं है। **(ग्लानिनिद्राद्यभावात्)** घृणा, निद्रा आदि का अभाव होने से **(मृदुशयनैः)** कोमल शय्या से **(न हि)** कोई प्रयोजन नहीं है। **(वा)** जिस प्रकार **(आतङ्कार्ते-रभावे)** रोगजन्य पीड़ा का अभाव होने से **(तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावत्)** उसे शान्त करने वाली अच्छी औषधि अप्रयोजन की तरह है। **(व्यपगततिमिरे)** अन्धकार के मिट जाने पर **(समस्ते दृश्यमाने)** समस्त पदार्थ दिखाई देने से **(दीपानर्थक्यवत्)** दीपक भी निरर्थक के समान है।

**तादृक्-सम्पत्-समेता विविध-नय-तपः-संयम-ज्ञान-दृष्टि -**
**चर्या-सिद्धाः समन्तात् प्रवितत्-यशसो विश्व-देवाधि-देवाः।**
**भूता भव्या भवन्तः सकल-जगति ये स्तूयमाना विशिष्टैस्**
**तान् सर्वान् नौम्यनन्तान् निजिगमिषुररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ॥९॥**

**अन्वयार्थ– (ये)** जो **(तादृक्-सम्पत-समेताः)** उपर्युक्त सम्पत्ति से सहित हैं **(विविध-नय-तपः संयम-ज्ञान-दृष्टि-चर्या-सिद्धाः)** जो अनेक प्रकार के नय, तप, संयम, ज्ञान, सम्यग्दर्शन और चारित्र से सिद्ध हुए हैं **(समन्तात् प्रविततयशसः)** जिनका यश सब ओर फैला है **(विश्वदेवाधिदेवाः)** जो समस्त देवों के भी देव हैं, **(भूताः)** जो भूतकाल में हो चुके हैं **(भव्याः)** जो भविष्य में होने योग्य हैं **(भवन्तः)** और जो वर्तमान में हो रहे हैं, **(सकलजगति)** समस्त संसार में जो **(विशिष्टैः)** विशिष्ट पुरुषों से **(स्तूयमानाः)** स्तुति को प्राप्त हुए हैं **(तान् सर्वान् अनन्तान्)** उन समस्त अनन्त सिद्धों को **(तत्स्वरूपं)** उनके स्वरूप को **(अरं)** शीघ्र ही **(निजिगमिषुः)** प्राप्त करने का इच्छुक मैं **(त्रिसन्ध्यम्)** तीनों संध्याओं में **(नौमि)** नमस्कार करता हूँ।

**कृत्वा कायोत्सर्गं चतुरष्ट-दोष-विरहितं सुपरिशुद्धम्।**
**अतिभक्तिसम्प्रयुक्तो यो वन्दते स लघु लभते परमसुखम् ॥१०॥**

**अन्वयार्थ– (अतिभक्तिसम्प्रयुक्तः)** अत्यन्त भक्ति से प्रेरित हुआ **(यः)** जो **(चतुरष्टदोष-विरहितं)** बत्तीस दोषों से रहित **(सुपरिशुद्धं)** अतिशय शुद्ध निर्दोष **(कायोत्सर्गं कृत्वा)** कायोत्सर्ग

करके **(वन्दते)** वन्दना करता है **(स)** वह **(लघु)** शीघ्र ही **(परमसुखम्)** श्रेष्ठ सुख को **(लभते)** प्राप्त होता है।

## अञ्चलिका

**इच्छामि भंते। सिद्धभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्म-णाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविहकम्म-विप्पमुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।**

**अर्थ—**हे भगवन्! मैंने चौबीस तीर्थंकर भक्ति का कायोत्सर्ग किया। उसकी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। पंच महाकल्याणकों से सम्पन्न, अष्टमहाप्रातिहार्यों से सहित, चौंतीस विशेष अतिशयों से संयुक्त, बत्तीस देवेन्द्रों के मणिमय मुकुटों वाले मस्तक से पूजित, बलदेव, वासुदेव, चक्रधर, ऋषि, मुनि, यति, अनगारों से युक्त तथा लाखों स्तुति के निलय, वृषभ आदि अन्तिम महावीर तीर्थंकर तक मंगल महापुरुषों की नित्यकाल मैं अर्चना करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधिलाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और मुझे जिनेन्द्रदेव के गुणों की सम्पत्ति प्राप्त हो।
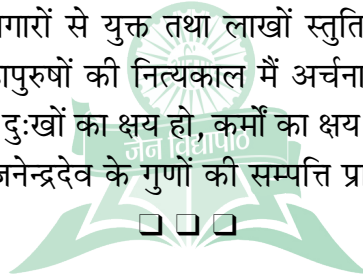
# श्रुतभक्ति

**स्तोष्ये संज्ञानानि परोक्षप्रत्यक्षभेदभिन्नानि।**
**लोकालोकविलोकन-लोलितसल्लोक-लोचनानि सदा ॥१॥**

**अन्वयार्थ–(लोकालोक-विलोकन-लोलित-सल्लोक-लोचनानि)** जो लोक और अलोक को देखने में उत्कण्ठित हैं, ऐसे सत्पुरुषों के नेत्र स्वरूप **(परोक्ष-प्रत्यक्षभेदभिन्नानि)** परोक्ष और प्रत्यक्ष भेद वाले **(संज्ञानानि)** सम्यग्ज्ञानों की **(सदा)** हमेशा **(स्तोष्ये)** मैं स्तुति करूँगा।

**अभिमुखनियमितबोधन - माभिनिबोधिक-मनिन्द्रियेन्द्रियजम्।**
**बह्वाद्यवग्रहादिककृत - षट्त्रिंशत् - त्रिशत-भेदम् ॥२॥**
**विविधर्द्धिबुद्धि-कोष्ठस्फुट - बीजपदानुसारि-बुद्ध्यधिकं।**
**संभिन्न-श्रोतृ-तया, सार्धं श्रुत-भाजनं वन्दे ॥३॥**

**अन्वयार्थ– (अभिमुखनियमित-बोधनं)** जो अभिमुख हुए नियमित विषय को जानता है **(अनिन्द्रियेन्द्रियजं)** जो मन और इन्द्रियों से उत्पन्न होता है **(बह्वाद्यवग्रहा-दिक-कृत-षट्त्रिंशत्-त्रिशतभेदम्)** जो बहु आदि पदार्थ और अवग्रह आदिज्ञान के द्वारा तीन सौ छत्तीस भेद वाला है **(विविधर्द्धि बुद्धि-कोष्ठ-स्फुट-बीज-पदानुसारि-बुद्ध्यधिकम्)** जो अनेक ऋद्धियों से युक्त बुद्धि, कोष्ठ, स्फुट बीज, पदानुसारी बुद्धि से परिपूर्ण है **(संभिन्नश्रोतृतया सार्धं)** तथा संभिन्न श्रोतृ ऋद्धि से सहित है **(श्रुतभाजनं)** जो श्रुत ज्ञान का आधार है **(आभिनिबोधिकं)** ऐसे मतिज्ञान की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

**श्रुतमपि जिनवर-विहितं गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम्।**
**अङ्गाङ्ग-बाह्य-भावित-मनन्त-विषयं नमस्यामि ॥४॥**

**अन्वयार्थ– (जिनवरविहितं)** जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुए **(गणधररचितं)** गणधर देव द्वारा रचित **(द्व्यनेकभेदस्थम्)** दो और अनेक भेदों में स्थित **(अङ्गाङ्गबाह्यभावित-मनन्तविषयं)** अंग और अंग बाह्य से युक्त अनन्त विषय वाले **(श्रुतमपि)** श्रुतज्ञान को भी **(नमस्यामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

**पर्यायाक्षर-पद-संघात-प्रतिपत्तिकानुयोग - विधीन्।**
**प्राभृतक-प्राभृतकं प्राभृतकं वस्तु-पूर्वं च ॥५॥**
**तेषां समासतोऽपि च विंशतिभेदान् समश्नुवानं तत्।**
**वन्दे द्वादशधोक्तं गभीर-वर-शास्त्र-पद्धत्या ॥६॥**

**अन्वयार्थ— (पर्यायाक्षर-पद-संघात-प्रतिपत्तिका-नुयोग-विधीन्)** पर्याय, अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग विधि को **(च)** और **(प्राभृतक-प्राभृतकं)** प्राभृतक-प्राभृतक **(प्राभृतकं)** प्राभृतक **(वस्तु-पूर्वं)** वस्तु, पूर्व **(तेषां समासतः अपि च)** उन्हीं के समास से होने वाले भेद मिलकर **(विंशतिभेदान्)** बीस भेदों को **(समश्नुवानं)** व्याप्त करने वाले तथा **(गभीर-वर-शास्त्र-पद्धत्या)** गंभीर-श्रेष्ठ शास्त्र की पद्धति से **(द्वादशधा)** बारह प्रकार के **(उक्तं)** कहे हुए **(तत्)** उस श्रुत की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

**आचारं सूत्रकृतं स्थानं समवाय-नामधेयं च।**
**व्याख्या-प्रज्ञप्तिं च ज्ञातृकथोपासकाध्ययने ॥७॥**
**वन्देऽन्तकृद्दश-मनुत्तरोपपादिकदशं दशावस्थम्।**
**प्रश्नव्याकरणं हि विपाकसूत्रं च विनमामि ॥८॥**

**अन्वयार्थ— (आचारं)** आचारांङ्ग **(सूत्रकृतं)** सूत्रकृताङ्ग **(स्थानं)** स्थानाङ्ग **(च)** और **(समवाय-नामधेयं)** समवाय नाम का अङ्ग **(व्याख्या-प्रज्ञप्तिं)** व्याख्या प्रज्ञप्ति अंग **(च)** तथा **(ज्ञातृकथोपासकाध्ययने)** ज्ञातृकथाङ्ग, उपासकाध्ययन अङ्ग **(अन्तकृद्दशं)** अन्तकृद्दशाङ्ग **(अनुत्तरोपपादिकदशं)** तथा अनुत्तरोपपादिक दशाङ्ग की **(दशावस्थं)** दश संख्या सहित **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ। **(प्रश्नव्याकरणं)** प्रश्नव्याकरणाङ्ग **(च)** और **(विपाकसूत्रं)** विपाक सूत्र को मैं **(हि)** निश्चय से **(विनमामि)** नमस्कार करता हूँ।

**परिकर्म च सूत्रं च स्तौमि प्रथमानुयोगपूर्वगते।**
**सार्द्धं चूलिकयापि च पञ्चविधं दृष्टिवादं च ॥९॥**

**अन्वयार्थ— (परिकर्म च)** परिकर्म **(सूत्रं च)** सूत्र **(प्रथमानुयोगपूर्वगते)** प्रथमानुयोग, पूर्वगत **(च चूलिकया सार्द्धं)** चूलिका के साथ **(पञ्चविधं दृष्टिवादं चापि)** पाँच प्रकार के दृष्टिवाद अङ्ग की **(स्तौमि)** मैं स्तुति करता हूँ।

**पूर्वगतं तु चतुर्दशधोदित-मुत्पादपूर्व-माद्यमहम्।**
**आग्रायणीय-मीडे पुरु-वीर्यानुप्रवादं च ॥१०॥**
**संततमहमभिवन्दे तथास्ति-नास्ति प्रवादपूर्वं च।**
**ज्ञानप्रवाद-सत्यप्रवाद-मात्मप्रवादं च ॥११॥**
**कर्मप्रवाद-मीडेऽथ प्रत्याख्यान-नामधेयं च।**
**दशमं विद्याधारं पृथुविद्यानुप्रवादं च ॥१२॥**

**कल्याणनामधेयं प्राणावायं क्रियाविशालं च।**
**अथ लोकबिन्दुसारं वन्दे लोकाग्रसारपदम् ॥१३॥**

**अन्वयार्थ–** **(पूर्वगतं)** पूर्वगत **(तु)** तो **(चतुर्दशधा)** चौदह प्रकार का **(उदितं)** कहा है। **(आद्यं)** उसमें पहले **(उत्पादपूर्वं)** उत्पाद पूर्व की **(आग्रायणीयं)** आग्रायणीय पूर्व को **(च)** और **(पुरुवीर्यानुप्रवादं)** वीर्यानुप्रवाद की **(अहं)** मैं **(ईडे)** स्तुति करता हूँ। **(तथा)** तथा **(अस्तिनास्ति-प्रवादपूर्वं)** अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व की, **(ज्ञानप्रवादसत्यप्रवादं च)** ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद पूर्व को **(च)** और **(आत्मप्रवादं)** आत्मप्रवाद की **(संततं)** निरन्तर **(अहं)** मैं **(अभिवन्दे)** वन्दना करता हूँ। **(अथ)** फिर **(कर्मप्रवादं)** कर्म प्रवाद, **(प्रत्याख्याननामधेयं च)** प्रत्याख्यान नाम के पूर्व की और **(विद्याधारं)** विद्याओं के आधारभूत **(दशमं)** दशवे **(पृथु-विद्यानुप्रवादं च)** विस्तृत विद्यानुप्रवाद की **(ईडे)** मैं स्तुति करता हूँ। **(अथ)** पश्चात् **(कल्याणनामधेयं)** कल्याण नामका पूर्व **(प्राणावायं)** प्राणावाय पूर्व **(क्रियाविशालं च)** क्रिया विशाल और **(लोकाग्रसारपदं)** लोक के अग्रभाग मोक्ष का सारभूत **(लोकबिन्दुसारं)** लोकबिन्दुसार पूर्व की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

**दश च चतुर्दश चाष्टावष्टादश च द्वयोर्द्विषट्कं च।**
**षोडश च विंशतिं च त्रिंशतमपि पञ्चदश च तथा ॥१४॥**
**वस्तूनि दश दशान्येष्वनुपूर्वं भाषितानि पूर्वाणाम्।**
**प्रतिवस्तु प्राभृतकानि विंशतिं विंशतिं नौमि ॥१५॥**

**अन्वयार्थ–** **(दश)** दश **(च चतुर्दश)** चौदह **(च अष्टौ)** आठ **(अष्टादश च)** अठारह, **(द्वयोः)** दो पूर्वो की **(द्विषट्कं च)** बारह बारह **(षोडश च)** सोलह **(विंशतिं च)** बीस **(त्रिंशतमपि)** तीस **(पञ्चदश च)** पन्द्रह **(तथा)** तथा **(अन्येषु)** अन्य शेष में **(दश-दश)** दश दश **(वस्तूनि)** वस्तुएँ **(अनुपूर्वं)** क्रम से **(पूर्वाणां)** पूर्वों की **(भाषितानि)** कहीं हैं। **(प्रतिवस्तु)** वस्तु के **(प्राभृतकानि)** प्राभृतक **(विंशतिं विंशतिं)** बीस-बीस हैं, इन सभी को मैं **(नौमि)** नमस्कार करता हूँ।

**पूर्वान्तं ह्यपरान्तं ध्रुव-मध्रुव-च्यवन-लब्धि-नामानि।**
**अध्रुव-सम्प्रणिधिं चाप्यर्थं भौमावयाद्यं च ॥१६॥**
**सर्वार्थकल्पनीयं ज्ञानमतीतं त्वनागतं कालम्।**
**सिद्धि-मुपाध्यं च तथा चतुर्दशवस्तूनि द्वितीयस्य ॥१७॥**

**अन्वयार्थ–** **(पूर्वान्तं)** पूर्वान्त **(हि अपरान्तं)** अपरान्त **(ध्रुवं)** ध्रुव **(अध्रुवच्यवन-लब्धिनामानि)** अध्रुव, च्यवनलब्धि **(अध्रुवसम्प्रणिधिं)** अध्रुवसम्प्रणिधि **(चापि)** और **(अर्थं)** अर्थ **(भौमावयाद्यं च)** भौमावयाद्य **(सर्वार्थकल्पनीयं)** सर्वार्थकल्पनीय **(ज्ञानं)** ज्ञान **(अतीतं तु**

**अनागतं कालं)** अतीत काल, अनागत काल **(सिद्धिं)** सिद्धि **(उपाध्यं च तथा)** तथा उपाध्य **(द्वितीयस्य)** द्वितीय पूर्व की **(चतुर्दशवस्तूनि)** चौदह वस्तुएँ हैं।

**पञ्चमवस्तु-चतुर्थं - प्राभृतकस्यानुयोग-नामानि।**
**कृतिवेदने तथैव स्पर्शन-कर्मप्रकृतिमेव ॥१८॥**
**बन्धन - निबन्धन - प्रक्रमानुपक्रम - मथाभ्युदय-मोक्षौ।**
**संक्रमलेश्ये च तथा लेश्यायाः कर्मपरिणामौ ॥१९॥**
**सात-मसातं दीर्घं ह्रस्वं भवधारणीय-संज्ञं च।**
**पुरुपुद्गलात्मनाम च निधत्तमनिधत्तमभिनौमि ॥२०॥**
**सनिकाचितमनिकाचित-मथकर्मस्थितिक-पश्चिमस्कन्धौ।**
**अल्पबहुत्वं च यजे तद्द्वाराणां चतुर्विंशम् ॥२१॥**

**अन्वयार्थ— (पञ्चमवस्तुचतुर्थं प्राभृतकस्य)** पंचम वस्तु के चतुर्थ प्राभृतक के **(अनुयोग-नामानि)** अनुयोग नाम इस प्रकार हैं। **(कृतिवेदने)** कृति, वेदना **(तथैव)** तथा **(स्पर्शनकर्मप्रकृतिं एव)** स्पर्शन, कर्म प्रकृति **(बन्धननिबन्धनप्रक्रमानुपक्रमं)** बन्धन, निबन्धन, प्रक्रम, अनुपक्रम **(अथ)** और **(अभ्युदयमोक्षौ)** अभ्युदय, मोक्ष **(संक्रमलेश्ये)** संक्रम, लेश्या **(तथा च)** तथा **(लेश्यायाः कर्मपरिणामौ)** लेश्याकर्म, लेश्यापरिणाम **(सातमसातं)** सातु असात **(दीर्घं)** दीर्घ **(ह्रस्वं)** ह्रस्व **(भवधारणीयसंज्ञं च)** भवधारणीय **(पुरुपुद्गलात्मनाम च)** श्रेष्ठ पुद्गलात्म **(निधत्तं अनिधत्तं)** निधत्त, अनिधत्त को **(अभिनौमि)** मैं नमस्कार करता हूँ। **(अथ)** फिर **(सनिकाचितं अनिकाचितं)** निकाचित सहित की, अनिकाचित की **(कर्मस्थितिकपश्चिमस्कन्धौ)** कर्म स्थिति, पश्चिमस्कन्ध **(च)** और **(तद्द्वाराणां चतुर्विंशं)** इन चौबीस अनुयोग द्वारों के **(अल्पबहुत्वं च)** अल्प बहुत्व की **(यजे)** मैं पूजा करता हूँ।

**कोटीनां द्वादशशतमष्टापञ्चाशतं सहस्राणाम्।**
**लक्षत्र्यशीतिमेव च पञ्च च वन्दे श्रुतपदानि ॥२२॥**

**अन्वयार्थ— (द्वादशशतं कोटीनां)** एक सौ बारह करोड़ **(लक्षत्र्यशीतिं एव)** तेरासी लाख **(अष्टापञ्चाशतं सहस्राणां)** अट्ठावन हजार **(च)** और **(पञ्च च)** पाँच **(श्रुतपदानि)** श्रुत के पदों की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

**षोडशशतं चतुस्त्रिंशत् कोटीनां त्र्यशीति-लक्षाणि।**
**शतसंख्याष्टासप्तति- मष्टाशीतिं च पदवर्णान् ॥२३॥**

**अन्वयार्थ— (षोडशशतं चतुस्त्रिंशत् कोटीनां)** सोलह सौ चौंतीस करोड़ **(त्र्यशीति-लक्षाणि)** तेरासी लाख **(शतसंख्याष्टा सप्ततिं)** अठहत्तर सौ **(अष्टाशीतिं च)** अठासी **(पदवर्णान्)**

प्रत्येक पद की/वर्ण संख्या की मैं स्तुति करता हूँ।

**सामायिकं चतुर्विंशति-स्तवं वन्दनां प्रतिक्रमणम्।**
**वैनयिकं कृतिकर्म च पृथुदशवैकालिकं च तथा ॥२४॥**
**वर-मुत्तराध्ययन-मपि कल्पव्यवहार-मेव-मभिवन्दे।**
**कल्पाकल्पं स्तौमि महाकल्पं पुण्डरीकं च ॥२५॥**
**परिपाट्या प्रणिपतितोऽस्म्यहं महापुण्डरीकनामैव।**
**निपुणान्यशीतिकं च प्रकीर्णकान्यङ्ग-बाह्यानि ॥२६॥**

**अन्वयार्थ— (सामायिकं)** सामायिक **(चतुर्विंशतिस्तवं)** चतुर्विंशति स्तवन **(वन्दनां)** वन्दना **(प्रतिक्रमणं)** प्रतिक्रमण **(वैनयिकं)** वैनयिक **(कृतिकर्म च)** कृतिकर्म **(पृथुदश-वैकालिकं)** महान दशवैकालिक **(तथा च)** तथा **(वरं उत्तराध्ययनं अपि)** श्रेष्ठ उत्तराध्ययन को भी **(कल्पव्यहारं एवं)** और कल्पव्यवहार की भी मैं **(अभिवन्दे)** वन्दना करता हूँ। **(कल्पाकल्पं)** कल्पाकल्प **(महाकल्पं)** महाकल्प **(पुण्डरीकं च)** और पुण्डरीक की **(स्तौमि)** मैं स्तुति करता हूँ। **(महापुण्डरीकनाम एव)** महापुण्डरीक **(अशीतिकं)** और अशीतिक ये सभी **(निपुणानि)** सूक्ष्म अर्थ के प्रतिपादक **(प्रकीर्णकानि च अङ्गबाह्यानि)** प्रकीर्णक अंगबाह्य हैं। **(परिपाट्या)** क्रम से **(अहं)** मैं **(प्रणिपतितः अस्मि)** इन अंगों को प्रणाम करता हूँ।

**पुद्गल-मर्यादोक्तं प्रत्यक्षं सप्रभेद-मवधिं च।**
**देशावधि - परमावधि - सर्वावधि-भेद-मभिवन्दे ॥२७॥**

**अन्वयार्थ— (पुद्गलमर्यादोक्तं)** जिस ज्ञान में पुद्गल द्रव्य की मर्यादा कही है **(प्रत्यक्षं)** जो प्रत्यक्ष है। **(सप्रभेदं)** जो अनेक भेदों सहित हैं, **(देशावधि-परमावधि-सर्वावधि-भेदं च)** देशावधि, परमावधि तथा सर्वावधि भेद वाले उस **(अवधिं)** अवधिज्ञान की मैं **(अभिवन्दे)** वन्दना करता हूँ।

**परमनसि स्थितमर्थं मनसा परिविद्य मन्त्रि-महितगुणम्।**
**ऋजुविपुल-मतिविकल्पं स्तौमि मनःपर्ययज्ञानम् ॥२८॥**

**अन्वयार्थ— (परमनसि)** दूसरे के मन में **(स्थितं अर्थं)** स्थिति अर्थ को **(मनसा)** मन के द्वारा **(परिविद्य)** जानकर **(मन्त्रिमहितगुणं)** महर्षियों से पूजित गुण वाले **(ऋजुविपुलमतिविकल्पं)** ऋजुमति और विपुलमति भेद वाले **(मनःपर्ययज्ञानं)** मनःपर्ययज्ञान की **(स्तौमि)** मैं स्तुति करता हूँ।

**क्षायिकमनन्तमेकं त्रिकाल-सर्वार्थ-युगपदवभासम्।**
**सकल-सुख-धाम सततं वन्देऽहं केवलज्ञानम् ॥२९॥**

**अन्वयार्थ— (क्षायिकं)** जो क्षायिक है **(अनन्तं)** अनन्त है **(एकं)** एक है, **(त्रिकाल-**

**सर्वार्थयुगपदवभासं)** तीन काल के समस्त पदार्थों को एक साथ जानता है। **(सकलसुखधाम)** समस्त सुखों का स्थान हैं। **(केवलज्ञानं)** ऐसे केवलज्ञान की **(अहं)** मैं **(सततं)** निरन्तर **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ।

**एवमभिष्टुवतो मे ज्ञानानि समस्त-लोक-चक्षूंषि।**
**लघु भवताज्ज्ञानर्द्धि-र्ज्ञानफलं सौख्य-मच्यवनम् ॥३०॥**

**अन्वयार्थ—(एवं)** इस प्रकार **(समस्तलोकचक्षूंषि ज्ञानानि)** समस्त लोक को देखने के लिए नेत्र स्वरूप पाँचों ज्ञान की **(मे अभिष्टुवतः)** मुझ स्तुति करने वाले को **(ज्ञानर्द्धिः)** ज्ञान की ऋद्धि तथा **(ज्ञानफलं)** ज्ञान का फल **(अच्यवनं सौख्यं)** अविनाशी सुख **(लघु)** शीघ्र **(भवतात्)** होवे।

## अञ्चलिका

**इच्छामि भंते ! सुदभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सा-लोचेउं, अंगोवंग-पइण्णए-पाहुडय-परियम्म-सुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्मकहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।**

**अर्थ—**हे भगवन्! मैंने जो श्रुत भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है उसकी आलोचना करता हूँ, स्तुति तथा धर्मकथा आदि की नित्यकाल अर्चा करता हूँ, पूजन करता हूँ वन्दना करता हूँ, उन्हें नमस्कार करता हूँ। इसके फलस्वरूप मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और मेरे लिये जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की संप्राप्ति हो।

❑ ❑ ❑

# चारित्रभक्ति

**येनेन्द्रान् भुवन-त्रयस्य विलसत्-केयूर-हाराङ्गदान्**
**भास्वन् - मौलि - मणिप्रभा - प्रविसरोत्-तुङ्गोत्तमाङ्गान्नतान्।**
**स्वेषां पाद-पयोरुहेषु मुनयश् चक्रुः प्रकामं सदा**
**वन्दे पञ्चतयं तमद्य निगदन्-नाचार-मभ्यर्चितम् ॥१॥**

**अन्वयार्थ—(येन)** जिसके द्वारा **(विलसत्केयूरहाराङ्गदान्)** शोभायमान हार और आभूषणों से सहित तथा **(भास्वन्मौलिमणिप्रभाप्रविसरोत्तुङ्गोत्तमाङ्गान्)** चमकते हुए मुकुटों की मणियों की प्रभा के प्रसार से ऊँचे उठे मस्तकों से सहित **(भुवनत्रयस्य)** तीन लोकों के **(इन्द्रान्)** इन्द्रों को **(मुनयः)** मुनिजन **(सदा)** हमेशा **(प्रकामं)** अच्छी तरह **(स्वेषां)** अपने **(पादपयोरुहेषु)** चरण कमलों में **(नतान् चक्रुः)** नम्रीभूत किये थे **(अद्य)** आज **(पंचतयं)** पाँच प्रकार के **(तं)** उस **(अभ्यर्चितं)** पूजनीय **(आचारं)** आचार का **(निगदन्)** कथन करता हुआ **(वन्दे)** मैं उसकी वन्दना करता हूँ।

**अर्थ-व्यञ्जन-तद्द्वया-विकलता - कालोपधा-प्रश्रयाः**
**स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहु-मतिश् चेत्यष्टधा व्याहृतम्।**
**श्रीमज्ज्ञाति-कुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा**
**ज्ञानाचार-महं त्रिधा प्रणिपता-म्युद्धूतये कर्मणाम् ॥२॥**

**अन्वयार्थ— (अर्थ-व्यञ्जन तद्द्वयाविकलता)** अर्थ अविकलता, व्यंजन, अविकलता तथा दोनों की अविकलता **(कालोपधाप्रश्रयाः)** काल, उपधा, विनय **(स्वाचार्याद्यनपह्नवः)** अपने आचार्य आदि का नाम नहीं छिपाना **(बहुमतिः च)** और बहुमान **(इति)** इस प्रकार **(अष्टधा)** आठ प्रकार से **(श्रीमज्ज्ञातिकुलेन्दुना)** श्रीमान् ज्ञाति वंश के चन्द्रमा **(भगवता तीर्थस्य)** भगवान महावीर जो कि तीर्थ के **(कर्त्रा)** कर्ता **(अञ्जसा)** स्पष्ट रूप से हैं उनके द्वारा **(व्याहृतं)** कहे गये **(ज्ञानाचारं)** ज्ञानाचार को **(कर्मणां)** कर्मों के **(उद्धूतये)** क्षय के लिए **(त्रिधा)** मन-वचन-काय तीन प्रकार से **(अहं)** मैं **(प्रणिपतामि)** नमस्कार करता हूँ।

**शङ्का - दृष्टि - विमोह - काङ्क्षणविधि -व्यावृत्ति-सन्नद्धतां**
**वात्सल्यं विचिकित्सना-दुपरतिं धर्मोपबृंह-क्रियाम्।**
**शक्त्या शासन-दीपनं हित-पथाद् भ्रष्टस्य संस्थापनं**
**वन्दे दर्शन-गोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात् ॥३॥**

**अन्वयार्थ—(शङ्कादृष्टिविमोहकाङ्क्षणविधि-व्यावृत्ति-सन्नद्धतां)** शंका और दर्शन मूढ़ता से रहित, आकांक्षा विधि से रहित होकर तत्पर होना **(वात्सल्यं)** वात्सल्य होना **(विचिकित्सनात् उपरतिं)** जुगुप्सा से दूर होना **(धर्मोपबृंहक्रियां)** धर्म बढ़ने की क्रिया करना **(शक्त्या)** शक्ति अनुसार **(शासनदीपनं)** शासन को दिखाना **(हितपथाद्)** हित पथ से **(भ्रष्टस्य)** भ्रष्ट हुए को **(संस्थापनं)** पुनः स्थापित करना ऐसे **(दर्शनगोचरं)** सम्यग्दर्शन के विषयभूत **(सुचरितं)** श्रेष्ठ आचार की **(आदरात्)** आदरपूर्वक **(मूर्ध्ना नमन्)** शिर से नमन करता हुआ **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

**एकान्ते शयनोपवेशन-कृतिः संतापनं तानवं**
**संख्या-वृत्ति-निबन्धना-मनशनं विष्वाण-मर्द्धोदरम्।**
**त्यागं चेन्द्रिय-दन्तिनो मदयतः स्वादो रसस्यानिशं**
**षोढा बाह्यमहं स्तुवे शिवगति- प्राप्त्यभ्युपायं तपः ॥४॥**

**अन्वयार्थ— (एकान्ते)** एकान्त में **(शयनोपवेशनकृतिः)** शयन करना, बैठना **(तानवं संतापनं)** शरीर सम्बन्धी तप करना **(संख्या वृत्तिनिबन्धनां)** वृत्ति की संख्या **(अनशनं)** अनशन **(अर्द्धोदरं विष्वाणं)** अर्ध उदर भोजन करना **(च)** और **(इन्द्रियदन्तिनः मदयतः)** इन्द्रियरूपी हाथियों को उन्मत्त करने वाले **(रसस्य स्वादोः)** रस के स्वाद का **(अनिशं)** सदा **(त्यागं)** त्याग करना इस प्रकार **(शिवगतिप्राप्त्यभ्युपायं)** शिवगति की प्राप्ति के उपाय भूत **(षोढा)** छह प्रकार के **(बाह्यं तपः)** बाह्य तप की **(अहं)** मैं **(स्तुवे)** स्तुति करता हूँ।

**स्वाध्यायः शुभकर्मणश्च्युतवतः संप्रत्यवस्थापनं**
**ध्यानं व्यापृति-रामयाविनि गुरौ वृद्धे च बाले यतौ।**
**कायोत्सर्जन-सत्क्रिया विनयइत्येवं तपः षड्विधं,**
**वन्देऽभ्यन्तर - मन्तरङ्ग - बलवद्-विद्वेषि-विध्वंसनम् ॥५॥**

**अन्वयार्थ— (स्वाध्यायः)** स्वाध्याय करना **(शुभकर्मणः च्युतवतः)** शुभकर्म से च्युत हुए अपने को **(संप्रत्यवस्थापनं)** पुनः सम्यक् प्रकार से स्थापित करना **(ध्यानं)** ध्यान **(आमयाविनि)** रोगी **(गुरौ)** गुरु में **(च)** और **(वृद्धे बाले यतौ)** वृद्ध तथा बालयति में **(व्यापृतिः)** सेवा कार्य **(कायोत्सर्जनसत्क्रिया)** कायोत्सर्ग क्रिया **(विनयः)** विनय **(इति एवं)** इस प्रकार से **(षड्विधं तपः)** छह प्रकार के **(अभ्यन्तरं)** अन्तरंग तप की मैं **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ। **(अन्तरङ्ग-बलवद्विद्वेषिविध्वंसनं)** अन्तरंग के बलवान शत्रुओं को नष्ट करने वाला यह तप है।

**सम्यग्ज्ञान-विलोचनस्य दधतः श्रद्धान-मर्हन्मते,**
**वीर्यस्या-विनि-गूहनेन तपसि, स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः।**
**या वृत्तिस्तरणीव नौरविवरा, लध्वी भवोदन्वतो,**
**वीर्याचारमहं तमूर्जितगुणं, वन्दे सता-मर्चितम् ॥६॥**

**अन्वयार्थ— (अर्हन्मते)** अरिहन्त भगवान् के मत में **(सम्यग्ज्ञान-विलोचनस्य)** सम्यग्ज्ञान रूपी नेत्र सहित **(श्रद्धानं दधतः)** श्रद्धान को धारण करने वाले **(यतेः)** यति के **(स्वस्य वीर्यस्य)** अपनी शक्ति को **(अविनिगूहनेन)** नहीं छिपाने से **(प्रयत्नात्)** प्रयत्न पूर्वक **(तपसि)** तप में **(या वृत्तिः)** जो प्रवृत्ति है वह **(भवोदन्वतः)** संसार सागर से **(तरणी)** पार करने वाली **(अविवरा)** छिद्ररहित **(लध्वी)** छोटी **(नौः इव)** नाव के समान है। **(तं)** उस **(ऊर्जितगुणं)** उत्कृट गुण सहित **(सतां अर्चितं)** सज्जनों से पूज्य **(वीर्याचारं)** वीर्याचार की **(अहं)** मैं **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ।

**तिस्रः सत्तम - गुप्तयस्तनुमनो - भाषानिमित्तोदयाः**
**पञ्चेर्यादि-समाश्रयाः समितयः पञ्चव्रतानीत्यपि।**
**चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परै-**
**राचारं परमेष्ठिनो जिनपतेर् वीरं नमामो वयम् ॥७॥**

**अन्वयार्थ— (तनुमनोभाषानिमित्तोदयाः)** शरीर, मन और वचन के निमित्त से होने वाली **(तिस्रः)** तीन **(सत्तमगुप्तयः)** श्रेष्ठ गुप्तियाँ **(ईर्यादिसमाश्रयाः)** ईर्यापथ आदि के आश्रय से **(पञ्चसमितयः)** पंच समितियाँ **(अपि)** और **(पञ्चव्रतानि)** पाँच महाव्रत **(इति)** इस प्रकार **(त्रयोदशतयं)** तेरह प्रकार का **(चारित्रोपहतं)** चारित्र सहित **(आचारं)** आचार को **(वयं)** हम **(नमामः)** नमस्कार करते हैं। जो **(परमेष्ठिनः)** अर्हन्त परमेष्ठी **(जिनपतेः)** जिनेन्द्र देव वीतराग **(वीरं)** महावीर भगवान् से **(परैः)** अन्य तीर्थंकर के द्वारा **(पूर्वं)** पहले **(न दृष्टं)** नहीं देखा गया है।

**आचारं सह-पञ्चभेद-मुदितं तीर्थं परं मङ्गलं,**
**निर्ग्रन्थानपि सच्चरित्र-महतो वन्दे समग्रान्यतीन्।**
**आत्माधीन - सुखोदया - मनुपमां लक्ष्मी-मविध्वंसिनीं,**
**इच्छन्केवल - दर्शना - वगमन - प्राज्य-प्रकाशोज्ज्वलाम् ॥८॥**

**अन्वयार्थ—(आत्माधीनसुखोदयां)** आत्माधीन सुख के उदय सहित **(अनुपमां)** अनुपम **(केवलदर्शनावगमनप्राज्यप्रकाशोज्ज्वलां)** केवलदर्शन, केवलज्ञान रूपी उत्कृष्ट प्रकाश से प्रकाशित **(अविध्वंसिनीं)** अविनाशी **(लक्ष्मीं)** लक्ष्मी की **(इच्छन्)** इच्छा करता हुआ मैं **(परं तीर्थं मङ्गलं)** उत्कृष्ट तीर्थ मंगल रूप **(उदितं)** कहे गये **(सह पञ्चभेदं)** पाँच भेद सहित **(आचारं)** आचार को

तथा **(सच्चरित्रमहतः)** सम्यक् चारित्र से महान् **(समग्रान्)** समस्त **(निर्ग्रन्थान्)** निर्ग्रन्थ **(यतीन्)** यतियों की **(अपि)** भी **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

**अज्ञानाद्य-दवीवृतं नियमिनोऽवर्तिष्यहं चान्यथा**
**तस्मिन् नर्जित-मस्यति प्रतिनवं चैनो निराकुर्वति।**
**वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसा-मृद्धिं नयत्यद्भुतं**
**तन्मिथ्या गुरुदुष्कृतं भवतु मे स्वं निन्दतो निन्दितम् ॥९॥**

**अन्वयार्थ—(अज्ञानात्)** अज्ञान से **(नियमिनः)** मुनि को **(अन्यथा)** अन्य प्रकार **(यत् अवीवृतं)** यदि प्रवर्तन कराया हो **(च अहं)** और यदि मैंने अन्यथा **(अवर्तिषि)** प्रवृत्ति की हो तो **(तस्मिन्)** उस प्रवृत्ति में **(अर्जितं)** संचित **(एनः)** पाप को **(अस्यति)** नष्ट करने वाले **(च)** और **(प्रतिनवं)** नवीन पाप को **(निराकुर्वति)** दूर करने वाले **(सुतपसां)** श्रेष्ठ तपस्वियों की **(अद्भुतं)** आश्चर्यकारी **(निधिं)** निधि रूप **(सप्ततयीं ऋद्धिं)** सात प्रकार की ऋद्धि को **(नयति)** प्राप्त कराने वाले **(वृत्ते)** चारित्र में **(स्वं)** अपने आपकी **(निन्दतः)** निन्दा करने वाले **(मे)** मेरे **(तत्)** वह **(गुरु)** महा **(निन्दितं)** गर्हित **(दुष्कृतं)** पाप **(मिथ्या) (भवतु)** मिथ्या होवें।

**संसार-व्यसना-हति-प्रचलिता नित्योदय-प्रार्थिनः**
**प्रत्यासन्न-विमुक्तयः सुमतयः शान्तैनसः प्राणिनः।**
**मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुलं सोपान-मुच्चैस्तरा,**
**मारोहन्तु चरित्र-मुत्तम-मिदं जैनेन्द्र-मोजस्विनः ॥१०॥**

**अन्वयार्थ— (संसारव्यसनाहतिप्रचलिताः)** जो संसार रूपी दुःखों से आहत होने से विचलित हैं **(नित्योदयप्रार्थिनः)** हमेशा उदय रूप मोक्ष के प्रार्थी हैं **(प्रत्यासन्नविमुक्तयः)** जिन्हें निकट में मुक्ति प्राप्त होने वाली है **(सुमतयः)** जो श्रेष्ठ बुद्धि वाले हैं **(शान्तैनसः)** जिनके पाप शान्त हो गये हैं ऐसे **(ओजस्विनः प्राणिनः)** ओजस्वी प्राणियों के **(मोक्षस्य एव कृतं)** मोक्ष के लिए बताये गये **(विशालं)** विस्तृत **(अतुलं)** अतुलनीय **(उच्चैः)** ऊँची **(सोपानं)** सीढ़ी रूप **(जैनेन्द्रं)** जिनेन्द्र भगवान् का कहे हुए **(इदं)** इस **(उत्तमं चरित्रं)** उत्तम चारित्र पर **(तरां आरोहन्तु)** अच्छी तरह आरोहण करो।

## अञ्चलिका

**इच्छामि भंते! चारित्तभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्स आलोचेउं सम्म-णाणजोयस्स सम्मत्ताहि-ट्ठियस्स, सव्वपहाणस्स, णिव्वाण-मग्गस्स, कम्मणिज्जरफलस्स, खमाहारस्स, पञ्च-महव्वय-संपण्णस्स, तिगुत्ति-गुत्तस्स, पंचसमिदिजुत्तस्स, णाणज्झाणसाहणस्स, समया इव पवेसयस्स सम्मचारित्तस्स णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ**

**कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।**

**अर्थ**—हे भगवन्! मैंने चारित्र भक्ति का कायोत्सर्ग किया है, उसकी आलोचना करता हूँ। सम्यग्ज्ञान रूपी प्रकाश से सहित, सम्यग्दर्शन से अधिष्ठित, सबमें प्रधान, निर्वाण का मार्ग, कर्म निर्जरा फल युक्त, क्षमा का आधार, पाँच महाव्रतों से सम्पन्न, तीन गुप्तियों से रक्षित, पाँच समितियों से युक्त, ज्ञान-ध्यान का साधन, आगम आदि में प्रवेश कराने वाला सम्यक्चारित्र है। उसकी सदा मैं अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधि मरण हो और जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

❑ ❑ ❑

# योगिभक्ति

**जातिजरो-रुरोग-मरणातुर - शोकसहस्र - दीपिताः,**
**दुःसह-नरक-पतनसन्त्रस्तधियः प्रतिबुद्ध-चेतसः।**
**जीवितमम्बु-बिन्दुचपलं, तडिदभ्र-समा विभूतयः,**
**सकलमिदं विचिन्त्यमुनयः प्रशमाय वनान्त-माश्रिताः ॥१॥**

**अन्वयार्थ– (जातिजरोरुरोगमरणातुर-शोक-सहस्त्र-दीपिताः)** जो जन्म, जरा, विशाल रोग, मरण से पीड़ित हजारों शोकों से प्रज्वलित हैं **(दुःसह-नरक-पतन-संत्रस्तधियः)** अत्यन्त दुःसह नरक में पतन से जिनकी बुद्धि भयभीत है **(प्रतिबुद्धचेतसः)** जिनका चित्त जागृत है **(मुनयः)** ऐसे मुनि **(जीवितं)** जीवन को **(अम्बुबिन्दुचपलं)** जल की बूँद के समान चंचल तथा **(विभूतयः)** वैभव को **(तडिदभ्रसमाः)** बिजली और मेघ के समान **(सकलं इदं)** यह सब **(विचिन्त्य)** विचार करके **(प्रशमाय)** प्रशम भाव के लिए **(वनान्तं आश्रिताः)** वन के निकट पहुँच जाते हैं।

**व्रतसमिति-गुप्तिसंयुताः शिवसुखमाधाय मनसि वीतमोहाः।**
**ध्यानाध्ययनवशङ्गताः विशुद्धये कर्मणां तपश्चरन्ति ॥२॥**

**अन्वयार्थ–(व्रतसमिति-गुप्ति-संयुताः)** जो व्रत, समिति और गुप्ति से सहित हैं **(वीतमोहाः)** मोह रहित हैं **(ध्यान-अध्ययन-वशङ्गताः)** जो ध्यान अध्ययन के वशीभूत हैं ऐसे मुनि **(मनसि)** मन में **(शिवसुखं)** मोक्ष सुख को **(आधाय)** धारण करके **(कर्मणां विशुद्धये)** कर्मों की विशुद्धि के लिए **(तपश्चरन्ति)** तप करते हैं।

**दिनकर-किरण-निकर-संतप्त-शिला-निचयेषु निस्पृहाः**
**मलपटला-वलिप्ततनवः शिथिलीकृत-कर्मबन्धनाः।**
**व्यपगत - मदन - दर्प - रतिदोष - कषाय - विरक्त - मत्सराः**
**गिरिशिखरेषु चंडकिरणाभि-मुखस्थितयो दिगम्बराः ॥३॥**

**अन्वयार्थ–(दिनकर-किरण-निकर-संतप्त-शिला-निचयेषु)** सूर्य की किरणों के समूह से तपी हुई शिला समूह पर **(गिरिशिखरेषु)** पर्वत के शिखरों पर **(निस्पृहाः)** आकांक्षा रहित **(मलपटलावलिप्ततनवः)** मल के पटल से लिप्त शरीरधारी **(शिथिलीकृतकर्मबन्धनाः)** कर्म बन्धन को शिथिल करते हुए **(व्यपगतमदनदर्परति-दोष-कषाय-विरक्त-मत्सराः)** काम, अहंकार रति, दोष, कषाय, विशेष राग तथा मात्सर्य से रहित **(दिगम्बराः)** दिगम्बर मुनि **(चंडकिरणाभि-मुखस्थितयः)** सूर्य के अभिमुख स्थित होते हैं।

**सज्ज्ञानामृतपायिभिः क्षान्तिपयः-सिञ्च्यमानपुण्यकायैः।**
**धृतसंतोषच्छत्रकैः तापस्तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः ॥४॥**

**अन्वयार्थ– (सज्ज्ञानामृतपायिभिः)** ज्ञानरूपी अमृत का पान करने वाले **(क्षान्तिपयः सिञ्च्यमानपुण्यकायैः)** क्षमारूपी जल से सिंचित पुण्य काय वाले तथा **(धृतसंतोषच्छत्रकैः)** सन्तोषरूपी छत्र को धारण किये **(मुनीन्द्रैः)** मुनिराजों के द्वारा **(तीव्रः अपि तापः)** यह तीव्र ताप भी **(सह्यते)** सहन किया जाता है।

**शिखिगल - कज्जलालिमलिनै - र्विबुधाधिपचाप-चित्रितैः**
**र्भीम-रवैर्विसृष्ट-चण्डाशनि शीतल-वायु-वृष्टिभिः।**
**गगनतलं विलोक्य जलदैः स्थगितं सहसा तपोधनाः**
**पुनरपि तरुतलेषु विषमासु निशासु विशङ्कमासते ॥५॥**

**अन्वयार्थ– (शिखिगल -कज्जलालिमलिनैः)** मयूर कण्ठ, काजल और भ्रमर के समान काले **(विबुधाधिपचापचित्रितैः)** इन्द्रधनुष से विचित्र **(भीमरवैः)** भयंकर गर्जना के साथ **(विसृष्टचण्डाशनिशीतलवायुवृष्टिभिः)** प्रचण्ड बिजली एवं शीतल वायु की वर्षा के द्वारा **(जलदैः)** मेघों से **(स्थगितं)** रुका हुआ **(गगनतलं)** आकाश तल **(विलोक्य)** देखकर **(तपोधनाः)** तपस्वी जन **(सहसा)** अचानक ही **(विषमासु निशासु)** विषम रात्रियों में **(तरुतलेषु)** वृक्ष के नीचे **(पुनरपि)** फिर भी **(विशङ्कं)** निश्चिन्त हो **(आसते)** रह जाते हैं।

**जलधारा-शरताडिता न चलन्ति चरित्रतः सदा नृसिंहाः।**
**संसारदुःखभीरवः परीषहाराति-घातिनः प्रवीरा ॥६॥**

**अन्वयार्थ– (जलधाराशरताडिताः)** जलधारारूपी बाणों से ताड़ित **(संसारदुःखभीरवः)** संसार के दुःखों से डरे हुए **(परीषहारातिघातिनः)** परीषहरूपी शत्रुओं का घात करने वाले **(प्रवीराः)** महावीर **(नृसिंहाः)** नरश्रेष्ठ **(चरित्रतः)** चारित्र से **(सदा)** कभी भी **(न चलन्ति)** चलायमान नहीं होते हैं।

**अविरतबहल - तुहिनकण - वारिभिरङ्घ्रिप - पत्रपातनै-**
**रनवरतमुक्त-सीत्काररवैः परुषैरथानिलैः शोषितगात्रयष्टयः।**
**इह श्रमणा धृति-कम्बला-वृताः शिशिर-निशां**
**तुषार-विषमां गमयन्ति चतुःपथे स्थिताः ॥७॥**

**अन्वयार्थ– (अथ)** तथा **(अविरतबहलतुहिनकणवारिभिः)** अत्यधिक ओसकण से मिश्रित जल सहित **(अङ्घ्रिप-पत्रपातनैः)** वृक्षों के पत्तों से गिर रहे **(अनवरतमुक्तसीत्काररवैः)** निरन्तर

सी-सी शब्दों को छोड़ने वाले **(परुषैः)** कठोर **(अनिलैः)** वायु से **(शोषितगात्रयष्टयः)** जिनका शरीर सूख गया है **(श्रमणाः)** ऐसे श्रमण **(धृतिकम्बलावृताः)** धैर्यरूपी कम्बल को ओढ़े हुए **(इह)** यहाँ **(चतु:पथे स्थिताः)** चौराहे पर स्थित होकर **(तुषारविषमां)** हिमपात से विषम **(शिशिरनिशां)** शीतकाल की रात्रि को **(गमयन्ति)** व्यतीत करते हैं।

**इति योगत्रयधारिणः सकलतपशालिनः प्रवृद्धपुण्यकायाः।**
**परमानन्दसुखैषिणः समाधिमग्र्यं दिशन्तु नो भदन्ताः ॥८॥**

**अन्वयार्थ—(इति)** इस प्रकार **(योगत्रयधारिणः)** तीनों योगों को धारण करने वाले **(सकलतपःशालिनः)** समस्त तपों से युक्त **(प्रवृद्धपुण्यकायाः)** पुण्यरूपी शरीर को बढ़ाने वाले **(परमानन्दसुखैषिणः)** परमानन्द सुख के इच्छुक **(भदन्ताः)** श्रेष्ठ मुनिराज **(नः)** हमको **(अग्र्यं)** उत्कृष्ट **(समाधिं)** समाधि **(दिशन्तु)** प्रदान करें।

## अञ्चलिका

**इच्छामि भंते। योगिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु, पण्णारस-कम्मभूमिसु आदावण-रुक्खमूल-अब्भोवासठाणमोण-वीरासणेक्कपास कुक्कुडासण-चउछपक्ख-खवणादिजोगजुत्ताणं, सव्वसाहूणं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

**अर्थ—**हे भगवन्! मैंने योगी भक्ति का कायोत्सर्ग किया है उसकी आलोचना करता हूँ। अढाईद्वीप, दो समुद्रों में, पन्द्रह कर्मभूमियों में आतापन, वृक्ष मूल, अभ्रावकाश, कायोत्सर्ग, मौन, वीरासन, एक पार्श्व में रहना, कुक्कुटासन के साथ चार, छह, पक्ष के उपवास आदि योग से युक्त सर्व साधुओं की मैं वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्म का क्षय हो, बोधि लाभ हो, सुगतिगमन हो, समाधिमरण हो, मुझे जिनेन्द्र देव के गुणों की सम्पत्ति प्राप्त हो।

❑ ❑ ❑

# आचार्यभक्ति

**सिद्ध-गुण-स्तुति निरता नुद्धूतरुषाग्नि-जालबहुलविशेषान्।**
**गुप्ति-भिरभि-संपूर्णान् मुक्तियुतः सत्यवचनलक्षितभावान् ॥१॥**
**मुनि-माहात्म्य-विशेषान् जिनशासन-सत्प्रदीप-भासुरमूर्तीन्।**
**सिद्धिं प्रपित्-सुमनसो बद्धरजोविपुल-मूलघातन-कुशलान् ॥२॥**

**अन्वयार्थ—(सिद्धगुणस्तुतिनिरतान्)** जो सिद्धप्रभु के गुणों की स्तुति में लीन हैं **(उद्धूत-रुषाग्निजालबहुल-विशेषान्)** जिन्होंने क्रोधरूपी अग्नि समूह की बहुत विशेषताओं को नष्ट कर दिया है **(गुप्तिभिः अभिसम्पूर्णान्)** जो गुप्तियों से परिपूर्ण हैं **(मुक्तियुतः)** जो मुक्ति से बंधे हैं **(सत्यवचनलक्षितभावान्)** सत्य वचन से जिनके भाव पहचाने जाते हैं **(मुनिमाहात्म्य-विशेषान्)** जो मुनि के माहात्म्य से विशिष्ट हैं **(जिनशासनसत्प्रदीपभासुरमूर्तीन्)** जिनशासनरूपी समीचीन दीपक से जिनका शरीर प्रकाशमान है **(सिद्धिं प्रपित्सुमनसः)** जिनका मन सिद्धि की प्राप्ति का इच्छुक है **(बद्धरजोविपुल-मूलघातन-कुशलान्)** जो बंधी हुई कर्म रज की विशाल जड़ को नष्ट करने में कुशल हैं।



**गुणमणि-विरचितवपुषः षड्द्रव्यविनिश्चितस्य धातॄन्सततम्।**
**रहित-प्रमादचर्यान् दर्शन-शुद्धान् गणस्य संतुष्टि करान् ॥३॥**

**अन्वयार्थ— (गुणमणि-विरचितवपुषः)** जिनका शरीर गुणरूपी मणियों से बना है **(षड्द्रव्यविनिश्चतस्य)** छह द्रव्यों के निश्चय को **(सततं)** निरन्तर **(धातॄन्)** धारण करते हैं **(रहित-प्रमादचर्यान्)** जो प्रमाद चर्या से रहित हैं **(दर्शनशुद्धान्)** जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध हैं तथा **(गणस्य)** गण को **(संतुष्टिकरान्)** सन्तुष्टि कराने वाले हैं।

**मोहच्छिदुग्र-तपसः प्रशस्त-परिशुद्धहृदयशोभन-व्यवहारान्।**
**प्रासुक-निलयाननघानाशाविध्वंसि-चेतसो हतकुपथान् ॥४॥**

**अन्वयार्थ—(मोहच्छिदुग्रतपसः)** जो मोह का नाश करने वाला उग्र तप करते हैं **(प्रशस्त-परिशुद्धहृदयशोभनव्यवहारान्)** प्रशस्त और शुद्ध हृदय से जिनका व्यवहार शोभित होता है **(प्रासुक-निलयान्)** जो प्रासुक स्थान में रहते हैं **(अनघान्)** जो पाप रहित हैं **(आशा-विध्वंसि-चेतसः)** जिनका चित्त आशा-इच्छा का नाशक है **(हतकुपथान्)** जो कुमार्ग के नाशक हैं।

**धारित-विलसन्मुण्डान्वर्जित-बहुदण्ड-पिण्डमण्डल-निकरान्।**
**सकलपरीषहजयिनः क्रियाभिरनिशं प्रमादतःपरिरहितान् ॥५॥**

**अन्वयार्थ–(धारितविलसन्-मुण्डान्)** जो शोभायमान मुण्ड को धारण करते हैं **(वर्जितबहुदण्डपिण्डमण्डलनिकरान्)** बहुत दण्ड के धारक मण्डल समूह से जो दूर रहते हैं **(सकलपरीषहजयिनः)** जो समस्त परीषहों के विजेता हैं **(अनिशं)** हमेशा **(प्रमादतः)** प्रमाद से होने वाली **(क्रियाभिः)** क्रियाओं से **(परिरहितान्)** जो रहित हैं।

**अचलान् व्यपेतनिद्रान् स्थानयुतान्कष्टदुष्टलेश्या - हीनान्।**
**विधिनानाश्रितवासा नलिप्तदेहान् विनिर्जितेन्द्रियकरिणः ॥६॥**

**अन्वयार्थ– (अचलान्)** जो अचल हैं **(व्यपेतनिद्रान्)** निद्रारहित हैं **(स्थानयुतान्)** कायोत्सर्ग से युक्त हैं **(कष्टदुष्टलेश्याहीनान्)** कष्टकारी दुष्ट लेश्याओं से रहित हैं **(विधिनानाश्रित-वासान्)** जो विधि पूर्वक अनेक आश्रित स्थानों पर वास करते हैं **(अलिप्तदेहान्)** देह के लेप से रहित हैं **(विनिर्जितेन्द्रियकरणः)** जिन्होंने इन्द्रियरूपी हाथियों को जीत लिया है।

**अतुला-नुत्कुटिका-सान्विविक्त-चित्तान-खण्डित-स्वाध्यायान्।**
**दक्षिण-भावसमग्रान् व्यपगत-मदरागलोभ-शठमात्सर्यान् ॥७॥**

**अन्वयार्थ–(अतुलान्)** जो अतुल हैं **(उत्कुटिकासान्)** उत्कुट आसन लगाते हैं **(विविक्त-चित्तान्)** जिनका चित्त पवित्र है **(अखण्डितस्वाध्यायान्)** जिनका स्वाध्याय अखण्ड है **(दक्षिणभावसमग्रान्)** जो उत्कृष्ट भावों से पूर्ण हैं **(व्यपगतमद-राग-लोभ-शठ-मात्सर्यान्)** जो मद, राग, लोभ, शठता और मात्सर्य से रहित हैं।

**भिन्नार्तरौद्र-पक्षान् संभावित-धर्मशुक्ल-निर्मल-हृदयान्।**
**नित्यं पिनद्धकुगतीन् पुण्यान् गण्योदयान् विलीनगारवचर्यान् ॥८॥**

**अन्वयार्थ– (भिन्नार्त-रौद्रपक्षान्)** आर्त्त, रौद्रध्यान के पक्ष से रहित हैं **(संभावितधर्म शुक्लनिर्मलहृदयान्)** अच्छी तरह से भावित धर्म-शुक्लध्यान से जिनका हृदय निर्मल है **(नित्यं)** हमेशा के लिए **(पिनद्धकुगतीन्)** कुगतियों को जिन्होंने रोक दिया है **(पुण्यान्)** जो पुण्य रूप हैं **(गण्योदयान्)** जिनका अभ्युदय गणनीय है **(विलीन-गारव-चर्यान्)** जिनकी चर्या गारव रहित है।

**तरुमूल-योगयुक्ता - नवकाशाताप - योगराग-सनाथान्।**
**बहुजन - हितकर-चर्यानभया - ननघान्महानुभाव - विधानान् ॥९॥**

**अन्वयार्थ–(तरुमूलयोगयुक्तान्)** जो वृक्षमूल में योग धारण करते हैं **(अवकाशा-तापयोग-रागसनाथान्)** जो अभ्रावकाश, आताप योग के राग से सहित हैं **(बहुजनहितकरचर्यान्)** बहुत जनों का हित करने वाली जिनकी चर्या है **(अभयान्)** जो भय रहित हैं **(अनघान्)** पाप रहित हैं **(महानुभावविधानान्)** जो महानुभाव को धारण करते हैं।

**ईदृशगुण-सम्पन्नान् युष्मान्भक्त्या-विशालया - स्थिरयोगान्।**
**विधिनानारत-मग्र्यान्मुकुलीकृतहस्त-कमलशोभितशिरसा ॥१०॥**
**अभिनौमि-सकलकलुष-प्रभवोदय-जन्मजरामरण-बन्धन मुक्तान्।**
**शिवमचल-मनघमक्षयमव्याहतमुक्ति-सौख्यमस्त्विति सततम् ॥११॥**

**अन्वयार्थ—(ईदृशगुणसम्पन्नान्)** इस प्रकार के गुणों से सम्पन्न **(स्थिरयोगान्)** स्थिर योग के धारक **(अग्रयान्)** प्रमुख और **(सकल-कलुष-प्रभवोदय-जन्म-जरामरण-बन्धन मुक्तान्)** समस्त कलुष परिणाम से उत्पन्न उदय प्राप्त जन्म, बुढ़ापा, मरण के बन्धन से मुक्त **(युष्मान्)** आप आचार्यदेव को **(विशालया भक्त्या)** बहुत भक्ति से **(विधिना)** विधि पूर्वक **(अनारतं)** सदा **(मुकुलीकृत-हस्तकमलशोभित-शिरसा)** अञ्जलिबद्ध हस्त कमल से शोभित शिर से **(अभिनौमि)** मैं नमस्कार करता हूँ **(इति)** इस प्रकार मुझे **(शिवं)** कल्याणप्रद **(अचलं)** अचल **(अनघं)** पाप रहित **(अक्षयं)** क्षय रहित **(अव्याहतमुक्तिसौख्यं)** निर्बाध मोक्ष सुख **(सततं)** सदा **(अस्तु)** होवे।

## अञ्चलिका

**इच्छामि भंते! आइरियभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदंसण - सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयण-गुणपालणरयाणं सव्व-साहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।**

**अर्थ—**हे भगवन्! मैंने आचार्य भक्ति का कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त, पाँच प्रकार के आचार के पालक आचार्यदेव, आचाराङ्ग आदि श्रुतज्ञान का उपदेश देने वाले उपाध्याय परमेष्ठी, रत्नत्रय और गुणों के पालन में रत सर्वसाधुजन की मैं सदा अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और मुझे जिनेन्द्रदेव के गुणों की सम्पत्ति प्राप्त हो।

❑ ❑ ❑

# पञ्चमहागुरुभक्ति

**श्रीमदमरेन्द्र - मुकुट - प्रघटित - मणि - किरणवारि - धाराभिः।**
**प्रक्षालित-पद-युगलान् प्रणमामि जिनेश्वरान् भक्त्या ॥१॥**

**अन्वयार्थ— (श्रीमदमरेन्द्र-मुकुट-प्रघटित-मणि-किरण-वारिधाराभिः)** शोभा सम्पन्न अमरेन्द्र के मुकुटों में लगी मणियों की किरणरूपी जलधारा से **(प्रक्षालित-पद-युगलान्)** जिनके चरण युगल धुले हैं ऐसे **(जिनेश्वरान्)** जिनेश्वर को **(भक्त्या)** भक्ति से **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम करता हूँ।

**अष्टगुणैः समुपेतान् प्रणष्ट-दुष्टाष्टकर्म-रिपुसमितीन्।**
**सिद्धान् सतत-मनन्तान् नमस्करोमीष्ट-तुष्टि संसिद्ध्यै ॥२॥**

**अन्वयार्थ—(अष्टगुणैः)** आठ गुणों से **(समुपेतान्)** युक्त **(प्रणष्ट-दुष्टाष्ट-कर्मरिपु-समितीन्)** दुष्ट-अष्ट कर्म-शत्रु के समूह को नष्ट किया है जिन्होंने ऐसे **(अनन्तान् सिद्धान्)** अनन्त सिद्धों को **(इष्ट-तुष्टिसंसिद्ध्यै)** इष्ट-सन्तोष की सिद्धि के लिए **(सततम्)** हमेशा **(नमस्करोमि)** नमस्कार करता हूँ।

**साचार-श्रुत-जलधीन् - प्रतीर्य शुद्धोरुचरण-निरतानाम्।**
**आचार्याणां पदयुग - कमलानि दधे शिरसि मेऽहम् ॥३॥**

**अन्वयार्थ—(साचार-श्रुतजलधीन्)** आचार सहित श्रुत सागर को **(प्रतीर्य)** तैरकर **(शुद्धोरुचरणनिरतानां)** शुद्ध, महान चारित्र में निरत **(आचार्याणां)** आचार्यों के **(पदयुगकमलानि)** चरण युगलकमल को **(मे शिरसि)** अपने शिर पर **(अहं दधे)** मैं धारण करता हूँ।

**मिथ्यावादि - मद्रोग्र - ध्वान्त-प्रध्वंसि-वचन-संदर्भान्।**
**उपदेशकान् प्रपद्ये मम दुरितारि-प्रणाशाय ॥४॥**

**अन्वयार्थ—(मिथ्यावादि-मदोग्र-ध्वान्त-प्रध्वंसि-वचन-संदर्भान्)** मिथ्यावादियों के गर्वरूपी उग्र अन्धकार के नाशक वचनों के सन्दर्भ वाले **(उपदेशकान्)** उपदेशकों को मैं **(मम)** अपने **(दुरितारिप्रणाशाय)** पाप शत्रु का नाश करने के लिए **(प्रपद्ये)** प्राप्त होता हूँ।

**सम्यग्दर्शन - दीप - प्रकाशका मेय-बोध-सम्भूताः।**
**भूरि-चरित्र-पताकास् ते साधु-गणास्तु मां पान्तु ॥५॥**

**अन्वयार्थ— (सम्यग्दर्शन-दीप-प्रकाशकाः)** जो सम्यग्दर्शनरूपी दीपक को प्रकाशित करने वाले हैं **(मेय-बोध-सम्भूताः)** जो व्यापक ज्ञान से सम्पन्न हैं **(भूरिचरित्रपताकाः)** जो उत्कृष्ट

चारित्र की ध्वजा हैं **(ते साधुगणाः)** वह साधुगण **(तु)** ही **(मां पान्तु)** मेरी रक्षा करें।

**जिनसिद्ध-सूरिदेशक - साधु-वरानमल-गुण-गणोपेतान्।**
**पञ्चनमस्कारपदैस् त्रिसन्ध्य-मभिनौमि मोक्षलाभाय ॥६॥**

**अन्वयार्थ—(अमल-गुण-गणोपेतान्)** निर्मल गुण-गण से युक्त **(जिन-सिद्ध-सूरि-देशक-साधुवरान्)** जिन, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और उत्कृष्ट साधुओं को **(मोक्षलाभाय)** मोक्ष की प्राप्ति के लिए **(पञ्चनमस्कारपदैः)** पञ्च नमस्कार पदों के द्वारा **(त्रिसन्ध्यम्)** तीनों संध्याओं में **(अभिनौमि)** नमस्कार करता हूँ।

**एष पञ्चनमस्कारः सर्व-पापप्रणाशनः।**
**मङ्गलानां च सर्वेषां प्रथमं मङ्गलं मतम् ॥७॥**

**अन्वयार्थ—(एष पञ्चनमस्कारः)** यह पञ्च नमस्कार **(सर्वपाप प्रणाशनः)** सभी पापों का नाशक **(च सर्वेषां मङ्गलानां)** और सभी मंगलों में **(प्रथमं)** पहला **(मङ्गलं मतं)** मंगल माना है।

**अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायाः सर्वसाधवः।**
**कुर्वन्तु मङ्गलाः सर्वे निर्वाण-परमश्रियम् ॥८॥**

**अन्वयार्थ—(अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायाः सर्वसाधवः)** अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और समस्त साधु **(मङ्गलाः)** मंगल रूप हैं **(सर्वे)** यह सभी **(निर्वाणपरमश्रियं)** निर्वाणरूपी उत्कृष्ट लक्ष्मी को **(कुर्वन्तु)** करें।

**सर्वान्-जिनेन्द्र-चन्द्रान् सिद्धानाचार्य पाठकान्-साधून्।**
**रत्नत्रयं च वन्दे रत्नत्रय-सिद्धये भक्त्या ॥९॥**

**अन्वयार्थ—(सर्वान् जिनेन्द्रचन्द्रान्)** सभी जिनेन्द्र चन्द्रों को **(सिद्धान्)** सिद्ध को **(आचार्यपाठकान्)** आचार्य, उपाध्यायों को **(साधून्)** और साधुओं को **(च रत्नत्रयं)** तथा रत्नत्रय को **(रत्नत्रय-सिद्धये)** रत्नत्रय की सिद्धि के लिए **(भक्त्या)** भक्ति से **(वन्दे)** नमस्कार करता हूँ।

**पान्तु श्रीपाद-पद्मानि पञ्चानां परमेष्ठिनाम्।**
**लालितानि सुराधीश - चूड़ामणि - मरीचिभिः ॥१०॥**

**अन्वयार्थ— (सुराधीश-चूड़ामणि-मरीचिभिः)** इन्द्र के चूड़ामणि की किरणों से **(लालितानि)** सेवित **(पञ्चानां परमेष्ठिनां)** पाँचों परमेष्ठियों के **(श्रीपादपद्मानि)** श्री चरण कमल **(पान्तु)** रक्षा करें।

**प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान् गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः।**
**पाठकान् विनयैः साधून् योगाङ्गै-रष्टभिः स्तुवे ॥११॥**

**अन्वयार्थ— (जिनान्)** जिनेन्द्र भगवान् की **(प्रातिहार्यैः)** प्रतिहार्यों से **(सिद्धान्)** सिद्धों की

**(गुणैः)** गुणों से **(सूरीन्)** आचार्यों को **(स्वमातृभिः)** अपनी मातृकाओं से **(पाठकान्)** उपाध्यायों को **(विनयैः)** विनय से **(साधून्)** साधुओं को **(अष्टभिः)** आठ **(योगाङ्गैः)** योगों से **(स्तुवे)** स्तुति करता हूँ।

## अञ्चलिका

**इच्छामि भंते! पंचमहागुरु-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अट्ठ-महा-पाडिहेर-संजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठ-पवयण-माउया- संजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादि सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण पालणरदाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिण-गुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

**अर्थ—**हे भगवन्! मैंने पंच महागुरु भक्ति का कायोत्सर्ग किया है, उसकी मैं आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। अष्ट-महा प्रातिहार्यों से युक्त अरहन्त, अष्ट गुणों से सम्पन्न तथा ऊर्ध्व लोक के मस्तक पर प्रतिष्ठित सिद्ध, अष्ट प्रवचन मातृकाओं से युक्त आचार्य, आचारांग आदि श्रुत ज्ञान का उपदेश देने वाले उपाध्याय और रत्नत्रय गुणों के पालन में रत सभी साधू परमेष्ठी की मैं सदा अर्चना करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधिलाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधि मरण हो और मुझे जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की प्राप्ति होवे।

❑ ❑ ❑

# शान्तिभक्ति

**न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन्! पादद्वयं ते प्रजाः**
**हेतुस्तत्र विचित्र-दुःखनिचयः संसार - घोरार्णवः।**
**अत्यन्त-स्फुरदुग्र - रश्मिनिकर-व्याकीर्ण-भूमण्डलो,**
**ग्रैष्मः कारयतीन्दु-पादसलिलच्-छायानुरागं रविः ॥१॥**

**अन्वयार्थ—(भगवन्)** हे भगवन् **(प्रजाः)** यह भव्य लोग **(स्नेहात्)** स्नेह से **(ते)** आपके **(पादद्वयं)** दोनों चरणों की **(शरणं)** शरण को **(न प्रयान्ति)** प्राप्त नहीं होते हैं **(तत्र)** उसमे **(विचित्रदुःख-निचयः)** विचित्रदुःख समूह से युक्त **(संसार-घोरार्णवः)** संसाररूपी भयङ्कर समुद्र **(हेतुः)** कारण है क्योंकि **(अत्यन्तस्फुरदुग्र-रश्मि-निकर-व्याकीर्ण-भूमण्डलः)** अत्यन्त दैदीप्यमान उग्र किरण समूह से पृथ्वीतल को व्याप्त करने वाला **(ग्रैष्मः रविः)** ग्रीष्मकालीन सूर्य **(इन्दुपाद-सलिल-च्छायानुरागं)** चन्द्रकिरण, पानी तथा छाया से अनुराग **(कारयति)** करा देता है।

**क्रुद्धाशीर्विष - दष्ट - दुर्जय - विष - ज्वालावली - विक्रमो**
**विद्या-भेषज-मन्त्र-तोय-हवनै- र्याति प्रशान्तिं यथा।**
**तद्वत्ते चरणारुणाम्बुज-युगस्तोत्रोन्मुखानां नृणां**
**विघ्नाः कायविनायकाश्च सहसा शाम्यन्त्यहो विस्मयः ॥२॥**

**अन्वयार्थ—(यथा)** जिस प्रकार **(क्रुद्धाशी-र्विष-दष्ट-दुर्जय-विष-ज्वालावली-विक्रमः)** क्रूद्ध आशीःविष सर्प से डसे मनुष्य को दुर्जय विष-ज्वाला समूह का प्रभाव **(विद्या-भेषज-मन्त्र-तोयहवनैः)** विद्या, औषधि, मन्त्र, पानी, हवन के द्वारा **(प्रशान्तिं याति)** शान्ति को प्राप्त हो जाता है। **(तद्वत्)** उसी प्रकार **(ते)** आपके **(चरणारुणाम्बुजयुगस्तोत्रोन्मुखानां)** चरणरूपी लाल कमल युगल की स्तुति में उन्मुख हुए **(नृणां)** मनुष्यों के **(विघ्नाः)** विघ्न **(कायविनायकाः च)** और शरीर सम्बन्धी रोग **(सहसा)** शीघ्र ही **(शाम्यन्ति)** शान्त हो जाते हैं। **(अहो! विस्मयः)** यह बड़ा आश्चर्य है।

**सन्तप्तोत्तम - काञ्चन - क्षितिधर-श्रीस्पर्द्धि-गौरद्युते**
**पुंसां त्वच्चरण-प्रणाम-करणात् पीडाः प्रयान्ति क्षयम्।**
**उद्यद्भास्कर - विस्फुरत्कर - शत - व्याघात - निष्कासिता**
**नाना देहि विलोचन-द्युतिहरा शीघ्रं यथा शर्वरी ॥३॥**

**अन्वयार्थ—(सन्तप्तोत्तम-काञ्चन-क्षितिधर-श्रीस्पर्धि-गौरद्युते)** तपे हुए श्रेष्ठ स्वर्ण पर्वत की शोभा से स्पर्धा करने वाले पीत कान्ति युक्त जिनेश्वर **(त्वच्चरण-प्रणाम-करणात्)** आपके

चरणों में प्रणाम करने से **(पुंसां)** मनुष्यों की **(पीडाः)** पीड़ाएँ **(तथा)** उसी तरह **(क्षयं प्रयान्ति)** क्षय को प्राप्त हो जाती हैं **(यथा)** जिस तरह **(उद्यद्-भास्कर-विस्फुरत्-कर-शत-व्याघात-निष्कासिता)** उदय हुए सूर्य की स्फुरायमान सैकड़ों किरणों के आघात से निकली हुई **(नाना देहि-विलोचन-द्युतिहरा)** अनेक प्राणियों के नेत्रों की कान्ति को हरने वाली **(शर्वरी)** रात्रि **(शीघ्रं)** शीघ्र ही क्षय को प्राप्त हो जाती है।

**त्रैलोक्येश्वर-भङ्ग-लब्ध-विजया - दत्यन्त - रौद्रात्मकान्**
**नाना - जन्म-शतान्तरेषु पुरतो जीवस्य संसारिणः।**
**को वा प्रस्खलतीह केन विधिना कालोग्र-दावानलान्**
**न स्याच्चेत्तव पाद-पद्म-युगल-स्तुत्यापगा-वारणम् ॥४॥**

**अन्वयार्थ—(त्रैलोक्येश्वर-भङ्ग-लब्ध-विजयात्)** तीन लोक के स्वामियों के नाश से विजय प्राप्त करने से **(अत्यन्त-रौद्रात्मकात्)** अत्यन्त रौद्रात्मक **(कालोग्र-दावानलात्)** काल रूपी उग्र दावानल से **(नानाजन्म-शतान्तरेषु)** अनेक प्रकार के सैकड़ों जन्मों के बीच **(इह)** इस जगत् में **(कः वा केन विधिना)** कौन, किस विधि से **(प्रस्खलति)** बचा सकता है ? **(चेत्)** यदि **(संसारिणः जीवस्य)** संसारी जीव के **(पुरतः)** आगे **(तव)** आपके **(पाद-पद्म-युगल-स्तुत्यापगा)** चरण युगल की स्तुतिरूपी नदी **(वारणं न)** निवारण करने वाली नहीं होती।

**लोकालोक-निरन्तर-प्रविततज्ञानैक - मूर्ते विभो!**
**नाना - रत्न - पिनद्ध - दण्ड - रुचिर - श्वेतात - पत्रत्रय।**
**त्वत्पाद-द्वय-पूत-गीत-रवतः शीघ्रं द्रवन्त्यामयाः**
**दर्पाध्मात-मृगेन्द्रभीम - निनदाद् वन्या यथा कुञ्जराः ॥५॥**

**अन्वयार्थ—(लोकालोक-निरन्तर-प्रवितत-ज्ञानैक-मूर्ते)** लोक और अलोक में निरन्तर फैले हुए ज्ञान की एक मूर्ति स्वरूप भगवन् **(नानारत्न-पिनद्ध-दण्ड-रुचिर-श्वेतातपत्रत्रय)** अनेक रत्नों से जड़ित दण्ड से मनोहर सफेद तीन छत्रों के धारक **(विभो!)** हे प्रभो! **(त्वत्पाद-द्वय-पूत-गीत-रवतः)** आपके चरण युगल में पवित्र गीत के शब्दों से **(आमयाः)** रोग **(तथा)** उसी तरह **(शीघ्रं)** शीघ्र **(द्रवन्ति)** दूर हो जाते हैं **(यथा)** जिस प्रकार **(दर्पाध्मात-मृगेन्द्र-भीम-निनदात्)** दर्प युक्त सिंह के भयानक निनाद से **(वन्याः कुञ्जराः)** जंगली हाथी चले जाते हैं।

**दिव्य - स्त्री - नयनाभिराम विपुल-श्रीमेरु - चूडामणे**
**भास्वद् - बाल - दिवाकर - द्युति - हर - प्राणीष्ट - भाण्डल।**
**अव्याबाध-मचिन्त्य-सार-मतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतं।**
**सौख्यं त्वच्चरणारविन्द-युगल - स्तुत्यैव संप्राप्यते ॥६॥**

**अन्वयार्थ— (दिव्यस्त्रीनयनाभिराम!)** हे देवांगनाओं के नयन वल्लभ! **(विपुल-श्रीमेरु-**

**चूडामणे!)** विपुल वैभव के श्रेष्ठ चूड़ामणि! **(भास्वद्-बाल-दिवाकर-द्युतिहर-प्राणीष्ट-भामण्डल!)** सुशोभित बाल भानु की कान्ति को हरने वाले प्राणियो को इष्ट भामण्डल स्वरूप भगवन्! **(त्वच्चरणारविन्दयुगल-स्तुत्या एव)** आपके चरण कमल युगल की स्तुति से ही **(अव्याबाधं)** अव्याबाध **(अचिन्त्यसारं)** अचिन्त्य सारभूत **(अतुलं)** अतुलनीय **(त्यक्तोपमं)** उपमा रहित **(शाश्वतं)** शाश्वत **(सौख्यं)** सुख **(संप्राप्यते)** प्राप्त होता है।

**यावन्नोदयते प्रभापरिकरः श्रीभास्करो भासयंस्**
**तावद् धारयतीह पङ्कज-वनं निद्रातिभार-श्रमम्।**
**यावत्त्वच्चरण-द्वयस्य भगवन्! न स्यात् प्रसादोदयस् -**
**तावज्जीव-निकाय एष वहति प्रायेण पापं महत् ॥७॥**

**अन्वयार्थ—(प्रभापरिकरः)** प्रभा मण्डल से सहित **(श्रीभास्करः)** शोभायमान सूर्य **(भासयन्)** प्रकाशं देता हुआ **(यावन् न उदयते)** जब तक उदित नहीं होता **(तावत्)** तब तक **(इह)** इस लोक में **(पङ्कजवनं)** कमल वन **(निद्रातिभार-श्रमं)** निद्रा के अति भार वाले श्रम को **(धारयति)** धारण करता है। उसी प्रकार **(भगवन्)** हे भगवन् **(यावत्)** जब तक **(त्वच्चरण-द्वयस्य)** आपके दोनों चरणों के **(प्रसादोदयः)** प्रसाद का उदय **(न स्यात्)** नहीं होता है **(तावत्)** तब तक **(एष जीव-निकायः)** यह जीव समूह **(प्रायेण)** प्रायः **(पापं महत्)** महान् पाप को **(वहति)** धारण करता है।

**शान्तिं शान्तिजिनेन्द्र-शान्तमनसस् त्वत्पाद-पद्माश्रयात्**
**संप्राप्ताः पृथिवी-तलेषु बहवः शान्त्यर्थिनः प्राणिनः।**
**कारुण्यान् मम भाक्तिकस्य च विभो! दृष्टिं प्रसन्नां कुरु**
**त्वत्पादद्वय-दैवतस्य गदतः शान्त्यष्टकं भक्तितः ॥८॥**

**अन्वयार्थ—(पृथिवी-तलेषु)** इस पृथ्वी तल पर **(शान्तमनसः)** शान्त मन वाले **(शान्त्यर्थिनः)** शान्ति से प्रयोजन वाले के इच्छुक **(बहवः प्राणिनः)** बहुत से प्राणी **(शान्ति-जिनेन्द्र!)** हे शान्तिनाथ जिनेन्द्र! **(त्वत्पाद-पद्मा-श्रयात्)** आपके चरण कमलों के आश्रय से **(शान्तिं संप्राप्ताः)** शान्ति को प्राप्त हुए हैं। **(विभो!)** हे भगवन् **(त्वत्पाद-द्वय-दैवतस्य)** आपके चरण-युगल ही जिसे आराध्य हैं ऐसे **(मम भाक्तिकस्य)** मुझ भक्त का **(च)** तथा **(भक्तितः)** भक्ति से **(शान्त्यष्टकं गदतः)** शान्त्यष्टक पढ़ने वाले को **(कारुण्यात्)** करुणा से **(प्रसन्नां)** प्रसन्न **(दृष्टिं)** दृष्टि **(कुरु)** करो।

**शान्तिजिनं शशि-निर्मल-वक्त्रं शीलगुण-व्रतसंयमपात्रम्।**
**अष्टशतार्चित-लक्षणगात्रं नौमि जिनोत्तमम्बुजनेत्रम् ॥९॥**

**अन्वयार्थ—(शशि-निर्मल-वक्त्रं)** चन्द्रमा के समान निर्मल मुख, **(शील-गुण-व्रत-संयम-**

**पात्रं)** शील, गुण, व्रत, संयम के आधार **(अष्ट-शतार्चित-लक्षण-गात्रं)** एक सौ आठ लक्षणों से सुशोभित शरीर वाले **(जिनोत्तमं)** जिनदेवों में श्रेष्ठ **(अम्बुजनेत्रं)** कमल सम नेत्र वाले **(शान्तिजिनं)** शान्तिनाथ जिनेन्द्र को **(नौमि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

**पञ्चममीप्सित-चक्रधराणां पूजितमिन्द्र-नरेन्द्रगणैश्च।**
**शान्तिकरं गणशान्तिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि ॥१०॥**

**अन्वयार्थ–(ईप्सित-चक्रधराणां)** इच्छित चक्रवर्तियों में **(पञ्चमं)** जो पाँचवें चक्रवर्ती हैं। **(इन्द्रनरेन्द्र-गणैश्च)** इन्द्र और नरेन्द्रों के समूह से **(पूजितं)** पूजित **(शान्तिकरं)** शान्ति को करने वाले **(षोडश तीर्थकरं)** सोलहवें तीर्थंकर को **(गणशान्तिं अभीप्सुः)** गण की शान्ति का इच्छुक **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

**दिव्यतरुः सुर-पुष्प-सुवृष्टि - र्दुन्दुभिरासन-योजन-घोषौ।**
**आतपवारण-चामरयुग्मे यस्य विभाति च मण्डलतेजः ॥११॥**
**तं जगदर्चित-शान्ति-जिनेन्द्रं शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि।**
**सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं मह्यमरं पठते परमां च ॥१२॥**

**अन्वयार्थ–(यस्य)** जिनके **(दिव्यतरुः)** अशोकवृक्ष **(सुर-पुष्प-सुवृष्टिः)** देवों के द्वारा उत्तम पुष्पवृष्टि **(दुन्दुभिः)** दुन्दुभिवादन **(आसन-योजन-घोषौ)** सिंहासन और एक योजन तक दिव्यध्वनि **(आतप-वारण-चामर युग्मे)** छत्र, चमरयुगल **(च मण्डलतेजः)** और भामण्डल का तेज **(विभाति)** सुशोभित है **(तं)** उन **(जगदर्चित-शान्ति-जिनेन्द्रं)** जगत् पूज्य शान्ति जिनेन्द्र को जो कि **(शान्तिकरं)** शान्ति करने वाले हैं **(शिरसा)** शिर झुकाकर **(प्रणमामि)** नमस्कार करता हूँ। **(सर्वगणाय)** समस्त संघ के लिए **(शान्तिं यच्छतु)** शान्ति प्रदान करें। **(तु)** और **(पठते मह्यं)** मुझ पढ़ने वाले को **(अरं)** शीघ्र **(परमां च)** उत्कृष्ट शान्ति दीजिये।

**येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः,**
**शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत-पादपद्माः।**
**ते मे जिनाः प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपास्**
**तीर्थङ्कराः सतत शान्तिकरा भवन्तु ॥१३॥**

**अन्वयार्थ– (ये)** जो **(शक्रादिभिः)** इन्द्रादि के **(मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः)** मुकुट-कुण्डल-हार और रत्नों से **(अभ्यर्चिताः)** पूजित हैं। **(सुरगणैः)** देवसमूह से **(स्तुत-पाद-पद्माः)** जिनके चरण-कमल स्तुत हैं। **(प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपाः)** श्रेष्ठ वंश और जगत् के प्रदीप **(ते जिनाः)** वह जिनदेव **(तीर्थङ्कराः)** तीर्थंकर **(मे)** मेरे लिए **(सतत-शान्तिकराः भवन्तु)** हमेशा शान्ति करने वाले होवे।

**संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्।**
**देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः ॥१४॥**

**अन्वयार्थ—(संपूजकानां)** सम्यक् प्रकार से पूजा करने वालों को **(प्रतिपालकानां)** प्रतिपालकों को **(यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानां)** यतीन्द्र और सामान्य तपस्वी को **(देशस्य)** देश को **(राष्ट्रस्य)** राष्ट्र को **(पुरस्य राज्ञः)** नगर और राजा को **(भगवान् जिनेन्द्रः)** जिनेन्द्र भगवान् **(शान्तिं करोतु)** शान्ति करें।

**क्षेमं सर्वप्रजानां, प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः**
**काले काले च सम्यग् वितरतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।**
**दुर्भिक्षं चौरिमारिः क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीव-लोके**
**जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्व-सौख्य-प्रदायि ॥१५॥**

**अन्वयार्थ—(सर्वप्रजानां क्षेमं)** समस्त प्रजा का कल्याण हो **(भूमिपालः बलवान्)** राजा बलवान् **(धार्मिकः प्रभवतु)** तथा धार्मिक हो **(काले-काले च)** समय-समय पर **(सम्यग् मघवा वितरतु)** समीचीन मेघ वर्षा हो, **(व्याधयः नाशं यान्तु)** रोग नाश को प्राप्त हो **(जीवलोके)** जीव लोक में **(दुर्भिक्षं चौरमारिः)** दुर्भिक्ष, चोरी, मारी आदि रोग **(जगतां)** संसार मे **(मास्म भूत्-क्षणमपि)** क्षण भर भी न हो। **(जैनेन्द्रं धर्मचक्रं)** जिनेन्द्र भगवान् का धर्म चक्र **(सततं)** सतत **(सर्वसौख्यप्रदायि)** सर्व सुखदायी **(प्रभवतु)** होवे।

**तद् द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभःस देशः**
**संतन्यतां प्रतपतां सततं स कालः।**
**भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण**
**रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षुवर्गे ॥१६॥**

**अन्वयार्थ—(तद् द्रव्यं)** वह द्रव्य **(अव्ययं)** अविनाशी **(उदेतु)** होवे **(सः देशः)** वह देश **(शुभः)** शुभ का **(संतन्यतां)** विस्तार करे **(सततं)** निरंतर **(सः कालः)** वह काल **(प्रतपताम्)** समृद्धि करे **(सदा)** हमेशा **(स भावः)** वह भाव रहे **(यदनुग्रहेण)** जो अनुग्रह से **(नन्दतु)** वृद्धिंगत **(इह)** इस लोक में **(मुमुक्षुवर्गे)** मुमुक्षु वर्ग में **(रत्नत्रयं)** रत्नत्रय **(प्रतपति)** फैलता रहे।

**प्रध्वस्त - घाति - कर्माणः केवल-ज्ञानभास्कराः।**
**कुर्वन्तु जगतां शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥१७॥**

**अन्वयार्थ— (प्रध्वस्तघातिकर्माणः)** घाति कर्म का नाश करने वाले **(केवलज्ञानभास्कराः)** केवलज्ञान रूपी सूर्य **(वृषभाद्या जिनेश्वराः)** वृषभ आदि जिनेश्वर **(जगतां)** जगत् में **(शान्तिम्)**

शान्ति **(कुर्वन्तु)** करें।

## अञ्चलिका

**इच्छामि भंते! संतिभत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, पंच-महा-कल्लाण-संपण्णाणं अट्ठ-महापाडिहेर-सहियाणं चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देवेंद-मणिमय-मउड-मत्थय-महियाणं बलदेव - वासुदेव - चक्कहर-रिसि-मुणि-जदि-अणगारोवगूढाणं, थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं, उसहाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महापुरिसाणं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।**

**अर्थ—**हे भगवन्! हमने शान्तिभक्ति का कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष लगे उनकी मैं आलोचना करता हूँ। जिनके पाँच महाकल्याणक सम्पन्न हुए हैं, जो अष्ट महा प्रातिहार्यों से सहित हैं, जो चौंतीस अतिशय विशेष से सहित हैं, बत्तीस (३२) देवेन्द्रों के मणि युक्त माथे पर लगे मुकुटों से जो पूजित हैं, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, ऋषि, मुनि, यति और अनगार से घिरे हुए हैं, लाखों स्तुतियों के जो निलय हैं ऐसे ऋषभ आदि अन्तिम महावीर तक मंगल महापुरुषों की मैं नित्य काल अर्चा, पूजा, वन्दना, नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

❑ ❑ ❑
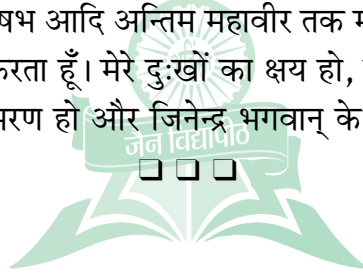
# समाधिभक्ति

**स्वात्माभिमुख-संवित्ति-लक्षणं श्रुत-चक्षुषा।**
**पश्यन्पश्यामि देव त्वां केवलज्ञान-चक्षुषा॥**

**अन्वयार्थ– (देव)** हे देव! **(श्रुतचक्षुषा)** श्रुतज्ञानरूपी नेत्र से **(स्वात्माभिमुख-संवित्ति-लक्षणं)** स्वात्मा के अभिमुख संवेदन के लक्षण को **(पश्यन्)** देखता हुआ **(त्वां)** हे भगवन् आपको **(केवलज्ञानचक्षुषा)** केवलज्ञान की आँख से **(पश्यामि)** देखता हूँ।

**शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः सङ्गतिः सर्वदार्यैः।**
**सद्वृत्तानां गुणगण-कथा दोषवादे च मौनम् ॥१॥**
**सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्मतत्त्वे।**
**संपद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः ॥२॥**

**अन्वयार्थ–(शास्त्राभ्यासः)** शास्त्र का अभ्यास हो **(जिनपतिनुतिः)** जिनेन्द्रदेव को नमस्कार हो **(सर्वदा)** हमेशा **(आर्यैः सङ्गतिः)** आार्य पुरुषों की संगति हो **(सद्वृत्तानां)** समीचीन चारित्र वालो के **(गुण-गणकथा)** गुण समूह की कथा हो **(दोषवादे च)** और दोषों के कहने में **(मौनम्)** मौन हो **(सर्वस्य अपि)** सभी से **(प्रियहितवचः)** प्रिय, हित वचन कहूँ **(च)** और **(आत्मतत्त्वे)** आत्म तत्त्व में **(भावना)** भावना हो। **(मम)** मुझे **(भव-भवे)** प्रत्येक भव में **(एते)** ये चीजें **(संपद्यन्ताम्)** प्राप्त होवे **(यावत्)** जब तक कि **(अपवर्गः)** मोक्ष न होवे।

**जैनमार्ग-रुचिरन्यमार्ग-निर्वेगता जिनगुण-स्तुतौ मतिः।**
**निष्कलंकविमलोक्तिभावनाः संभवन्तु मम जन्मजन्मनि ॥३॥**

**अन्वयार्थ– (मम)** मुझे **(जन्मजन्मनि)** जन्म जन्म में **(जैन-मार्ग-रुचिः)** जैन मार्ग में रुचि **(अन्यमार्गनिर्वेगता)** अन्य मार्ग में निर्वेगता **(जिनगुणस्तुतौ)** जिनदेव के गुणों की स्तुति में **(मतिः)** बुद्धि तथा **(निष्कलंक-विमलोक्तिभावनाः)** निष्कलंक, निर्मल जिनवाणी में भावना **(संभवन्तु)** होवे।

**गुरुमूले यति-निचिते - चैत्यसिद्धान्त वार्धिसद्घोषे।**
**मम भवतु जन्मजन्मनि संन्यसनसमन्वितं मरणम् ॥४॥**

**अन्वयार्थ– (गुरुमूले)** गुरु चरणों में **(यतिनिचिते)** यतियों के समूह में **(चैत्य-सिद्धान्त-वार्धि-सद्घोषे)** चैत्य और सिद्धान्त समुद्र का समीचीन घोष होने वाले स्थान पर **(संन्यसन-समन्वितं)** संन्यास के साथ **(मम)** मेरा **(जन्म-जन्मनि)** जन्म-जन्म में **(मरणम्)** मरण **(भवतु)**

होवे।

**जन्म - जन्म - कृतं - पापं जन्मकोटि - समार्जितम्।**
**जन्म - मृत्यु - जरा - मूलं हन्यते जिनवन्दनात् ॥५॥**

**अन्वयार्थ—(जिनवन्दनात्)** जिनदेव की वन्दना से **(जन्म-जन्मकृतम्)** जन्म, जन्म में किए **(जन्म-कोटि-समार्जितम्)** तथा करोड़ो जन्मों में अर्जित किए **(पापं)** पाप **(जन्म-मृत्यु-जरा-मूलं)** और जन्म, मृत्यु, बुढ़ापे को मूल जड़ **(हन्यते)** नष्ट हो जाती है।

**आबाल्याज्जिनदेवदेव! भवत: श्रीपादयो: सेवया,**
**सेवासक्त-विनेयकल्प-लतया कालोऽद्ययावद्गत:।**
**त्वां तस्या: फलमर्थये तदधुना प्राणप्रयाणक्षणे,**
**त्वन्नाम-प्रतिबद्ध-वर्णपठने कण्ठोऽस्त्व-कुण्ठो मम ॥६॥**

**अन्वयार्थ— (जिन)** हे जिन भगवान् **(देवदेव!)** हे देवों के देव! **(आबाल्यात्)** बाल्यावस्था से **(अद्ययावद्)** आज तक **(भवत:)** आपके **(श्रीपादयो:)** श्री चरणों की **(सेवासक्त-विनेय-कल्पलतया)** सेवा में आसक्त शिष्यों को कल्पलता सम **(सेवया)** सेवा से **(काल: गत:)** काल व्यतीत हुआ है **(अधुना)** आज **(तस्या:)** उस सेवा का **(तत्फलम्)** वह फल **(त्वाम्)** आपसे **(अर्थये)** चाहता हूँ कि **(प्राणप्रयाणक्षणे)** प्राणों के निकलते समय **(त्वन्नाम-प्रतिबद्ध-वर्ण-पठने)** आपके नाम से सहित अक्षरों के पढ़ने में **(मम)** मेरा **(कण्ठो)** गला **(अकुण्ठ: अस्तु)** कुण्ठित न हो।

**तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।**
**तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद् यावन्निर्वाण-संप्राप्ति: ॥७॥**

**अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!)** हे जिनेन्द्र भगवन् **(तव)** आपके **(पादौ)** दोनों चरण **(मम)** मेरे **(हृदये)** हृदय में और **(मम)** मेरा **(हृदयं)** हृदय **(तव)** आपके **(पदद्वये)** दोनों चरणों में **(लीनं)** लीन **(तावत्)** तब तक **(तिष्ठतु)** रहे **(यावत्)** जब तक कि **(निर्वाण-संप्राप्ति:)** निर्वाण की प्राप्ति न होवे।

**एकापि समर्थेयं जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम्।**
**पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिन: ॥८॥**

**अन्वयार्थ—(एका)** एक **(अपि)** ही **(इयं)** यह **(जिनभक्ति:)** जिनभक्ति **(दुर्गतिं)** दुर्गति को **(निवारयितुं)** रोकने में **(समर्था)** समर्थ है **(च)** तथा **(पुण्यानि)** पुण्य को **(पूरयितुं)** पूरने में समर्थ है और **(कृतिन:)** पुण्यशाली को **(मुक्तिश्रियं)** मुक्ति लक्ष्मी **(दातुं)** देने के लिए समर्थ है।

**पंच अरिंजयणामे पंच य मदि-सायरे जिणे वंदे।**
**पंच जसोयरणामे पंच य सीमंदरे वंदे ॥९॥**

**अन्वयार्थ– (पंच अरिंजयणामे)** अरिंजय नाम से पाँच **(पंच य मदिसायरे जिणे)** पाँच मतिसागर नाम में स्थित जिन की **(वंदे)** मैं वन्दना करता हूँ **(पंच जसोहरणामे)** यशोधर नाम से पाँच **(पंच य सीमंदरे)** सीमंधर नाम से पाँच जिनों की **(वंदे)** मैं वन्दना करता हूँ।

**रयणत्तयं च वंदे चउवीस जिणे च सव्वदा वंदे।**
**पंचगुरूणं वंदे चारणचरणं सदा वंदे ॥१०॥**

**अन्वयार्थ–(रयणत्तयं च)** रत्नत्रय की **(वंदे)** मैं वन्दना करता हूँ **(चउवीसजिणे च)** चौबीस जिनों की **(सव्वदा)** सर्व काल **(वंदे)** वन्दना करता हूँ **(पंच गुरूणं)** पंच गुरुओं की **(वंदे)** मैं वन्दना करता हूँ **(चारणचरणं)** चारण ऋद्धिधारी मुनि के चरणों की **(सदा)** सदा **(वंदे)** वन्दना करता हूँ।

**अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म - वाचकं परमेष्ठिनः।**
**सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणिदध्महे ॥११॥**

**अन्वयार्थ– (सिद्धचक्रस्य)** सिद्ध समूह का और **(परमेष्ठिनः)** सिद्ध परमेष्ठी का **(सद्बीजं)** समीचीन बीज **(ब्रह्मवाचकं)** ब्रह्म वाचक **(अर्हम्)** अर्ह **(इति)** इस प्रकार के **(अक्षरम्)** अक्षर को **(सर्वतः)** सब ओर से **(प्रणिदध्महे)** मैं ध्यान करता हूँ।

**कर्माष्टक - विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मी - निकेतनम्।**
**सम्यक्त्वादि - गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥१२॥**

**अन्वयार्थ– (अहं)** मैं **(कर्माष्टकविनिर्मुक्तं)** आठ कर्मों से रहित **(मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्)** मोक्ष लक्ष्मी के निवास स्थान **(सम्यक्त्वादिगुणोपेतम्)** सम्यक्त्व आदि गुणों से सहित **(सिद्धचक्रं)** सिद्ध समूह को **(नमामि)** नमस्कार करता हूँ।

**आकृष्टिं सुरसम्पदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यता-**
**मुच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम्।**
**स्तम्भं दुर्गमनं प्रति-प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं**
**पायात्पञ्च-नमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता ॥१३॥**

**अन्वयार्थ–(पञ्चनमस्क्रियाक्षरमयी)** पञ्चनमस्कार मन्त्र के अक्षरमयी **(सा)** वह **(आराधना देवता)** पूज्य देवी **(पायात्)** मेरी रक्षा करें जिस मन्त्र के अक्षर **(सुरसम्पदां)** सुर सम्पदा को **(आकृष्टिं)** आकृष्ट **(विदधते)** करते हैं **(मुक्तिश्रियो)** मुक्ति लक्ष्मी का **(वश्यतां)** वशीकरण

करते हैं **(चतुर्गतिभुवां)** चार गति की **(विपदाम्)** विपदाओं का **(उच्चाटं)** उच्चाटन करते हैं **(आत्मैनसां)** आत्मा के पापों का **(विद्वेषम्)** विद्वेष करते हैं। **(दुर्गमनं प्रति)** दुर्गमन के प्रति **(प्रयततः)** प्रयत्न करने वाले को **(स्तम्भं)** स्तम्भन करते हैं **(मोहस्य)** मोह का **(सम्मोहनम्)** सम्मोहन करते हैं।

**अनन्तानन्त - संसार - संततिच्छेद-कारणम्।**
**जिनराज - पदाम्भोज - स्मरणं शरणं मम ॥१४॥**

**अन्वयार्थ— (अनन्तानन्त-संसार-सन्ततिच्छेदकारणम्)** अनन्तानन्त संसार की परम्परा को नाश का कारण **(जिनराज-पदाम्भोजस्मरणं)** जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों का स्मरण ही **(मम)** मेरे लिए **(शरणम्)** शरण है।

**अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।**
**तस्मात् कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर! ॥१५॥**

**अन्वयार्थ— (जिनेश्वर!)** हे जिनेश्वर **(मम)** मुझे **(शरणं)** शरण **(अन्यथा)** अन्य प्रकार की **(नास्ति)** नहीं है **(त्वम् एव शरणं)** आप ही शरण हैं **(तस्मात्)** इसलिए **(कारुण्यभावेन)** करुणा भाव से **(रक्ष, रक्ष)** रक्षा करो, रक्षा करो।



**न हि त्राता न हि त्राता न हि त्राता जगत्त्रये।**
**वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥१६॥**

**अन्वयार्थ— (जगत्त्रये)** तीन जगत् में **(त्राता)** रक्षक **(न हि)** नहीं है **(त्राता न हि)** रक्षक नहीं है **(त्राता न हि)** रक्षक नहीं है। **(वीतरागात्)** वीतराग से **(परः)** बढ़कर अन्य **(देवः)** देव **(न भूतः)** न हुआ है **(न भविष्यति)** न होगा।

**जिनेभक्ति - र्जिनेभक्ति - र्जिनेभक्ति-र्दिने दिने।**
**सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥१७॥**

**अन्वयार्थ— (दिने दिने)** प्रतिदिन **(भवे भवे)** प्रत्येक भव में **(जिने)** भगवान् में **(भक्तिः)** भक्ति **(जिने भक्तिः)** जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(जिने भक्तिः)** जिनेन्द्र प्रभु में भक्ति **(सदा)** सदा **(मे अस्तु)** मेरी रहे **(सदा)** सदा **(मे अस्तु)** मेरी रहे **(सदा)** सदा **(मे अस्तु)** मेरी बनी रहे।

**याचेऽहं याचेऽहं जिन! तव चरणारविन्दयोर्भक्तिम्।**
**याचेऽहं याचेऽहं पुनरपि तामेव तामेव ॥१८॥**

**अन्वयार्थ— (जिन!)** हे जिनदेव **(तव)** आपके **(चरणारविन्दयोः)** चरण कमलों की **(भक्तिं)**

भक्ति की **(याचेऽहं)** मैं याचना करता हूँ **(याचेऽहं)** मैं याचना करता हूँ **(पुनरपि)** पुनः **(तामेव)** उसी भक्ति की **(तामेव)** उसी भक्ति की **(याचेऽहं)** मैं याचना करता हूँ **(याचेऽहं)** मैं याचना करता हूँ।

**विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी - भूत - पन्नगाः।**
**विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥१९॥**

**अन्वयार्थ—(जिनेश्वरे)** जिनेश्वर की **(स्तूयमाने)** स्तुति किये जाने पर **(विघ्नौघाः)** विघ्न समूह **(शाकिनीभूत-पन्नगाः)** शाकिनी, भूत, सर्प **(प्रलयं)** प्रलय को **(यान्ति)** प्राप्त हो जाते हैं। **(विषं)** तथा विष **(निर्विषताम्)** निर्विषपने को **(याति)** प्राप्त हो जाता है।

## अञ्चलिका

**इच्छामि भंते! समाहिभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूवपरमप्पज्झाण-लक्खणं समाहि-भत्तीए णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।**

**अर्थ—** हे भगवन् मैंने समाधिभक्ति का कायोत्सर्ग किया है। उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा के ध्यान रूप लक्षण वाली समाधि भक्ति के द्वारा मैं नित्यकाल अर्चा करता हूँ। पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो, मेरे कर्मों का क्षय हो, मुझे बोधि का लाभ हो, मेरा सुगति में गमन हो, मेरा समाधिमरण हो तथा जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की प्राप्ति मुझे हो।

❑ ❑ ❑

# निर्वाणभक्ति

**विबुधपति-खगपति-नरपति - धनदोरग - भूतयक्षपतिमहितम्।**
**अतुलसुख-विमलनिरुपम-शिवमचलमनामयं हि संप्राप्तम् ॥१॥**
**कल्याणैः संस्तोष्ये पञ्चभिरनघं त्रिलोक परमगुरुम्।**
**भव्यजनतुष्टि-जननैर्दुरवापैः सन्मतिं भक्त्या ॥२॥**

**अन्वयार्थ—(विबुधपति-खगपति-नरपति-धनदोरग-भूत-यक्ष-पतिमहितं)** देवेन्द्र, विद्याधर, राजा, कुबेर, धरणेन्द्र, भूत और यक्ष के इन्द्र से जो पूजित है जो **(अचलं)** अचल **(अनामयं)** नीरोग **(अतुलसुखविमलनिरुपमशिवं)** अनुपम सुख, निर्मल, निरुपम सुख को **(हि)** निश्चय से **(संप्राप्तं)** प्राप्त हैं/**(अनघं)** जो पाप रहित हैं **(त्रिलोकपरमगुरुं)** तीन लोक के परम गुरु हैं **(संमतिं)** ऐसे सन्मति भगवान् की **(भक्त्या)** भक्ति से **(भव्यजनतुष्टिजननैः)** भव्य जनों को सन्तोष उत्पन्न करने वाले **(दुरवापैः)** दुर्लभ की **(भक्त्या)** भक्ति से **(पञ्चभिः कल्याणैः)** पाँच कल्याणों के द्वारा **(संस्तोष्ये)** स्तुति करूँगा।

**आषाढसुसितषष्ठ्यां हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते शशिनि।**
**आयातः स्वर्गसुखं भुक्त्वा पुष्पोत्तराधीशः ॥३॥**
**सिद्धार्थनृपतितनयो भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरे।**
**देव्यां प्रियकारिण्यां सुस्वप्नान् संप्रदर्श्य विभुः ॥४॥**

**अन्वयार्थ—(आषाढ़-सुसित-षष्ठ्यां)** आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन **(शशिनि)** चन्द्रमा के **(हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते)** हस्त और उत्तरा नक्षत्रं के मध्य स्थित होने पर **(पुष्पोत्तराधीशः)** पुष्पोत्तर विमान के इन्द्र **(विभुः)** भगवान् का जीव **(स्वर्गसुखं)** स्वर्ग के सुख को **(भुक्त्वा)** भोगकर **(भारतवास्ये)** भारतवर्ष में **(विदेहकुण्डपुरे)** विदेहदेश के कुण्डपुर में **(सुस्वप्नान्)** उत्तम स्वप्नों को **(संप्रदर्श्य)** दिखाकर **(प्रियकारिण्यां देव्यां)** प्रियकारिणी देवी में **(सिद्धार्थ-नृपतितनयः)** सिद्धार्थ राजा के पुत्र **(आयातः)** आये।

**चैत्रसितपक्षफाल्गुनि-शशाङ्कयोगे दिने त्रयोदश्याम्।**
**जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने ॥५॥**
**हस्ताश्रिते शशाङ्के चैत्रज्योत्स्ने चतुर्दशी दिवसे।**
**पूर्वाह्ने रत्नघटैर्विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम् ॥६॥**

**अन्वयार्थ—(चैत्रसितपक्षफाल्गुनिशशाङ्कयोगे)** चैत्र शुक्ल पक्ष के उत्तरा फाल्गुनि चन्द्र

योग में **(दिने त्रयोदश्यां)** त्रयोदशी के दिन **(सौम्येषु ग्रहेषु)** जब सभी ग्रह सौम्य थे **(स्वोच्चस्थेषु)** और अपने उच्च स्थान पर थे **(शुभलग्ने)** तब शुभ लग्न में **(जज्ञे)** प्रभु का जन्म हुआ था। **(चैत्रज्योत्स्ने)** चैत्रमास की चाँदनी में **(हस्ताश्रिते शशाङ्के)** हस्तनक्षत्र पर चन्द्रमा होने पर **(चतुर्दशीदिवसे)** चौदस के दिन **(पूर्वाह्ने)** प्रातःकाल में **(रत्नघटैः)** रत्नों के घड़ों से **(विबुधेन्द्राः)** देवेन्द्रों ने **(अभिषेकं)** अभिषेक **(चक्रुः)** किया।

**भुक्त्वा कुमारकाले त्रिंशद्वर्षाण्यनन्त-गुणराशिः।**
**अमरोपनीतभोगान् सहसाभिनिबोधितोऽन्येद्युः ॥७॥**
**नानाविधरूपचितां विचित्रकूटोच्छ्रितां मणिविभूषाम्।**
**चन्द्रप्रभाख्यशिविकामारुह्य पुराद्विनिःक्रान्तः ॥८॥**
**मार्गशिरकृष्णदशमी-हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते सोमे।**
**षष्ठेन त्वपराह्ने भक्तेन जिनः प्रवव्राज ॥९॥**

**अन्वयार्थ—(कुमारकाले)** कुमार काल में **(त्रिंशत् वर्षाणि)** तीस वर्ष तक **(अमरोपनीत-भोगान्)** देवों से प्राप्त भोगों को **(भुक्त्वा)** भोगकर **(अनन्तगुणराशिः)** अनन्त गुणों की राशि भगवान् महावीर **(सहसा)** अचानक **(अभिनिबोधितः)** प्रतिबोध को प्राप्त हुए। **(अन्येद्युः)** दूसरे दिन **(नानाविधरूपचितां)** अनेक प्रकार के रूपों से युक्त **(विचित्रकूटोच्छ्रितां)** विचित्र कूटों से ऊँची **(मणिविभूषां)** मणियों से सजी **(चन्द्रप्रभाख्य-शिविकां)** चन्द्रप्रभा नाम की शिविका में **(आरुह्य)** आरूढ़ होकर **(पुरात्)** नगरी से **(विनिष्क्रान्तः)** बाहर निकल गये। **(मार्गशिर-कृष्णदशमी-हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते सोमे)** मगसिर कृष्णा दशमी के दिन जब चन्द्रमा हस्त और उत्तरा नक्षत्र के मध्य था **(षष्ठेन भक्तेन)** छह भुक्ति के त्याग के साथ **(अपराह्ने तु)** अपराह्न समय में **(जिनः)** जिनदेव **(प्रवव्राज)** दीक्षित हुए।

**ग्रामपुरखेट कर्वट-मटंब घोषाकरान्प्रविजहार।**
**उग्रैस्तपो - विधानैर्द्वादश - वर्षाण्यमर - पूज्यः ॥१०॥**
**ऋजु-कूलायास्तीरे शालद्रुम-संश्रिते शिलापट्टे।**
**अपराह्ने षष्ठेनास्थितस्य खलु जृंभिकाग्रामे ॥११॥**
**वैशाखसित-दशम्यां हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते चन्द्रे।**
**क्षपक-श्रेण्यारूढ-स्योत्पन्नं केवलज्ञानम् ॥१२॥**

**अन्वयार्थ— (अमरपूज्यः)** देवों से पूज्य महावीर स्वामी **(उग्रैः तपो-विधानैः)** उग्र तपश्चरण से **(द्वादश वर्षाणि)** बारह वर्ष तक **(ग्राम-पुर-खेट-कर्वट-मटम्ब-घोषाकरान्)** ग्राम, पुर,

खेट, कर्वट, मटम्ब, घोष और आकर में **(प्रविजहार)** विहार किया। **(ऋजुकूलायाः तीरे)** ऋजुकूला नदी के तट पर **(जृंभिकाग्रामे)** जृंभिका ग्राम में **(शालद्रुमसंश्रिते शिलापट्टे)** शालवृक्ष के नीचे शिलापट्टपर **(अपराह्ने)** अपराह्नकाल में **(खलु)** निश्चित ही **(षष्ठेन)** छह मुक्ति तीन उपवास लेकर **(आस्थितस्य)** स्थित हुए, तब उनको **(क्षपक-श्रेण्यारूढस्य)** क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ जिन को **(वैशाख-सितदशम्यां)** वैशाख शुक्ला दशमी के दिन **(हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते चन्द्रे)** हस्त और उत्तरा नक्षत्र के मध्य चन्द्र के होने पर **(केवलज्ञानं)** केवलज्ञान **(उत्पन्नं)** उत्पन्न हुआ।

**अथ भगवान् संप्रापद्-दिव्यं वैभारपर्वतं रम्यम् ।**
**चातुर्वर्ण्यसुसङ्घस्तत्राभूद् गौतम-प्रभृतिः ॥१३॥**
**छत्राशोकौ घोषं सिंहासन-दुंदुभी-कुसुमवृष्टिम्।**
**वरचामर-भामण्डल-दिव्यान्यन्यानि चावापत् ॥१४॥**
**दशविधमनगाराणा-मेकादशधोत्तरं तथा धर्मम्।**
**देशयमानो व्यवहरंस्-त्रिंशद्वर्षाण्यथ जिनेन्द्रः ॥१५॥**

**अन्वयार्थ—(अथ)** फिर **(भगवान्)** भगवान् **(रम्यं)** रम्य **(दिव्यं)** दिव्य **(वैभारपर्वतं)** वैभार पर्वत पर **(सम्प्रापत्)** पहुँचे। **(तत्र)** वहाँ **(गौतम-प्रभृतिः चातुर्वर्ण्यसुसंघः)** गौतम आादि चातुर्वर्ण्य संघ **(अभूत्)** एकत्र हुआ। **(छत्राशोकौ)** छत्र, अशोकवृक्ष **(घोषं)** दिव्यध्वनि **(सिंहासन-दुन्दुभी कुसुमवृष्टिं)** सिंहासन, दुन्दुभि पुष्पवृष्टि **(वरचामरभामण्डल-दिव्यानि)** श्रेष्ठ चँवर, दिव्य भामण्डल **(च अन्यानि)** तथा अन्य दिव्य वस्तुएँ **(अवापत्)** प्राप्त की। **(अथ)** तब **(जिनेन्द्रः)** जिनेन्द्र भगवान् ने **(दशविधं)** दश प्रकार के **(अनगाराणां धर्मं)** मुनि धर्म का **(तथा)** तथा **(एका-दशधा)** ग्यारह प्रकार के **(उत्तरं)** सागारधर्म का **(देशयमानः)** उपदेश देते हुए **(त्रिंशद्-वर्षाणि)** तीस वर्ष तक **(व्यवहरन्)** विहार किया।

**पद्मवनदीर्घिकाकुल-विविधद्रुमखण्डमण्डिते रम्ये।**
**पावानगरोद्याने व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः ॥१६॥**
**कार्तिककृष्ण-स्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः।**
**अवशेषं संप्रापद् व्यजरामरमक्षयं सौख्यम् ॥१७॥**

**अन्वयार्थ— (सः मुनिः)** वह मुनिराज **(पद्मवन-दीर्घिकाकुल-विविधद्रुमखण्डमण्डिते)** कमलवन, वापिका समूह और अनेक प्रकार के वृक्ष समूह से सुशोभित **(रम्ये)** रमणीय **(पावानगरोद्याने)** पावानगर के उद्यान में **(व्युत्सर्गेण स्थितः)** कायोत्सर्ग से स्थित हुए। **(कार्तिक-कृष्णस्य अन्ते)** कार्तिक कृष्ण पक्ष के अन्त में **(स्वातावृक्षे)** स्वाति नक्षत्र में **(अवशेषं कर्मरजः)** अवशिष्ट कर्म धूलि को **(निहत्य)** नष्ट करके **(व्यजरामरं अक्षयं)** अजर-अमर-अक्षय **(सौख्यं)**

सुख को **(सम्प्राप्त्)** प्राप्त किये।

**परिनिर्वृतं जिनेन्द्रं ज्ञात्वा विबुधाह्यथाशु चागम्य।**
**देवतरुरक्तचन्दन - कालागुरु - सुरभिगोशीर्षैः ॥१८॥**
**अग्नीन्द्राज्जिनदेहं मुकुटानलसुरभि-धूपवरमाल्यैः।**
**अभ्यर्च्य गणधरानपि गतां दिवं खं च वनभवने ॥१९॥**

**अन्वयार्थ—(अथ)** फिर **(जिनेन्द्रं परिनिर्वृतं)** जिनेन्द्रदेव का निर्वाण **(ज्ञात्वा)** जानकर **(विबुधाः)** देव लोग **(आशु च)** शीघ्र ही **(आगम्य)** आकर **(देवतरु-रक्तचन्दन-कालागुरु-सुरभिगोशीर्षैः)** देवदारु, लाल चन्दन, कालागुरूधूप और सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन से **(अग्नीन्द्रात्)** इन्द्र की अग्नि से तथा **(मुकुटानल-सुरभिधूपवरमाल्यैः)** मुकुट की अग्नि, सुगन्धित धूप और उत्तम मालाओं से **(जिनदेहं)** जिनेन्द्रदेव के शरीर की **(अभ्यर्च्य)** पूजा करके **(गणधरान् अपि)** गणधरों की भी पूजा करके **(दिवं खं च वनभवने गताः)** स्वर्ग, आकाश, वन तथा भवन में चले गये।

**इत्येवं भगवति वर्धमान चन्द्रे यः स्तोत्रं पठति सुसन्ध्ययो-र्द्वयोर्हि।**
**सोऽनन्तं परम-सुखं नृदेवलोके भुक्त्वान्ते शिवपदमक्षयं प्रयाति ॥२०॥**

**अन्वयार्थ— (इति एवं भगवति वर्धमानचन्द्रे)**। इस प्रकार भगवान् वर्धमान रूप चन्द्रमा के विषय मे **(स्तोत्रं)** इस स्तोत्र को **(यः)** जो **(द्वयोः सुसंध्ययोः हि)** दोनों संध्याओं में **(पठति)** पढ़ता है **(सः)** वह **(नृदेवलोके)** मनुष्य और देव लोक में **(परमसुखं)** उत्तम सुख को **(भुक्त्वा)** भोगकर **(अन्ते)** अन्त में **(अक्षयं अनन्तं शिवपदं)** अक्षय, अनन्त, मोक्षपद को **(प्रयाति)** प्राप्त होता है।

**यत्रार्हतां गणभृतां श्रुत-पारगाणां**
**निर्वाण-भूमि-रिह भारतवर्ष-जानाम्।**
**तामद्य शुद्ध-मनसा क्रियया वचोभिः**
**संस्तोतु-मुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या ॥२१॥**

**अन्वयार्थ— (इह)** इस लोक में **(यत्र)** जहाँ **(भारतवर्षजानां)** भारतवर्ष में उत्पन्न **(अर्हतां)** अरिहन्त **(गणभृतां)** गणधर **(श्रुतपारगाणां)** और श्रुत के पारगामियों की **(निर्वाणभूमिः)** निर्वाणभूमि है **(तां अद्य)** उसको आज **(शुद्धमनसा क्रियया वचोभिः)** शुद्धमन, क्रिया और वचनों से **(संस्तोतुं)** स्तुति करने के लिए **(उद्यतमतिः)** मैं उद्यत बुद्धि वाला **(भक्त्या)** भक्ति से **(परिणौमि)** नमस्कार करता हूँ।

**कैलाशशैल-शिखरे परि-निर्वृतोऽसौ**
**शैलेशिभाव-मुपपद्य वृषो महात्मा।**

**चम्पापुरे च वसुपूज्य-सुतः सुधीमान्**
**सिद्धिं परामुपगतो गतरागबन्धः ॥२२॥**

**अन्वयार्थ—(असौ महात्मा वृषः)** यह महात्मा वृषभदेव **(कैलासशैलशिखरे)** कैलाश पर्वत के शिखर पर **(शैलेशिभावं उपपद्य)** शैलेशि भाव को प्राप्त करके **(परिनिर्वृतः)** निर्वाण को प्राप्त हुए। **(च)** और **(वसुपूज्यसुतः)** वसुपूज्य के पुत्र वासुपूज्य भगवान् **(सुधीमान्)** श्रेष्ठ बुद्धि के धारक **(चम्पापुरे)** चम्पापुरी में **(गतरागबन्धः)** रागबन्ध से रहित हो **(परां सिद्धिं)** उत्कृष्ट सिद्धि को **(उपगतः)** प्राप्त हुए।

**यत्प्रार्थ्यते शिवमयं विबुधेश्वराद्यैः**
**पाखण्डिभिश्च परमार्थ-गवेष-शीलैः।**
**नष्टाष्ट कर्म समये तदरिष्टनेमिः**
**संप्राप्तवान् क्षितिधरे वृहदूर्जयन्ते ॥२३॥**

**अन्वयार्थ— (विबुधेश्वराद्यैः)** इन्द्र आदि के द्वारा **(परमार्थगवेषशीलैः)** परमार्थ की खोज करने वाले **(पाखण्डिभिः च)** साधुओं के द्वारा **(यत् शिवं)** जिस कल्याण की **(प्रार्थ्यते)** प्रार्थना की जाती है **(तत्)** वह कल्याण **(अयं अरिष्टनेमिः)** यह अरिष्ट नेमिनाथ **(वृहद् ऊर्जयन्ते)** विशाल ऊर्जयन्त **(क्षितिधरे)** पर्वत पर **(नष्टाष्टकर्मसमये)** अष्टकर्मों के नाश के समय **(संप्राप्तवान्)** प्राप्त हुए।

**पावापुरस्य बहिरुन्नत - भूमि-देशे**
**पद्मोत्पला-कुलवतां सरसां हि मध्ये।**
**श्रीवर्द्धमान - जिनदेव इति प्रतीतो**
**निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा ॥२४॥**

**अन्वयार्थ— (पावापुरस्य)** पावापुरी के **(बहिः)** बाहर **(पद्मोत्पलाकुलवतां)** कमल और उत्पल फूल से भरे **(सरसां हि मध्ये)** सरोवर के बीच **(उन्नतभूमिदेशे)** ऊँचे भूमि स्थान पर **(श्रीवर्धमानजिनदेव इति प्रतीतः)** श्रीवर्धमान जिन देव इस नाम से प्रसिद्ध **(भगवान्)** भगवान् **(प्रविधूतपाप्मा)** पाप रहित हो **(निर्वाणं आप)** निर्वाण को प्राप्त हुए।

**शेषास्तु ते जिनवरा जित-मोह-मल्ला**
**ज्ञानार्कभूरिकिरणै - रवभास्य लोकान्।**
**स्थानं परं निरव - धारित - सौख्यनिष्ठं**
**सम्मेदपर्वततले समवापुरीशाः ॥२५॥**

**अन्वयार्थ— (ते शेषाः)** वे शेष **(ईशाः)** भगवान् **(जिनवराः तु)** जिनं श्रेष्ठ भी **(जित-**

**मोहमल्लाः)** मोहमल्ल को जीतते हुए **(ज्ञानार्कभूरिकिरणैः)** ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से **(लोकान्)** लोकों को **(अवभास्य)** प्रकाशित करके **(सम्मेदपर्वततले)** सम्मेदपर्वत पर से **(निरवधारित-सौख्यनिष्ठं)** असीम सुख सम्पन्न **(परं स्थानं)** उत्कृष्ट स्थान को **(समवापुः)** प्राप्त किये थे।

**आद्यश्चतु - र्दश-दिनै-र्विनिवृत्तयोगः**
**षष्ठेन निष्ठित - कृतिर्जिन - वर्द्धमानः।**
**शेषा विधूत - घनकर्म - निबद्धपाशाः**
**मासेन ते यतिवरास्त्वभवन्वियोगाः ॥२६॥**

**अन्वयार्थ—(आद्यः)** आादि भगवान् **(चतुर्दशदिनैः)** चौदह दिन तक **(विनिवृत्तयोगः)** योग निरोध धारण किये **(जिनवर्धमानः)** वर्धमान जिन **(षष्ठेन)** वेला से **(निष्ठितकृतिः)** निष्ठापन किये **(शेषाः यतिवराः)** अवशिष्ट यतिवर **(मासेन तु)** एक मास तक योग निरोध से **(विधूतघनकर्मनिबद्धपाशाः)** घनीभूत कर्म के बंधे जाल को नष्ट करके **(वियोगाः अभवन्)** योग रहित हो गये।

**माल्यानि वाक्स्तुतिमयैः कुसुमैः सुदृब्धा-**
**न्यादाय मानस - करै - रभितः किरन्तः।**
**पर्येम आदृति - युता भगवन्निषद्याः**
**संप्रार्थिता वयमिमे परमां गतिं ताः ॥२७॥**

**अन्वयार्थ— (वाक्स्तुतिमयैः कुसुमैः)** वचन रूपी स्तुति के फूलों से **(सुदृब्धानि माल्यानि)** गूंथी हुई मालाओं को **(मानसकरैः)** मन रूपी हाथों से **(आदाय)** लेकर **(अभितः किरन्तः)** सब ओर फैलाते हुए **(वयं इमे)** हम ये **(आदृतियुताः)** आदर सहित हो **(ताः भगवन्निषद्याः)** उन भगवान् की निषद्या की **(पर्येम)** प्रदक्षिणा करते हैं **(परमां गतिं)** और परम गति की **(संप्रार्थिताः)** प्रार्थना करते हैं।

**शत्रुञ्जये नगवरे दमितारि-पक्षाः**
**पण्डोः सुताः परम-निर्वृति-मभ्युपेताः।**
**तुंग्यां तु सङ्गरहितो बलभद्रनामा,**
**नद्यास्तटे जितरिपुश्च सुवर्णभद्रः ॥२८॥**
**द्रोणीमति प्रवर - कुण्डल मेंढ्रके च**
**वैभार-पर्वत-तले वर-सिद्धकूटे।**
**ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रि-बलाहके च**
**विन्ध्ये च पोदनपुरे वृष-दीपके च ॥२९॥**

**सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठे**
**दण्डात्मके गजपथे पृथु-सार-यष्टौ।**
**ये साधवो हतमला: सुगतिं प्रयाता:**
**स्थानानि तानि जगति प्रथितान्यभूवन् ॥३०॥**

**अन्वयार्थ— (शत्रुञ्जये नगवरे)** शत्रुञ्जय पर्वत पर **(दमितारिपक्षा:)** शत्रु पक्ष का दमन करने वाले **(पण्डो: सुता:)** पाण्डुपुत्र **(परमनिर्वृतिं)** परमसुख को **(अभ्युपेता:)** प्राप्त हुए **(तुङ्ग्यां)** तुंगीगिरि से। **(तु)** तो **(बलभद्रनामा)** बलभद्र **(सङ्गरहित:)** निर्वाणगए **(जितरिपु: च)** शत्रु विजेता **(सुवर्णभद्र:)** सुवर्णभद्र **(नद्या: तटे)** नदी के तट से **(द्रोणीमति)** द्रोणगिरि **(प्रवरकुण्डल-मेंढ्रके च)** श्रेष्ठकुण्डलगिरि,मुक्तागिरि **(वैभारपर्वततले)** वैभार पर्वत से **(वरसिद्धकूटे)** उत्कृष्ट सिद्धकूट से **(ऋष्यद्रिके च)** ऋषि/श्रमण पर्वत से **(विपुलाद्रिबलाहके च)** विपुलाचल, बलाहक पर्वत से **(विन्ध्ये)** विन्ध्याचल से **(पोदनपुरे च)** पोदनपुर से **(वृषदीपके च)** जो कि धर्म का प्रकाशक है **(सह्याचले च)** सह्याचल पर्वत से **(सुप्रतिष्ठे हिमवति अपि)** अत्यन्त प्रतिष्ठित हिमालय पर से भी **(दण्डात्मके गजपथे)** दण्डाकार गजपंथा से **(पृथुसारयष्टौ)** पृथुसार यष्टि पर से **(ये साधव:)** जो साधु **(हतमला:)** मल रहित हो **(सुगतिं प्रयाता:)** सुगति को प्राप्त हुए हैं **(जगति)** इस जगत् में **(तानि स्थानानि)** वह स्थान **(प्रथितानि)** प्रसिद्ध **(अभूवन्)** हुए हैं।

**इक्षोर्विकार - रसपृक्त - गुणेन लोके**
**पिष्टोऽधिकां मधुरता - मुपयाति यद्वत्।**
**तद्वच्च पुण्यपुरुषै - रुषितानि नित्यं**
**स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि ॥३१॥**

**अन्वयार्थ—(यद्वत्)** जिस प्रकार **(लोके)** लोक में **(इक्षो:)** इक्षु से **(विकाररस-पृक्त-गुणेन)** बने रस से मिले गुणों से **(पिष्ट:)** आटा **(अधिकां मधुरतां)** अत्यधिक मधुरता को **(उपयाति)** प्राप्त होता है **(तद्वत् च)** उसी प्रकार **(पुण्यपुरुषै: उषितानि)** पुण्य पुरुषों के द्वारा रहे गए **(तानि स्थानानि)** वे स्थान **(इह जगतां)** इस संसार में **(नित्यं)** हमेशा के लिए **(पावनानि)** पावन हो जाते हैं।

**इत्यर्हतां शमवतां च महामुनीनां**
**प्रोक्ता मयात्र परिनिर्वृति-भूमिदेशा:।**
**ते मे जिना जितभया मुनयश्च शान्ता:**
**दिश्यासुराशु सुगतिं निरवद्यसौख्याम् ॥३२॥**

**अन्वयार्थ—(इति)** इस प्रकार **(मया)** मेरे द्वारा **(अत्र)** यहाँ **(अर्हतां)** अरिहन्तों **(शमवतां च**

**महामुनीनां)** शान्ति को प्राप्त महामुनीश्वरों की **(परिनिर्वृतिभूमिदेशाः)** परिनिर्वाण भूमि के स्थान **(प्रोक्ताः)** कहे गये हैं **(ते जितभयाः)** वे भय को जीतने वाले **(जिनाः)** जिन देव **(शान्ताः मुनयः च)** और शान्त मुनिजन **(आशु)** शीघ्र ही **(निरवद्यसौख्यां)** निर्दोष सुख वाली **(सुगतिं)** सुगति को **(मे)** मुझे **(दिश्यासुः)** प्रदान करें।

## क्षेपक

**गौर्गजोश्वः कपिः कोकः सरोजः स्वस्तिकः शशी।**
**मकरः श्रीयुतो वृक्षो गण्डो महिष-सूकरौ ॥३३॥**
**सेधावज्र-मृगच्छागाः पाठीनः कलशस्तथा।**
**कच्छपश्चोत्पलं शङ्खो नाग-राजश्च केसरी ॥३४॥**
**शान्ति-कुन्थवर-कौरव्या यादवौ नेमि-सुव्रतौ।**
**उग्रनाथौ पार्श्ववीरौ शेषा इक्ष्वाकुवंशजाः ॥३५॥**

**अन्वयार्थ—** **(गौः)** बैल **(गजः)** हाथी **(अश्वः)** घोड़ा **(कपिः)** बन्दर **(कोकः)** चकवा **(सरोजः)** कमल **(स्वस्तिकः)** स्वस्तिक **(शशी)** चन्द्रमा **(मकरः)** मगरमच्छ **(श्रीयुतः वृक्षः)** कल्पवृक्ष **(गण्डः)** गैंडा **(महिषसूकरौ)** भैंसा, सूकर **(सेधा)** सेही **(वज्र-मृगच्छागाः)** वज्रदण्ड, हिरण, बकरा **(पाठीनः)** मछली **(तथा कलशः)** तथा कलश **(कच्छपः च)** कछुआ **(उत्पलं)** नील कमल **(शङ्ख)** शंख **(नागराजः च)** सर्प **(केसरी)** सिंह। ये चौबीस तीर्थंकरों के चिह्न हैं।

**(शान्ति-कुन्थवर-कौरव्या)** शांति, कुन्थु और अरनाथ तीर्थंकर कौरववंशी हैं **(नेमि-सुव्रतौ)** नेमिनाथ और मुनिसुव्रत **(यादवौ)** यादव वंशी हैं **(पार्श्ववीरौ)** पार्श्व और वीरनाथ **(उग्रनाथौ)** उग्र तथा नाथ वंशी हैं **(शेषाः)** शेष तीर्थंकर **(इक्ष्वाकुवंशजाः)** इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए हैं।

## अञ्चलिका

**इच्छामि भंते! परिणिव्वाणभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, इमम्मि अवसप्पिणीए, चउत्थसमयस्स, पच्छिमे भाए, आउट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि, पावाए णयरीए, कत्तियमासस्स किण्हचउद्दसिए रत्तीए, सादीए णक्खत्ते, पच्चूसे, भयवदो महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं गदो, तिसुवि लोएसु, भवणवासिय-वाणविंतर-जोयिसिय-कप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्चकालं अच्चंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति, परिणिव्वाणमहाकल्लाणपुज्जं करंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइयं णिच्चकालं, अंचेमि,**

**पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।**

**अर्थ**—हे भगवन्! मैंने निर्वाण भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है, उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। इस अवसर्पिणी सम्बन्धी चतुर्थकाल के पिछले भाग में साढ़े तीन माह कम चार वर्ष शेष रहने पर पावा नगरी में कार्तिकमास की कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में स्वाति नक्षत्र के रहते हुए प्रभात काल में भगवान् महति महावीर अथवा वर्धमान स्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए। उसके उपलक्ष्य में तीनों लोकों में जो भवनवासी, वाण-व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी के भेद से चार प्रकार के देव परिवार सहित दिव्य स्नान, दिव्य सुगंधित पदार्थ, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य धूप, दिव्य चूर्ण, दिव्य दीपक, विशेष सुगंधित पदार्थ के द्वारा निरन्तर उनकी अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वंदना करते हैं, नमस्कार करते हैं और निर्वाण नामक महाकल्याणक की पूजा करते हैं। मैं भी यहाँ रहता हुआ वहाँ स्थित उन निर्वाण क्षेत्रों की नित्य काल अर्चा करता हूँ। पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। इसके फलस्वरूप मेरे दु:खों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और मुझे जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की संप्राप्ति हो।

(कायोत्सर्ग)

❑ ❑ ❑

# नंदीश्वरभक्ति

**त्रिदशपतिमुकुटतटगतमणि - गणकर - निकर - सलिलधाराधौत-**
**क्रमकमलयुगलजिनपतिरुचिरप्रतिबिम्बविलयविरहितनिलयान् ॥१॥**
**निलयानहमिह महसां सहसा प्रणिपतन - पूर्वमवनौम्यवनौ।**
**त्रय्यां त्रय्या शुद्ध्या निसर्ग - शुद्धान्विशुद्धये घनरजसाम् ॥२॥**

**अन्वयार्थ—(त्रिदशपति-मुकुट-तट-गत-मणि-गण-कर-निकर-सलिल-धारा-धौत-क्रमकमल-युगल-जिनपति-रुचिर-प्रतिबिम्ब-विलय-विरहित-निलयान्)** इन्द्रों के मुकुटों के किनारे में लगी मणि समूह की किरणों के समूहरूपी जल की धारा से धुले हुए चरण कमल युगल वाले जिन देव की मनोहर प्रतिमाओं के नाश रहित मन्दिरों को **(इह त्रय्यां)** जो कि इन तीनों लोकों में **(महसां निलयान्)** प्रकाश के पुञ्ज हैं और **(निसर्गशुद्धान्)** स्वभाव से शुद्ध हैं उन्हें **(सहसा)** शीघ्र ही **(अवनौ)** पृथ्वी पर **(प्रणिपतनपूर्वं)** प्रणाम पूर्वक **(त्रय्या शुद्ध्या)** तीन प्रकार की शुद्धि से **(घनरजसां)** घनीभूत-कर्म धूलि की **(विशुद्धये)** विशुद्धि के लिए **(अहं अवनौमि)** नमस्कार करता हूँ।



**भावनसुर-भवनेषु द्वासप्तति-शत-सहस्र-संख्याभ्यधिकाः।**
**कोट्यः सप्त प्रोक्ता भवनानां भूरि-तेजसां भुवनानाम् ॥३॥**

**अन्वयार्थ— (भावनसुरभवनेषु)** भवनवासी देवों के भवनों में **(भूरितेजसां)** अत्यधिक तेज स्वरूप **(भवनानां)** भवनों की **(भुवनानां)** लोक में **(सप्तकोट्यः)** सात करोड़ **(द्वासप्तति-शतसहस्त्रसंख्याभ्यधिकाः)** बहत्तर लाख से अधिक संख्या **(प्रोक्ताः)** कही है।

**त्रिभुवन-भूत-विभूनां संख्यातीतान्यसंख्य-गुण-युक्तानि।**
**त्रिभुवन-जन-नयन-मनःप्रियाणिभवनानि भौम-विबुध-नुतानि ॥४॥**

**अन्वयार्थ—(त्रिभुवन-भूत-विभूनां)** तीन लोक के जीवों के स्वामी के **(भवनानि)** जिनगृह **(संख्यातीतानि)** असंख्यात हैं, जो कि **(असंख्यगुण-युक्तानि)** असंख्य गुणों से युक्त हैं, **(त्रिभुवन-जन-नयन-मनः प्रियाणि)** तीन लोक के प्राणियों के नेत्र और मन को प्रिय लगने वाले हैं। **(भौमविबुधनुतानि)** तथा व्यन्तर देवों के द्वारा स्तुत हैं।

**यावन्ति सन्ति कान्त-ज्योति-र्लोकाधिदेवताभिनुतानि।**
**कल्पेऽनेक-विकल्पे कल्पातीतेऽहमिन्द्र-कल्पानल्पे ॥५॥**

**विंशतिरथ त्रिसहिता सहस्र-गुणिता च सप्तनवतिः प्रोक्ता।**
**चतुरधिकाशीतिरतः पञ्चक-शून्येन विनिहतान्यनघानि ॥६॥**

**अन्वयार्थ– (यावन्ति)** जितने भी ज्योतिष्क देवों के विमान **(सन्ति)** हैं वे **(कान्त-ज्योतिर्लोकाधिदेवताभिनुतानि)** वे सुन्दर ज्योतिर्लोक के देवताओं से स्तुत हैं। **(अनेकविकल्पे कल्पे)** अनेक भेद वाले कल्पों में तथा **(कल्पातीते)** कल्पातीत **(अनल्पे)** विस्तृत **(अहमिन्द्रकल्पे)** अहमिन्द्रों के कल्पों में **(अनघानि)** पाप को नष्ट करने वाले **(सहस्त्रगुणिता सप्तनवतिः)** सन्तानवे हजार **(चतुःअधिकाशीतिः)** चौरासी **(पञ्चकशून्यानि)** लाख **(अथ)** तथा **(त्रिसहिता विंशतिः)** तेईस **(अतः)** इसलिए **(प्रोक्ता)** कहे हैं।

**अष्टापञ्चाशदतश्-चतुःशतानीह मानुषे क्षेत्रे।**
**लोकालोक-विभाग-प्रलोकनाऽऽलोक-संयुजां जय-भाजाम् ॥७॥**

**अन्वयार्थ– (इह मानुषे क्षेत्रे)** इस मनुष्य क्षेत्र में **(लोकालोक-विभाग-प्रलोकनालोक-संयुजां)** लोक और अलोक के विभाजन को देखने वाले प्रकाश से युक्त **(जयभाजां)** विजय को प्राप्त जिनालयों की संख्या **(अष्टापञ्चाशत्-अतः-चतुःशतानि)** इस प्रकार चार सौ अठ्ठावन हैं।

**नव-नव-चतुःशतानि च सप्त च नवतिः सहस्र-गुणिताः षट् च।**
**पञ्चाशत्पञ्च-वियत् प्रहताः पुनरत्र कोट्योऽष्टौ प्रोक्ताः ॥८॥**
**एतावन्त्येव सता-मकृत्रिमाण्यथ जिनेशिनां भवनानि।**
**भुवन-त्रितये त्रिभुवन-सुर-समिति-समर्च्यमान-सत्प्रतिमानि ॥९॥**

**अन्वयार्थ– (अष्टौकोट्यः)** आठ करोड़ **(पञ्चवियत् प्रहताः)** पाँच शून्यों से गुणित **(षट्पञ्चाशत् च)** छप्पन अर्थात् छप्पन लाख **(पुनः)** तथा **(च सहस्त्रगुणिताः सप्तनवतिः)** संतानवे हजार **(चतुःशतानि)** चार सौ **(च नव नव)** इक्यासी **(प्रोक्ताः)** कही है। **(अथ)** तथा **(सतां जिनेशिनां)** पूज्य जिनेशों के **(एतावन्ति एव)** इतने ही **(अकृत्रिमाणि भवनानि)** अकृत्रिम भवन **(अत्र भुवनत्रितये)** यहाँ तीन लोक में हैं। **(त्रिभुवनसुरसमिति-समर्च्यमान-सत्प्रतिमानि)** ये भवन तीन लोक के देवों के समूह से पूजित प्रशस्त प्रतिमा वाले हैं।

**वक्षार - रुचक - कुण्डल - रौप्य - नगोत्तर - कुलेषुकारनगेषु।**
**कुरुषु च जिनभवनानि त्रिशतान्यधिकानि तानि षड्विंशत्या ॥१०॥**

**अन्वयार्थ–(वक्षार-रुचक-कुण्डल-रौप्यनगोत्तर-कुलेषु-कार-नगेषु)** वक्षार, रुचक, कुण्डलगिरि, विजयार्ध पर्वत, मानुषोत्तर, कुलाचल, इष्वाकर पर्वतों पर **(कुरुषु च)** और देवकुरु, उत्तर कुरु में **(षड्विंशत्या तानि अधिकानि त्रिशतानि)** छब्बीस अधिक तीन सौ **(जिन-भवनानि)** जिन भवन हैं।

**नन्दीश्वर-सद्द्वीपे, नन्दीश्वर-जलधि-परिवृते धृत-शोभे।**
**चन्द्रकर-निकर-सन्निभ-रुन्द्र-यशोवितत-दिङ्-मही-मण्डलके ॥११॥**
**तत्रत्याञ्जन - दधिमुख - रतिकर - पुरुनग-वराख्य-पर्वतमुख्याः।**
**प्रतिदिश-मेषा-मुपरि त्रयो-दशेन्द्रार्चितानि जिनभवनानि ॥१२॥**

**अन्वयार्थ—(नन्दीश्वर-जलधि-परिवृते)** नन्दीश्वर सागर से घिरे हुए **(धृतशोभे)** शोभा को धारण करने वाले **(चन्द्रकर-निकर-संनिभ-रुन्द्रयशो-वितत- दिङ्मही-मण्डलके)** चन्द्रमा की किरणों के समूह के समान विस्तृत यश से व्याप्त दिशा-भूमण्डल से सहित **(नन्दीश्वरसद्द्वीपे)** नन्दीश्वर द्वीप में **(प्रतिदिशं)** प्रत्येक दिशा में **(तत्रत्यांजन-दधिमुख-रतिकर-पुरु-नगवराख्य-पर्वत-मुख्याः)** वहाँ के अञ्जनगिरि, दधिमुख और रतिकर ये श्रेष्ठ पर्वतों में कहे जाने वाले मुख्य पर्वत हैं। **(एषां)** इनके **(उपरि)** ऊपर **(इन्द्रार्चितानि)** इन्द्रों से पूजित **(त्रयोदश-जिनभवनानि)** तेरह जिन भवन हैं।

**आषाढ-कार्तिकाख्ये फाल्गुनमासे च शुक्लपक्षेऽष्टम्याः।**
**आरभ्याष्ट - दिनेषु च सौधर्म - प्रमुखविबुधपतयो भक्त्या ॥१३॥**
**तेषु महामह - मुचितं प्रचुराक्षत - गन्ध - पुष्प - धूपै - र्दिव्यैः।**
**सर्वज्ञ - प्रतिमाना - मप्रतिमानां प्रकुर्वते सर्व-हितम् ॥१४॥**

**अन्वयार्थ— (आषाढ-कार्तिकाख्ये फाल्गुनमासे च)** आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास में **(शुक्लपक्षे)** शुक्ल पक्ष में **(अष्टम्याः आरभ्य)** अष्टमी से आरम्भ कर **(अष्टदिनेषु च)** आठ दिनों में **(सौधर्म-प्रमुख-विबुधपतयः)** सौधर्म इन्द्र की प्रमुखता से देवगण **(भक्त्या)** भक्ति पूर्वक **(तेषु)** उन चैत्यालयों में **(दिव्यैः)** दिव्य **(प्रचुराक्षत-गन्ध-पुष्प-धूपैः)** प्रचुर मात्रा में अक्षत, गन्ध, पुष्प और धूप से **(अप्रतिमानां)** अप्रतिम **(सर्वज्ञप्रतिमानां)** सर्वज्ञप्रतिमाओं की **(सर्वहितं)** सबका हित करने वाली **(उचितं)** योग्य **(महामहं)** महामह नाम की पूजा **(प्रकुर्वते)** करते हैं।

**भेदेन वर्णना का सौधर्मः स्नपन - कर्तृता - मापन्नः।**
**परिचारक-भावमिताः शेषेन्द्रारुन्द्रचन्द्र-निर्मलयशसः ॥१५॥**
**मङ्गल-पात्राणि पुनस्तद्-देव्यो बिभ्रतिस्म शुभ्र-गुणाढ्याः।**
**अप्सरसो नर्तक्यः शेष-सुरास्तत्र लोकनाव्यग्रधियः ॥१६॥**

**अन्वयार्थ—(भेदेन वर्णना का ?)** अलग-अलग वर्णन से क्या ? **(सौधर्मः)** सौधर्म इन्द्र **(स्नपनकर्तृतां आपन्नः)** अभिषेक के कर्तापन को प्राप्त होता है। **(रुन्द्र-चन्द्र-निर्मल-यशसः)** चन्द्रमा के समान विस्तृत, निर्मल यश वाले **(शेषेन्द्राः)** शेष इन्द्र **(परिचारकभावं इताः)** सहयोग भाव को प्राप्त होते हैं। **(पुनः)** और **(शुभ्रगुणाढ्याः)** उज्ज्वल गुणों से सहित **(तद्देव्यः)** उनकी

देवियाँ **(मङ्गलपात्राणि)** मंगल पात्रों को **(बिभ्रति स्म)** धारण करती है **(अप्सरसः)** अप्सरायें **(नर्तक्यः)** नर्तकी और **(शेषसुराः)** शेष देव **(तत्र)** वहाँ **(लोकनाव्यग्रधियः)** देखने में व्यग्रचित्त रहते हैं।

**वाचस्पति-वाचामपि गोचरतां संव्यतीत्य यत्-क्रममाणम्।**
**विबुधपति-विहित-विभवं मानुषमात्रस्य कस्य शक्तिः स्तोतुम् ॥१७॥**

**अन्वयार्थ— (यत्)** जो पूजन **(विबुधपतिविहित-विभवं)** इन्द्रों के वैभव से सम्पन्न होती है, जो **(वाचस्पति-वाचां अपि)** बृहस्पति के वचनों की भी **(गोचरतां)** विषयता को **(संव्यतीत्य)** उल्लंघन करके **(क्रममाणं)** प्रवृत्त होती है, उसकी **(स्तोतुं)** स्तुति करने के लिए **(कस्य)** किस **(मानुषमात्रस्य)** मनुष्य मात्र की **(शक्तिः)** सामर्थ्य हो सकती है ?

**निष्ठापित-जिनपूजाश्-चूर्ण-स्नपनेन दृष्टविकृतविशेषाः।**
**सुरपतयो नन्दीश्वर-जिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य पुनः ॥१८॥**
**पञ्चसु मन्दरगिरिषु श्रीभद्रशालनन्दन-सौमनसम्।**
**पाण्डुकवनमिति तेषु प्रत्येकं जिनगृहाणि चत्वार्येव ॥१९॥**
**तान्यथ परीत्य तानि च नमसित्वा कृतसुपूजनास्तत्रापि।**
**स्वास्पदमीयुः सर्वे स्वास्पदमूल्यं स्वचेष्टया संगृह्य ॥२०॥**

**अन्वयार्थ— (चूर्णस्नपनेन)** चूर्ण के अभिषेक से **(दृष्ट-विकृत-विशेषाः)** जो विशेष विकृत दिखाई दे रहे हैं ऐसे **(सुरपतयः)** देवेन्द्र **(निष्ठापित-जिनपूजाः)** जिनेन्द्र भगवान् की पूजा को पूर्ण करते हुए **(नन्दीश्वर-जिनभवनानि)** नन्दीश्वर के जिनालयों की **(प्रदक्षिणीकृत्य)** प्रदक्षिणा करके **(पुनः)** फिर **(पञ्चसु मन्दरगिरिषु)** पाँचों मेरु पर्वतों पर **(श्रीभद्रशाल-नन्दन-सौमनसं)** श्री भद्रशाल, नन्दन, सौमनस **(पाण्डुकवनं)** और पाण्डुकवन **(इति तेषु)** इस प्रकार इन वनों में **(प्रत्येकं)** प्रत्येक के **(जिनगृहाणि)** जिनालय **(चत्वारि एव)** चार-चार हैं। **(अथ)** फिर **(तानि परीत्य)** उन जिनालयों की परिक्रमा करके **(तानि च नमसित्वा)** उन्हें नमस्कार करके **(तत्र अपि)** वहाँ भी **(कृतसुपूजनाः)** अच्छी तरह पूजा किये हुए **(सर्वे)** सभी देव **(स्वचेष्टया)** अपनी चेष्टा से **(स्वास्पदमूल्यं)** अपने पुण्य मूल को **(संगृह्य)** ग्रहण करके **(स्वास्पदं)** अपने स्थानों पर **(ईयुः)** चले जाते हैं।

**सहतोरणसद्वेदी - परीतवनयाग - वृक्ष - मानस्तम्भ-**
**ध्वजपंक्तिदशकगोपुर - चतुष्टयत्रितय-शाल-मण्डप-वर्यैः ॥२१॥**
**अभिषेकप्रेक्षणिका क्रीडनसंगीतनाटका-लोकगृहैः।**
**शिल्पिविकल्पित-कल्पन-संकल्पातीत-कल्पनैः समुपेतैः ॥२२॥**

**वापी - सत्पुष्करिणी - सुदीर्घिकाद्यम्बुसंश्रितैः समुपेतैः।**
**विकसितजल-रुहकुसुमैर्नभस्यमानैः शशिग्रहर्क्षैः शरदि ॥२३॥**
**भृंगाराब्दक - कलशा - द्युपकरणैरष्टशतक - परिसंख्यानैः।**
**प्रत्येकं चित्रगुणैः कृतझणझणनिनद - वितत - घण्टाजालैः ॥२४॥**
**प्रभ्राजंते नित्यं हिरण्मयानीश्वरेशिनां भवनानि।**
**गंधकुटीगतमृगपति विष्टर-रुचिराणिविविध-विभव-युतानि ॥२५॥**

**अन्वयार्थ— (सह-तोरण-सद्वेदी-परीत-वनयागवृक्ष- मानस्तम्भ-ध्वज-पंक्तिदशक-गोपुर-चतुष्टय-त्रितय-शाल-मण्डपवर्यैः)** तोरणों सहित समीचीन वेदी से घिरे हुए उपवन, चैत्यवृक्ष, मानस्तम्भ, ध्वजों की दश-दश पंक्तियाँ, चार गोपुरों से सहित तीन परिधियों वाले श्रेष्ठ प्राकार मण्डपों से **(शिल्पि-विकल्पित-कल्पन-संकल्पातीत-कल्पनैः)** शिल्पियों से कल्पित संकल्पातीत कल्पनाओं से **(समुपेतैः)** सहित **(अभिषेक-प्रेक्षणिका-क्रीडन-सङ्गीत-नाटका-लोकगृहैः)** अभिषेक दर्शिका, क्रीड़ा, संगीत और नाटक देखने के गृहों से सहित **(विकसित-जलरुह-कुसुमैः)** खिले हुए कमलफूलों से **(शरदि)** शरद ऋतु में **(शशिग्रहर्क्षैः)** चन्द्रमा, ग्रह, ताराओं से **(नभस्यमानैः)** आकाश के समान दिखने वाले **(वापी सत्पुष्करिणी-सुदीर्घिकाद्यम्बुसंश्रितैः)** वापी, तालाब, सुन्दर दीर्घिका आदि जल के आश्रय से **(समुपेतैः)** युक्त **(प्रत्येकं)** प्रत्येक **(अष्टशतक-परिसंख्यानैः)** एक सौ आठ संख्या में **(भृङ्गाराब्दककलशाद्यु-पकरणैः)** झारी, दर्पण, कलश आदि उपकरण **(चित्रगुणैः)** विचित्र गुणों के साथ **(कृत-झण-झण-निनद-विततघण्टा-जालैः)** बड़े-बड़े घण्टा के समूहों ने जहाँ झन-झन शब्द किया है। ऐसे **(ईश्वरेशिनां)** देवाधिदेव के **(हिरण्मयानि)** स्वर्णमय **(गन्धकुटीगत-मृगपति-विष्टर-रुचिराणि)** गन्धकुटी पर सिंहासन की शोभा सहित **(विविध-विभव-युतानि)** अनेक प्रकार के वैभवों से युक्त **(भवनानि)** जिनालय **(नित्यं)** हमेशा **(प्रभ्राजन्ते)** शोभित होते हैं।

**येषु-जिनानां प्रतिमाः पञ्चशत-शरासनोच्छ्रिताः सत्प्रतिमाः।**
**मणिकनक-रजतविकृता दिनकरकोटि-प्रभाधिक-प्रभदेहाः ॥२६॥**
**तानि सदा वंदेऽहं भानुप्रतिमानि यानि कानि च तानि।**
**यशसां महसां प्रतिदिश-मतिशयशोभाविभाञ्जि पापविभञ्जि ॥२७॥**

**अन्वयार्थ— (येषु)** जिन मन्दिरों में **(पञ्चशत-शरासनोच्छ्रिताः)** पाँच सौ धनुष ऊँची (सत्प्रतिमाः) सुन्दर प्रतिमा **(मणि-कनक-रजत-विकृताः)** मणि, स्वर्ण, चाँदी से बनी **(दिनकर-कोटि-प्रभाधिक- प्रभदेहाः)** करोड़ों सूर्यों की प्रभा से अधिक प्रभा युक्त देह वाली **(जिनानां**

**प्रतिमा:)** जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाएँ होती हैं। **(तानि सदा अहं वन्दे)** उनकी मैं सदा वन्दना करता हूँ। **(प्रतिदिशं)** प्रत्येक दिशा में **(यशसां महसां)** यश और तेज की **(अतिशय-शोभा-विभाञ्जि)** अत्यधिक शोभा से युक्त **(पाप विभञ्जि)** पाप को नष्ट करने वाले **(भानु-प्रतिमानि)** सूर्य के समान **(यानि कानि च)** जो कोई भी जिन मन्दिर हैं **(तानि)** उनको **(अहं वन्दे)** मैं वन्दना करता हैं।

**सप्तत्यधिक - शतप्रिय - धर्मक्षेत्रगत - तीर्थंकर - वर - वृषभान्।**
**भूतभविष्यत्संप्रति-काल-भवान् भवविहानये विनतोऽस्मि ॥२८॥**

**अन्वयार्थ— (भूत-भविष्यत्सम्प्रति-काल-भवान्)** अतीत, अनागत और वर्तमान काल में होने वाले **(सप्तत्यधिक-शत-प्रिय-धर्मक्षेत्रगत-तीर्थंकरवरवृषभान्)** एक सौ सत्तर प्रियधर्म क्षेत्रों में स्थित अतिशय श्रेष्ठ तीर्थंकरों को **(भवविहानये)** संसार के विनाश के लिए **(विनत: अस्मि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

**अस्यामवसर्पिण्यां वृषभजिन: प्रथमतीर्थकर्ता भर्ता।**
**अष्टापदगिरिमस्तक-गतस्थितो मुक्तिमाप पापान्मुक्त: ॥२९॥**

**अन्वयार्थ— (अस्यां अवसर्पिण्यां)** इस अवसर्पिणी में **(वृषभजिन:)** वृषभ भगवान् **(प्रथमतीर्थकर्ता)** प्रथम तीर्थ के कर्ता तथा **(भर्ता)** पालक हुए हैं। **(अष्टापद-गिरि-मस्तक-गत-स्थित:)** अष्टापद पर्वत के शिखर पर जाकर स्थित हो **(पापात् मुक्त:)** पाप से मुक्त हो **(मुक्तिं आप)** मुक्ति को प्राप्त हुए।

**श्रीवासुपूज्यभगवान् शिवासु पूजासु पूजितस्त्रिदशानाम्।**
**चम्पायां दुरित-हर: परमपदं प्रापदापदा-मन्तगत: ॥३०॥**

**अन्वयार्थ—(शिवासु पूजासु)** कल्याणकारीपूजाओं में **(त्रिदशानां पूजित:)** देवपूजित **(श्रीवासुपूज्यभगवान्)** श्रीवासुपूज्य तीर्थंकर **(आपदां अन्तगत:)** आपत्तियों के अन्त को प्राप्त हो **(दुरितहर:)** पापों के नाशक **(चम्पायां)** चम्पा नगरी में **(परमपदं)** उत्कृष्ट स्थान को **(प्रापत्)** प्राप्त हुए।

**मुदितमतिबलमुरारि-प्रपूजितो जितकषायरिपुरथ जात:।**
**वृहदूर्जयन्त-शिखरे शिखामणिस्त्रिभुवनस्य-नेमिर्भगवान् ॥३१॥**

**अन्वयार्थ— (अथ)** तथा **(मुदितमति-बल-मुरारि-प्रपूजित:)** प्रसन्नमति बलभद्र और नारायण से पूजित **(जितकषायरिपु:)** कषाय शत्रुओं को जीतने वाले **(बृहत्-ऊर्जयन्त-शिखरे)** विशाल गिरनारपर्वत पर **(नेमि: भगवान्)** नेमिनाथ भगवान् **(त्रिभुवनस्य)** तीन लोक के **(शिखामणि: जात:)** शिखामणि हुए।

**पावापुरवरसरसां मध्यगतः सिद्धिवृद्धितपसां महसाम्।**
**वीरो नीरदनादो भूरि-गुणश्चारु- शोभमास्पद-मगमत् ॥३२॥**

**अन्वयार्थ— (सिद्धि-वृद्धि-तपसां)** सिद्धि, वृद्धि, तप **(महसां)** और तेज वाले **(पावापुर-वरसरसां)** पावापुर के उत्कृष्ट सरोवरों के **(मध्यगतः)** मध्य में स्थित हो **(चारुशोभं)** उत्कृष्ट शोभा से युक्त **(आस्पदं)** मोक्ष स्थान को **(अगमत्)** प्राप्त हुए। वह **(वीरः)** वीर भगवान् **(भूरिगुणः)** अनेक गुणों से युक्त **(नीरदनादः)** मेघ के समान शब्द वाले थे।

**सम्मदकरिवन-परिवृत-सम्मेदगिरीन्द्रमस्तके विस्तीर्णे।**
**शेषा ये तीर्थकराः कीर्तिभृतः प्रार्थितार्थसिद्धिमवापन् ॥३३॥**

**अन्वयार्थ—(कीर्तिभृतः)** कीर्ति को धारण करने वाले **(शेषाः ये)** शेष जो **(तीर्थकराः)** तीर्थंकर हैं वह **(सम्मद-करिवन-परिवृत-सम्मेद-गिरीन्द्र-मस्तके)** मद सहित हाथियों वाले वन से घिरे हुए सम्मेद पर्वत के शिखर से **(विस्तीर्णे)** जो कि विशाल है, वहाँ से **(प्रार्थितार्थसिद्धिं)** इच्छित अर्थ की सिद्धि को **(अवापन्)** प्राप्त हुए।

**शेषाणां केवलिना- मशेषमतवेदिगणभृतां साधूनां।**
**गिरितलविवरदरीसरि-दुरुवनतरु-विटपिजलधि-दहनशिखासु ॥३४॥**
**मोक्षगतिहेतु-भूत-स्थानानि सुरेन्द्ररुन्द्र-भक्तिनुतानि।**
**मङ्गलभूतान्येता-न्यंगीकृत-धर्मकर्मणामस्माकम् ॥३५॥**

**अन्वयार्थ— (शेषाणां केवलिनां)** शेष केवली भगवान् **(अशेषमत-वेदि-गणभृतां)** समस्त मतों को जानने वाले गणधर परमेष्ठी **(साधूनां)** साधुओं के **(गिरितल-विवर-दरीसरि-दुरुवनतरु-विवरविटपि-जलाधि-दहनशिखासु)** पर्वत की तलहटी, छिद्र, गुफा, दुर्गमवन, वृक्ष की कोटर, अटवी, सागर तथा अग्नि की शिखा में **(सुरेन्द्ररुन्द्र-भक्ति-नुतानि)** इन्द्र के द्वारा अत्यधिक भक्ति से स्तुत **(मोक्षगतिहेतुभूत-स्थानानि)** मोक्ष गति के कारणभूत स्थान **(अङ्गीकृतधर्म-कर्मणां)** धर्म-कर्म को अंगीकार करने वाले **(अस्माकं)** हमार लिए **(एतानि)** ये **(मङ्गलभूतानि)** मंगल स्वरूप हैं।

**जिनपतयस्तत् - प्रतिमा - स्तदालयास्तन्निषद्यका - स्थानानि।**
**ते ताश्च ते च तानि च भवन्तु भवघात - हेतवो भव्यानाम् ॥३६॥**

**अन्वयार्थ— (जिनपतयः)** जिनेन्द्रदेव **(तत्प्रतिमाः)** उनकी प्रतिमाएँ **(तदालयाः)** उनके मन्दिर **(तन्निषद्यका-स्थानानि)** और उनकी निषीधिका स्थान **(ते ताः च ते च तानि च)** वह जिन देव, जिन प्रतिमा, जिन मन्दिर, जिन निषीधिकाएँ **(भव्यानां)** भव्य जीवों को **(भव-घात-हेतवः)** संसार के घात के हेतु **(भवन्तु)** होवे।

**सन्ध्यासु तिसृषु नित्यं पठेद्यदि स्तोत्र-मेतदुत्तम-यशसाम्।**
**सर्वज्ञानां सार्वं लघु लभते श्रुतधरेडितं पद-ममितम् ॥३७॥**

**अन्वयार्थ— (उत्तमयशसां)** उत्तम यश वाले **(सर्वज्ञानां)** सर्वज्ञों का **(एतत् सार्वं स्तोत्रं)** यह सर्वहितकारी स्तोत्र **(नित्यं)** हमेशा जो **(तिसृषु संध्यासु)** तीनों संध्याओं में **(यदि)** यदि **(पठेत्)** पढ़ता है **(लघु)** तो शीघ्र ही वह **(श्रुतधरेडितं)** श्रुतधरों से स्तुत **(अमितं पदं)** अपरिमित पद को **(लभते)** प्राप्त कर लेता है।

**नित्यं निःस्वेदत्वं निर्मलता क्षीर - गौर - रुधिरत्वं च।**
**स्वाद्याकृति-संहनने सौरूप्यं सौरभं च सौलक्ष्यम् ॥३८॥**
**अप्रमित-वीर्यता च प्रिय - हित - वादित्व-मन्यदमित-गुणस्य।**
**प्रथिता दशसंख्याताः स्वतिशय-धर्माः स्वयं-भुवो देहस्य ॥३९॥**

**अन्वयार्थ— (नित्यं)** हमेशा **(निःस्वेदत्वं)** पसीने का अभाव **(निर्मलता)** मल से रहित शरीर **(क्षीर-गौर-रुधिरत्वं च)** दूध के समान श्वेत रक्त होना **(स्वाद्याकृति-संहनने)** श्रेष्ठ संस्थान और प्रथम। संहनन **(सौरूप्यं)** सुन्दर रूप **(सौरभं च)** सुरभितशरीर **(सौलक्ष्यं)** उत्तम लक्षण होना **(अप्रमित-वीर्यता)** अतुल बल **(प्रियहितवादित्वं)** प्रिय और हितकारी वचनं **(अन्यत् च)** अन्य भी **(अमितगुणस्य)** अपरिमित गुण वाले **(स्वयम्भुवः)** स्वयंभू को **(देहस्य)** देह के **(दश संख्याताः)** दश संख्या मे **(स्वतिशय-धर्माः)** अतिशय गुण **(प्रथिताः)** प्रसिद्ध है।

**गव्यूति-शत-चतुष्टय- सुभिक्षतागगनगमनमप्राणिवधः।**
**भुक्त्युपसर्गाभाव - श्चतुरास्यत्वं च सर्व-विद्येश्वरता ॥४०॥**
**अच्छायत्व - मपक्ष्म - स्पन्दश्च सम-प्रसिद्ध-नख-केशत्वम्।**
**स्वतिशय-गुणा भगवतो घाति-क्षयजा भवन्ति तेऽपि दशैव ॥४१॥**

**अन्वयार्थ— (गव्यूति-शत-चतुष्टय-सुभिक्षता)** चार सौ कोस तकसुभिक्ष होना **(गगन-गमनं)** आकाश में गमन होना **(अप्राणिवधः)** किसी भी प्राणी का वध नहीं होना **(भुक्त्युपसर्गाभावः)** भोजन और उपसर्ग का अभाव **(चतुरास्यत्वं च)** चार मुख होना **(सर्वविद्येश्वरता)** सभी विद्याओं का स्वामी होना **(अच्छायत्वं)** छाया नहीं पड़ना **(अपक्ष्मस्पन्दः च)** स्पन्दन रहित नेत्र को पलक होना **(समप्रसिद्ध-नखकेशत्वं)** नख और केशों का समान रहना **(घातिक्षयजाः)** घाति कर्म के क्षय से उत्पन्न **(भगवतः)** भगवान् के **(ते अपि दश एव)** वे भी दश ही **(स्वतिशयगुणाः)** श्रेष्ठ अतिशय गुण **(भवन्ति)** हैं।

**सार्वार्ध-मागधीया भाषा मैत्री च सर्व-जनता-विषया।**
**सर्वर्तु-फल-स्तबक-प्रवाल-कुसुमोपशोभित-तरु-परिणामाः ॥४२॥**
**आदर्शतल-प्रतिमा रत्नमयी जायते मही च मनोज्ञा।**
**विहरण-मन्वेत्यनिलः परमानन्दश्च भवति सर्व-जनस्य ॥४३॥**

**अन्वयार्थ— (सार्वार्ध-मागधीया भाषा)** सबका हित करने वाली अर्धमागधी भाषा **(सर्वजनताविषया मैत्री च)** समस्त जन समूह में मैत्री भाव **(सर्वर्तुफल-स्तबक-प्रवाल-कुसुमोपशोभिततरुपरिणामाः)** सभी ऋतुओं के फल, गुच्छे, किसलय और पुष्पों से सुशोभित वृक्षों का परिणमन **(आदर्शतलप्रतिमा)** दर्पणतल के समान **(रत्नमयी)** रत्न निर्मित **(मनोज्ञा मही च जायते)** मनोहर पृथ्वी हो जाती है। **(अनिलः)** वायु **(विहरणं अन्वेति)** विहार के अनुकूल चलती है। **(सर्वजनस्य परमानन्दः च भवति)** सभी लोगों को परमानन्द होता है।

**मरुतोऽपि सुरभि-गन्ध-व्यामिश्रा योजनान्तरं भूभागम्।**
**व्युपशमित-धूलि-कण्टक-तृण-कीटक-शर्करोपलं प्रकुर्वन्ति ॥४४॥**
**तदनु स्तनितकुमारा विद्युन्माला-विलास-हास-विभूषाः।**
**प्रकिरन्ति सुरभि-गन्धिं गन्धोदक-वृष्टि-माज्ञया त्रिदशपतेः ॥४५॥**

**अन्वयार्थ— (मरुतः अपि)** वायुकुमार देव भी **(सुरभि-गन्ध-व्यामिश्रा)** सुरभित गन्ध से मिली हुई **(योजनान्तरं भूभागं)** एक योजन तक के भूखण्ड को **(व्युपशमित-धूलि-कण्टक-तृण-कीटकशर्करोपलं)** धूलि, काँटे, तृण, कीड़े, कंकड़, पत्थर से रहित **(प्रकुर्वन्ति)** करते हैं। **(तदनु)** इसके बाद **(स्तनितकुमाराः)** मेघकुमार जाति के देव **(विद्युन्माला-विलास-हास-विभूषाः)** बिजली के चमकरूपी हास की शोभा से विभूषित **(त्रिदशपतेः आज्ञया)** इन्द्र की आज्ञा से **(सुरभिगन्धिं)** सुरभित गन्ध वाली **(गन्धोदकवृष्टिं)** सुगन्धित जल की वर्षा **(प्रकिरन्ति)** करते हैं।

**वर-पद्मराग-केसर-मतुल-सुख-स्पर्श-हेम-मय-दल-निचयम्।**
**पादन्यासे पद्मं सप्त पुरः पृष्ठतश्च सप्त भवन्ति ॥४६॥**

**अन्वयार्थ— (पादन्यासे)** भगवान् के चरण रखने पर **(वरपद्मराग-केसरं)** उत्कृष्ट पद्मराग के समान केसर से सहित **(अतुलसुख-स्पर्श-हेम-मय-दल-निचयं)** अतुलसुख के स्पर्श वाले स्वर्ण मय पत्र समूह वाला **(पद्मं)** कमल के रूप **(सप्तपुरः)** सात कमल आगे **(सप्त पृष्ठतः च)** और सात कमल पीछे **(भवन्ति)** होते हैं।

**फलभार - नम्र - शालि - ब्रीह्यादि-समस्त-सस्य-धृत-रोमाञ्चा।**
**परिहृषितेव च भूमि - स्त्रिभुवननाथस्य वैभवं पश्यन्ती ॥४७॥**

**अन्वयार्थ– (त्रिभुवननाथस्य)** तीन लोक के नाथ के **(वैभवं)** ऐश्वर्य को **(पश्यन्ती)** देखती हुई **(भूमिः)** पृथ्वी **(परिहृषिता इव)** हर्षित हुई की तरह मानो **(फलभार-नम्रशालिब्रीह्यादि-समस्त-सस्यधृत-रोमाञ्चा)** फलों के भार से नम्र शालि, ब्रीहि आदि समस्त धान्यों से पुलकित हो रही थी।

**शरदुदय-विमल-सलिलं सर इव गगनं विराजते विगतमलम्।**
**जहति च दिशस्तिमिरिकां विगतरजः प्रभृति-जिह्मताभावं सद्यः ॥४८॥**

**अन्वयार्थ– (विगतमलं)** मलरहित **(गगनं)** आकाश **(शरदुदय-विमल-सलिलं)** शरद ऋतु के उदय से निर्मल जल वाले **(सर इव)** सरोवर की तरह **(विराजते)** सुशोभित होता है। **(च)** और **(दिशः)** दिशाएँ **(सद्यः)** शीघ्र ही **(विगतरजः प्रभृति-जिह्मता-भावं)** धूलि आदि धुंधले भाव से रहित **(तिमिरिकां)** अन्धकार को **(जहति)** छोड़ देती हैं।

**एतेतेति त्वरितं ज्योति- र्व्यन्तर-दिवौकसा-ममृतभुजः।**
**कुलिशभृदाज्ञापनया कुर्वन्त्यन्ये समन्ततो व्याह्वानम् ॥४९॥**

**अन्वयार्थ–(कुलिशभृत्-आज्ञापनया)** इन्द्र की आज्ञा से **(अन्ये अमृतभुजः)** अन्यदेव लोग **(त्वरितं)** शीघ्र **(एत-एत इति)** आओ-आओ इस प्रकार **(ज्योति-र्व्यन्तर-दिवौकसां)** ज्योतिषी, व्यन्तर और वैमानिक देवों को **(समन्ततः)** सब ओर से **(व्याह्वानं)** बुलावा **(कुर्वन्ति)** करते हैं।

**स्फुर-दरसहस्र-रुचिरं विमल-महारत्न-किरण-निकर-परीतम्।**
**प्रहसित-किरण-सहस्र-द्युति-मण्डल-मग्रगामि धर्म-सुचक्रम् ॥५०॥**

**अन्वयार्थ– (स्फुरत्-अर-सहस्त्र-रुचिरं)** स्फुरायमान हजारों आरों से सुशोभित **(विमलमहा-रत्नकिरण-निकर-परीतं)** निर्मल, महा रत्नों की किरणों के समूह से व्याप्त और **(प्रहसित-किरण-सहस्रद्युतिमण्डलं)** सूर्य के आभा मण्डल की हँसी उड़ाने वाला **(धर्म-सुचक्रं)** श्रेष्ठ धर्मचक्र **(अग्रगामि)** आगे चलता है।

**इत्यष्ट-मङ्गलं च स्वादर्श - प्रभृति भक्तिराग - परीतैः।**
**उपकल्प्यन्ते त्रिदशै - रेतेऽपि - निरुपमातिविशेषाः ॥५१॥**

**अन्वयार्थ– (इति)** इस प्रकार **(स्वादर्शप्रभृति अष्टमङ्गलं च)** उत्तम-दर्पण आदि अष्ट-मङ्गल द्रव्य और **(एतेऽपि निरुपमातिविशेषाः)** ये अनुपम अतिशय **(भक्तिरागपरीतैः)** भक्ति, राग से भरे **(त्रिदशैः)** देवों के द्वारा **(उपकल्प्यन्ते)** रचे जाते हैं।

**वैडूर्य - रुचिर - विटप - प्रवाल - मृदु - पल्लवोपशोभित-शाखः।**
**श्रीमानशोक-वृक्षो वर-मरकत-पत्र-गहन-बहलच्छायः ॥५२॥**

**अन्वयार्थ– (वैडूर्य-रुचिर-विटप-प्रवाल-मृदु-पल्लवोपशोभित-शाखः)** वैडूर्य मणि से मनोहर वृक्ष, प्रवाल, कोमल पल्लव और शोभित शाखायें सहित **(वर-मरकत-पत्र-गहन-बहलच्छायः)** श्रेष्ठ मरकत मणि से बने सघन छाया युक्त **(श्रीमान् अशोकवृक्षः)** शोभा सम्पन्न अशोक वृक्ष होता है।

**मन्दार - कुन्द - कुवलय - नीलोत्पल-कमल-मालती-बकुलाद्यैः।**
**समद-भ्रमर-परीतै-र्व्यामिश्रा पतति कुसुम-वृष्टि-र्नभसः ॥५३॥**

**अन्वयार्थ-(मन्दार-कुन्द-कुवलय-नीलोत्पल-कमल-मालती-बकुलाधैः)** मन्दार, कुन्द, कुवलय, नीलकमल, लाल कमल, मालती और बकुल आदि से **(समद-भ्रमर-परीतैः व्यामिश्रा)** मद सहित भौरों से व्याप्त हो मिली हुई **(कुसुमवृष्टिः)** पुष्प वर्षा **(नभसः)** आकाश से **(पतति)** गिरती है।

**कटक-कटि-सूत्र-कुण्डल-केयूर-प्रभृति-भूषिताङ्गौ स्वंगौ।**
**यक्षौ कमल-दलाक्षौ परि-निक्षिपतः सलील-चामर-युगलम् ॥५४॥**

**अन्वयार्थ–(कटक-कटिसूत्र-कुण्डल-केयूर-प्रभृति-भूषिताङ्गौ)** वलय, कटिसूत्र, कुण्डल, बाजुबन्द आदि से विभूषित शरीर वाले **(स्वङ्गौ)** सुन्दर शरीर से युक्त तथा **(कमल-दलाक्षौ)** कमल पत्र के समान नेत्र वाले **(यक्षौ)** दो यक्ष **(सलीलचामरयुगलं)** लीला सहित युगल चामर को **(परिनिक्षिपतः)** ढोरते हैं।

**आकस्मिक-मिव युगपद्-दिवसकर-सहस्र-मपगत-व्यवधानम्।**
**भामण्डल-मविभावित-रात्रिन्दिव-भेद-मतितरामाभाति ॥५५॥**

**अन्वयार्थ– (आकस्मिकं युगपत् -दिवसकर-सहस्त्रं इव)** आकस्मिक उदित हुए एक साथ हजारों सूर्य के समान **(अपगतव्यवधानं)** व्यवधान रहित **(अविभावित-रात्रिंदिवभेदं)** रात-दिन के भेद को विलुप्त करने वाला **(भामण्डलं)** भामण्डल **(अतितरां आभाति)** अत्यन्त सुशोभित होता है।

**प्रबल-पवनाभिघात - प्रक्षुभित - समुद्र - घोष - मन्द्र - ध्वानम्।**
**दन्ध्वन्यते सुवीणा-वंशादि-सुवाद्य-दुन्दुभिस्तालसमम् ॥५६॥**

**अन्वयार्थ– (प्रबल-पवनाभिघात-प्रक्षुभित-समुद्रघोष-मन्द्रध्वानं)** प्रबल वायु के ताडन से क्षुभित समुद्र के घोष के समान गम्भीर ध्वनि वाला **(सुवीणा-वंशादि-सुवाद्य-दुन्दुभिः)** अच्छी वीणा, वंशी आदि श्रेष्ठ वाद्यों, दुन्दुभि के साथ **(तालसमं)** ताल के अनुसार **(दन्ध्वन्यते)** बार-बार ध्वनि होती है।

**त्रिभुवन-पतिता-लाञ्छन-मिन्दुत्रय-तुल्य-मतुल-मुक्ता-जालम्।**
**छत्रत्रयं च सुबृहद्-वैडूर्य-विक्लृप्त-दण्ड-मधिक-मनोज्ञम् ॥५७॥**

**अन्वयार्थ—(त्रिभुवन-पतिता-लाञ्छनं)** तीन लोक के स्वामित्व का चिह्न-स्वरूप **(इन्दुत्रयतुल्यं)** तीन चन्द्रमा के समान **(अतुलमुक्ता-जालं)** अनुपम मोतियों के समूह युक्त **(सुबृहद्-वैडूर्य-विक्लृप्तदण्डं)** बहुत विशाल नील-मणि से निर्मित दण्ड सहित **(अधिक मनोज्ञं)** अत्यधिक सुन्दर **(छत्रत्रयं च)** तीन छत्र होते हैं।

**ध्वनिरपि योजनमेकं प्रजायते श्रोतृ-हृदयहारि-गंभीरः।**
**ससलिल-जलधर-पटल - ध्वनितमिव प्रवितततान्त-राशावलयम् ॥५८॥**

**अन्वयार्थ— (श्रोतृ-हृदयहारि-गभीरः)** कर्ण और हृदय को हरण करने वाली गम्भीर **(ध्वनिः अपि)** दिव्यध्वनि भी **(एकं योजनं)** एक योजन तक **(प्रजायते)** होती है। **(स-सलिल-जलधर-पटल-ध्वनितमिव)** जल सहित मेघ समूह की ध्वनि के समान **(प्रवितततान्तरा-शावलयं)** तथा दिशाओं के अन्तराल को व्याप्त करने वाली वह ध्वनि होती है।

**स्फुरितांशु-रत्न-दीधिति- परिविच्छुरिताऽमरेन्द्र-चापच्छायम्।**
**ध्रियते मृगेन्द्रवर्यैः-स्फटिकशिला-घटित-सिंह-विष्टर-मतुलम् ॥५९॥**

**अन्वयार्थ— (स्फुरितांशु-रत्न-दीधिति-परिविच्छुरिता-मरेन्द्र-चापच्छायं)** देदीप्यमान किरणों वाले रत्न की किरणों से इन्द्रधनुष की कान्ति को चित्रित करने वाला **(अतुलं)** अनुपम **(स्फटिक-शिलाघटित-सिंह-विष्टरं)** स्फटिक शिला से बना सिंहासन होता है, जिसे कि **(मृगेन्द्रवर्यैः ध्रियते)** श्रेष्ठ सिंह धारण करते हैं।

**यस्येह चतुस्त्रिंशत्- प्रवर-गुणाः प्रातिहार्य-लक्ष्म्यश्चाष्टौ।**
**तस्मै नमो भगवते, त्रिभुवन-परमेश्वरार्हते गुण-महते ॥६०॥**

**अन्वयार्थ— (यस्य)** जिन भगवान् के **(इह)** इस लोक में **(चतुस्त्रिंशत्-प्रवर गुणाः)** चौंतीस उत्कृष्ट गुण **(प्रातिहार्यलक्ष्म्यः च अष्टौ)** और अष्ट प्रातिहार्य लक्ष्मी होती हैं **(तस्मै)** उन **(गुणमहते)** गुणों से महान् **(भगवते)** भगवान् **(त्रिभुवन-परमेश्वरार्हते)** तीन लोक के परमेश्वर अर्हन्त परमेष्ठी को **(नमः)** नमस्कार हो।

## अञ्चलिका

**इच्छामि भंते! णंदीसरभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं णंदीसरदीवम्मि, चउदिस विदिसासु अंजण-दधिमुह-रदिकर-पुरुणगवरेसु जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसुवि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासिय-त्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेहिं गंधेहिं, दिव्वेहिं पुप्फेहिं, दिव्वेहिं धूवेहिं, दिव्वेहिं चुण्णेहिं, दिव्वेहिं ण्हाणेहिं, दिव्वेहिं वासेहिं,**

**आसाढ़-कत्तियफागुण-मासाणं अट्ठमिमाइं काऊण जाव पुण्णिमंति णिच्चकालं अच्चंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति। णंदीसर-महाकल्लाणपुज्जं करंति अहमवि इह संतो तत्थसंताइयं णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।**

**अर्थ**—हे भगवन्! मैंने नन्दीश्वर भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है। उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। नन्दीश्वर द्वीप की चारों दिशाओं तथा विदिशाओं में अंजनगिरि, दधिमुख तथा रतिकर नामक विशाल श्रेष्ठ पर्वतों पर जो जिनप्रतिमाएँ हैं उन सबको त्रिलोकवर्ती भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और कल्पवासी ये चार प्रकार के देव परिवार सहित, दिव्यगन्ध दिव्यपुष्प, दिव्यधूप, दिव्यचूर्ण, दिव्य सुगंधित पदार्थ और दिव्य अभिषेक के द्वारा आषाढ़ कार्तिक और फागुन मास की अष्टमी से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त नित्यकाल अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वंदना करते हैं, नमस्कार करते हैं तथा नन्दीश्वर द्वीप महान् उत्सव करते हैं। हम भी यहाँ स्थित रहते हुए, वहाँ स्थित रहने वाले उन प्रतिमाओं की नित्यकाल अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वंदना करते हैं, नमस्कार करते हैं। इसके फलस्वरूप हमारे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की संप्राप्ति हो।

❑ ❑ ❑

# चैत्यभक्ति

[टीकाकार का मङ्गलाचरण]

**श्री - गौतमादिपद-मद्‌भुतपुण्यबन्ध-**
**मुद्योतिताखिल - ममोघमघप्रणाशम्।**
**वक्ष्ये जिनेश्वरमहं प्रणिपत्य तथ्यं**
**निर्वाणकारणमशेष-जगद्धितार्थम् ॥**

**अर्थ—**निर्वाण के कारणभूत, हितकारी, जिनेश्वर को नमस्कार करके श्री गौतम गणधर द्वारा रचित पद **(भक्ति)** को समस्त लोक के हित के लिए कहूँगा। यह रचना अद्भुत पुण्य बन्ध को कराने वाली, पापों का नाश करने वाली तथा समस्त विषयों की प्रकाशक है।

**जयति भगवान् हेमाम्भोज-प्रचार-विजृम्भिता-**
**वमर-मुकुटच्छायोद्‌गीर्ण - प्रभा - परिचुम्बितौ।**
**कलुष-हृदया मानोद्‌भ्रान्ताः परस्पर-वैरिणः,**
**विगत-कलुषाः पादौ-यस्य प्रपद्य विशश्वसुः ॥१॥**

**अन्वयार्थ— (यस्य)** जिनके **(पादौ)** दोनों चरण **(हेमाम्भोज-प्रचार-विजम्भितौ)** स्वर्ण कमल पर, चलने से खिलते हैं **(अमर-मुकुटच्छायोद्-गीर्ण-प्रभा-परिचुम्बितौ)** जो देवों के मुकुटों की छाया से निकली प्रभा से युक्त हैं **(प्रपद्य)** उन चरणों को प्राप्त करके **(कलुषहृदयाः)** कलुषित हृदय वाले **(मानोदभ्रान्ताः)** मान से उदभ्रान्त **(परस्परवैरिणः)** परस्पर वैरभाव वाले **(विगतकलुषाः)** पाप से रहित हो **(विशश्वसुः)** विश्वास करने लगते थे **(भगवान्)** वह भगवान् **(जयति)** जयवन्त रहे।

**तदनु जयति श्रेयान्-धर्मः प्रवृद्ध-महोदयः**
**कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।**
**परिणत - नयस्याङ्गी - भावाद्विविक्त - विकल्पितम्**
**भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्र-वचोऽमृतम् ॥२॥**

**अन्वयार्थ— (तदनु)** इसके बाद **(यः श्रेयान्)** जो श्रेष्ठ हैं **(प्रवृद्धमहोदयः)** जिसका अभ्युदय बढ़ा हुआ है तथा जो **(प्रजाः)** प्रजा को **(कुगति-विपथ-क्लेशात्)** कुगतियों के कुमार्ग रूपी क्लेश से **(विपाशयति)** छुड़ाता है **(असौ धर्मः)** वह धर्म **(जयति)** जयवन्त है। **(परिणतनयस्य)** विवक्षित नय के **(अङ्गीभावात्)** स्वीकार करने से **(विविक्त-विकल्पितं)** विकल्प रहित **(अमृतं)**

अमृत तुल्य **(त्रेधा)** तीन प्रकार के **(जिनेन्द्रवचः)** जिनेन्द्र भगवान् के वचन **(भवतः)** संसार से **(त्रातृ भवतु)** रक्षा करने वाले हो।

**तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभङ्ग-तरङ्गिणी**
**प्रभव - विगम - ध्रौव्य - द्रव्य - स्वभाव-विभाविनी।**
**निरुपम-सुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलम्**
**विगत-रजसं मोक्षं देयान् निरत्यय-मव्ययम् ॥३॥**

**अन्वयार्थ— (तदनु)** इसके बाद **(जैनी वित्तिः)** जिनेन्द्र भगवान् का केवलज्ञान **(जयतात्)** जयवन्त होवे **(प्रभङ्गतरङ्गिणी)** जो कि अनेक भंगों से तरङ्गायित है **(प्रभव-विगम-ध्रौव्य-द्रव्य-स्वभाव-विभाविनी)** उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप द्रव्य स्वभाव को कहने वाली है। **(इदं)** यह **(निरुपमसुखस्य)** अनुपम सुख का **(द्वारं)** द्वार **(विघट्य)** खोलकर **(निरर्गलं)** अर्गला रहित **(विगतरजसं)** कर्म रज रहित **(निरत्ययं)** नाश रहित **(अव्ययं)** अव्यय **(मोक्षं)** मोक्ष **(देयात्)** देवे।

**अर्हत्सिद्धाचार्यो - पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।**
**सर्व - जगद् - वंद्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः ॥४॥**

**अन्वयार्थ—(सर्वत्र)** सब जगह विराजमान **(सर्वजगद्-वंद्येभ्यः)** समस्त संसार से वन्दनीय **(सर्वेभ्यः)** समस्त **(अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यः)** अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय के लिए **(तथा च)** और **(साधुभ्यः)** साधु के लिए **(नमः अस्तु)** नमस्कार होवे।

**मोहादि-सर्व-दोषारि- घातकेभ्यः सदा हत-रजोभ्यः।**
**विरहित-रहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः ॥५॥**

**अन्वयार्थ— (मोहादि-सर्व-दोषारि-घातकेभ्यः)** मोह आदि समस्त दोष रूपी शत्रुओं का नाश करने वाले **(हतरजोभ्यः)** रज के नाशक **(विरहित-रहस्-कृतेभ्यः)** अन्तराय से रहित **(पूजार्हेभ्यः)** पूजा योग्य **(अर्हद्भ्यः)** अरहन्तों के लिए **(सदा)** हमेशा **(नमः)** नमस्कार हो।

**क्षान्त्यार्जवादि-गुण-गण सुसाधनं सकल-लोक-हित-हेतुम्।**
**शुभ-धामनि धातारं वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम् ॥६॥**

**अन्वयार्थ— (क्षान्त्यार्जवादि-गुण-गण-सुसाधनं)** जो क्षमा, आर्जव आदि गुणसमूह का साधन है **(सकललोक-हित हेतुं)** जो समस्तलोक के हित का कारण है **(शुभधामनि)** जो शुभ धाम में **(धातारं)** रखने वाला है **(जिनेन्द्रोक्तं धर्मं)** उन जिनेन्द्र देव के कहे धर्म की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

**मिथ्याज्ञानतमोवृत - लोकैकज्योतिरमित-गमयोगि।**
**साङ्गोपाङ्ग-मजेयं जैनं वचनं सदा वन्दे ॥७॥**

**अन्वयार्थ— (मिथ्याज्ञान-तमोवृत-लोकैक-ज्योतिः)** मिथ्याज्ञानरूपी अन्धकार से घिरे लोक की एक ज्योतिस्वरूप **(अमितगमयोगि)** अपरिमित श्रुतज्ञान से जिसका सम्बन्ध है **(अजेयं)** जो अजेय है **(साङ्गोपाङ्गं)** अंग और उपांग से सहित है **(जैनं वचनं)** जिनेन्द्रदेव के उन वचनों को **(सदा वन्दे)** मैं हमेशा नमस्कार करते हैं।

**भवन-विमान-ज्योति - र्व्यन्तर-नरलोक विश्व-चैत्यानि।**
**त्रिजग-दभिवन्दितानां वन्दे त्रेधा जिनेन्द्राणाम् ॥८॥**

**अन्वयार्थ— (त्रिजगदभिवन्दितानां)** तीन लोक से वन्दनीय **(जिनेन्द्राणां)** जिनेन्द्र देव के **(भवनविमान-ज्योति-र्व्यन्तर-नरलोक-विश्वचैत्यानि)** भवनवासी, वैमानिक, ज्योतिष्क, व्यन्तर तथा मनुष्य लोक के समस्त चैत्यों को **(त्रेधा)** तीन प्रकार से **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ।

**भुवन-त्रयेऽपि भुवन - त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थ-कर्तॄणाम्।**
**वन्दे भवाग्नि-शान्त्यै विभवाना-मालया-लीस्ताः ॥९॥**

**अन्वयार्थ—(भुवनत्रयेऽपि)** तीनलोक में भी **(विभवानां)** संसार रहित **(भुवनत्रया-धिपाभ्यर्च्यतीर्थकर्तॄणां)** तीन लोक के अधिपतियों से पूज्य तीर्थंकरों के **(ताः)** उन **(आलयालीः)** जिनालय की पंक्तियों की **(भवाग्निशान्त्यै)** संसाररूपी अग्नि की शान्ति के लिए **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

**इति पञ्च-महापुरुषाः प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।**
**चैत्यालयाश्च विमलां दिशन्तु बोधिं बुध-जनेष्टाम् ॥१०॥**

**अन्वयार्थ— (इति)** इस प्रकार **(प्रणुताः)** स्तुति को प्राप्त **(पञ्च-महापुरुषाः)** पाँच महापुरुष **(जिनधर्मवचनचैत्यानि)** जिन धर्म, जिन वचन और जिन चैत्य **(चैत्यालयाः च)** और चैत्यालय **(बुधजनेष्टां)** ज्ञानी जनों को इष्ट **(विमलां बोधिं)** निर्मल ज्ञान **(दिशन्तु)** हमें प्रदान करें।

**अकृतानि कृतानि - चाप्रमेय - द्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु।**
**मनुजामर-पूजितानि वन्दे प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम् ॥११॥**

**अन्वयार्थ— (जगत्त्रये)** तीन लोक में **(द्युतिमत्सु)** अपरिमित कान्ति वाले **(मन्दिरेषु)** मन्दिरों में **(जिनानां)** जिनदेव की **(मनुजामर-पूजितानि)** मनुष्य और देवों से पूजित **(अप्रमेय-द्युतिमन्ति)** अपरिमित कान्तियुक्त **(अकृतानिकृतानि च)** अकृत्रिम और कृत्रिम **(प्रतिबिम्बानि)** प्रतिबिम्बों की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

**द्युति-मण्डल-भासुराङ्ग-यष्टीः प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।**
**भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः ॥१२॥**

**अन्वयार्थ— (भुवनेषु)** तीन लोक में **(विभूतये)** वैभव के लिए **(वपुषा)** शरीर से **(प्रवृत्ताः)**,

प्रवृत्त हुई **(द्युति-मण्डल-भासुराङ्गयष्टी:)** कान्तिसमूह से भासुर शरीर यष्टि वाली **(अप्रतिमा:)** अतुलनीय **(जिनोत्तमानां प्रतिमा:)** जिन श्रेष्ठ की प्रतिमाओं को **(प्राञ्जलि:)** अञ्जलि जोड़कर **(वन्दमान: अस्मि)** वन्दना करता हूँ।

**विगतायुधविक्रिया-विभूषा: प्रकृतिस्था: कृतिनां जिनेश्वराणाम्।**
**प्रतिमा: प्रतिमागृहेषु कान्त्याऽप्रतिमा: कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे ॥१३॥**

**अन्वयार्थ– (कृतिनां)** पुण्यमय **(जिनेश्वराणां)** जिनेश्वरों की **(प्रतिमागृहेषु)** जिनालयों में जो **(विगतायुध-विक्रिया-विभूषा:)** आयुध, विक्रिया और आभूषणों से रहित **(प्रकृतिस्था:)** स्वभाव में स्थित **(कान्त्या अप्रतिमा:)** कान्ति से अप्रतिम **(प्रतिमा:)** प्रतिमाओं को **(कल्मष-शान्तये)** पापों की शान्ति के लिये **(अभिवन्दे)** नमस्कार करता हूँ।

**कथयन्ति कषाय-मुक्ति-लक्ष्मीं परया शान्ततया भवान्तकानाम्।**
**प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमन्ति प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ॥१४॥**

**अन्वयार्थ– (परया)** उत्कृष्ट **(शान्ततया)** शान्ति से **(कषाय-मुक्तिलक्ष्मीं)** कषाय मुक्ति से लक्ष्मी की प्राप्ति को **(कथयन्ति)** जो कहते हैं ऐसे **(भवान्तकानां)** संसार का अन्त करने वाले **(जिनानां)** जिनेन्द्र के **(अभिरूपमूर्तिमन्ति)** सुन्दर मूर्तिमान **(प्रतिरूपाणि)** प्रतिबिम्बों को **(विशुद्धये)** विशुद्धि के लिए **(प्रणमामि)** नमस्कार करता हूँ।

**यदिदं मम सिद्धभक्ति-नीतं सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।**
**पटुना जिनधर्म एव भक्तिर्भव-ताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे ॥१५॥**

**अन्वयार्थ– (यत् इदं)** जो यह **(मम)** मेरा **(सुकृतं)** पुण्य है वह **(सिद्धभक्तिनीतं)** सिद्ध भक्ति से प्राप्त है तथा **(दुष्कृत-वर्त्मरोधि)** वह पाप मार्ग को रोकने वाला है **(तेन पटुना)** उस प्रबल पुण्य से **(मे भक्ति:)** मेरी भक्ति **(जिनधर्म एव)** जिन धर्म में ही **(जन्मनि जन्मनि)** जन्म-जन्म में **(स्थिरा भवतात्)** स्थिर होवे।

**अर्हतां सर्व - भावानां दर्शन -ज्ञान-सम्पदाम्।**
**कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये ॥१६॥**

**अन्वयार्थ– (सर्वभावानां)** सभी भावों को जानने वाले **(दर्शन-ज्ञान-सम्पदां)** दर्शन-ज्ञान रूपी सम्पत्ति से सहित **(अर्हतां)** अरिहन्तों के **(चैत्यानि)** चैत्यों को **(विशुद्धये)** विशुद्धि की प्राप्ति के लिए **(यथाबुद्धि)** बुद्धि के अनुसार **(कीर्तयिष्यामि)** स्तुति करूँगा।

**श्रीमद् - भावन - वासस्था: स्वयं भासुर-मूर्तय:।**
**वन्दिता नो विधेयासु: प्रतिमा: परमां गतिम् ॥१७॥**

**अन्वयार्थ–** **(श्रीमद्भावनवासस्थाः)** श्रीयुत भवनवासी देवों के भवनों में स्थित **(स्वयं भासुरमूर्तयः)** स्वभाव से ही प्रकाशमान शरीर वाली **(प्रतिमाः)** प्रतिमायें **(वन्दिताः)** वन्दित हैं **(नः)** वह हमारे लिए **(परमां गतिं)** उत्कृष्ट गति को **(विधेयासुः)** करें।

**यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।**
**तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये ॥१८॥**

**अन्वयार्थ–** **(अस्मिन् लोके)** इस लोक में **(यावन्ति)** जितनी भी **(अकृतानि कृतानि च)** अकृत्रिम और कृत्रिम **(भूयांसि)** बहुत से **(चैत्यानि)** चैत्य **(सन्ति)** हैं **(तानि सर्वाणि)** उन सभी को **(भूतये)** वैभव की प्राप्ति के लिए **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ।

**ये व्यन्तर - विमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।**
**ते च संख्या-मतिक्रान्ताः सन्तु नो दोष-विच्छिदे ॥१९॥**

**अन्वयार्थ-** **(व्यन्तरविमानेषु)** व्यन्तरदेवों के विमानों में **(ये)** जो **(प्रतिमागृहाः)** चैत्यालय **(स्थेयांसः)** स्थित रहने वाले अर्थात् अकृत्रिम हैं **(ते च)** वह **(संख्यां अतिक्रान्ताः)** संख्या से अतीत हैं। वह **(नः)** हमारे **(दोषविच्छिदे)** दोषों के नाश के लिए **(सन्तु)** होवे।

**ज्योतिषा-मथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसम्पदः।**
**गृहाः स्वयम्भुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान् ॥२०॥**

**अन्वयार्थ–** **(अथ)** अब **(ज्योतिषां लोकस्य)** ज्योतिर्लोक के **(विमानेषु)** विमानों में **(स्वयम्भुवः)** अकृत्रिम **(गृहाः)** गृह **(सन्ति)** हैं **(अद्भुतसम्पदः)** वह अद्भुत सम्पदा वाले हैं **(भूतये)** वैभव की प्राप्ति के लिए **(तान्)** उनको **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

**वन्दे सुर-किरीटाग्र - मणिच्छाया-भिषेचनम्।**
**याः क्रमेणैव सेवन्ते तदर्च्चाः सिद्धि-लब्धये ॥२१॥**

**अन्वयार्थ–** **(याः)** जो प्रतिमाएँ **(सुर-किरीटाग्र-मणिच्छाया-भिषेचनम्)** वैमानिक देवों के मुकुटाग्र को मणियों की छाया के अभिषेक को **(क्रमेण एव)** चरणों से ही **(सेवन्ते)**सेवा को प्राप्त हैं **(तदर्च्चाः)** उन प्रतिमाओं की पूजा **(सिद्धिलब्धये)** सिद्धि की प्राप्ति के लिए है उन्हें **(वन्दे)** मैं नमस्कार करता हूँ।

**इति स्तुति पथातीत - श्रीभृता - मर्हतां मम।**
**चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रव - निरोधिनी ॥२२॥**

**अन्वयार्थ–** **(इति)** इस प्रकार **(स्तुतिपथातीत-श्री भृतां)** स्तुति मार्ग से अतीत शोभा को धारण करने वाले **(अर्हतां)** अर्हन्तों की **(चैत्यानां)** प्रतिमाओं की **(सङ्कीर्तिः)** स्तुति **(मम)** मेरे

**(सर्वास्त्रव-निरोधिनी)** समस्त आस्त्रव को रोकने वाली **(अस्तु)** होवे।

**अर्हन् - महा - नदस्य त्रिभुवन-भव्यजन-तीर्थ-यात्रिक-दुरित-**
**प्रक्षालनैककारण-मतिलौकिक-कुहक-तीर्थ-मुत्तम तीर्थम् ॥२३॥**

**अन्वयार्थ— (अर्हन्महानदस्य)** अरिहन्त रूप महानद का **(उत्तम-तीर्थ)** उत्तम तीर्थ **(त्रिभुवनभव्यजनतीर्थ-यात्रिक-दुरित-प्रक्षालनैक-कारणं)** तीन लोक के भव्य जीव रूपी तीर्थ यात्रियों के पाप धोने का एक कारण है तथा **(अतिलौकिक-कुहक-तीर्थम्)** लौकिक जनों के दम्भपूर्ण तीर्थों से दूर है।

**लोकालोक - सुतत्त्व - प्रत्यव-बोधन-समर्थ-दिव्यज्ञान-**
**प्रत्यह-वहत्प्रवाहं व्रत-शीलामल-विशाल-कूल-द्वितयम् ॥२४॥**

**अन्वयार्थ— (लोकालोक-सुतत्त्व-प्रत्यवबोधन-समर्थ-दिव्यज्ञान-प्रत्यह-वहत्प्रवाहं)** लोक, अलोक के श्रेष्ठ तत्त्व का ज्ञान कराने में समर्थ दिव्य ज्ञान का प्रतिदिन जिसमें प्रवाह बह रहा है **(व्रत-शीलामलविशाल-कूल-द्वितयं)** व्रत और शील रूपी निर्मल विशाल दो कूल जिसमें हैं।

**शुक्लध्यान - स्तिमित - स्थित-राजद्राज - हंसराजित-मसकृत्।**
**स्वाध्याय-मन्द्रघोषं नानागुण-समितिगुप्ति-सिकतासुभगम् ॥२५॥**

**अन्वयार्थ— (शुक्लध्यान-स्तिमित-स्थित-राजद्-राजहंस-राजितं)** शुक्लध्यान में निश्चल बैठे शोभित हो रहे राजहंसों से जो सुशोभित है। **(असकृत्)** बार-बार **(स्वाध्याय-मन्द्र-घोषं)** जिसमें स्वाध्याय का गम्भीर घोष हो रहा है **(नानागुण-समिति-गुप्ति-सिकता-सुभगम्)** तथा जो अनेक गुण, समिति, गुप्ति रूपी बालू समूह से मनोहर है।

**क्षान्त्यावर्त-सहस्रं सर्वदया-विकच-कुसुम-विलसल्लतिकम्।**
**दुःसहपरीषहाख्य - द्रुततर - रङ्गत्तरङ्ग- भङ्गुर-निकरम् ॥२६॥**

**अन्वयार्थ— (क्षान्त्यावर्त-सहस्त्रं)** जिसमें क्षमारूपी हजारों भंवर हैं, **(सर्वदया-विकच-कुसुमविलसल्लतिकम्)** सभी जीवों परदया रूपी खिले हुए फूलों से विलसित लतायें हैं, **(दुःसह-परीषहाख्यद्रुततर-रङ्ग-त्तरङ्ग-भङ्गुर-निकरम्)** जहाँ दुःसह परीषह नाम की अति तीव्र चलती हुई तरङ्गों का विनश्वर समूह है।

**व्यपगत-कषाय-फेनं राग-द्वेषादि-दोष-शैवल-रहितम्।**
**अत्यस्तमोहकर्दम-मतिदूर-निरस्त-मरण-मकर-प्रकरम् ॥२७॥**

**अन्वयार्थ— (व्यपगत-कषायफेनं)** वह तीर्थ कषायरूपी फेन से रहित है **(राग-द्वेषादि-दोष-शैवलरहितं)** राग, द्वेष आदि दोषरूपी शैवाल से रहित है, **(अत्यस्त-मोह-कर्दमं)** वहाँ मोहरूपी कीचड़ दूर हो। चुका है, **(अतिदूर-निरस्त-मरण-मकर-प्रकरम्)** वहाँ मरणरूपी मगरों

का समूह बहुत दूर तक हटा दिया है।

**ऋषि-वृषभस्तुति-मन्द्रोद्रेकित-निर्घोष-विविध-विहग-ध्वानम्।**
**विविधतपोनिधिपुलिनं सास्रव-संवरणनिर्जरा-निःस्रवणम् ॥२८॥**

**अन्वयार्थ— (ऋषि-वृषभ-स्तुति-मन्द्रोद्रेकित-निर्घोष-विविध-विहग-ध्वानं)** श्रेष्ठ ऋषियों की स्तुति के गम्भीर-शब्द ही जिसमें अनेक प्रकार के पक्षियों के शब्द हैं। **(विविधतपोनिधि-पुलिनं)** अनेक प्रकार के मुनि ही जहाँ पुल हैं। **(सास्त्रव-संवरण-निर्जरा-निःस्त्रवणम्)** जो आस्त्रव का संवरण करने वाला तथा निर्जरा रूपी निकासी से सहित है।

**गणधर - चक्र - धरेन्द्र - प्रभृति - महा - भव्यपुंडरीकैः पुरुषैः।**
**बहुभिः स्नातं भक्त्या कलिकलुषमलापकर्षणार्थ-ममेयम् ॥२९॥**

**अन्वयार्थ— (गणधर-चक्रधरेन्द्र-प्रभृति-महाभव्य-पुण्डरीकैः)** गणधर, चक्री, इन्द्र आादि महाभव्य, श्रेष्ठ **(बहुभिः पुरुषैः)** बहुत से पुरुषों ने **(कलि-कलुष-मलापकर्षणार्थं)** कलि काल के कलुष, मल को दूर करने के लिए **(भक्त्या)** भक्ति से **(स्नातं)** स्नान किया है **(अमेयं)** तथा वह तीर्थ अपरिमित है।

**अवतीर्णवतः स्नातुं ममापि दुस्तर-समस्त-दुरितं दूरम्।**
**व्यपहरतु परम-पावन-मनन्यजय्यस्वभाव-भावगभीरम् ॥३०॥**

**अन्वयार्थ— (परमपावनं)** वह तीर्थ परम पवित्र **(अनन्यजय्य-स्वभाव-भाव-गभीरं)** अन्य के द्वारा अजेय स्वभाव भाव से गम्भीर है **(स्नातुं)** उसमें स्नान करने के लिए **(मम अवतीर्णवतः)** मुझ उतरे हुए के **(अपि)** भी **(दुस्तर-समस्त-दुरितं)** बड़े कठिन सभी पाप **(दूरं व्यपहरतु)** दूर से ही नष्ट होवे।

**अताम्र-नयनोत्पलं सकल-कोप-वह्ने-र्जयात्,**
**कटाक्ष - शर - मोक्ष - हीन - मविकारतोद्रेकतः।**
**विषाद-मद-हानितः प्रहसितायमानं सदा,**
**मुखं कथयतीव ते हृदय-शुद्धि-मात्यन्तिकीम् ॥३१॥**

**अन्वयार्थ— (सकल-कोप-वह्ने-र्जयात्)** समस्त क्रोधरूपी अग्नि को जीत लेने से **(अताम्रनयनोत्पलं)** जिनके नयन कमल लाल नहीं हैं। **(अविकारतोद्रेकतः)** विकार का उद्रेक नहीं होने से **(कटाक्षशर-मोक्ष-हीनं)** जो कटाक्ष बाणों को छोड़ने से रहित हैं। **(विषाद-मद-हानितः)** विषाद और मद की हानि हो जाने से **(सदा)** हमेशा **(प्रहसितायमानं)** जो प्रसन्न जान पड़ता है **(मुखं)** ऐसा मुख **(ते)** आपकी **(आत्यन्तिकीं)** अत्यधिक **(हृदयशुद्धिं)** हृदय शुद्धि को **(कथयति इव)** मानो कह रहा है।

**निराभरण - भासुरं विगत - राग - वेगोदयात्,**
**निरम्बर - मनोहरं प्रकृति - रूप - निर्दोषतः।**
**निरायुध - सुनिर्भयं विगत - हिंस्य - हिंसा - क्रमात्,**
**निरामिष-सुतृप्ति-मद् विविधवेदनानां क्षयात् ॥३२॥**

**अन्वयार्थ—(विगत-राग-वेगोदयात्)** राग के वेग का उदय समाप्त हो जाने से **(निराभरणभासुरं)** आप बिना आभूषण के ही देदीप्यमान हैं। **(प्रकृतिरूप-निर्दोषतः)** प्रकृति रूप को निर्दोष धारण करने से **(निरम्बर-मनोहरं)** आप बिना वस्त्र के मनोहर हैं **(विगत-हिंस्य-हिंसा-क्रमात्)** हिंस्य और हिंसा का क्रम दूर हो जाने से **(निरायुध-सुनिर्भयं)** बिना आयुध के आप निर्भय हैं **(विविध-वेदनानांक्षयात्)** अनेक प्रकार की वेदना का क्षय हो जाने से **(निरामिष-सुतृप्तिमद्)** निराहार रहकर भी परम तृप्ति से युक्त हैं।

**मितस्थिति-नखाङ्गजं गत-रजोमल-स्पर्शनं।**
**नवाम्बुरुह - चन्दन - प्रतिम - दिव्य - गन्धोदयम्।**
**रवीन्दु - कुलिशादि - दिव्य - बहुलक्षणालंकृतं।**
**दिवाकर-सहस्र-भासुर-मपीक्षणानां प्रियम् ॥३३॥**

**अन्वयार्थ— (मित-स्थिति-नखाङ्गजं)** जिनके शरीर में नख और केश अपने प्रमाण में स्थित हैं **(गतरजोमल-स्पर्शनं)** जहाँ रज और मल का स्पर्श नहीं होता है। **(नवाम्बु-रुह-चन्दन-प्रतिम-दिव्य-गन्धोदयं)** नए कमल और चन्दन के समान दिव्य रूप का उदय है। **(रवीन्दु-कुलिशादि-दिव्य-बहु-लक्षणालंकृतं)** जो सूर्य, चन्द्र तथा वज्र आदि दिव्य अनेक लक्षणों से अलंकृत हैं। **(दिवाकर-सहस्त्र-भासुरमपि)** हजारों सूर्यों के समान दैदीप्यमान होने पर भी **(ईक्षणानां प्रियम्)** आँखों के लिए प्रिय हैं।

**हितार्थ-परिपन्थिभिः प्रबल - राग - मोहादिभिः**
**कलङ्कितमना जनो यदभिवीक्ष्य शोशुद्ध्यते।**
**सदाभिमुख-मेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः।**
**शरद्-विमल-चन्द्रमण्डलमिवोत्थितं दृश्यते ॥३४॥**

**अन्वयार्थ— (हितार्थ-परिपन्थिभिः)** हित-प्रयोजन के विरोधी **(प्रबल-राग-मोहादिभिः)** प्रबल राग, मोह आादि से **(कलङ्कितमनाः)** कलंकित मन वाला **(जनः)** मनुष्य भी **(यत् अभिवीक्ष्य)** जिन्हें देखकर **(शोशुद्ध्यते)** अत्यन्त शुद्ध हो जाता है। **(जगति)** संसार में **(उत्थितं)** उठे हुए **(शरद्विमल-चन्द्रमण्डलं इव)** शरद् ऋतु के निर्मल चन्द्र मण्डल की तरह **(सर्वतः पश्यतां)** सब ओर से देखने वालों को **(यत् सदाभिमुखं एव)** जो सदा अपने सम्मुख ही **(दृश्यते)** दिखाई देते हैं।

**तदेत - दमरेश्वर - प्रचल - मौलि - माला-मणि-**
**स्फुरत् - किरण - चुम्बनीय - चरणारविन्द-द्वयम्।**
**पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूप - मन्धीकृतं**
**जगत् - सकल - मन्यतीर्थ - गुरु - रूप - दोषोदयैः ॥३५॥**

**अन्वयार्थ— (भगवज्जिनेन्द्र!)** हे जिनेन्द्र भगवन्! **(तव)** आपका **(एतत् तद् रूपं)** यह वह रूप **(अमरेश्वर-प्रचल-मौलि-माला-मणि-स्फुरत्-किरण-चुम्बनीय-चरणारविन्द-द्वयं)** जिसमे इन्द्रों के चञ्चल मुकुटों की माला में लगी मणियों से स्फुरायमान किरणों से जिनके दोनों चरण कमल चुम्बित हो रहे हैं। **(अन्यतीर्थ-गुरु-रूप-दोषोदयैः)** अन्य तीर्थ, अन्य गुरु, अन्य रूप के दोषों के उदय से **(अन्धीकृतं)** अन्ध हुए **(सकलं जगत्)** समस्त संसार को **(पुनातु)** पवित्र करें।

## क्षेपक

**मानस्तम्भाः सरांसि प्रविमलजल - सत्खातिका पुष्पवाटी**
**प्राकारो नाट्यशाला द्वितयमुपवनं वेदिकान्तर्ध्वजाद्याः।**
**शालः कल्पद्रुमाणां सुपरिवृत्तवनं स्तूपहर्म्यावली च**
**प्राकारः स्फाटिकोन्त-र्नृसुरमुनिसभा पीठिकाग्रे स्वयम्भूः ॥३७॥**

**अन्वयार्थ—(मानस्तम्भाः)** मानस्तम्भ **(सरांसि)** सरोवर **(प्रविमल-जल-सत्खातिका)** निर्मल जल से भरी खातिकाएँ **(पुष्पवाटी)** लता ग्रह **(प्राकारः)** कोट **(उपवनं)** उपवन भूमि **(नाट्यशाला द्वितयं)** दो-दो नाट्यशालाएँ **(वेदिकान्तर्ध्वजाद्याः)** वेदिकाओं के अन्दर ध्वजा आदि भूमि **(शालः)** धूलिशाल कोट **(कल्पद्रुमाणां)** कल्पवृक्षों का **(सुपरिवृत-वनं)** अच्छी तरह घिरा वन **(च स्तूपहर्म्यावली)** और स्तूपभवन की पंक्तियाँ **(प्राकारः)** धूलिशाल कोट **(स्फाटिकः)** जो कि स्फटिक का बना हुआ है। **(अन्तर्नृसुरमुनिसभा)** जिसके अन्दर मनुष्य, देव, मुनियों की सभा **(पीठिकाग्रे)** पीठिका के आगे **(स्वयम्भूः)** स्वयंभू भगवान् बैठे हैं।

**वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु।**
**यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वन्दे जिनपुङ्गवानाम् ॥३८॥**

**अन्वयार्थ—(वर्षेषु)** क्षेत्रों में **(वर्षान्तरपर्वतेषु)** क्षेत्र के मध्य पर्वतों में **(नन्दीश्वरे)** नन्दीश्वर द्वीप में **(च)** और **(मन्दरेषु)** मन्दर पर्वतों पर **(यानि)** जो **(यावन्ति)** जितने **(जिनपुङ्गवानां)** जिनेन्द्र देव के **(लोके)** इस लोक में **(चैत्यायतनानि)** चैत्यालय हैं **(सर्वाणि)** उन सभी की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

**अवनि - तल - गतानां कृत्रिमाऽकृत्रिमाणां**
**वन - भवन - गतानां दिव्य - वैमानिकानाम्।**
**इह मनुज-कृतानां देव - राजा-र्चितानां**
**जिनवर - निलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥३९॥**

**अन्वयार्थ—(अवनितलगतानां)** पृथ्वी तल पर स्थित **(कृत्रिमाकृत्रिमाणां)** कृत्रिम, अकृत्रिम **(वनभवनगतानां)** व्यन्तर और भवनवासी देवों के **(दिव्य-वैमानिकानां)** दिव्य-वैमानिक देवों के विमान में स्थित **(इह)** इस लोक में **(मनुजकृतानां)** मनुष्यों द्वारा बनाए हुए **(देवराजार्चितानां)** देव और राजाओं से पूजित **(जिनवरनिलयानां)** जिनदेव के मन्दिरों को **(अहं)** मैं **(भावतः)** भाव से **(स्मरामि)** स्मरण करता हूँ।

**जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा - क्षेत्रत्रये ये भवांश्-**
**चन्द्राम्भोज शिखण्डिकण्ठकनक-प्रावृड्घनाभा जिनाः।**
**सम्यग्ज्ञान - चरित्र - लक्षणधरा दग्धाष्ट - कर्मेन्धनाः**
**भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥४०॥**

**अन्वयार्थ—(ये जिनाः)** जो जिनेन्द्र **(जम्बूधातकिपुष्करार्धवसुधाक्षेत्र-त्रये भवाः)** जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, अर्धपुष्कर भूमि इन तीन क्षेत्रों में हुए हैं **(चन्द्राम्भोज-शिखण्डि-कण्ठ-कनक-प्रावृड्घनाभाः)** जो चन्द्र, कमल, मयूरकण्ठ, स्वर्ण, मेघ की आभा वाले हैं **(सम्यग्ज्ञानचरित्र-लक्षणधराः)** जो सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के लक्षण को धारण करने वाले हैं **(दग्धाष्टकर्मेन्धनाः)** जो अष्ट कर्म रूपी ईन्धन को जलाने वाले हैं। **(भूतानागत-वर्तमानसमये)** भूत-भविष्यत्-वर्तमान समय में होने वाले हैं **(तेभ्यः जिनेभ्यः)** उन जिनेन्द्रदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

**श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे**
**वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचके कुण्डले मानुषाङ्के।**
**इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके**
**ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥४१॥**

**अन्वयार्थ—(श्रीमन्मेरौ)** श्री सम्पन्न मेरुपर्वत पर **(कुलाद्रौ)** कुलाचल पर्वत पर **(रजतगिरिवरे)** विजयार्ध पर्वत पर **(शाल्मलौ)** शाल्मलि वृक्ष पर **(जम्बुवृक्षे)** जम्बुवृक्ष पर **(वक्षारे)** वक्षार पर्वत पर **(चैत्यवृक्षे)** चैत्यवृक्ष पर **(रतिकररुचके)** रतिकर और रुचक पर्वत पर **(कुण्डले)** कुण्डलगिरि पर **(मानुषाङ्के)** मानुषोत्तर पर्वत पर **(इष्वाकारे)** इष्वाकार पर्वत पर **(अञ्जनाद्रौ)** अञ्जनगिरि पर **(दधिमुखशिखरे)** दधिमुख पर्वत पर **(व्यन्तरे)** व्यन्तरों के यहाँ **(स्वर्गलोके)** स्वर्ग लोक में

**(ज्योतिर्लोके)** ज्योतिषी देवों के यहाँ **(अहितले)** नागलोक में **(भवनं)** जिन भवनों की **(यानि चैत्यालयानि)** और जो चैत्यालय हैं **(अभिवन्दे)** उनकी मैं वन्दना करता हूँ।

**देवा - सुरेन्द्र - नर - नाग-समर्चितेभ्यः**
**पाप - प्रणाशकर - भव्य-मनोहरेभ्यः।**
**घण्टा - ध्वजादिपरिवारविभूषितेभ्यो**
**नित्यं नमो जगति सर्वजिनालयेभ्यः ॥४२॥**

**अन्वयार्थ—(देवासुरेन्द्रनरनागसमर्चितेभ्यः)** देव-असुरेन्द्र, मनुष्य, धरणेन्द्र से पूजित **(पाप-प्रणाशकरभव्यमनोहरेभ्यः)** पाप के नाशक और भव्यों का मन हरने वाले **(घण्टा-ध्वजादि-परिवारविभूषितेभ्यः)** घण्टा, ध्वजा आदि तथा परिवार से विभूषित **(सर्वजिनालयेभ्यः)** सर्वजिनालयों की **(जगति)** जगत् में **(नित्यं नमः)** मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

## अञ्चलिका

**इच्छामि भंते! चेइय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि, किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसु वि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण- संपत्ति होउ मज्झं।**

**अर्थ—**हे भगवन्! मैंने चैत्यभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है, उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। अधोलोक, मध्यलोक तथा ऊर्ध्वलोक में जो कृत्रिम अकृत्रिम जिनप्रतिमाएँ हैं उन सबको तीनों लोकों में निवास करने वाले भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी इस तरह चार प्रकार के देव अपने परिवार सहित, दिव्य गन्ध, दिव्य पुष्प, दिव्य धूप, दिव्य चूर्ण, दिव्य सुगन्धित पदार्थ और दिव्य अभिषेक के द्वारा नित्य काल अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं। मैं भी यहाँ रहता हुआ वहाँ रहने वाली प्रतिमाओं की नित्यकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। इसके फलस्वरूप मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की संप्राप्ति हो।

❑ ❑ ❑

# समाधितंत्र

### मंगलाचरण

#### सिद्ध परमात्मा का मंगल

**येनात्माबुध्यतात्मैव परत्वेनैव चापरम्।**
**अक्षयानन्तबोधाय तस्मै सिद्धात्मने नमः॥१॥**

**अन्वयार्थ— (येन)** जिसके द्वारा **(आत्मा)** आत्मा **(आत्मा एव)** आत्मारूप से ही **(च)** और **(अपरं)** दूसरे पदार्थ/कर्मजनित मनुष्य आदि पर्यायरूप पुद्गल को **(परत्वेन एव)** पररूप से ही **(अबुध्यत)** जाना गया है **(तस्मै)** उन **(अक्षयानन्तबोधाय)** अविनाशी अनन्तज्ञानस्वरूप **(सिद्धात्मने)** सिद्धात्मा के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

#### अरहंत परमात्मा का मंगल

**जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती-**
**विभूतयस्तीर्थकृतोप्यनीहितुः।**
**शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे**
**जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः॥२॥**

**अन्वयार्थ— (तीर्थकृतः अपि)** तीर्थङ्कर होते हुए भी **(अनीहितुः)** इच्छा रहित **(अवदतः अपि)** नहीं बोलते हुए भी—तालु, ओष्ठ आदि के शब्दों का उच्चारण न करते हुए भी **(यस्य)** जिनकी **(भारतीविभूतयः)** वाणीरूपी विभूतियाँ—वाणी और छत्र त्रयादिक विभूतियाँ **(जयन्ति)** जय को प्राप्त होती हैं **(तस्मै)** उन **(शिवाय)** कल्याणस्वरूप शिव के लिए **(धात्रे)** विधाता—ब्रह्मरूप— सन्मार्ग के उपदेश द्वारा लोक के उद्धारक के लिये **(सुगताय)** सुगतरूप—सद्बुद्धि एवं सद्गति को प्राप्त/सर्वज्ञ के लिए **(विष्णवे)** विष्णुरूप—केवलज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों में व्याप्त रहने वाले/ जानने वाले के लिए **(जिनाय)** जिनरूप—संसार परिभ्रमण के कारणभूत कर्मशत्रुओं को जीतने वाले/जिन के लिए **(सकलात्मने)** अरिहंत परमेष्ठी के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

#### ग्रन्थ प्रतिज्ञा

**श्रुतेन लिङ्गेन यथात्मशक्ति समाहितान्तःकरणेन सम्यक्।**
**समीक्ष्य कैवल्य-सुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये॥३॥**

**अन्वयार्थ— (श्रुतेन)** शास्त्र के द्वारा **(लिङ्गेन)** अनुमान वा हेतु के द्वारा **(यथात्मशक्ति)** अपनी शक्ति के अनुसार **(समाहितान्तःकरणेन)** मन की एकाग्रता से **(सम्यक्)** अच्छी तरह

**(समीक्ष्य)** परीक्षा/अनुभव करके **(कैवल्य-सुखस्पृहाणां)** केवलज्ञान और सुख की इच्छा करने वालों को **(अथ)** अब मैं पूज्यपाद आचार्य **(विविक्तं आत्मानं)** पर द्रव्यों से पृथक्–कर्ममल रहित आत्मा के शुद्ध स्वरूप को **(अभिधास्ये)** कहूँगा।

### आत्मा के तीन प्रकार

**बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।**
**उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद् बहिस्त्यजेत् ॥४॥**

**अन्वयार्थ– (सर्वदेहिषु)** सभी देहधारियों में **(बहिः)** बहिरात्मा **(अन्तः)** अन्तरात्मा **(च)** और **(परः)** परमात्मा **(इति)** इस प्रकार **(त्रिधात्मा)** तीन प्रकार की आत्मा है **(तत्र)** उसमें–आत्मा के उन तीन भेदों में से **(मध्योपायात्)** मध्यम अर्थात् अन्तरात्मा के उपाय द्वारा **(परमं)** उत्कृष्ट अर्थात् परमात्मपने को **(उपेयात्)** प्राप्त होओ और **(बहिः)** बहिरात्मा को **(त्यजेत्)** त्याग दो।

### तीन प्रकार के आत्मा के लक्षण

**बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।**
**चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः॥५॥**

**अन्वयार्थ– (शरीरादौ)** शरीर आदि में **(जातात्मभ्रान्तिः)** जिसे आत्म भ्रान्ति उत्पन्न हुई है वह **(बहिरात्मा)** बहिरात्मा है **(चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः आन्तरः)** चित्त के, रागद्वेषादि दोषों के और आत्मा के विषय में अभ्रान्त रहने वाला–उनका ठीक विवेक रखने वाला अर्थात् चित्त को चित्तरूप से, दोषों को दोषरूप से और आत्मा को आत्मारूप से अनुभव करने वाला–अन्तरात्मा कहलाता है **(अति-निर्मलः परमात्मा)** अति निर्मल/सर्व कर्म मल से रहित परमात्मा है।

### परमात्मा के नामान्तर

**निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।**
**परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः॥६॥**

**अन्वयार्थ– (निर्मलः)** निर्मल–कर्मरूपी मल रहित है **(केवलः)** केवल–शरीरादि परद्रव्यों के सम्बन्ध से रहित है **(शुद्धः)** शुद्ध–द्रव्यकर्म व भावकर्म से रहित है **(विविक्तः)** विविक्त–शरीर और कर्मादि के स्पर्श से रहित है **(प्रभुः)** प्रभु–इन्द्रादिकों का स्वामी है **(अव्ययः)** अव्यय–अपने अनंत चतुष्टयरूप स्वभाव से च्युत न होने वाला **(परमेष्ठी)** परमपद में स्थित है **(परात्मा)** परात्मा–संसारी जीवों से उत्कृष्ट आत्मा **(ईश्वरः)** ईश्वर–इन्द्रादिकों में नहीं पायी जाने वाली अन्तरंग व बहिरंग परमैश्वर्य से सदा सम्पन्न **(जिनः)** ज्ञानावरणादि सम्पूर्ण कर्म शत्रुओं को जीतने वाले **(इति परमात्मा)** इस प्रकार ये परमात्मा के नाम हैं।

**बहिरात्मा की मान्यता**

**बहिरात्मेन्द्रियद्वारै - रात्मज्ञानपराङ्‌मुखः।**
**स्फुरितः स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवस्यति॥७॥**

**अन्वयार्थ— (बहिरात्मा)** बहिरात्मा जीव **(इन्द्रियद्वारैः)** इन्द्रियरूपी द्वारों से **(स्फुरितः)** बाह्य पदार्थों में लगा हुआ **(आत्मज्ञानपराङ्‌मुखः)** आत्मज्ञान से विमुख रहता है इसलिए **(स्वात्मनः)** अपने **(देहं)** शरीर को **(आत्मत्वेन)** आत्मरूप से **(अध्यवस्यति)** निश्चय करता है—अपनी आत्मा जानता है।

**नरदेहस्थमात्मान - मविद्वान् मन्यते नरम्।**
**तिर्यञ्चं तिर्यगङ्गस्थं सुराङ्गस्थं सुरं तथा ॥८॥**
**नारकं नारकाङ्गस्थं न स्वयं तत्त्वतस्तथा।**
**अनन्तानन्तधीशक्तिः स्वसंवद्योऽचलस्थितिः॥९॥**

**अन्वयार्थ—(अविद्वान्)** अज्ञानी/बहिरात्मा जीव **(नरदेहस्थं)** मनुष्य देह में स्थित **(आत्मानं)** आत्मा को **(नरं)** मनुष्य, **(तिर्यगङ्गस्थं)** तिर्यंच शरीर में रहने वाली आत्मा को **(तिर्यञ्चं)** तिर्यंच, **(सुराङ्गस्थं)** देव के शरीर में रहने वाली आत्मा को **(सुरं)** देव **(तथा)** तथा **(नारकाङ्गस्थं)** नारकी देह में स्थित आत्मा को **(नारकं)** नारकी **(मन्यते)** मानता है **(तत्त्वतः)** वस्तुतः—शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि से **(तथा)** उस प्रकार **(स्वयं न)** वह आत्मा स्वयं नहीं होता है वह तो **(अनन्तानन्तधीशक्तिः)** अनन्तज्ञान और अनन्तशक्तिरूप वीर्य का धारक है, **(स्वसंवेद्यः)** स्वानुभवगम्य है—अपने द्वारा आप अनुभव किए जाने योग्य है **(अचलस्थितिः)** अपने उक्त स्वभाव से कभी च्युत न होने वाला—उसमें सदा स्थिर रहने वाला है।

**स्वदेहसदृशं दृष्ट्वा परदेहमचेतनम्।**
**परात्माधिष्ठितं मूढः परत्वेनाध्यवस्यति॥१०॥**

**अन्वयार्थ—(मूढः)** अज्ञानी—बहिरात्मा **(परात्माधिष्ठितं)** अन्य की आत्मा सहित **(अचेतनं)** चेतना रहित **(परदेहं)** दूसरे के शरीर को **(स्वदेहसदृशं)** अपने शरीर के समान इन्द्रिय व्यापार तथा वचनादि व्यवहार करता हुआ **(दृष्ट्वा)** देखकर **(परत्वेन)** पर की आत्मारूप से **(अध्यवस्यति)** मान लेता है/जान लेता है।

**स्वपराध्यवसायेन देहेष्वविदितात्मनाम्।**
**वर्तते विभ्रमः पुंसां पुत्रभार्यादिगोचरः॥११॥**

**अन्वयार्थ— (देहेषु)** सभी के शरीरों में **(स्वपराध्यवसायेन)** अपनी और पर की आत्म

मान्यता से **(अविदितात्मनां)** आत्मा के स्वरूप को नहीं जानने वाले **(पुंसां)** पुरुषों के **(पुत्रभार्यादिगोचरः)** पुत्र, स्त्री आदि सम्बन्धी **(विभ्रमः)** भ्रांति **(वर्तते)** होती है।

**एकत्व अध्यवसानभाव ही अज्ञान है।**

**अविद्यासंज्ञितस्तस्मात् संस्कारो जायते दृढः।**
**येन लोकोऽङ्गमेव स्वं पुनरप्यभिमन्यते॥१२॥**

**अन्वयार्थ— (तस्मात्)** उस विभ्रम से **(अविद्यासंज्ञितः)** अविद्या नाम का **(संस्कारः)** संस्कार **(दृढः)** दृढ़—मजबूत **(जायते)** हो जाता है **(येन)** जिसके कारण **(लोकः)** यह संसारी जीव—अज्ञानी जीव **(पुनरपि)** जन्मान्तर में भी **(अङ्गं एव)** शरीर को ही **(स्वं)** आत्मा **(अभिमन्यते)** मानता है।

**संसार का संयोग और वियोग का कारण**

**देहे स्वबुद्धिरात्मानं युनक्त्येतेन निश्चयात्।**
**स्वात्मन्येवात्मधीस्तस्माद्वियोजयति देहिनम्॥१३॥**

**अन्वयार्थ— (देहे)** शरीर में **(स्वबुद्धिः)** आत्मबुद्धि रखने वाला बहिरात्मा **(निश्चयात्)** निश्चय से **(आत्मानं)** अपनी आत्मा को **(एतेन)** शरीर के साथ **(युनक्ति)** जोड़ता—बाँधता है किन्तु **(स्वात्मनि एव)** अपनी आत्मा में ही **(आत्मधीः)** आत्मबुद्धि रखने वाला अन्तरात्मा **(देहिनं)** अपनी आत्मा को **(तस्मात्)** शरीर के सम्बन्ध से **(वियोजयति)** पृथक् करता है।

**देहेष्वात्मधिया जाताः पुत्रभार्यादिकल्पनाः।**
**सम्पत्तिमात्मनस्ताभिर्मन्यते हा हतं जगत्॥१४॥**

**अन्वयार्थ— (देहेषु)** अपने या दूसरों के शरीर में **(आत्मधिया)** आत्मबुद्धि होने से **(पुत्रभार्यादिकल्पनाः)** (मेरा) पुत्र, (मेरी) स्त्री आदि की कल्पनायें **(जाताः)** उत्पन्न होती हैं **(हा)** खेद है कि **(जगत्)** बहिरात्मरूप प्राणिगण **(ताभिः)** उन्हीं कल्पनाओं के कारण **(सम्पत्तिं)** (स्त्री, पुत्रादि की) समृद्धि को **(आत्मनः)** अपनी समृद्धि **(मन्यते)** मानता है और इस प्रकार यह जगत् **(हतम्)** नष्ट हो रहा है।

**बहिरात्मपना का उपसंहार**

**मूलं संसारदुःखस्य देह एवात्मधीस्ततः।**
**त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्त - र्बहिरव्यापृतेन्द्रियः॥१५॥**

**अन्वयार्थ— (देहे)** इस जड़ शरीर में **(आत्मधीः एव)** आत्मरूप बुद्धि का होना ही **(संसारदुःखस्य)** संसार के दुःखों का **(मूलं)** मूल कारण है **(ततः)** इस कारण **(एनां)** शरीर में आत्मत्व की मिथ्या कल्पना को—इस आत्मबुद्धि को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(बहिः)** बाह्य विषयों में

**(अव्यापृतेन्द्रियः)** इन्द्रियों की प्रवृत्ति को रोकता हुआ **(अन्तः)** अन्तरङ्ग में—आत्मा ही में **(प्रविशेत्)** प्रवेश करे।

### अंतरात्मा की बाह्य प्रवृत्ति से उदासीनता

**मत्तश्च्युत्वेन्द्रियद्वारैः पतितो विषयेष्वहम्।**
**तान् प्रपद्याहमिति मां पुरा वेद न तत्त्वतः॥१६॥**

**अन्वयार्थ— (अहं)** मैं **(पुरा)** अनादिकाल से **(मत्तः)** अपने आत्मस्वरूप से **(च्युत्वा)** स्खलित होकर **(इन्द्रियद्वारैः)** इन्द्रियरूपी द्वारों से **(विषयेषु)** विषयों में **(पतितः)** गिरा हुआ इस कारण **(तान्)** उन इन्द्रिय विषयों को **(प्रपद्य)** प्राप्तकर मैंने **(तत्त्वतः)** वास्तव में **(मां)** अपने स्वरूप—आत्मा को **(अहं इति)** मैं ही आत्मा हूँ इस रूप से **(न)** नहीं **(वेद)** जाना/विचारा—उस समय शरीर को ही आत्मा समझने के कारण मुझे आत्मा के यथार्थ स्वरूप का परिज्ञान नहीं हुआ।

### स्व में आत्मत्व बुद्धि ही समाधि

**एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदन्तरशेषतः।**
**एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः॥१७॥**

**अन्वयार्थ—(एवं)** इस प्रकार **(बहिर्वाचं)** बाहरी वचनों को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(अशेषतः)** पूर्ण रूप से **(अन्तर्)** अंतरंग वचन जल्पों को **(त्यजेत्)** त्याग देवें **(एषः)** यह **(योगः)** योग-स्वरूप में चित्तनिरोध-लक्षणात्मक समाधि **(समासेन)** संक्षेप से **(परमात्मनः)** परमात्मा के स्वरूप का **(प्रदीपः)** प्रकाशक है।

### वचन व्यापार से निवृत्त होने की भावना

**यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा।**
**जानन्न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम्॥१८॥**

**अन्वयार्थ— (मया)** मेरे द्वारा **(यत् रूपं)** जो इन्द्रियगोचर शरीरादिरूपी पदार्थ **(दृश्यते)** दिखाई देता है **(तत्)** वह अचेतन होने से **(सर्वथा)** सब प्रकार से **(न)** नहीं **(जानाति)** जानता है **(जानन्)** जानने वाले आत्मा का **(रूपं)** रूप **(न दृश्यते)** दिखाई नहीं देता है **(ततः)** इसलिए **(अहम्)** मैं **(केन)** किससे **(ब्रवीमि)** बोलूँ।

### सुनने के व्यापार से निवृत्त होने की भावना

**यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये।**
**उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः॥१९॥**

**अन्वयार्थ—(यत्)** जो कुछ **(परैः)** दूसरों से **(प्रतिपाद्यः अहम्)** मैं समझने योग्य हूँ **(यत्)** या जो कुछ **(परान्)** दूसरों को **(प्रतिपादये)** मैं समझाता हूँ **(तत्)** वह सब कुछ **(मे)** मेरी

**(उन्मत्तचेष्टितं)** पागलों के समान चेष्टाएँ हैं **(यत्)** क्योंकि **(अहं)** मैं **(निर्विकल्पकः)** विकल्पों से रहित स्वभाव वाला हूँ।

**दान-आदान व्यवहार से निवृत्त होने की भावना**

**यदग्राह्यं न गृह्णाति गृहीतं नैव मुञ्चति।**
**जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम्॥२०॥**

**अन्वयार्थ– (यत्)** जो शुद्धात्मा **(अग्राह्यं)** ग्रहण में न आने योग्य को **(न)** नहीं **(गृह्णाति)** ग्रहण करता है **(गृहीतं)** जो ग्रहण किये गए अनन्तज्ञानादिक गुणों को **(नैव)** निश्चित ही नहीं **(मुञ्चति)** छोड़ता है जो **(सर्वं)** सभी चेतन-अचेतन पदार्थों को **(सर्वथा)** सब प्रकार से **(जानाति)** जानता है **(तत्)** वह **(स्वसंवेद्यं)** अपने ही द्वारा अनुभव में आने योग्य **(अहम्)** मैं **(अस्मि)** हूँ।

**ज्ञानी पूर्व जीवन का पश्चाताप करता है**

**उत्पन्नपुरुषभ्रान्तेः स्थाणौ यद्वद्विचेष्टितम्।**
**तद्वन्मे चेष्टितं पूर्वं देहादिष्वात्मविभ्रमात्॥२१॥**

**अन्वयार्थ– (यद्वत्)** जिस प्रकार **(स्थाणौ)** ठूँठ में **(उत्पन्नपुरुषभ्रान्तेः)** उत्पन्न हुआ पुरुषपने का भ्रम जिसको हुआ है उसकी **(विचेष्टितम्)** अनेक प्रकार की चेष्टायें होती हैं **(तद्वत्)** उसी प्रकार **(पूर्वं)** पहले **(आत्मविभ्रमात्)** आत्मा के विषय में विभ्रम/विपरीतता होने से **(देहादिषु)** शरीर आदि में **(मे)** मेरी **(चेष्टितं)** चेष्टा थी।

**अब ज्ञानी उन चेष्टाओं से निवृत्त होता है**

**यथासौ चेष्टते स्थाणौ निवृत्ते पुरुषाग्रहे।**
**तथा चेष्टोऽस्मि देहादौ विनिवृत्तात्मविभ्रमः॥२२॥**

**अन्वयार्थ– (असौ)** वही पूर्वोक्त पुरुष **(यथा)** जिस तरह **(स्थाणौ)** ठूँठ में **(पुरुषाग्रहे)** यह पुरुष है ऐसा मिथ्याग्रह **(निवृत्ते)** दूर हो जाने पर **(चेष्टते)** योग्य चेष्टायें करता है **(तथा)** उसी तरह **(देहादौ)** शरीर आदि में **(विनिवृत्तात्मविभ्रमः)** आत्मपने की भ्रांति दूर हो जाने पर **(चेष्टोऽस्मि)** देहादिक में अपने उपकारादि की बुद्धि को छोड़ने में प्रवृत्त हुआ हूँ।

**ज्ञानी का आत्मानुभव कैसा होता है**

**येनात्मनानुभूयेऽहमात्मनैवात्मनाऽऽत्मनि।**
**सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहुः ॥२३॥**

**अन्वयार्थ– (येन)** जिस **(आत्मना)** आत्म स्वरूप से **(अहम्)** मैं **(आत्मनि)** आत्मा में **(आत्मना)** अपने आपके द्वारा **(आत्मना एव)** अपने से ही **(अनुभूये)** अनुभव करता हूँ **(सः)** वही

**(अहं)** मैं हूँ **(न तत्)** वह नपुंसक नहीं है **(न सा)** न वह स्त्री रूप है **(न असौ)** न वह पुरुष है **(न एको)** न वह एक है **(न द्वौ)** न दो है **(वा)** अथवा **(न बहु:)** न बहुत है।

### स्वसंवेदन ही आत्मानुभूति है

**यदभावे सुषुप्तोऽहं यद्भावे व्युत्थित: पुन:।**
**अतीन्द्रियमनिर्देश्यं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ॥२४॥**

**अन्वयार्थ— (यत् अभावे)** जिस आत्म अनुभव के अभाव में **(अहं)** मैं **(सुषुप्त:)** अज्ञान में सोता रहा **(पुन:)** तथा **(यत् भावे)** जिसका अनुभव हो जाने पर **(व्युत्थित:)** जागृत हुआ हूँ **(तत्)** वह **(अतीन्द्रियं)** इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण के अयोग्य **(अनिर्देश्यं)** शब्दों से नहीं कहने योग्य **(स्वसंवेद्यं)** स्वसंवेदन के योग्य **(अहम्)** मैं **(अस्मि)** हूँ।

### आत्मानुभूति से रागादि स्वयं नष्ट होते हैं

**क्षीयन्तेऽत्रैव रागाद्यास्तत्त्वतो मां प्रपश्यत:।**
**बोधात्मानं तत: कश्चिन्न मे शत्रुर्न च प्रिय:॥२५॥**

**अन्वयार्थ— (तत्त्वत:)** शुद्ध दृष्टि से **(मां)** अपने **(बोधात्मानं)** ज्ञानस्वरूप आत्मा को **(प्रपश्यत:)** देखने वाले के **(रागाद्या:)** रागादि विकारी भाव **(अत्र एव)** इसी समय **(क्षीयन्ते)** क्षय हो जाते हैं **(तत:)** इसलिए **(मे)** मेरा **(न कश्चित्)** न कोई **(शत्रु:)** शत्रु है **(च)** और **(न प्रिय:)** न कोई मित्र है।

### शत्रु-मित्र कल्पना माया-मिथ्यात्व है

**मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रिय:।**
**मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रिय:॥२६॥**

**अन्वयार्थ— (मां)** मुझको **(अपश्यन्)** नहीं देखने वाला **(अयं)** यह **(लोक:)** प्राणी/लोग **(न मे)** न मेरा **(शत्रु:)** शत्रु है **(न च)** और न **(प्रिय:)** मित्र है। **(मां)** मुझको **(प्रपश्यन्)** देखता हुआ **(अयं)** यह **(लोक:)** प्राणी/प्रबुद्धगण **(न)** न तो **(मे)** मेरे **(शत्रु:)** शत्रु हैं **(न च)** और न **(प्रिय:)** मित्र है।

### अंतरात्मा अधिकार

**त्यक्त्वैवं बहिरात्मान - मन्तरात्मव्यवस्थित:।**
**भावयेत् परमात्मानं सर्वसङ्कल्पवर्जितम्॥२७॥**

**अन्वयार्थ—(एवं)** इस प्रकार कहे गए तरीके से **(बहिरात्मानं)** बहिरात्मपने को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(अन्तरात्मव्यवस्थित:)** अन्तरात्मा में स्थित होता हुआ **(सर्वसङ्कल्पवर्जितं)** समस्त संकल्पों

से रहित **(परमात्मानं)** परम आत्मा की **(भावयेत्)** भावना भावें।

**परमात्मभावना ही परमात्मपद का कारण है**

**सोऽहमित्यात्तसंस्कारस्तस्मिन् भावनया पुनः।**
**तत्रैव दृढसंस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम् ॥२८॥**

**अन्वयार्थ—(तस्मिन्)** उस परमात्म स्वरूप में **(भावनया)** भावना के बल से **(सोऽहम्)** वह मैं **(इति)** इस प्रकार **(आत्तसंस्कारः)** जिसने संस्कार प्राप्त कर लिया है **(पुनः)** फिर **(तत्रैव)** उसी परमात्मस्वरूप में ही **(दृढसंस्कारात्)** मजबूत संस्कार हो जाने से **(हि)** निश्चित ही **(आत्मनि)** अपनी आत्मा में **(स्थितिम्)** स्थिरता को **(लभते)** प्राप्त कर लेता है।

**आत्मा का भावना भयस्थान और अभयस्थान सम्बन्धी विपरीत मान्यता**

**मूढात्मा यत्र विश्वस्तस्ततो नान्यद्भयास्पदम्।**
**यतो भीतस्ततो नान्यदभयस्थानमात्मनः ॥२९॥**

**अन्वयार्थ— (मूढात्मा)** बहिरात्मा पुरुष **(यत्र)** जिन विषयों में **(विश्वस्तः)** विश्वस्त हो जाता है **(ततः अन्यत्)** उसके सिवाय दूसरा कोई **(भयास्पदम्)** भय का स्थान **(न)** नहीं है तथा **(यतः)** जिससे **(भीतः)** डरता है **(ततः)** उससे **(अन्यत्)** दूसरा कोई **(आत्मनः)** आत्मा के लिए **(अभयस्थानम्)** निडरता का स्थान **(न)** नहीं है।



**आत्मा ही परमात्मा है**

**सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना।**
**यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्त्वं परमात्मनः॥३०॥**

**अन्वयार्थ— (सर्वेन्द्रियाणि)** सभी इन्द्रियों को **(संयम्य)** संयमित करके **(स्तिमितेन)** स्थिरीभूत **(अन्तरात्मना)** अन्तरात्मा/अन्तःकरण से **(क्षणं)** क्षण मात्र **(पश्यतः)** स्वरूप को देखने वाले के **(यत्)** जो स्वरूप **(भाति)** प्रकट/प्रतिभासित होता है **(तत्)** वह **(परमात्मनः)** परमात्मा का **(तत्त्वं)** स्वरूप है।

**निर्विकल्प आत्मानुभूति में उपास्य उपासक भाव नहीं रहता है**

**यः परात्मा स एवाऽहं योऽहं स परमस्ततः।**
**अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥३१॥**

**अन्वयार्थ— (यः)** जो कोई **(परात्मा)** उत्कृष्ट आत्मा या परमात्मा **(स एव)** वह ही **(अहं)** मैं हूँ **(यः)** तथा जो **(अहं)** मैं आत्मा हूँ **(सः)** वह **(परमः)** परम/उत्कृष्ट आत्मा है **(ततः)** इसलिए **(मया)** मेरे द्वारा **(अहम्)** मैं **(एव)** ही **(उपास्यः)** उपासना योग्य हूँ **(कश्चित्)** कोई **(अन्यः न)**

दूसरा नहीं **(इति)** इस प्रकार (अपने में ही आराध्य आराधक भाव की) **(स्थितिः)** स्थिति/व्यवस्था है।

**बिना संयम के आत्मानुभूति नहीं**

**प्रच्याव्य विषयेभ्योऽहं मां मयैव मयि स्थितम्।**
**बोधात्मानं प्रपन्नोऽस्मि परमानन्दनिर्वृतम् ॥३२॥**

**अन्वयार्थ– (अहम्)** मैं **(माम्)** अपने को **(विषयेभ्यः)** विषयों से **(प्रच्याव्य)** हटाकर **(मया एव)** अपने द्वारा ही **(मयि)** अपने में **(स्थितम्)** स्थित **(परमानन्दनिर्वृतम्)** उत्कृष्ट आनंद से युक्त **(बोधात्मानं)** ज्ञानस्वरूपी आत्मा को **(प्रपन्नः)** प्राप्त **(अस्मि)** होता हूँ।

**आत्मज्ञान के बिना तप व्यर्थ है**

**यो न वेत्ति परं देहादेवमात्मानमव्ययम्।**
**लभते स न निर्वाणं तप्त्वाऽपि परमं तपः ॥३३॥**

**अन्वयार्थ– (यः)** जो कोई **(एवम् )** उक्त प्रकार कहे हुए **(अव्ययं)** अविनाशी **(आत्मानं)** आत्मा को **(देहात्)** शरीर से **(परं)** भिन्न **(न)** नहीं **(वेत्ति)** जानता है **(सः)** वह **(परमं तपः)** उत्कृष्ट तप को **(तप्त्वा अपि)** तप करके भी **(निर्वाणं)** मोक्ष को **(न लभते)** प्राप्त नहीं होता/करता है।



**आत्मज्ञानी तप में खेद-खिन्न नहीं होता**

**आत्मदेहान्तरज्ञान - जनिताह्लादनिर्वृतः।**
**तपसा दुष्कृतं घोरं भुञ्जानोऽपि न खिद्यते ॥३४॥**

**अन्वयार्थ– (आत्मदेहान्तरज्ञान-जनिताह्लादनिर्वृतः)** आत्मा और शरीर के भेद से उत्पन्न होने वाले आह्लाद से युक्त जीव **(तपसा)** तप के द्वारा [द्वादश प्रकार के तप द्वारा उदय में लाये हुए] **(घोरं)** दुःसह/भयानक **(दुष्कृतं)**पाप कर्म को **(भुञ्जानः अपि)** भोगता हुआ भी **(न खिद्यते)** खेद को प्राप्त नहीं होता है।

**समाधि में ही आत्मानुभव होता है**

**रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम्।**
**स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं सत्त्वं नेतरो जनः ॥३५॥**

**अन्वयार्थ– (यन्मनोजलं)** जिसका मनरूपी जल **(रागद्वेषादिकल्लोलैः)** रागद्वेष आदि रूप तरंगों से **(अलोलं)** चंचल नहीं है **(सः)** वह **(आत्मनः)** आत्मा के **(तत्त्वं)** यथार्थ स्वरूप को **(पश्यति)** देखता है **(तत्)** उस **(तत्त्वं)** आत्मस्वरूप को **(इतरः जनः न)** दूसरा कोई मनुष्य नहीं

**(पश्यति)** देखता है/देख सकता है।

#### सविकल्प अवस्था हेय है, निर्विकल्प अवस्था उपादेय है

**अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।**
**धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रयेत्ततः ॥३६॥**

**अन्वयार्थ– (अविक्षिप्तं मनः)** क्षोभरहित मन **(आत्मनः)** आत्मा का **(तत्त्वं)** वास्तविक स्वरूप है **(विक्षिप्तं)** क्षुब्धमन **(आत्मनः)** आत्मा का **(भ्रान्तिः)** विभ्रम है **(ततः)** इसलिए **(तत् अविक्षिप्तं)** उस अविक्षिप्त अर्थात् रागद्वेषादि से रहित मन को **(धारयेत्)** धारण करें **(विक्षिप्तं)** विक्षिप्त अर्थात् रागद्वेषादि से क्षुब्ध मन को **(न आश्रयेत्)** आश्रय न दें।

#### अज्ञान अस्थिरता का कारण ज्ञान स्थिरता का कारण

**अविद्याभ्याससंस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।**
**तदेवज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते ॥३७॥**

**अन्वयार्थ– (अविद्याभ्याससंस्कारैः)** शरीरादि को शुचि, स्थिर और आत्मीय मानने रूप जो अविद्या के अभ्यास वाले संस्कारों से **(अवशं)** आत्मा के वश में न रहने वाला **(मनः)** मन **(क्षिप्यते)** क्षुब्ध हो जाता है **(तदेव)** वही मन **(ज्ञानसंस्कारैः)** आत्म-देह के भेदविज्ञानरूप ज्ञान के संस्कारों से **(स्वतः)** अपने आप ही **(तत्त्वे)** आत्मस्वरूप में **(अवतिष्ठते)** ठहर जाता है।

#### मान-अपमान ये सब कल्पनाभ्रम है

**अपमानादयस्तस्य विक्षेपो यस्य चेतसः।**
**नापमानादयस्तस्य न क्षेपो यस्य चेतसः ॥३८॥**

**अन्वयार्थ– (यस्य चेतसः)** जिसके मन का **(विक्षेपः)** क्षोभ–रागद्वेषादिरूप परिणमन होता है **(तस्य)** उसी के **(अपमानादयः)** अपमान आदि होते हैं। **(यस्य चेतसः)** जिसके मन का **(क्षेपः न)** क्षोभ–रागद्वेषादिरूप परिणमन नहीं होता **(तस्य)** उसके **(अपमानादयः)** अपमान आदि **(न)** नहीं होते हैं।

#### आत्मभावना से रागद्वेष नष्ट होते हैं

**यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।**
**तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात् ॥३९॥**

**अन्वयार्थ– (यदा)** जब **(तपस्विनः)** तपस्वी के **(मोहात्)** मोह के कारण से **(रागद्वेषौ)** रागद्वेष **(प्रजायेते)** उत्पन्न होते हैं **(तदैव)** उसी समय **(स्वस्थं आत्मानं)** स्वस्थ आत्मस्वरूप को **(भावयेत्)** भावें जिससे **(क्षणात्)** क्षणभर में ही **(शाम्यतः)** रागद्वेष शान्त हो जाते हैं।

### शरीर पर का प्रेम हटाने का उपाय

**यत्र काये मुनेः प्रेम ततः प्रच्याव्य देहिनं।**
**बुद्ध्या तदुत्तमे काये योजयेत् प्रेम नश्यति ॥४०॥**

**अन्वयार्थ– (यत्र काये)** जिस शरीर में **(मुनेः)** मुनि का **(प्रेम)** प्रेम है **(ततः)** उस शरीर से **(बुद्ध्या)** भेदज्ञान से **(देहिनम्)** आत्मा को **(प्रच्याव्य)** छुड़ाकर **(तदुत्तमे काये)** उस उत्तम चैतन्यस्वरूप आत्मा में **(योजयेत्)** लगायें **(प्रेम)** जिससे प्रेम **(नश्यति)** नाश को प्राप्त हो जाता है।

### आत्मज्ञान के बिना तप निरर्थक है

**आत्म - विभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति।**
**नाऽयतास्तत्र निर्वान्ति कृत्वाऽपि परमं तपः॥४१॥**

**अन्वयार्थ– (आत्मविभ्रमजं)** शरीरादिक में आत्मबुद्धिरूप विभ्रम से उत्पन्न हुआ **(दुःखं)** दुःख **(आत्मज्ञानात्)** शरीरादि से भिन्नरूप आत्मज्ञान से **(प्रशाम्यति)** शांत होता है **(तत्र)** उस आत्मस्वरूप में **(अयताः)** जो यत्न नहीं करते हैं, वे **(परमं तपः)** उत्कृष्ट तप **(कृत्वा अपि)** करके भी **(निर्वान्ति न)** निर्वाण नहीं प्राप्त करते हैं।

### अज्ञान तप और ज्ञान तप में अंतर

**शुभं शरीरं दिव्यांश्च विषयानभिवाञ्छति।**
**उत्पन्नात्ममतिर्देहे तत्त्वज्ञानी ततश्च्युतिं ॥४२॥**

**अन्वयार्थ– (देहे)** शरीर में **(उत्पन्नात्ममतिः)** जिसे आत्मबुद्धि पैदा हुई है वह **(शुभं शरीरं)** अच्छा शरीर **(च)** और **(दिव्यान् विषयान्)** स्वर्गीय भोग विषयों को **(अभिवाञ्छति)** चाहता है **(तत्त्वज्ञानी)** किन्तु आत्मस्वरूप का ज्ञाता जीव **(ततः)** इन विषयों और शरीर से **(च्युतिम्)** मुक्ति को चाहता है।

### अज्ञानी बद्ध होता है ज्ञानी मुक्त होता है

**परत्राहम्मतिः स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम्।**
**स्वस्मिन्नहम्मतिश्च्युत्वा परस्मान्मुच्यते बुधः॥४३॥**

**अन्वयार्थ– (परत्र)** शरीरादि पर पदार्थों में **(अहम्मतिः)** अपनेपन/आत्मपन की बुद्धि रखने वाला **(स्वस्मात्)** अपने स्वरूप से **(च्युतः)** दूर हो **(असंशयम्)** निश्चित ही **(बध्नाति)** कर्मबंध को प्राप्त होता है **(स्वस्मिन्)** अपने आप में **(अहम्मतिः)** आत्मबुद्धि रखने वाला **(बुधः)** ज्ञानी **(परस्मात्)** शरीरादि पर द्रव्यों से **(च्युत्वा)** छूटकर **(मुच्यते)** मुक्त हो जाता है।

### अज्ञानी और ज्ञानी में अंतर

**दृश्यमानमिदं मूढस्त्रिलिङ्गमवबुध्यते।**
**इदमित्यवबुद्धस्तु निष्पन्नं शब्दवर्जितम् ॥४४॥**

**अन्वयार्थ– (मूढः)** अज्ञानी/बहिरात्मा जीव **(दृश्यमानं)** दिखाई देने वाले **(इदम्)** इस जगत् को **(त्रिलिङ्गम्)** स्त्री-पुरुष-नपुंसक के भेद से तीन लिंग रूप **(अवबुध्यते)** जानता है। **(तु)** किन्तु **(अवबुद्धः)** ज्ञानी **(इदम्)** इस जगत् को **(निष्पन्नम्)** परिपूर्ण **(शब्दवर्जितम्)** नामादिक शब्द विकल्प से रहित **(इति)** इस प्रकार जानता है।

### केवल आत्मज्ञान भी कार्यकारी नहीं है

**जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भावयन्नपि।**
**पूर्वविभ्रमसंस्काराद् भ्रान्तिं भूयोऽपि गच्छति ॥४५॥**

**अन्वयार्थ– (आत्मनः)** आत्मा के **(तत्त्वं)** चैतन्य स्वरूप को **(जानन् अपि)** जानता हुआ भी तथा **(विविक्तं)** शरीरादि अन्य पदार्थों से भिन्न **(भावयन् अपि)** भावना करता हुआ भी **(पूर्वविभ्रमसंस्कारात्)** पूर्व के अज्ञान जनित संस्कारों के कारण **(भूयः अपि)** फिर भी **(भ्रान्तिं)** भ्रांति को **(गच्छति)** प्राप्त हो जाता है।

### ज्ञानी का माध्यस्थभाव

**अचेतनमिदं दृश्यमदृश्यं चेतनं ततः।**
**क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थोऽहं भवाम्यतः॥४६॥**

**अन्वयार्थ– (इदं दृश्यं)** यह दिखाई देने वाला सब कुछ **(अचेतनं)** जड़ है **(चेतनं)** चेतना **(अदृश्यं)** दिखाई न देने वाली वस्तु है **(ततः)** इसलिए **(क्व)** किस विषय में **(रुष्यामि)** रोष करूँ **(क्व)** और किस विषय में **(तुष्यामि)** संतुष्ट होऊँ **(अतः)** इसलिए **(अहं)** मैं **(मध्यस्थः)** तटस्थ **(भवामि)** होता हूँ।

### अज्ञानी और ज्ञानी का ग्रहण भिन्न-भिन्न होता है

**त्यागादाने बहिर्मूढः करोत्यध्यात्ममात्मवित्।**
**नान्तर्बहिरुपादानं न त्यागो निष्ठितात्मनः॥४७॥**

**अन्वयार्थ– (मूढः)** मोही व्यक्ति **(बहिः)** बाहरी विषयों में **(त्यागादाने)** त्याग और ग्रहण करता है अर्थात् राग के उदय से जिन्हें इष्ट समझता है उन्हें ग्रहण कर लेता है तथा द्वेष के उदय से जिनको अनिष्ट समझता है उनको छोड देता है **(आत्मवित्)** आत्म ज्ञानी **(अध्यात्मं)** अन्तरंग विषय को **(करोति)** त्याग और ग्रहण करता है अर्थात् अन्तरंग रागद्वेष का त्याग करता है और अपने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप निजभावों का ग्रहण करता है परन्तु **(निष्ठितात्मनः)** शुद्ध

स्वरूप में स्थित जो कृतकृत्य परमात्मा के **(अन्तर्बहिः)** अन्तरंग और बहिरंग विषय में **(न)** न तो **(उपादानं)** ग्रहण होता है और **(न त्यागः)** न त्याग ही होता है।

### ज्ञानी का निष्काम कर्मयोग

**युञ्जीत मनसाऽऽत्मानं वाक्कायाभ्यां वियोजयेत्।**
**मनसा व्यवहारं तु त्यजेद्वाक्काययोजितम् ॥४८॥**

**अन्वयार्थ– (आत्मानम्)** आत्मा को **(मनसा)** मन के साथ **(युञ्जीत)** सम्बन्धित/ संयोजित करे–चित्त और आत्मा का अभेदरूप से अध्यवसाय करे **(वाक्कायाभ्यां)** वचन और काय से आत्मा को **(वियोजयेत्)** पृथक् करें **(तु)** तथा **(वाक्काययोजितम्)** वचन और शरीर से जुड़े **(व्यवहारं)** व्यवहार को **(मनसा)** मन से **(त्यजेत्)** छोड़ देवें।

### अज्ञानी और ज्ञानी का विश्वासस्थान

**जगद्देहात्मदृष्टीनां विश्वास्यं रम्यमेव च।**
**स्वात्मन्येवात्मदृष्टीनां क्व विश्वासः क्व वा रतिः ॥४९॥**

**अन्वयार्थ– (देहात्मदृष्टीनां)** शरीर में आत्मदृष्टि रखने वाले मिथ्यादृष्टि बहिरात्माओं को **(जगत्)** यह संसार **(विश्वास्यं)** विश्वास योग्य **(च)** और **(रम्यं)** मनोरंजक/रमणीय **(एव)** ही लगता है। **(स्वात्मनि एव)** अपनी आत्मा में ही **(आत्मदृष्टीनाम्)** आत्मदृष्टि रखने वाले सम्यग्दृष्टि अन्तरात्माओं को **(क्व)** कहाँ **(विश्वासः)** भरोसा **(वा)** अथवा **(क्व)** कहाँ **(रतिः)** राग होता है अर्थात् नहीं होता है।

### ज्ञानी की चर्या

**आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।**
**कुर्यादर्थवशात्किञ्चिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः ॥५०॥**

**अन्वयार्थ– (आत्मज्ञानात्)** आत्मज्ञान से **(परं कार्यं)** भिन्न दूसरे कार्य को **(चिरं)** बहुत समय तक **(बुद्धौ)** बुद्धि में **(न)** नहीं **(धारयेत्)** धारण करना चाहिए **(अर्थवशात्)** स्वपर के उपकारादिरूप प्रयोजन के वश **(अतत्परः)** उस कार्य में तत्परता न दिखाते हुए **(वाक्कायाभ्याम्)** वचन और काय से **(किञ्चित्)** कुछ **(कुर्यात्)** करें।

### ज्ञानी की दृष्टि

**यत्पश्यामीन्द्रियैस्तन्मे नास्ति यन्नियतेन्द्रियः।**
**अन्तः पश्यामि सानन्दं तदस्तु ज्योतिरुत्तमम्॥५१॥**

**अन्वयार्थ– (यत्)** जो कुछ शरीरादिक बाह्य पदार्थ **(इन्द्रियैः)** इन्द्रियों के द्वारा **(पश्यामि)**

मैं देखता हूँ **(तत्)** वह **(मे)** मेरा **(नास्ति)** नहीं है **(नियतेन्द्रियः)** संयत इन्द्रिय होकर **(यत्)** जो **(उत्तमं)** उत्कृष्ट अतीन्द्रिय **(सानन्दं ज्योतिः)** आनंदमय ज्ञान प्रकाश को **(अन्तः)** अन्तरङ्ग में **(पश्यामि)** मैं देखता हूँ अर्थात् अनुभव करता हूँ **(तत्)** वही मेरा वास्तविक स्वरूप **(अस्तु)** होना चाहिए।

### ज्ञानी के सुख-दुःख की झलक

**सुखमारब्धयोगस्य बहिर्दुःखमथाऽऽत्मनि।**
**बहिरेवाऽसुखं सौख्यमध्यात्मं भावितात्मनः ॥५२॥**

**अन्वयार्थ– (आरब्धयोगस्य)** आत्मध्यान का अभ्यास प्रारम्भ करने वाले के **(बहिः)** बाह्य विषयों में **(सुखं)** सुख मालूम होता है **(अथ)** और **(आत्मनि)** आत्मा के विषय में **(दुःखं)** कष्ट होता है **(भावितात्मनः)** किन्तु आत्मा की भावना के अभ्यासी जन के **(बहिः)** बाहर **(एव)** ही **(असुखं)** दुःख तथा **(अध्यात्मं)** अपनी आत्मा में **(सौख्यं)** सुख भासता है।

### ज्ञानी का व्यापार

**तद् ब्रूयात्तत्परान् पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।**
**येनाऽविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत् ॥५३॥**

**अन्वयार्थ– (तत् ब्रूयात्)** उस आत्मस्वरूप का कथन करे–उसे दूसरों को बतलावे **(तत् परान् पृच्छेत्)** उस आत्मस्वरूप को दूसरे आत्मानुभवी पुरुषों–विशेष ज्ञानियों से पूछे **(तत् इच्छेत्)** उस आत्मस्वरूप को चाहे **(तत्परः भवेत्)** उस आत्मस्वरूप में लीन हो **(येन)** जिससे **(अविद्यामयं रूपं)** अज्ञानमय बहिरात्मस्वरूप को **(त्यक्त्वा)** छोड़ करके **(विद्यामयं)** ज्ञानमय/परमात्मस्वरूपमय **(व्रजेत्)** हो जावे।

### अज्ञानी और ज्ञानी का व्यापार

**शरीरे वाचि चात्मानं सन्धत्ते वाक्शरीरयोः।**
**भ्रान्तोऽभ्रान्तः पुनस्तत्त्वं पृथगेषां निबुध्यते ॥५४॥**

**अन्वयार्थ– (वाक्शरीरयोः)** वचन और शरीर में **(भ्रान्तः)** भ्रांत आत्मा–बहिरात्मा **(शरीरे)** शरीर **(च)** और **(वाचि)** वचन में **(आत्मानं)** आत्मा को **(सन्धत्ते)** आरोपित करता है–अर्थात् वचन को तथा शरीर को आत्मा मानता है **(पुनः)** परन्तु **(अभ्रान्तः)** अभ्रान्त आत्मा–ज्ञानी पुरुष **(एषां)** इन शरीर और वचन के **(तत्त्वं)** स्वरूप को **(पृथक्)** आत्मा से भिन्न **(निबुध्यते)** समझता है।

### अज्ञानी का विषयभोग निरर्थक

**न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मनः।**
**तथापि रमते बालस्तत्रैवाज्ञानभावनात् ॥५५॥**

**अन्वयार्थ– (इन्द्रियार्थेषु)** पाँचों इन्द्रियों के विषयों में **(तत् न अस्ति)** वह कुछ भी नहीं हैं **(यत्)** जो **(आत्मनः)** आत्मा के **(क्षेमङ्करं)** हित में हो **(तथापि)** फिर भी **(बालः)** मोही अज्ञानी जीव **(अज्ञानभावनात्)** अज्ञान भावना से चिरकालीन मिथ्यात्व के संस्कारवश **(तत्र एव)** उन्हीं विषयों में **(रमते)** रमण करता है।

### अज्ञानी जीवों का दुरवस्था

**चिरं सुषुप्तास्तमसि मूढात्मानः कुयोनिषु।**
**अनात्मीयात्मभूतेषु ममाहमिति जाग्रति ॥५६॥**

**अन्वयार्थ– (मूढात्मानः)** ये मूर्ख अज्ञानी जीव **(तमसि)** मिथ्यात्वरूपी अंधकार के उदय वश **(चिरं)** अनादिकाल से **(कुयोनिषु)** नित्य निगोदादि कुयोनियों में **(सुषुप्ताः)** सो रहे हैं–अतीव जड़ता को प्राप्त हो रहे हैं यदि कदाचित् संज्ञी प्राणियों में उत्पन्न होकर कुछ जागते भी हैं तो **(अनात्मीयात्मभूतेषु मम अहं)** अनात्मीयभूत स्त्री–पुत्रादिक में ये मेरे हैं और अनात्मभूत शरीरादिकों में मैं ही इन रूप हूँ **(इति जाग्रति)** ऐसा अध्यवसाय करने लगते है।

### आत्मभावना में सचेत रहने का उपदेश

**पश्येन्निरन्तरं देहमात्मनोऽनात्मचेतसा।**
**अपरात्मधियाऽन्येषामात्मतत्त्वे व्यवस्थितः ॥५७॥**

**अन्वयार्थ– (आत्मतत्त्वे)** आत्म स्वरूप में **(व्यवस्थितः)** अच्छी तरह लीन होता हुआ **(आत्मनः)** अपने **(देहं)** शरीर को **(अनात्मचेतसा)** ''यह शरीर मेरा नहीं है'' इस अनात्मबुद्धि से तथा **(अन्येषां)** दूसरों की देह को भी **(अपरात्मधिया)** यह शरीर उनकी आत्मा नहीं है, इस बुद्धि से **(निरन्तरं)** लगातार **(पश्येत्)** देखें।

### आत्मा बतलाया नहीं जा सकता

**अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा।**
**मूढात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञापनश्रमः ॥५८॥**

**अन्वयार्थ– (यथा)** जैसे **(मूढ़ात्मानः)** मोही आत्मायें **(अज्ञापितं)** बिना समझाये हुए **(मां)** मेरे स्वरूप को **(न जानन्ति)** नहीं जानते हैं **(तथा)** वैसे ही **(ज्ञापितं)** समझाये हुए **(मां)** मेरे स्वरूप को नहीं समझते हैं **(ततः)** इसलिए **(तेषां)** उनको **(ज्ञापनश्रमः)** समझाने का परिश्रम **(मे)** मेरा

**(वृथा)** निष्फल है।

#### आत्मा क्यों नहीं बतलाया जा सकता ?

**यद्बोधयितुमिच्छामि तन्नाहं यदहं पुनः।**
**ग्राह्यं तदपि नान्यस्य तत्किमन्यस्य बोधये ॥५९॥**

**अन्वयार्थ–** **(यत्)** जिसे **(बोधयितुं)** समझाने के लिए **(इच्छामि)** मैं इच्छा करता हूँ **(तत्)** वह **(अहं)** मैं **(न)** नहीं हूँ **(पुनः)** तथा **(यत् अहं)** जो मैं हूँ **(तत् अपि)** वह भी (**अन्यस्य)** अन्य के **(ग्राह्यं)** ग्रहण करने योग्य **(न)** नहीं है **(तत्)** इसलिए **(अन्यस्य)** दूसरे को **(किम्)** क्या **(बोधये)** समझाऊँ।

#### अज्ञानी और ज्ञानी की रुचि

**बहिस्तुष्यति मूढात्मा पिहितज्योतिरन्तरे।**
**तुष्यत्यन्तः प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्तकौतुकः॥६०॥**

**अन्वयार्थ–** **(अन्तरे)** अन्तरङ्ग में **(पिहितज्योतिः)** जिसकी ज्ञान ज्योति मोह से आवृत है **(मूढात्मा)** ऐसा मूढ़ात्मा **(बहिः)** बाह्य शरीरादि विषयों में **(तुष्यति)** संतोष करता है **(प्रबुद्धात्मा)** किन्तु जिसकी आत्मा में ज्ञान ज्योति प्रकट हुई है वह **(बहिः)** बाह्य विषयों में **(व्यावृत्तकौतुकः)** उत्सुकता से रहित हो **(अन्तः)** अपनी आत्मा में **(तुष्यति)** सन्तुष्ट होता है।

#### अज्ञानी के श्रम वृथा है

**न जानन्ति शरीराणि सुखदुःखान्यबुद्धयः।**
**निग्रहानुग्रहधियं तथाप्यत्रैव कुर्वते ॥६१॥**

**अन्वयार्थ–** **(शरीराणि)** औदारिक आदि शरीर **(सुखदुःखानि)** सुख और दुःख को जड़ होने से **(न)** नहीं **(जानन्ति)** अनुभव करते हैं। **(तथापि)** फिर भी **(अबुद्धयः)** अज्ञानीजन **(अत्र एव)** इन शरीरों में ही **(निग्रहानुग्रहधियं)** अपकार और उपकार की बुद्धि को **(कुर्वते)** करते हैं।

#### संसार और मोक्ष का कारण

**स्वबुद्ध्या यावद् गृह्णीयात् कायवाक्चेतसां त्रयम्।**
**संसारस्तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः॥६२॥**

**अन्वयार्थ–** **(यावत्)** जब तक **(कायवाक्चेतसां त्रयं)** शरीर, वचन और मन इन तीनों का **(स्वबुद्ध्या)** यह मैं हूँ इस प्रकार की आत्म बुद्धि से **(गृह्णीयात्)** ग्रहण है **(तावत्)** तब तक **(संसारः)** संसार है **(तु )** परन्तु **(एतेषां)** इन तीनों के **(भेदाभ्यासे)** भेदज्ञान का अभ्यास होने पर **(निर्वृतिः)** मुक्ति है।

### पुष्ट शरीर से आत्मा पुष्ट नहीं कहा जाता

**घने वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न घनं मन्यते तथा।**
**घने स्वदेहेप्यात्मानं न घनं मन्यते बुधः॥६३॥**
**जीर्णे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न जीर्णं मन्यते तथा।**
**जीर्णे स्वदेहेऽप्यात्मानं न जीर्णं मन्यते बुधः॥६४॥**
**नष्टे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न नष्टं मन्यते तथा।**
**नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मानं न नष्टं मन्यते बुधः॥६५॥**
**रक्ते वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न रक्तं मन्यते तथा।**
**रक्ते स्वदेहेऽप्यात्मानं न रक्तं मन्यते बुधः॥६६॥**

**अन्वयार्थ– (यथा)** जैसे कोई मनुष्य **(वस्त्रे घने)** मोटे वस्त्र पहन लेने पर **(आत्मानं)** अपने को **(घनं)** मोटा **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(तथा)** वैसे ही **(स्वदेहे घनेऽपि)** अपनी देह के मोटे होने पर भी **(आत्मानं)** अपने को **(बुधः)** ज्ञानी पुरुष **(घनं)** मोटा **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(यथा)** जैसे कोई **(वस्त्रे जीर्णे)** वस्त्र के पुराना होने पर **(आत्मानं)** अपने को **(जीर्णं)** पुराना **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(तथा)** वैसे ही **(बुधः)** विद्वान् **(स्वदेहेअपि जीर्णे)** अपनी देह के भी पुरानी हो जाने पर **(आत्मानं)** आत्मा को **(जीर्णं)** जीर्ण **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(यथा)** जैसे **(वस्त्रे नष्टे)** वस्त्र के फट जाने पर कोई **(आत्मानं)** अपने को **(नष्टं)** नष्ट हुआ **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(तथा)** वैसे ही **(बुधः)** बुद्धिमान **(स्वदेहे अपि नष्टे)** अपनी देह के नष्ट होने पर भी **(आत्मानं)** अपनी आत्मा को **(नष्टं)** नष्ट हुआ **(न मन्यते)** नहीं मानता है। **(यथा)** जैसे कोई **(वस्त्रे रक्ते)** लाल कपड़े पहनने पर **(आत्मानं)** अपनी देह को **(रक्तं)** लाल **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(तथा)** वैसे ही **(बुधः)** विद्वान् **(स्वदेहे रक्ते अपि)** अपनी देह के लाल होने पर भी **(आत्मानं)** अपनी आत्मा को **(रक्तं)** लाल **(न मन्यते)** नहीं मानता है।

### ज्ञानी का समभाव

**यस्य सस्पन्दमाभाति निःस्पन्देन समं जगत्।**
**अप्रज्ञमक्रियाभोगं स शमं याति नेतरः॥६७॥**

**अन्वयार्थ– (यस्य)** जिसको **(सस्पन्दं)** स्पन्दन सहित **(जगत्)** यह संसार **(निःस्पन्देन समं)** स्पन्दनरहित के समान **(अप्रज्ञम्)** ज्ञानरहित **(अक्रियाभोगं)** क्रिया तथा भोग रहित **(आभाति)** मालूम होता है **(सः)** वह **(शमं)** शम भाव को **(याति)** प्राप्त होता है **(इतरः न)** अन्य पुरुष नहीं।

### संसार भ्रमण का कारण

**शरीरकञ्चुकेनात्मा संवृतज्ञानविग्रहः।**
**नात्मानं बुध्यते तस्माद् भ्रमत्यतिचिरं भवे ॥६८॥**

**अन्वयार्थ– (शरीरकञ्चुकेन)** कार्माण शरीररूपी कांचली से **(संवृतज्ञानविग्रहः)** जिसका ज्ञानरूपी शरीर ढका है, **(आत्मा)** वह आत्मा **(आत्मानं)** अपनी आत्मा को **(न)** नहीं **(बुध्यते)** जानता है **(तस्मात्)** इस कारण से **(अतिचिरं)** चिरकाल तक वह **(भवे)** संसार में **(भ्रमति)** भ्रमण किया करता है।

### अज्ञानी शरीर को ही अपना घर मानता है

**प्रविशद्गलतां व्यूहे देहेऽणूनां समाकृतौ।**
**स्थितिभ्रान्त्या प्रपद्यन्ते तमात्मानमबुद्धयः ॥६९॥**

**अन्वयार्थ– (अबुद्धयः)** अज्ञानी जीव **(प्रविशद्गलतां)** प्रवेश करने और गलने वाले **(अणूनां)** अणुओं की **(व्यूहे देहे)** समुदायात्मक शरीर में **(समाकृतौ)** समान आकृति बनी रहने पर **(स्थितिभ्रान्त्या)** यह देह बनी रहेगी इस भ्रम से **(तम्)** उस देह को **(आत्मानम्)** आत्मा ही **(प्रपद्यन्ते)** समझ लेते हैं।

### आत्मा का शरीर केवलज्ञान है

**गौरः स्थूलः कृशो वाऽहमित्यङ्गेनाविशेषयन्।**
**आत्मानं धारयेन्नित्यं केवलज्ञप्तिविग्रहम् ॥७०॥**

**अन्वयार्थ– (अहं)** मैं **(गौरः)** गोरा हूँ **(स्थूलः)** मोटा हूँ **(वा)** अथवा **(कृशः)** पतला हूँ **(इति)** इस प्रकार की मान्यता को **(अङ्गेन)** शरीर के साथ **(अविशेषयन्)** विशेष रूप से न लगाकर **(केवलज्ञप्तिविग्रहम्)** केवलज्ञान शरीरी **(आत्मानं)** आत्मा को **(नित्यं)** हमेशा **(धारयेत्)** धारण करें।

### मुक्ति और संसार का एकान्त कारण

**मुक्तिरेकान्तिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृतिः।**
**तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला धृतिः ॥७१॥**

**अन्वयार्थ– (यस्य)** जिसके **(चित्ते)** चित्त में **(अचला धृतिः)** निश्चल धैर्य है **(तस्य)** उसकी **(मुक्तिः)** मुक्ति **(एकान्तिकी)** नियम से अवश्य है। **(यस्य)** जिसके **(अचला धृतिः)** निश्चल धैर्य **(नास्ति)** नहीं है **(तस्य)** उसकी **(मुक्तिः)** मुक्ति **(एकान्तिकी)** एकान्तरूप से आवश्यक **(न)** नहीं हैं।

**पूर्व अवस्था में सविकल्प अवस्था आवश्यक है**

**जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः।**
**भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ॥७२॥**

**अन्वयार्थ– (जनेभ्यः)** मनुष्यों से **(वाक्)** वचन प्रवृत्ति होती है **(ततः)** उस वचन विलास से **(मनसः)** मन की **(स्पन्दः)** चंचलता होती है **(तस्मात्)** उससे **(चित्तविभ्रमाः)** मन में अनेक विकल्प **(भवन्ति)** होते हैं **(ततः)** इसलिए **(योगी)** योगी, भेदविज्ञानी पुरुष **(जनैः)** लोगों के साथ **(संसर्गं)** मिलना जुलना **(त्यजेत्)** छोड़ देवें।

**निर्विकल्प योगी का वासस्थान आत्मा ही है**

**ग्रामोऽरण्यमिति द्वेधा निवासोऽनात्मदर्शिनाम्।**
**दृष्टात्मनां निवासस्तु विविक्तात्मैव निश्चलः ॥७३॥**

**अन्वयार्थ–(अनात्मदर्शिनाम्)** जिन्होंने आत्मा का अनुभव नहीं किया है, उन्हीं को **(ग्रामः)** यह गाँव है **(अरण्यं)** यह वन है **(इति)** ऐसा **(द्वेधा)** दो तरह का **(निवासः)** निवास होता है **(तु)** किन्तु **(दृष्टात्मनां)** जिन्होंने आत्मा का अनुभव किया है उनको **(निश्चलः)** अचल **(विविक्तात्मा एव)** पवित्र आत्मा ही **(निवासः)** निवास होता है।

**संसार और मुक्ति का कारण**

**देहान्तरगतेर्बीजं देहेऽस्मिन्नात्मभावना।**
**बीजं विदेहनिष्पत्तेरात्मन्येवात्मभावना ॥७४॥**

**अन्वयार्थ– (अस्मिन् देहे)** इस शरीर में **(आत्मभावना)** आत्मा की भावना होना **(देहान्तरगतेः)** अन्य देह की प्राप्ति का **(बीजं)** कारण है और **(आत्मनि)** आत्मा में **(एव)** ही **(आत्मभावना)** आत्मा की भावना होना **(विदेहनिष्पत्तेः)** शरीर रहित आत्मा की प्राप्ति का **(बीजं)** कारण है।

**आत्मा ही आत्मा का गुरु है**

**नयत्यात्मानमात्मैव जन्म निर्वाणमेव च।**
**गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः ॥७५॥**

**अन्वयार्थ– (आत्मा एव )** आत्मा ही **(आत्मानं)** अपने आप को **(जन्म)** जन्म **(च)** और **(निर्वाणं)** निर्वाण में **(एव)** वस्तुतः **(नयति)** ले जाता है **(तस्मात्)** इस कारण से **(परमार्थतः)** वस्तुतः **(आत्मा)** आत्मा ही **(आत्मनः)** आत्मा का **(गुरुः)** गुरु है **(अन्यः न अस्ति)** दूसरा कोई नहीं है।

### अज्ञानी का मरणभय

**दृढात्मबुद्धिर्देहादावुत्पश्यन्नाशमात्मनः ।**
**मित्रादिभिर्वियोगं च बिभेति मरणाद् भृशम् ॥७६॥**

**अन्वयार्थ—(देहादौ)** शरीर आदि पर द्रव्यों में **(दृढात्मबुद्धिः)** जिसकी आत्म बुद्धि मजबूत है वह **(आत्मनः)** अपने **(नाशं)** विनाश को **(च)** और **(मित्रादिभिः)** मित्र आदि जनों से **(वियोगं)** विछोह को **(उत्पश्यन्)** देखता हुआ **(मरणात्)** मरण से **(भृशं)** बहुत **(बिभेति)** डरता है।

### ज्ञानी को मरणभय नहीं है

**आत्मन्येवात्मधीरन्यां शरीरगतिमात्मनः ।**
**मन्यते निर्भयं त्यक्त्वा वस्त्रं वस्त्रान्तरग्रहम् ॥७७॥**

**अन्वयार्थ— (आत्मनि एव)** आत्मा में ही **(आत्मधीः)** आत्मबुद्धि रखने वाला **(निर्भयं)** बिना किसी भय के **(शरीरगतिं)** शरीर की दशा को **(आत्मनः)** अपने से **(अन्यां)** अन्य किसी की **(वस्त्रं)** एक वस्त्र को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(वस्त्रान्तरग्रहम्)** अन्य वस्त्र को ग्रहण करने के समान **(मन्यते)** मानता है।



### ज्ञानी और अज्ञानी में अंतर

**व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे ।**
**जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥७८॥**

**अन्वयार्थ— (यः)** जो पुरुष **(व्यवहारे)** लोक व्यवहार में **(सुषुप्तः)** सोता है **(सः)** वह **(आत्मगोचरे)** आत्मा के विषय में **(जागर्ति)** जाग्रत रहता है **(च)** तथा जो **(अस्मिन् व्यवहारे)** इस लोक व्यवहार में **(जागर्ति)** जागता है वह **(आत्मगोचरे)** आत्मा के विषय में **(सुषुप्तः)** सोता है।

### भेदविज्ञान ही मुक्ति का कारण है

**आत्मानमन्तरे दृष्ट्वा दृष्ट्वा देहादिकं बहिः ।**
**तयोरन्तरविज्ञानादभ्यासादच्युतो भवेत् ॥७९॥**

**अन्वयार्थ—(अन्तरे)** अन्तरङ्ग में **(आत्मानं)** आत्मतत्त्व को **(दृष्ट्वा)** देखकर और **(देहादिकं)** शरीर आदि को **(बहिः)** बाहर **(दृष्ट्वा)** देखकर **(तयोः)** शरीर और आत्मा उन दोनों के **(अन्तर-विज्ञानात्)** भेदविज्ञानरूप **(अभ्यासात्)** अभ्यास से **(अच्युतः)** मुक्त **(भवेत्)** हो जाता है।

### ज्ञानी को जगत् काष्ठपाषाण की तरह भासता है

**पूर्वं दृष्टात्मतत्त्वस्य विभात्युन्मत्तवज्जगत् ।**
**स्वभ्यस्तात्मधियः पश्चात् काष्ठपाषाणरूपवत् ॥८०॥**

**अन्वयार्थ– (दृष्टात्मतत्त्वस्य)** आत्मतत्त्व का अनुभव करने वाले के **(पूर्वं)** पहले **(जगत्)** यह जगत् **(उन्मत्तवत्)** पागल व्यक्ति की तरह **(विभाति)** प्रतिभासित होता है **(पश्चात्)** बाद में **(स्वभ्यस्तात्मधियः)** आत्मतत्त्व के अभ्यास में परिपक्व बुद्धि वाले अन्तरात्मा के **(काष्ठ-पाषाणरूपवत्)** यह जगत् काष्ठ या पत्थर के समान चेष्टा रहित मालूम पड़ता है।

### भेदज्ञान के बिना मोक्ष नहीं

**शृण्वन्नप्यन्यतः कामं वदन्नपि कलेवरात् ।**
**नात्मानं भावयेद्भिन्नं यावत्तावन्न मोक्षभाक् ॥८१॥**

**अन्वयार्थ– (अन्यतः)** अन्य गुरु आदि से **(कामं)** अत्यधिक इच्छानुसार **(शृण्वन् अपि)** सुनने पर भी **(वदन् अपि)** तथा बतलाते हुए भी **(यावत्)** जब तक **(आत्मानम्)** आत्मा को **(कलेवरात्)** शरीर से **(भिन्नं)** भिन्न **(न भावयेत्)** नहीं भाता है **(तावत्)** तब तक **(मोक्षभाक् न)** मोक्ष का पात्र नहीं होता है।



### स्वप्न में भी देह में आत्मत्व बुद्धि नहीं होनी चाहिए

**तथैव भावयेद्देहाद् व्यावृत्यात्मानमात्मनि।**
**यथा न पुनरात्मानं देहे स्वप्नेऽपि योजयेत् ॥८२॥**

**अन्वयार्थ– (देहात्)** शरीर से **(आत्मानं)** आत्मा को **(व्यावृत्य)** हटाकर **(आत्मनि)** आत्मा में **(तथैव)** उस प्रकार से ही **(भावयेत्)** भावना करें **(यथा)** जिससे **(पुनः)** फिर **(स्वप्नेऽपि)** स्वप्न में भी **(देहे)** शरीर में **(आत्मानं)** आत्मा को **(न)** न **(योजयेत्)** जोड़े ।

### मोक्ष के लिए पाप-पुण्य हेय है

**अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः।**
**अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत् ॥८३॥**

**अन्वयार्थ– (अव्रतैः)** हिंसा आदि पाँच अव्रतों के द्वारा **(अपुण्यम्)** पाप होता है तथा **(व्रतैः)** अहिंसा आदि पाँच व्रतों से **(पुण्यं)** पुण्य होता है **(तयोः)** इन पुण्य और पाप दोनों का **(व्ययः)** विनाश **(मोक्षः)** मोक्ष है **(ततः)** इसलिए **(मोक्षार्थी)** मोक्ष का इच्छुक भव्य **(अव्रतानि इव)** अव्रतों के समान **(व्रतानि अपि)** व्रतों को भी **(त्यजेत्)** छोड़े।

### पाप-पुण्य के त्याग का क्रम

**अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः।**
**त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः ॥८४॥**

**अन्वयार्थ– (अव्रतानि)** हिंसादि पाँच अव्रतों को **(परित्यज्य)** छोड़कर **(व्रतेषु)** अहिंसादि पाँच व्रतों में **(परिनिष्ठितः)** निष्ठावान रहे अर्थात् उनका दृढ़ता के साथ पालन करे **(आत्मनः)** आत्मा के **(परमं पदं)** सर्वोत्कृष्ट पद/वीतराग पद को **(संप्राप्य)** प्राप्त करके **(तानि)** उन व्रतों को **(अपि)** भी **(त्यजेत्)** त्यागे।

### अंतरंग विकल्प ही दुःख का कारण है

**यदन्तर्जल्पसम्पृक्तमुत्प्रेक्षाजालमात्मनः ।**
**मूलं दुःखस्य तन्नाशे शिष्टमिष्टं परं पदम् ॥८५॥**

**अन्वयार्थ– (यत्)** जो **(उत्प्रेक्षाजालं)** कल्पनाओं का जाल **(अन्तर्जल्पसम्पृक्तं)** अन्तर्जल्प के साथ चलता रहता है वह **(आत्मनः)** आत्मा के **(दुःखस्य)** दुःख का **(मूलं)** मुख्य कारण है **(तन्नाशे)** उस अन्तर्जल्प के नाश होने पर **(परं पदं)** आत्मा का उत्कृष्ट पद **(इष्टं)** जो कि इष्ट है **(शिष्टं)** कहा गया है।



### शुभ-अशुभ विकल्पों का नाश करने का क्रम

**अव्रती व्रतमादाय व्रती ज्ञानपरायणः।**
**परात्मज्ञानसम्पन्नः स्वयमेव परो भवेत् ॥८६॥**

**अन्वयार्थ– (अव्रती)** व्रत रहित जीव **(व्रतं)** व्रतों को **(आदाय)** ग्रहण करके **(व्रती)** व्रत सहित हो **(ज्ञानपरायणः)** आत्मज्ञान में कुशल होवे। **(परात्मज्ञानसम्पन्नः)** उत्कृष्ट आत्म ज्ञान से सम्पन्न होता हुआ **(स्वयं एव)** स्वयं ही **(परः)** उत्कृष्ट आत्मा **(भवेत्)** होवे।

### बाह्य लिंग मुक्ति का कारण नहीं है

**लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं देह एवात्मनो भवः।**
**न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये लिङ्गकृताऽऽग्रहाः ॥८७॥**

**अन्वयार्थ– (लिङ्गं)** लिङ्ग **(देहाश्रितं)** शरीर के आश्रित **(दृष्टं)** देखा गया है **(देहः)** शरीर **(एव)** ही **(आत्मनः)** आत्मा का **(भवः)** संसार है **(तस्मात्)** इसलिए **(ये)** जो लोग **(लिङ्गकृताऽऽग्रहाः)** लिंगधारण से ही मोक्ष है, ऐसा आग्रह करते हैं **(ते)** वे लोग **(भवात्)** संसार से **(न मुच्यन्ते)** नहीं छूटते हैं।

### विशिष्ट जाति भी मुक्ति का कारण नहीं है

**जातिर्देहाश्रिता दृष्टा देह एवात्मनो भवः।**
**न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये जातिकृताग्रहाः ॥८८॥**

**अन्वयार्थ–** **(जातिः)** जाति **(देहाश्रिता)** शरीर के आश्रित **(दृष्टा)** देखी गयी है **(देहः)** शरीर **(एव)** ही **(आत्मनः)** आत्मा का **(भवः)** संसार है। **(तस्मात्)** इस कारण से **(ये)** जो पुरुष **(जातिकृता-ग्रहाः)** जाति कृत आग्रह करने वाले हैं **(ते)** वे **(भवात्)** संसार से **(न मुच्यन्ते)** नहीं छूटते हैं।

### धर्मपंथ का आग्रह भी मुक्ति का कारण नहीं है

**जातिलिङ्गविकल्पेन येषां च समयाग्रहः।**
**तेऽपि न प्राप्नुवन्त्येव परमं पदमात्मनः॥८९॥**

**अन्वयार्थ–** **(येषां)** जिनका **(च)** भी **(जातिलिङ्गविकल्पेन)** जाति और लिङ्ग के विकल्प से **(समयाग्रहः)** आगम सम्बन्धी आग्रह है **(ते)** वे **(अपि)** भी **(आत्मनः)** आत्मा के **(परमं)** उत्कृष्ट **(पदं)** पद को **(न एव)** नहीं **(प्राप्नुवन्ति)** प्राप्त करते हैं।

### अज्ञानी जीव की प्रीति और द्वेष की विरुद्ध प्रक्रिया

**यत्त्यागाय निवर्तन्ते भोगेभ्यो यदवाप्तये।**
**प्रीतिं तत्रैव कुर्वन्ति द्वेषमन्यत्र मोहिनः॥९०॥**

**अन्वयार्थ–** **(यत् त्यागाय)** जिस शरीर आदि के त्याग के लिए **(यत् अवाप्तये)** तथा जिस परम पद की प्राप्ति के लिए **(भोगेभ्यः)** भोगों से जीव **(निवर्तन्ते)** दूर हटते हैं पुनः **(मोहिनः)** मोही जीव **(तत्र एव)** उन त्याग की हुई वस्तुओं में ही **(प्रीतिं)** प्रेम **(कुर्वन्ति)** करते हैं **(अन्यत्र)** और परमपद के विषय में **(द्वेषम्)** द्वेष करते हैं।

### अज्ञानी का भ्रम

**अनन्तरज्ञः सन्धत्ते दृष्टिं पङ्गोर्यथाऽन्धके।**
**संयोगात् दृष्टिमङ्गेऽपि सन्धत्ते तद्वदात्मनः॥९१॥**

**अन्वयार्थ–** **(अनन्तरज्ञः)** दो वस्तुओं के अन्तर को न जानने वाला **(यथा)** जिस प्रकार **(पङ्गोः)** पंगु की **(दृष्टिं)** दृष्टि को **(अन्धके)** अन्धे पुरुष में **(संयोगात्)** संयोग सम्बन्ध से **(सन्धत्ते)** मान लेता है **(तद्वत्)** वैसे ही **(आत्मनः)** आत्मा की **(दृष्टिं)** दृष्टि को **(अङ्गे अपि)** शरीर में भी **(सन्धत्ते)** धारण कर लेता है।

### ज्ञानी का भ्रम निराश

**दृष्टभेदो यथा दृष्टिं पङ्गोरन्धे न योजयेत्।**
**तथा न योजयेद् देहे दृष्टात्मा दृष्टिमात्मनः ॥९२॥**

**अन्वयार्थ– (यथा)** जैसे **(दृष्टभेदः)** लंगड़े और अन्धे के भेद को देखने वाला **(पङ्गोः)** लंगड़े की **(दृष्टिं)** दृष्टि को **(अन्धे)** अन्धे पुरुष में **(न योजयेत्)** नहीं लगाता है **(तथा)** वैसे ही **(दृष्टात्मा)** शरीर और आत्मा को देखने वाला **(आत्मनः)** आत्मा के **(दृष्टिं)** दर्शन ज्ञान स्वरूप को **(देहे)** शरीर में **(न योजयेत्)** नहीं जोड़ता है।

### अज्ञानी और ज्ञानी का भ्रम की मान्यता में अंतर

**सुप्तोन्मत्ताद्यवस्थैव विभ्रमोऽनात्मदर्शिनाम्।**
**विभ्रमोऽक्षीणदोषस्य सर्वावस्थाऽऽत्मदर्शिनः ॥९३॥**

**अन्वयार्थ–(अनात्मदर्शिनां)** आत्मा का दर्शन नहीं करने वालों को **(सुप्तोन्मत्ताद्यवस्था एव)** सुप्त, उन्मत्त आदि अवस्थायें ही **(विभ्रमः)** विभ्रम दिखती है **(अक्षीणदोषस्य)** जिनके सभी दोष क्षीण नहीं हुए हैं, ऐसे **(आत्मदर्शिनः)** आत्मदर्शी की **(सर्वावस्था)** सभी दशायें**(विभ्रमः)** विभ्रम हैं।

### अज्ञानी को जागते हुए भी मुक्ति नहीं, ज्ञानी को सोते हुए भी मुक्ति होती है

**विदिताऽशेषशास्त्रोऽपि जाग्रदपि न मुच्यते।**
**देहात्मदृष्टिर्ज्ञातात्मा सुप्तोन्मत्तोऽपि मुच्यते ॥९४॥**

**अन्वयार्थ– (देहात्मदृष्टिः)** देह में आत्म दृष्टि रखने वाला **(विदिता-शेषशास्त्रः अपि)** समस्त शास्त्रों का जानकार होकर भी **(जाग्रत् अपि)** जागता हुआ भी **(न मुच्यते)** नहीं मुक्त होता है **(ज्ञातात्मा)** आत्मस्वरूप का ज्ञाता **(सुप्तोन्मत्तः अपि)** सोया हुआ या उन्मत्त हुआ भी **(मुच्यते)** मुक्त हो जाता है।

### जहाँ श्रद्धा वहाँ चित्त की स्थिरता

**यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।**
**यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते ॥९५॥**

**अन्वयार्थ– (यत्र एव)** जिस विषय में **(पुंसः)** पुरुष की **(आहितधीः)** बुद्धि लग जाती है **(तत्र एव)** उसी विषय में **(श्रद्धा)** उसकी श्रद्धा **(जायते)** उत्पन्न हो जाती है **(यत्र एव)** जिस विषय में ही **(श्रद्धा)** श्रद्धा **(जायते)** पैदा हो जाती है **(तत्र एव)** उसी में ही **(चित्तं)** मन **(लीयते)** लीन हो जाता है।

### आत्मज्ञान के बिना चित्त की स्थिरता नहीं

**यत्रानाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते।**
**यस्मान्निवर्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः ॥९६॥**

**अन्वयार्थ– (यत्र)** जिस विषय में **(पुंसः)** पुरुष की **(अनाहितधीः)** बुद्धि नहीं लगती है **(तस्मात्)** उस विषय से **(श्रद्धा)** रुचि **(निवर्तते)** हट जाती है। **(यस्मात्)** जिस विषय से **(श्रद्धा)** रुचि **(निवर्तते)** हट जाती है **(कुतः)** फिर कैसे **(चित्तस्य)** चित्त की **(तत् लयः)** उस विषय में लीनता हो।

### भिन्न परमात्मा की उपासना के लिए वर्तिका का दृष्टान्त

**भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।**
**वर्तिर्दीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी ॥९७॥**

**अन्वयार्थ– (यथा)** जिस प्रकार **(भिन्ना वर्तिः)** वर्तिका दीपक से भिन्न होकर भी **(दीपं)** दीपक की **(उपास्य)** उपासना करके **(तादृशी)** उस दीपक रूप **(भवति)** हो जाती है उसी प्रकार **(आत्मा)** यह आत्मा **(भिन्नात्मानम्)** अपने से भिन्न अरहन्त सिद्ध परमात्मा की **(उपास्य)** उपासना करके **(तादृशः)** उन जैसा ही **(परः)** परमात्मा **(भवति)** हो जाती है।

### अभिन्न आत्मा की उपासना के लिए वृक्ष का दृष्टान्त

**उपास्यात्मानमेवात्मा जायते परमोऽथवा।**
**मथित्वाऽऽत्मानमात्मैव जायतेऽग्निर्यथा तरुः॥९८॥**

**अन्वयार्थ– (अथवा)** अथवा **(आत्मा)** आत्मा **(आत्मानम् एव)** अपने को ही **(उपास्य)** ध्यान कर **(परमः)** परमात्मा **(जायते)** हो जाता है **(यथा)** जैसे **(तरुः)** वृक्ष **(आत्मानं)** अपने को ही **(मथित्वा)** रगड़ खाकर **(आत्मा एव)** अपने आप ही **(अग्निः)** अग्नि स्वरूप **(जायते)** हो जाता है।

### मुक्त होने पर आत्मा पुनः संसार में लौटता नहीं

**इतीदं भावयेन्नित्यमवाचांगोचरं पदम्।**
**स्वत एव तदाप्नोति यतो नावर्तते पुनः ॥९९॥**

**अन्वयार्थ– (इति)** ऊपर कहे ढंग से **(इदं)** इन **(अवाचांगोचरं)** वचनों के अगोचर **(पदं)** पद की **(नित्यं)** हमेशा **(भावयेत्)** भावना करनी चाहिए। **(स्वतः एव)** अपने आप ही **(तत्)** उस पद की **(आप्नोति)** प्राप्त होती है **(यतः)** जिस पद से **(पुनः)** फिर **(न आवर्तते)** लौटना नहीं पड़ता है।

### मोक्ष अयत्नसाध्य नहीं है, योगसाध्य है

**अयत्नसाध्यं निर्वाणं चित्तत्त्वं भूतजं यदि।**
**अन्यथा योगतस्तस्मान्न दुःखं योगिनां क्वचित् ॥१००॥**

**अन्वयार्थ–** **(यदि)** यदि **(चित्तत्वं)** चैतन्यपना **(भूतजं)** पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतों से उत्पन्न है तो **(निर्वाणं)** निर्वाण की प्राप्ति **(अयत्नसाध्यं)** के लिए किसी प्रयत्न की जरूरत नहीं है **(अन्यथा)** अन्य प्रकार से निर्वाण होता है **(तस्मात्)** इसलिए **(योगिनां)** योगियों के **(योगतः)** योग साधना से **(क्वचित्)** किसी भी प्रकार का **(दुःखं)** कष्ट **(न)** नहीं होता है।

### शरीर नष्ट होते हुए भी ज्ञानी दुःखी नहीं होता।

**स्वप्ने दृष्टे विनष्टेऽपि न नाशोऽस्ति यथात्मनः।**
**तथा जागरदृष्टेऽपि विपर्यासाविशेषतः ॥१०१॥**

**अन्वयार्थ–** **(यथा)** जैसे **(स्वप्ने)** स्वप्न **(दृष्टे)** देखने पर **(विनष्टे अपि)** उसके विनष्ट होने पर भी **(आत्मनः)** अपना **(नाशः)** विनाश **(न अस्ति)** नहीं होता **(तथा)** उसी प्रकार **(जागरदृष्टे अपि)** जाग्रत अवस्था में भी शरीर आदि का विनाश देखने पर भी अपना नाश नहीं होता देखता है **(विपर्यासा-विशेषतः)** क्योंकि विरोध दोनों में समान है।



### ज्ञानी उपसर्ग-परीषह सहन करने का अभ्यास करता है

**अदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःखसन्निधौ।**
**तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः ॥१०२॥**

**अन्वयार्थ–** **(अदुःखभावितं ज्ञानं)** दुःख का अनुभव किए बिना जो ज्ञान अर्जित किया जाता है, वह **(दुःखसन्निधौ)** दुःखों के सामने आने पर **(क्षीयते)** नाश को प्राप्त हो जाता है **(तस्मात्)** इसलिए **(मुनिः)** मुनि **(यथाबलं)** यथाशक्ति **(दुःखैः)** दुःखों से **(आत्मानं)** आत्मा की **(भावयेत्)** भावना करे।

### ज्ञानी की योगधारणा

**प्रयत्नादात्मनो वायुरिच्छाद्वेषप्रवर्तितात्।**
**वायोः शरीरयन्त्राणि वर्तन्ते स्वेषु कर्मसु ॥१०३॥**

**अन्वयार्थ–** **(आत्मनः)** आत्मा के **(इच्छाद्वेषप्रवर्तितात्)** इच्छा और द्वेष से होने वाले **(प्रयत्नात्)** प्रयत्न से **(वायुः)** वायु चलती है **(वायोः)** उस वायु से **(शरीरयन्त्राणि)** शरीर के यंत्र **(स्वेषु कर्मसु)** अपने-अपने कार्यों में **(वर्तन्ते)** वर्तने लगते हैं।

**तान्यात्मनि समारोप्य साक्षाण्यास्तेऽसुखं जडः।**
**त्यक्त्वाऽऽरोपं पुनर्विद्वान् प्राप्नोति परमं पदम् ॥१०४॥**

**अन्वयार्थ—(जडः)** मूर्ख अज्ञानी जीव **(साक्षाणि)** इन्द्रियों से सहित **(तानि)** इन शरीर यंत्रों को **(आत्मनि)** आत्मा में **(समारोप्य)** आरोपित करके **(असुखं आस्ते)** दुःखी रहता है **(पुनः)** पर **(विद्वान्)** अन्तरात्मा **(आरोपं)** इस आरोप को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(परमं पदं)** उत्कृष्ट पद को **(प्राप्नोति)** प्राप्त कर लेता है।

उपसंहार

**मुक्त्वा परत्र परबुद्धिमहंधियञ्च,**
**संसारदुःखजननीं जननाद्विमुक्तः।**
**ज्योतिर्मयं सुखमुपैति परात्मनिष्ठस्,**
**तन्मार्गमेतदधिगम्य समाधितन्त्रम् ॥१०५॥**

**अन्वयार्थ—(तन्मार्गं)** उस परमपद की प्राप्ति का उपाय बताने वाले **(एतत् समाधितन्त्रम्)** इस 'समाधितन्त्र' शास्त्र को **(अधिगम्य)** जानकर **(संसारदुःखजननीं)** संसार के दुःखों को उत्पन्न करने वाली **(परत्र)** शरीर आदि पर पदार्थों में **(परबुद्धिं)** अपनेपन की ममकार बुद्धि **(च)** और **(अहं धियं)** अहंकार बुद्धि को **(मुक्त्वा)** छोड़कर **(परात्मनिष्ठः)** उत्कृष्ट आत्मा में लीन होता हुआ **(जननात् विमुक्तः)** संसार से छूटकर **(ज्योर्तिमयं सुखं)** ज्ञान ज्योतिमय सुख को **(उपैति)** जीव प्राप्त कर लेता है।

❑ ❑ ❑

# इष्टोपदेश

**मंगलाचरण**

**यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मण:।**
**तस्मै सञ्ज्ञानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने ॥१॥**

**अन्वयार्थ– (यस्य)** जिस भगवान् के **(कृत्स्नकर्मण:)** समस्त कर्मों का **(अभावे)** अभाव हो जाने पर **(स्वयं)** अपने आप **(स्वभावाप्ति:)** स्वभाव की प्राप्ति हो गयी है **(तस्मै)** उस **(संज्ञानरूपाय)** अनन्तज्ञान स्वरूप **(परमात्मने)** परमात्मा के लिए **(नम: अस्तु)** नमस्कार हो।

**निमित्तोपादान से सिद्धि**

**योग्योपादानयोगेन दृषद: स्वर्णता मता ।**
**द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता ॥२॥**

**अन्वयार्थ– (योग्योपादानयोगेन)** योग्य उपादान के मिलने से **(दृषद:)** जैसे स्वर्णपाषाण की **(स्वर्णता मता)** स्वर्णरूपता मानी गई है, उसी तरह **(द्रव्यादिस्वादिसम्पत्तौ)** सुद्रव्य, सुक्षेत्र, सुकाल आदि कारण रूप सामग्री के मिल जाने पर **(आत्मन: अपि)** संसारी आत्मा की भी **(आत्मता)** शुद्ध आत्म स्वरूप की प्राप्ति होना **(मता)** माना गया है।



**व्रतों की सार्थकता**

**वरं व्रतै: पदं दैवं नाव्रतैर्वत नारकं।**
**छायातपस्थयोर्भेद: प्रतिपालयतोर्महान् ॥३॥**

**अन्वयार्थ– (व्रतै:)** व्रतों के द्वारा **(दैवं पदं)** देवपद पाना **(वरं)** अच्छा है (किन्तु) **(वत)** खेद है! **(अव्रतै:)** अव्रतों के द्वारा **(नारकं)** नरक में उत्पन्न होना **(न)** अच्छा नहीं है क्योंकि **(छायातपस्थयो:)** छाया और धूप में स्थित व्यक्तियों के समान **(प्रतिपालयतो:)** प्रतीक्षारत पुरुषों में **(महान् भेद:)** बड़ा भारी अन्तर है ।

**शिव प्रद भावों से स्वर्ग सहज ही**

**यत्र भाव: शिवं दत्ते द्यौ: कियद्दूरवर्तिनी।**
**यो नयत्याशु गव्यूतिं क्रोशार्धे किं स सीदति ?॥४॥**

**अन्वयार्थ– (यत्र भाव:)** जहाँ भाव **(शिवं दत्ते)** मोक्ष को देता है [वहाँ] **(द्यौ:)** स्वर्ग की प्राप्ति **(कियद्दूरवर्तिनी)** कितनी दूर है ? **(य: गव्यूतिं)** जो मनुष्य दो कोश तक **(आशु नयति)** [भार को] शीघ्र ले जाता है।**(स:)** वह **(क्रोशार्धे)** आधा कोश ले जाने में **(किं सीदति)** क्या दु:खी हो सकता है ? अर्थात् नहीं।

### स्वर्ग सुख का कथन

**हृषीकज-मनातङ्कं दीर्घ-कालोपलालितम् ।**
**नाके नाकौकसां सौख्यं नाके नाकौकसामिव ॥५॥**

**अन्वयार्थ–** **(नाके)** स्वर्ग में **(नाकौकसाम्)** देवों का **(हृषीकजं)** इन्द्रियों से उत्पन्न **(अनातङ्कं)** दु:ख रहित और **(दीर्घकालोपलालितम्)** दीर्घकाल तक सेव्य **(सौख्यं)** सुख **(नाके)** स्वर्ग में **(नाकौकसाम् इव)** देवों के समान ही होता है।

### इन्द्रिय सुख-दु:ख भ्रान्ति मात्र

**वासनामात्रमेवैतत् सुखं दु:खं च देहिनाम् ।**
**तथा ह्युद्वेजयन्त्येते भोगा रोगा इवापदि ॥६॥**

**अन्वयार्थ–** **(देहिनाम् )** संसारी जीवों के **(एतत् सुखं)** ये इन्द्रिय सुख **(च)** और **(दु:खं)** दु:ख **(वासनामात्रं एव)** भ्रम मात्र ही हैं **(तथा हि)** इसलिए **(एते भोगा:)** ये इन्द्रियों के भोग **(आपदि)** आपत्ति के समय **(रोगा: इव)** रोगों की तरह **(उद्वेजयन्ति)** व्याकुल करते हैं।

### मोहावृत ज्ञान वस्तु – स्वरूप नहीं जानता

**मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि।**
**मत्त: पुमान् पदार्थानां यथा मदनकोद्रवै: ॥ ७॥**

**अन्वयार्थ–** **(मोहेन)** मोह से **(संवृतं ज्ञानं)** ढका हुआ ज्ञान **(स्वभावं)** आत्म स्वभाव को **(न हि लभते)** नहीं जान पाता **(यथा)** जैसे **(मदनकोद्रवै:)** नशीले कोदों के खा लेने से **(मत्त: पुमान्)** मूर्च्छित/बेखबर मनुष्य **(पदार्थानां)** पदार्थों को ठीक तरह नहीं जान पाता।

### मोही, पर पदार्थ को अपना मानता है

**वपुर्गृहं धनं दारा: पुत्रा मित्राणि शत्रव:।**
**सर्वथान्यस्वभावानि मूढ: स्वानि प्रपद्यते ॥८॥**

**अन्वयार्थ–** **(वपु: गृहं)** शरीर, घर **(धनं दारा:)** धन, स्त्रियाँ **(पुत्रा: मित्राणि)** पुत्र, मित्र और **(शत्रव:)** शत्रु **(सर्वथा)** सब तरह से **(अन्यस्वभावानि)** अन्य स्वभाव वाले हैं परन्तु **(मूढ:)** मोही प्राणी इन्हें **(स्वानि प्रपद्यते)** अपना समझता है।

### संसारी जीव का कुटुम्ब परिवार कैसा है ?

**दिग्देशेभ्य: खगा एत्य संवसन्ति नगे नगे ।**
**स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति देशे दिक्षु प्रगे प्रगे ॥९॥**

**अन्वयार्थ–** **(नगे नगे)** वृक्ष-वृक्ष पर **(दिग्देशेभ्य:)** दिशाओं और देशों से **(एत्य)** आकर **(खगा:)** पक्षी [संध्या के समय] **(संवसन्ति)** ठहर जाते हैं तथा **(प्रगे प्रगे)** प्रात: **(स्वस्वकार्यवशात्)**

अपने-अपने कार्य के वश से **(देशे दिक्षु)** भिन्न-भिन्न देश, दिशाओं में **(यान्ति)** चले जाते हैं।

**अहितकर के प्रति क्रोध व्यर्थ**

**विराधकः कथं हन्त्रे जनाय परिकुप्यति।**
**त्र्यङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां स्वयं दण्डेन पात्यते ॥१०॥**

**अन्वयार्थ— (विराधकः)** अपकार करने वाला मनुष्य **(हन्त्रे जनाय)** मारने वाले मनुष्य के लिए **(कथं परिकुप्यति)** क्यों क्रोध करता है **(त्र्यङ्गुलं)** तीन अँगुली वाले उपकरण को **(पद्भ्यां)** पैरों के द्वारा **(पातयन्)** गिराता हुआ मनुष्य **(स्वयं दण्डेन)** स्वयं लकड़ी के बेंट (डंडे) द्वारा **(पात्यते)** गिराया (झुकाया) जाता है।

**संसार में जीव किस तरह घूमता है**

**रागद्वेषद्वयीदीर्घ - नेत्राकर्षण - कर्मणा।**
**अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ ॥११॥**

**अन्वयार्थ— (असौ)** यह **(जीवः)** संसारी प्राणी **(संसाराब्धौ)** इस संसार-समुद्र में **(अज्ञानात्सुचिरं)** अज्ञान के कारण अनादिकाल से **(रागद्वेषद्वयी-दीर्घ-नेत्राकर्षण-कर्मणा)** राग-द्वेष रूपी दो लम्बी डोरियों के खींचने रूप कार्य से अर्थात् घुमायी जाती हुई मथानी की तरह **(भ्रमति)** घूम रहा है।



**कोई न कोई विपत्ति मौजूद ही रहती है**

**विपद्भवपदावर्ते पदिकेवातिवाह्यते।**
**यावत्तावद्भवन्त्यन्याः प्रचुराः विपदः पुरः॥१२॥**

**अन्वयार्थ— (भव-पदावर्ते)** संसाररूपी पैर से चलने वाले घटीयंत्र में **(पदिका इव)** रहट के डण्डे के समान **(यावत्)** जब तक **(विपद्)** एक विपत्ति **(अतिवाह्यते)** समाप्त की जाती है **(तावत्)** तब तक **(अन्याः प्रचुराः)** दूसरी बहुत सी **(विपदः)** विपत्तियाँ **(पुरः भवन्ति)** सामने आ खड़ी हो जाती हैं।

**हर स्थिति में धन दुःखकर**

**दुरर्ज्येनासुरक्ष्येण नश्वरेण धनादिना।**
**स्वस्थंमन्यो जनः कोऽपि ज्वरवानिव सर्पिषा ॥१३॥**

**अन्वयार्थ— (दुरर्ज्येन)** बड़ी कठिनाइयों से कमाये जाने वाले तथा **(असुरक्ष्येण)** सुरक्षित न रहने वाले **(नश्वरेण)** विनश्वर **(धनादिना)** धन, पुत्रादिकों के द्वारा **(स्वस्थंमन्यः)** अपने आपको स्वस्थ (सुखी) मानने वाला **(कः अपि जनः)** कोई भी मनुष्य **(सर्पिषा)** घी को खाकर **(ज्वरवान् इव)** ज्वर से पीड़ित मनुष्य की तरह मूर्ख होता है।

### संसारी प्राणी दूसरों का दुःख देखता है

**विपत्तिमात्मनो मूढः परेषामिव नेक्षते।**
**दह्यमान - मृगाकीर्ण - वनान्तर - तरुस्थवत् ॥१४॥**

**अन्वयार्थ— (दह्यमान- मृगाकीर्ण-वनान्तर-तरुस्थवत्)** अग्नि से जलते हुए मृग आदि जीवों से भरे वन के मध्य वृक्ष पर बैठे हुए मनुष्य के समान **(मूढः)** मूर्ख प्राणी **(परेषां)** दूसरे की **(विपत्तिम् इव)** विपत्ति के समान **(आत्मनः)** अपनी विपत्ति को **(न ईक्षते)** नहीं देखता है।

### लोभी को धन इष्ट है

**आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्ष - हेतुं कालस्य निर्गमम्।**
**वाञ्छतां धनिनामिष्टं जीवितात्सुतरां धनम् ॥१५॥**

**अन्वयार्थ— (कालस्य निर्गमम्)** समय का व्यतीत होना **(आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्ष-हेतुं)** आयु क्षय और धनवृद्धि का कारण है **(वाञ्छतां धनिनां)** धन चाहने वाले धनवान् पुरुषों को **(जीवितात्)** अपने जीवन से भी **(सुतराम्)** अधिक तरह **(धनं इष्टम्)** धन इष्ट होता है।

### त्याग के लिए संग्रह उचित नहीं

**त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः सञ्चिनोति यः।**
**स्वशरीरं स पङ्केन स्नास्यामीति विलिम्पति ॥१६॥**

**अन्वयार्थ— (त्यागाय )** दान करने के लिए तथा **(श्रेयसे)** अपने सुख प्राप्त करने के लिए **(यः अवित्तः)** जो निर्धन मनुष्य **(वित्तं सञ्चिनोति)** धन को संग्रहीत करता है **(सः)** वह (मनुष्य) **(स्नास्यामि)** मैं स्नान करूँगा **(इति)** इस विचार से **(स्वशरीरं)** अपने शरीर को **(पङ्केन विलिम्पति)** कीचड़ से लिप्त करता है।

### हर स्थिति में भोग कष्टकर

**आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान् ।**
**अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः॥१७॥**

**अन्वयार्थ— (आरम्भे)** प्रारम्भ में **(तापकान्)** सन्ताप देने वाले **(प्राप्तौ)** प्राप्त हो जाने पर **(अतृप्ति- प्रतिपादकान्)** तृष्णा को बढ़ाने वाले तथा **(अन्ते)** अन्त में **(सुदुस्त्यजान्)** बहुत कठिनाई से छूटने योग्य **(कामान्)** विषय भोगों को **(कः सुधीः)** कौन बुद्धिमान् पुरुष **(कामं)** बड़ी रुचि से **(सेवते)** सेवन करता है।

### अपवित्र शरीर की कामना व्यर्थ

**भवन्ति प्राप्य यत्सङ्गमशुचीनि शुचीन्यपि।**
**स कायः सन्ततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा ॥१८॥**

**अन्वयार्थ— (यत्सङ्गं प्राप्य)** जिसका संयोग पाकर **(शुचीनि अपि)** पवित्र पदार्थ भी **(अशुचीनि)** अपवित्र **(भवन्ति)** हो जाते हैं **(स कायः)** वह शरीर **(सन्ततापायः)** सदा विनाशीक बना रहता है अतः **(तदर्थं)** उसके लिए **(प्रार्थना वृथा)** पवित्र करने की कामना व्यर्थ है।

### उपकारक/अपकारक

**यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम्।**
**यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकम् ॥१९॥**

**अन्वयार्थ— (यत् जीवस्य)** जो कार्य आत्मा के **(उपकाराय)** उपकार के लिए है **(तत् देहस्य)** वह शरीर का **(अपकारकम्)** अपकार करने वाला है तथा **(यत्)** जो **(देहस्य उपकाराय)** शरीर के उपकार के लिए है **(तत्)** वह **(जीवस्य अपकारकम्)** आत्मा का अपकार करने वाला है।

### विवेकी किसमें आदर करे

**इतश्चिन्तामणिर्दिव्य इतः पिण्याकखण्डकम् ।**
**ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाद्रियन्तां विवेकिनः॥२०॥**

**अन्वयार्थ— (इतःदिव्यः)** एक तरफ दिव्य **(चिन्तामणिः)** चिन्तामणि रत्न और **(इतः)** दूसरी तरफ **(पिण्याकखण्डकम् )** खली का टुकड़ा **(चेत् उभे)** यदि ये दोनों **(ध्यानेन लभ्ये)** ध्यान के द्वारा प्राप्त होते हैं तो **(विवेकिनः)** बुद्धिमान् मनुष्य **(क्व)** किसमें **(आद्रियन्तां)** आदर करे ?

### आत्मा का स्वरूप

**स्वसंवेदन - सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।**
**अत्यन्तसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः ॥२१॥**

**अन्वयार्थ— (आत्मा)** यह आत्मा **(स्वसंवेदन-सुव्यक्तः)** आत्म-अनुभव द्वारा स्पष्ट प्रकट होता है/जाना जाता है **(तनुमात्रः)** शरीर के बराबर है **(निरत्ययः)** अविनाशी है **(अत्यन्तसौख्यवान्)** अनन्त सुख वाला है तथा **(लोकालोक- विलोकनः)** लोक और अलोक को जानने देखने वाला है।

### आत्मध्यान करने का उपाय

**संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः।**
**आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम् ॥२२॥**

**अन्वयार्थ—** **(आत्मवान्)** आत्मा **(करणग्रामं)** इन्द्रिय समूह को **(संयम्य)** संयमित कर [पंचेन्द्रिय के विषयों से रोककर] **(चेतसः)** चित्त की **(एकाग्रत्वेन)** एकाग्रता से **(आत्मनि)** अपनी आत्मा में **(स्थितम्)** स्थित होकर **(आत्मानं)** अपने आत्मा को **(आत्मना एव)** अपने आत्मा द्वारा ही **(ध्यायेत्)** ध्यावे।

### जो है उसी का दान

**अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।**
**ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः ॥२३॥**

**अन्वयार्थ—** **(अज्ञानोपास्तिः)** अज्ञानी की उपासना/सेवा **(अज्ञानं)** अज्ञान को **(ददाति)** देती है **(ज्ञानिसमाश्रयः)** ज्ञानियों की उपासना/सेवा **(ज्ञानं)** ज्ञान को, **(तु)** क्योंकि **(इदम् वचः)** यह बात **(सुप्रसिद्धम्)** अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि **(यस्य)** जिसके पास **(यत् अस्ति)** जो होता है, [उसी को वह] **(ददाति)** देता है।



### आत्म-ध्यान का फल

**परीषहाद्यविज्ञानादास्त्रवस्य निरोधिनी।**
**जायतेऽध्यात्मयोगेन कर्मणामाशु निर्जरा ॥२४॥**

**अन्वयार्थ—** **(अध्यात्मयोगेन)** अध्यात्म के योग से/चिन्तन से **(परीषहाद्यविज्ञानात्)** परीषह आदि का अनुभव/ज्ञान नहीं होने से **(आस्त्रवस्य)** आस्त्रव को **(निरोधिनी)** रोकने वाली **(कर्मणाम्)** कर्मों की **(निर्जरा)** निर्जरा **(आशु जायते)** शीघ्र होती है।

### एकत्व में सम्बन्ध नहीं

**कटस्य कर्त्ताहमिति सम्बन्धः स्याद् द्वयोर्द्वयोः।**
**ध्यानं ध्येयं यदात्मैव सम्बन्धः कीदृशस्तदा ॥२५॥**

**अन्वयार्थ—** **(अहम्)** मैं **(कटस्य कर्त्ता)** चटाई का कर्ता हूँ **(इति सम्बन्धः)** इस प्रकार कर्ता-कर्म सम्बन्ध **(द्वयोर्द्वयोः)** भिन्न-भिन्न दो पदार्थों में **(स्यात्)** होता है, परन्तु **(यदा ध्यानं ध्येयं)** जब ध्यान ध्येय **(आत्मा एव)** आत्मा ही हो **(तदा)** तब **(कीदृशः सम्बन्धः)** सम्बन्ध कैसा?

### बन्ध और मुक्ति के कारण

**बध्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममः क्रमात् ।**
**तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत् ॥२६॥**

**अन्वयार्थ– (सममः)** ममता सहित और **(निर्ममः)** ममता रहित **(जीवः)** जीव **(क्रमात्)** क्रम से [कर्मों से] **(बध्यते)** बँधता है तथा **(मुच्यते)** छूटता है **(तस्मात्)** इस कारण **(सर्वप्रयत्नेन)** सर्व प्रयत्न से **(निर्ममत्वं)** निर्ममत्व को **(विचिन्तयेत्)** ध्यावे।

### निर्ममता की सिद्धि योग्य विचार

**एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।**
**बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा ॥२७॥**

**अन्वयार्थ– (अहम् एकः)** मैं एक हूँ **(निर्ममः)** ममता रहित **(शुद्धः)**शुद्ध हूँ **(ज्ञानी)** ज्ञानी हूँ तथा **(योगीन्द्रगोचरः)** योगियों /मुनियों द्वारा जानने योग्य हूँ **(सर्वे अपि)** सभी **(संयोगजाः)** संयोग से उत्पन्न होने वाले **(भावाः)** पदार्थ **(मत्तः)** मुझसे **(सर्वथा)** सब तरह से **(बाह्याः)** भिन्न हैं।

### सम्बन्धों को त्यागने की प्रेरणा

**दुःखसंदोहभागित्वं संयोगादिह देहिनाम्।**
**त्यजाम्येनं ततः सर्वं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥२८॥**

**अन्वयार्थ–(इह)** इस संसार में **(देहिनाम्)** जीवों के **(संयोगात्)** संयोग से **(दुःख-संदोहभागित्वं)** दुःख समूह का भागीदार बनना पड़ता है **(ततः)** इस कारण **(एनं सर्वं)** इन सभी [शरीर और कर्म के] संयोग को **(मनोवाक्काय-कर्मभिः)** मन, वचन, काय की क्रिया/चेष्टा से **(त्यजामि)** छोड़ता हूँ।

### पौद्गलिक परिणति मेरी नहीं

**न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।**
**नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले ॥२९॥**

**अन्वयार्थ– (मे)** मेरी **(मृत्युः न)** मृत्यु नहीं होती [इस कारण] **(भीतिः)** भय **(कुतः)** किससे (हो सकता है?) **(मे)** मुझे **(व्याधिः न)** कोई रोग नहीं होता [इसलिए] **(कुतःव्यथा)** दुःख किससे (हो सकता है?) **(अहम्)** मैं **(बालः न)** बालक नहीं हूँ **(वृद्धः न)** बूढ़ा नहीं हूँ **(युवा न)** जवान नहीं हूँ **(एतानि)** ये सब अवस्थायें **(पुद्गले)** पौद्गलिक शरीर में होती हैं।

ज्ञानी की अनासक्त बुद्धि

**भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।**
**उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य मम विज्ञस्य का स्पृहा ॥३०॥**

**अन्वयार्थ– (सर्वे अपि)** सभी **(पुद्गलाः)** पुद्गल परमाणु **(मया मोहात्)** मेरे द्वारा मोह से **(मुहुः)** बार-बार **(भुक्तोज्झिता)** भोगे और छोड़े जा चुके हैं अतः **(अद्य)** अब **(उच्छिष्टेषु इव)** जूठन के समान **(तेषु)** उन पुद्गलों में **(मम विज्ञस्य)** मुझ बुद्धिमान की **(का स्पृहा)** क्या लालसा हो सकती है?

सभी अपना प्रभाव बढ़ाते हैं

**कर्म कर्म - हिताबन्धि जीवो जीवहितस्पृहः।**
**स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे स्वार्थं को वा न वाञ्छति ॥३१॥**

**अन्वयार्थ– (कर्म)** कर्म **(कर्महिताबन्धि)** अपने हित रूप साथी कर्मों को ही बाँधता है तथा **(जीवः)** आत्मा **(जीवहितस्पृहः)** अपने आत्मा के हित की इच्छा करता है **(स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे)** अपने-अपने शक्तिशाली प्रभाव के होने पर **(को वा स्वार्थं)** कौन-सा व्यक्ति अपना हित **(न वाञ्छति)** नहीं चाहता?

आत्मोपकारी बनने का उपदेश

**परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।**
**उपकुर्वन्परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत् ॥३२॥**

**अन्वयार्थ– (परोपकृतिं)** परोपकार को **(उत्सृज्य)** छोड़कर **(स्वोपकारपरः)** अपने उपकार करने में तत्पर **(भव)** हो, **(दृश्यमानस्य)** दिखाई देने वाले **(लोकवत्)** इस जगत् की तरह **(अज्ञः)** अज्ञानी जीव **(परस्य)** पर का **(उपकुर्वन्)** उपकार करता हुआ पाया जाता है।

भेदविज्ञान का उपाय और फल

**गुरूपदेशादभ्यासात् संवित्तेः स्वपरान्तरम्।**
**जानाति यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरन्तरम् ॥३३॥**

**अन्वयार्थ– (यः)** जो मनुष्य **(गुरूपदेशात्)** गुरु के उपदेश से **(अभ्यासात्)** अभ्यास से तथा **(संवित्तेः)** आत्म-ज्ञान से **(स्वपरान्तरम्)** स्व और पर पदार्थों के अन्तर को **(जानाति)** जानता है **(सः)** वह **(निरन्तरम्)** सतत् **(मोक्ष-सौख्यं)** मोक्ष के सुख को **(जानाति)** जानता है।

निजात्मा ही गुरु है

**स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः।**
**स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः ॥३४॥**

**अन्वयार्थ— (स्वस्मिन्)** अपने में ही **(सदभिलाषित्वात्)** प्रशस्त [मोक्ष सुख की] अभिलाषा करने से **(अभीष्टज्ञापकत्वत:)** अपने प्रिय पदार्थ का जानने वाला होने से तथा **(स्वयं हितप्रयोक्तृत्वात्)** अपने हित में अपने आपको लगाने से **(आत्मा एव)** आत्मा ही **(आत्मन: गुरु:)** अपना गुरु है।

**निमित्त सहायक मात्र है**

**नाज्ञो विज्ञत्वमायाति विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।**
**निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत् ॥३५॥**

**अन्वयार्थ—** गुरु आदि के उपदेश से **(अज्ञ:)** अज्ञानी **(विज्ञत्वं)** विज्ञानता (ज्ञान दशा) को **(न आयाति)** प्राप्त नहीं होता और **(विज्ञ:)** ज्ञानी **(अज्ञत्वं)** अज्ञानता को **(न ऋच्छति)** प्राप्त नहीं होता है **(अन्य:)** अन्य अध्यापक, गुरु आदि **(तु)** तो (ज्ञान प्राप्ति में) **(गते:)** चलने में **(धर्मास्तिकायवत्)** धर्मास्तिकाय की तरह **(निमित्तमात्रम्)** केवल सहायक मात्र हैं।

**निजात्म चिन्तन कौन, कैसे करे ?**

**अभवच्चित्तविक्षेप एकान्ते तत्त्वसंस्थित:।**
**अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्त्वं निजात्मन: ॥३६॥**

**अन्वयार्थ— (चित्तविक्षेप: अभवत्)** जिसके चित्त में क्षोभ नहीं है **(तत्त्वसंस्थित:)** तत्त्व विचार में स्थित है बुद्धि जिसकी **(योगी)** ऐसा योगी /मुनि **(एकान्ते)** निर्जन स्थान में **(अभियोगेन)** आलस्य, निद्रा को त्याग कर /सावधानी से **(निजात्मन:)** अपनी आत्मा के **(तत्त्वं)** स्वरूप-चिन्तन का **(अभ्यस्येत्)** अभ्यास करे।

**आत्मसंवित्ति की पहचान**

**यथा यथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।**
**तथा तथा न रोचन्ते विषया: सुलभा अपि ॥३७॥**

**अन्वयार्थ— (यथा-यथा)** जैसे-जैसे **(संवित्तौ)** अनुभूति में **(उत्तमं तत्त्वं)** उत्तम तत्त्व [शुद्धात्म स्वरूप] **(समायाति)** आता है **(तथा तथा)** वैसे-वैसे **(सुलभा-अपि)** सुलभता से प्राप्त हुए भी **(विषया:)** विषय भोग **(न रोचन्ते)** रुचते नहीं हैं।

**आत्म - संवित्ति की पहिचान**

**यथा यथा न रोचन्ते विषया: सुलभा अपि।**
**तथा तथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ॥३८॥**

**अन्वयार्थ— (यथा यथा)** जैसे-जैसे **(सुलभा:)** सुलभ **(विषया: अपि)** पञ्चेन्द्रिय के विषय भी **(न रोचन्ते)** आत्मा को अच्छे नहीं लगते **(तथा तथा)** वैसे-वैसे **(संवित्तौ)** अनुभूति में

**(उत्तमं तत्त्वं)** उत्तम तत्त्व [शुद्धात्म स्वरूप] **(समायाति)** प्रतिभासित होने लगता है।

**अनुभूति बढ़ने पर विचार परिणति**

**निशामयति निश्शेषमिन्द्रजालोपमं जगत्।**
**स्पृहयत्यात्मलाभाय गत्वान्यत्रानुतप्यते ॥३९॥**

**अन्वयार्थ– (निश्शेषं)** जब समस्त **(जगत्)** संसार **(इन्द्रजालोपमं)** जादुगर के खेल जैसा [निःसार] **(निशामयति)** देखते है, तब **(आत्मलाभाय)** आत्म-स्वरूप पाने के लिए **(स्पृहयति)** इच्छा करता है, उस समय यदि **(अन्यत्र)** आत्मा से भिन्न अन्य पदार्थों में **(गत्वा)** जाता है तो **(अनुतप्यते)** सन्तप्त/व्याकुल होते हैं।

**योगी की निर्जन प्रियता**

**इच्छत्येकान्तसंवासं निर्जनं जनितादरः।**
**निजकार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम् ॥४०॥**

**अन्वयार्थ– (निर्जनं)** निर्जन स्थान **(जनितादरः)** जिसे अच्छा प्रतीत होता है ऐसा पुरुष **(एकान्तसंवासं इच्छति)** एकान्त में रहना चाहता है **(निजकार्यवशात्)** अपने कार्यवश से **(किञ्चित् उक्त्वा)** कुछ कह करके **(द्रुतम्)** शीघ्र **(विस्मरति)** भूल जाता है।

**स्वरूप निष्ठ योगी की विशेषता**

**ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति।**
**स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु पश्यन्नपि न पश्यति ॥४१॥**

**अन्वयार्थ– (स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु)** किन्तु आत्म तत्त्व में स्थिर रहने वाला **(ब्रुवन् अपि)** बोलता हुआ भी **(न हि ब्रूते)** नहीं बोलता है **(गच्छन् अपि)** चलता हुआ भी **(न गच्छति)** नहीं चलता है और **(पश्यन् अपि)** देखता हुआ भी **(न पश्यति)** नहीं देखता है।

**योगी की निर्विकल्प दशा**

**किमिदं कीदृशं कस्य कस्मात्क्वेत्यविशेषयन्।**
**स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः ॥४२॥**

**अन्वयार्थ– (योगपरायणः)** आत्म-ध्यान में लगा हुआ **(योगी)** योगी साधक **(इदम्)** यह **(किम्)** क्या है **(कीदृशं)** कैसा है **(कस्य)** किसका है **(कस्मात्)** किस कारण से है **(क्व)** कहाँ है **(इति)** इस तरह **(अविशेषयन्)** विशेष विचार न करता हुआ **(स्वदेहम् अपि)** अपने शरीर को भी **(न अवैति)** नहीं जानता है।

### जो जहाँ रहे, वहाँ रम जाता

**यो यत्र निवसन्नास्ते स तत्र कुरुते रतिम्।**
**यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति ॥४३॥**

**अन्वयार्थ— (यः)** जो [जीव] **(यत्र)** जहाँ पर **(निवसन् आस्ते)** रहता है **(स तत्र)** वह वहाँ [उस स्थान पर] **(रतिम् कुरुते)** प्रीति करता है और **(यः यत्र)** जो जहाँ **(रमते)** रम जाता है **(स)** वह **(तस्मात्)** उस स्थान से **(अन्यत्र)** अन्य जगह **(न गच्छति)** नहीं जाता।

### साम्यभावी योगी कर्मों से छूटता है

**अगच्छंस्तद्विशेषाणामनभिज्ञश्च जायते।**
**अज्ञाततद्विशेषस्तु बध्यते न विमुच्यते ॥४४॥**

**अन्वयार्थ— (तद्विशेषाणाम्)** उन [शरीर आदि पर पदार्थों के] विशेषणों [विशेषताओं] को **(अगच्छन्)** न जानता हुआ **(अनभिज्ञः)** अजान **(जायते)** बन जाता है **(च)** और **(अज्ञाततद्विशेषः)** उन शरीरादि की विशेषताओं पर ध्यान न देने वाला **(न बध्यते)** कर्म से नहीं बँधता **(तु)** किन्तु **(विमुच्यते)** छूट जाता है।

### सुख दुःख के आधार

**परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।**
**अतएव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ॥४५॥**

**अन्वयार्थ— (परः)** अन्य पदार्थ (आत्मा से) **(परः)** अन्य हैं अतः **(ततः)** उस अन्य पदार्थ से **(दुःखम्)** दुःख होता है और **(आत्मा)** आत्मा अपना **(आत्मा एव)** आत्मा ही है अतः **(ततः)** उस (आत्मा) से **(सुखम्)** सुख होता है **(अतएव)** इसी कारण **(महात्मानः)** महापुरुषों ने **(तन्निमित्तं)** उस आत्मा की प्राप्ति के निमित्त **(कृतोद्यमाः)** उद्यम किया था।

### पर के अनुराग का फल

**अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं योऽभिनन्दति तस्य तत्।**
**न जातु जन्तोःसामीप्यं चतुर्गतिषु मुञ्चति ॥४६॥**

**अन्वयार्थ— (यः)** जो **(अविद्वान्)** मूर्ख/बहिरात्मा **(पुद्गलद्रव्यम्)** पुद्गल द्रव्य का **(अभिनन्दति)** आत्मीय भाव से समादर करता है **(तस्य जन्तोः)** उस बहिरात्म प्राणी का **(तत्)** वह [शरीर आदि पुद्गल द्रव्य] **(जातु)** कभी भी **(चतुःगतिषु)** चारों गतियों में **(सामीप्यं न मुञ्चति)** साथ नहीं छोड़ता।

स्वरूप निष्ठता

**आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिः स्थितेः।**
**जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥४७॥**

**अन्वयार्थ— (व्यवहारबहिःस्थितेः)** व्यवहारचारित्र से बाहर ठहरे हुए **(आत्मानुष्ठान-निष्ठस्य)** आत्मध्यान में लवलीन **(योगिनः)** मुनि के **(योगेन)** आत्मध्यान के द्वारा **(कश्चित्)** कोई अपूर्व **(परमानन्दः)** परम आनन्द **(जायते)** उत्पन्न होता है।

आनन्द का कार्य

**आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम्।**
**न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥४८॥**

**अन्वयार्थ—(आनन्दः)** आत्मानन्द **(अनारतम्)** निरन्तर **(उद्धं)** बहुत से **(कर्मेन्धनम्)** कर्मरूपी ईंधन को **(निर्दहति)** जलाता है **(च)** तथा **(बहिर्दुःखेषु अचेतनः)** बाहरी [परीषह, उपसर्गादिक] दुःखों से अनभिज्ञ **(असौ योगी)** वह योगी/आत्मध्यानी **(न खिद्यते)** खेद-खिन्न/दुःखी नहीं होता है।

मुमुक्षु क्या करे ?

**अविद्याभिदुरं ज्योतिः परं ज्ञानमयं महत्।**
**तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं तद्द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः ॥४९॥**

**अन्वयार्थ— (अविद्याभिदुरं)** अज्ञान-अन्धकार को नष्ट करने वाली **(महत् ज्ञानमयं)** महान् ज्ञानरूप **(परं ज्योतिः)** उत्कृष्ट ज्योति **(मुमुक्षुभिः)** मोक्ष अभिलाषी पुरुषों के द्वारा **(तत् प्रष्टव्यं)** वह पूछने योग्य है **(तत् एष्टव्यं)** वह चाहने योग्य है **(तत् द्रष्टव्यं)** वह दर्शनीय या अनुभव करने योग्य है।

तत्त्व का सार

**जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।**
**यदन्यदुच्यते किञ्चित् सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः ॥५०॥**

**अन्वयार्थ— (जीवः अन्यः)** जीव अन्य है **(च)** और **(पुद्गलः अन्यः)** पुद्गल अन्य है **(इति)** इस प्रकार **(असौ)** यह **(तत्त्वसंग्रहः)** तत्त्व का सार है, इसके अलावा **(यत्)** जो **(अन्यत् किञ्चित्)** कुछ अन्य बात इस विषय में **(उच्यते)** कही जाती है **(सः)** वह **(तस्य एव विस्तरः)** उसका ही विस्तार **(अस्तु)** हो।

### इष्टोपदेश ग्रन्थ के अध्ययन का फल

**इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्,**
**मानापमानसमतां स्वमताद्वितन्य।**
**मुक्ताग्रहो विनिवसन् सजने वने वा,**
**मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः ॥५१॥**

**अन्वयार्थ—(धीमान् भव्यः)** बुद्धिमान् भव्य पुरुष **(इति)** इस प्रकार **(इष्टोपदेशं)** इष्टोपदेश ग्रन्थ को **(सम्यक् अधीत्य)** अच्छी तरह अध्ययन करके **(स्वमतात्)** अपने आत्म-ज्ञान से **(मानापमानसमतां)** सम्मान और अपमान में समता भाव को **(वितन्य)** विस्तार/ विशेषण करके **(मुक्ताग्रहः)** आग्रह को त्यागता हुआ **(सजने)** गाँव आदि में **(वा)** अथवा **(वने)** निर्जन वन में **(विनिवसन्)** रहता हुआ **(निरुपमां)** अनुपम **(मुक्तिश्रियम्)** मुक्ति लक्ष्मी को **(उपयाति)** प्राप्त करता है।

❑ ❑ ❑

# सिद्धिप्रियस्तोत्र

(वसन्ततिलका छन्द)

**सिद्धि-प्रियैः प्रतिदिनं प्रतिभासमानैः**
**जन्म - प्रबन्ध - मथनैः प्रतिभाऽसमानैः।**
**श्रीनाभिराज - तनुभू-पद-वीक्षणेन**
**प्रापे जनै - र्वितनु - भू - पदवी क्षणेन॥१॥**

**अन्वयार्थ—(श्रीनाभिराज-तनुभू-पद-वीक्षणेन)** श्रीनाभिराजा के पुत्र आदिनाथ भगवान् के चरणों का अवलोकन करने से **(सिद्धि-प्रियैः)** सिद्धिमुक्ति ही जिनको प्रिय है, **(प्रतिदिनं प्रतिभासमानैः)** सदैव सम्यग्दर्शनादि गुणों से जो प्रकाशमान हैं, **(जन्म-प्रबन्ध-मथनैः)** संसार संतति के जो मथन करने वाले हैं तथा **(प्रतिभाऽसमानैः)** अनुपम बुद्धि के जो धारक हैं ऐसे **(जनैः)** भव्यात्माओं ने **(क्षणेन)** क्षणमात्र में **(वितनु-भू-पदवी)** सिद्ध परमेष्ठी की मोक्ष पदवी **(प्रापे)** प्राप्त की।

**भावार्थ—**हे ऋषभनाथ! आप चौदहवें कुलकर श्रीनाभिराजा के पुत्र हैं। आपके चरण-कमलों का अवस्थिति रूप से दर्शन करने से, वे भव्य जीव क्षण मात्र में मोक्ष पद को प्राप्त कर लेते हैं, जो कि मात्र मुक्ति के अभिलाषी-इच्छुक हैं। सदैव सम्यग्दर्शन आदि गुणों से प्रकाशमान हैं। जन्म-मरण की संतति को मिटाने वाले हैं। साथ ही अनुपम बुद्धि के धारक हैं।

**येन स्मराऽस्त्र - निकरै - रपराजितेन**
**सिद्धिर्वधू ध्रुवमबोधि पराऽजितेन।**
**संवृद्ध - धर्मसुधिया कविराजमा नः**
**क्षिप्रं करोतु यशसा स विराजमानः॥२॥**

**अन्वयार्थ—(स्मराऽस्त्र-निकरैः अपराजितेन)** कामवासनारूपी बाणों के समूह से अपराजित-नहीं हारने वाले **(येन)** जिन द्वितीय तीर्थंकर **(अजितेन)** अजितनाथ भगवान् ने **(परा सिद्धिः वधूः)** सर्वोत्कृष्ट मुक्तिरूपी कामिनी **(ध्रुवं)** निश्चय से **(अबोधि)** पहचानी, **(यशसा विराजमानः)** कीर्ति द्वारा सुशोभित **(सः)** वे अजितनाथ भगवान् **(क्षिप्रं)** शीघ्र ही **(संवृद्ध-धर्म-सुधिया 'सह')** अतिशयकर वृद्धिंगत हुई धर्म बुद्धि के साथ **(कविराजमाः)** कवीश्वरों की शोभा को अथवा कविराज-अर्हन्तदेव उनकी अनंत चतुष्टयादि रूप मा-लक्ष्मी को **(नः)** हमारे लिए **(करोतु)** प्रदान करें।

**भावार्थ—**हे अजितनाथ भगवान्! आप कामरूपी बाणों के समूह से पराजित नहीं हुए। आपने

अविनाशी मोक्षरूपी कामिनी को पहचाना है–प्राप्त किया है। अतएव आप कीर्ति से सुशोभित हुए। आप, हम संसारी प्राणियों के लिए, अतिशय कर वृद्धिंगत हुई धर्म बुद्धि के साथ, कवीश्वरों की शोभा को अथवा अनंत चतुष्टयादि रूप लक्ष्मी को प्रदान करें।

**विशेष**—यहाँ स्तोत्रकर्ता श्री देवनन्दि मुनि ने, द्वितीय तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान् की स्तुति करते हुए कविता-शक्तिरूप बाह्य 'कवि लक्ष्मी' और अनंतचतुष्टयादिरूप 'भाव कविलक्ष्मी' की प्रार्थना की है।

**श्रुत्वा वचांसि तव शम्भव! कोमलानि**
**नो तृप्यति प्रवर-शंभव! कोऽमलानि।**
**देव - प्रमुक्त - सुमनोऽभवनाऽऽशनानि**
**स्वार्थस्य संसृति-मनोभव-नाशनानि॥३॥**

**अन्वयार्थ—(प्रवर-शं-भव!)** हे प्रधान-मोक्ष सुख के उत्पत्ति कारण! **(देव-प्रमुक्त-सुमनो-भवन!)** हे देवों द्वारा की गई पुष्पवृष्टि के स्थान! **(शंभव!)** हे तृतीय तीर्थंकर श्री शम्भवनाथ भगवान्! **(तव)** आपके **(कोमलानि)** अति ही मधुर **(अमलानि)** निर्दोष **(स्वार्थस्य आशनानि)** आत्महित के व्यापक तथा **(संसृति-मनोभव-नाशनानि)** संसार परिभ्रमण व काम व्यथा के नाशक **(वचांसि)** वचनों को **(श्रुत्वा)** श्रवण कर **(कः नो तृप्यति?)** कौन नहीं तृप्त होता?

**भावार्थ**—हे शम्भवनाथ भगवान्! आप अतीन्द्रिय मोक्ष सुख प्राप्त कराने में कारण हैं। समवसरण में जहाँ आप सुशोभित होते हैं वहाँ देवता पुष्पवृष्टि करते हैं। आपके प्रति ही मधुर, पूर्वापर विरोधादि दोष रहित, आत्महित के व्यापक और जन्म-मरणरूप संसार परिभ्रमण तथा काम-व्यथा के नाश करने वाले वचनों को श्रवण-धारण कर ऐसा कौन प्राणी है जो संतुष्ट नहीं होता? अर्थात् उपयुक्त विशेषण विशिष्ट आपके वचनों को श्रवण-धारण कर सभी प्राणी पूर्ण सन्तुष्ट होते हैं।

**यस्मिन् विभाति कलहंस-रवैरशोकः**
**छिन्द्यात् स भिन्न-भव-मत्सर-वैर-शोकः।**
**देवोऽभिनन्दन-जिनो गुरु मेऽघ-जालं**
**शम्पेव पर्वत-तटीं गुरु-मेघजाऽलं ॥४॥**

**अन्वयार्थ—(यस्मिन्)** जिनके समीप समवसरण में **(कलहंस-रवैः)** जाति विशेष मनोज्ञ हंसों की कलरव से **(अशोकः[१])** अशोक नामक वृक्ष **(विभाति)** शोभित होता है, **(सः)** वे **(भिन्न-**

१. यहाँ पर 'अशोकवृक्ष' नामक प्रातिहार्य उपलक्षण मात्र है। इससे शेष सात प्रातिहार्यों का भी ग्रहण कर लेना चाहिए।

**भव-मत्सर-वैर-शोकः)** संसार, मात्सर्य, द्वेषभाव तथा शोकभाव के नाशक **(अभिनन्दन-जिनः देवः)** अभिनन्दन नामक चतुर्थ जिनदेव, **(मे)** मेरे **(गुरु)** महान् **(अघजालं)** पाप समूह को, **(पर्वत-तटीं गुरु-मेघजा शम्पा इव)** पर्वत की कटनी को महान् मेघ-बादल से उत्पन्न हुई बिजली के समान **(अलं छिन्द्यात्)** जड़मूल से नष्ट कर दें।

**भावार्थ—**हे श्री अभिनंदन जिनदेव! आपके समीप समवसरण में अशोक वृक्ष शोभा पाता है, जो कि जाति विशेष मनोज्ञ हंसों की मधुर वाणी से युक्त होता है। शेष सात प्रातिहार्य भी वहाँ विद्यमान रहते हैं। आपने जन्म-मरणादिरूप दुःखमय संसार तथा द्वेषभाव, विरोधभाव और शोकभाव को सर्वथा नष्ट कर दिया है। अतः जिस प्रकार भयंकर पर्वत की तटी को महान् मेघ से उत्पन्न होने वाली बिजली नष्ट-भ्रष्ट कर देती है, उसी प्रकार महान् मेघ से उत्पन्न होने वाली विद्युत के समान आप तेजस्वी ही अत्यन्त भयंकर पर्वत की तटी के समान मेरे महान् पाप समूह को जड़मूल से नष्ट कर दें। मेरे पापों को नष्ट करने में आपके सिवाय कोई भी समर्थ नहीं है।

**येन स्तुतोऽसि गत-कुन्तल-ताप-हार!**<br>
**चक्राऽसि - चाप - शर-कुन्तलताऽपहार!**<br>
**भव्य-प्रभो! सुमतिनाथ! वरा न तेन**<br>
**का माऽऽश्रिता सुमतिनाऽथ वरानतेन ॥५॥**

**अन्वयार्थ—(गत-कुन्तल-ताप-हार!)** हे केशबन्धन-जटा, दुःखदाह तथा आभरण, इन तीनों से रहित! **(चक्राऽसि-चाप-शर-कुन्तलताऽपहार!)** हे चक्र, तलवार, धनुष-बाण, बरछी आदि सकल शस्त्रों के परित्याग वाले! **(भव्य-प्रभो!)** हे भव्य जीवों के स्वामी! **(सुमतिनाथ!)** हे पंचम तीर्थंकर श्री सुमतिनाथ भगवान्! **(वरानतेन येन सुमतिना)** इष्ट वस्तु की प्राप्ति के निमित्त नम्रीभूत होने वाले जिस सुबुद्धि के द्वारा **('त्वं' स्तुतः असि)** आप स्तुत्य हुए हैं **(अथ तेन)** उस स्तुति के प्रभाव से उस सुबुद्धि ने **(का वरा मा)** कौन-सी उत्कृष्ट लक्ष्मी **(न आश्रिता?)** नहीं आश्रय की?

**भावार्थ—**हे श्री सुमतिनाथ भगवान्! जब आपको केवलज्ञान हो गया, तब से केश बढ़ने से रहे। इसलिए आप केशनाशक कहाए। पहले केशलुंचन करते ही थे। घातिया कर्मों का नाश हो जाने से दुःख दाहरूप अपने ताप को दूर किया तथा हितोपदेश द्वारा भव्य जीवों का ताप मिटाया, इसलिए आप ताप नाशक हुए तथा आपने सकल इन्द्रिय-विषय का संन्यास किया। इस कारण हार आदि सकल आभरण रहित हुए। जिस प्रकार अन्य देवों के दैत्यादि विदारण का कारण जो रागद्वेष रूप दोष है और इसके होने से वे अनेक भाँति के शस्त्र रखते हैं, सो बात आप में नहीं है क्योंकि आपके सर्वथा रागद्वेषादि दोषों का अभाव होने से हिंसा के साधन चक्र, तलवार, धनुष-बाण, बरछी आदि का त्याग है। शस्त्र धारण करना तो कायरता को प्रकट करता है। आप भव्य पुरुषों के स्वामी भी हैं

क्योंकि जो इष्ट वस्तु की प्राप्ति के निमित्त नम्रीभूत हुआ बुद्धिमान पुरुष आपकी स्तुति करता है वह सर्व प्रकार की सम्पदा को निश्चय ही पाता है।

**मोह - प्रमाद - मद - कोप - रताऽपनाशः**
**पञ्चेन्द्रियाऽर्थ - मदकोऽपर - ताप - नाशः।**
**पद्मप्रभो दिशतु मे कमलां वराणां**
**मुक्तात्मनां विगत - शोक - मलाऽम्बराणां॥६॥**

**अन्वयार्थ—(मोह-प्रमाद-मद-कोप-रताऽपनाशः)** मोहनीय कर्म, प्रमाद, मद, क्रोध तथा संभोग परिणाम के निर्दयतापूर्वक नाश करने वाले **(पञ्चेन्द्रियाऽर्थमदकः)** पंच इन्द्रिय विषयों की अनुकूलता उपजाने वाले और **(अपर-ताप-नाशः)** भव्य पुरुषों के संताप का नाश करने वाले **(पद्मप्रभः)** पद्मप्रभ नामक छठे तीर्थंकर **(मे)** मेरे लिए **(विगत-शोक-मलाऽम्बराणां)** शोक, कर्ममल व वस्त्रादि आवरण रहित **(मुक्तात्मनां[1])** मुक्तात्माओं की **(वराणां कमलां)** श्रेष्ठ लक्ष्मी को **(दिशतु)** प्रदान करें।

**भावार्थ—**हे पद्मप्रभ भगवान्! आप अज्ञानभाव, कषाय विकथादि १५ प्रकार का प्रमाद, जाति कुलादि रूप अष्ट प्रकार का मद, क्रोध परिणाम और काम क्रीड़ा के बुरी तरह नाश करने वाले हैं। पाँचों इन्द्रियों के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण व शब्द रूप पंच विषयों की अनुकूलता उपजाने वाले हैं। क्योंकि आपका कोई ऐसा ही अतिशय प्रभाव है कि जिससे समवसरण में पंचेन्द्रिय के विषय अनुकूल ही होय और इसलिए आप पंचेन्द्रियार्थमदकः[2] कहलाते हैं। आप भव्य जीवों के संताप का भी नाश करने वाले हैं। अतः आप मेरे लिए शोक, कर्ममल व वस्त्रादि आवरण रहित मुक्तात्माओं की अविनाशी अनंत विज्ञानानंदमय विभूति-लक्ष्मी को प्रदान करें।

**ये त्वां नमन्ति विनयेन मही-नभो-गाः**
**श्रीमत्सुपार्श्व! विनयेन महीन-भोगाः।**
**ते भक्त-भव्य-सुरलोक! वि-मान-मायाः**
**ईशा भवन्ति सुरलोक-विमान-मायाः॥७॥**

**अन्वयार्थ—(भक्त-भव्य-सुरलोक!)** हे भव्य देवताओं से भक्ति किए जाने वाले! **(श्रीमत्सुपार्श्व!)** हे अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी सुपार्श्व नामक सप्तम तीर्थंकर! **(ये)** जो **(मही-नभो-गाः)** महीगामी-मनुष्यादिक व नभोगामी-देव विद्याधरादि प्राणी **(विनयेन)** विनयपूर्वक

१. 'सिद्धात्मनां' ऐसा भी पाठ पाया जाता है।
२. 'पंचेन्द्रियाऽश्व-दमकः' ऐसा भी पाठ पाया जाता है, जिसका अर्थ होता है कि हे भगवान्! आप पंचेन्द्रियरूपी अश्वों का दमन करने वाले-पूर्ण जितेन्द्रिय हैं।

**(त्वां विनयेनं)** आप विविध नय के स्वामी को–अनेकान्तनयवादी को **(नमन्ति)** नमस्कार करते हैं **(ते)** वे भव्य प्राणी **(अहीन-भोगाः)** पूर्ण इन्द्रिय सुख के भोक्ता चक्रवर्ती व **(विमान-मायाः 'सन्तः')** मान-माया रहित होते हुए **(सुरलोक-विमान-मायाः ईशाः)** देवलोक के विमान की लक्ष्मी वाले–परम वैमानिक देवों की पदवी पाने वाले ईश-स्वामी **(भवन्ति)** होते हैं।

**भावार्थ**–हे सुपार्श्व जिन! आपकी भक्ति का अचिन्त्य माहात्म्य है, क्योंकि देवता लोग और मनुष्य लोग, आप अनेकान्तनयवादी की विनयपूर्वक भक्ति करके चक्रवर्ती पद और अहमिन्द्र पद को प्राप्त करते हैं। उनके मान माया का विनाश होता ही है तथा नियम से मोक्ष पद भी वे पाते हैं।

**आकर्ण्य तावक-वचो वनि-नायकोऽपि**
**शान्तिं मनः शम-धियाऽवनि-नायकोऽपि।**
**चन्द्रप्रभ! प्रभजति स्म रमाऽविनाशं**
**दोर्दंड - मंडित - रति-स्मर-मा-विनाशं ॥८॥**

**अन्वयार्थ–(चन्द्रप्रभ!)** हे चन्द्रमा के समान प्रभा वाले अष्टम तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभ भगवान्! **(तावकवचः आकर्ण्य)** आपकी दिव्य वाणी श्रवण कर **(वनि-नायकः अपि)** वन का नायक-सिंह भी–जो कि हिंसादि खोटे कार्य करते रहने से दुष्ट स्वभाव वाला होता है **(शम-धिया मनः शान्तिं)** उपशम बुद्धि द्वारा मन सम्बन्धी शांति को–दुष्ट स्वभाव के प्रभाव को, **(अपि अवनि-नायकः)** तथा राजा–जो कि विषय भोगों में विशेष आसक्त हुआ करता है **(दोर्दंड-मंडित-रति-स्मर-मा-विनाशं)** भुजा दंडों में मंडित है रति नामक स्वस्त्री जिसके, ऐसे प्रबल कामदेव की मा–लक्ष्मी–शोभा का विनाश वाले **(रमाऽविनाशं)** अनंत चतुष्टयादिरूप लक्ष्मी के अविनाश–शाश्वतपने को **(प्रभजति स्म)** प्राप्त करता था।

**भावार्थ**–हे चन्द्रप्रभ! दुनिया में हिंसादि खोटे कार्य करने की अपेक्षा सिंह सबसे अधिक पापी समझा जाता है तथा विषय भोगों में विशेष आसक्ति की अपेक्षा राजा अत्यधिक पापी समझा जाता है। आप प्रभु के सदुपदेश से सामान्य जीवों के साथ इनका भी कल्याण हुआ है।

**श्री पुष्पदन्त-जिन-जन्मनि का ममाऽऽशा**
**यामि प्रिये! वितनुतां च निकाममाशाः।**
**इत्थं रतिं निगदताऽतनुना सुराणां**
**स्थानं व्यधायि हृदये तनुनाऽसुराणां ॥९॥**

**अन्वयार्थ–(प्रिये!)** हे प्रिये! **(श्री पुष्पदन्त-जिन-जन्मनि)** नवमें तीर्थंकर श्री पुष्पदन्त जिन का जन्म हो जाने पर **(मम का आशा?)** मेरे जीवन की क्या आशा? अतः **(निकामं वितनुतां च)** अत्यन्त शरीर रहितपने का और **(आशाः)** दिशाओं को **(यामि)** प्राप्त होता हूँ। **(इत्थं)** इस

प्रकार **(रतिं)** रति नामा अपनी स्त्री को **(निगदता)** कहते हुए **(अतनुना)** कामदेव ने **(तनुना)** शीघ्र ही **(सुराणां असुराणां हृदये)** देवताओं और असुरों के मन में **(स्थानं व्यधायि)** निवास किया।

**भावार्थ—**हे पुष्पदन्त जिनेन्द्र! आप महान् प्रभावशाली हुए। और इसलिए जिस कामदेव ने त्रिलोकी में अपना पूर्ण प्रभाव जमा रखा है, वह भी आपके जन्म होने की बात जानकर घबराता हुआ अपनी स्त्री रति से निम्नलिखित चर्चा करता हुआ डरकर शीघ्र ही सुर असुरों के हृदय में निवास करता है। हे प्रिये! नवमें तीर्थंकर श्री पुष्पदन्त जिनेन्द्र का जन्म हो जाने पर मेरे जीवन की कोई आशा नहीं, क्योंकि उनका जन्म मेरा समूल नाश करने वाला है। अतः मैं बिल्कुल शरीर रहित होता हूँ। देहधारी रहा तो वे मुझे अवश्य मार डालेंगे। मुझे शरीर रहित होना—अतनु अशरीरी आदि कहलाना ठीक है। दिशाओं में व्याप्त होना भी ठीक है, क्योंकि अदृश्य रहने से मैं जीवित रह सकूँगा।

**श्रीशीतलाऽधिप! तवाऽधि-सभं जनानां**
**भव्यात्मनां प्रसृति-संसृति-भंजनानाम्।**
**प्रीतिं करोति विततां सुरसाऽरमुक्तिः**
**मुक्तात्मनां जिन! यथा सुरसार! मुक्तिः॥१०॥**

**अन्वयार्थ—(सुरसार!)** हे देवों के देव! **(जिन!)** हे कर्म शत्रुओं के विजेता! **(श्री शीतलाऽधिप!)** हे दशवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथ! **(अधिसभं)** समवसरण में **(तव सुरसा उक्तिः)** आपकी कल्याणकारी मधुरवाणी **(प्रसृति-संसृति-भंजनानां)** दीर्घ संसार के नाशक **(भव्यात्मनां जनानां)** भव्य जीवों के **(अरं विततां)** प्रति विस्तृत **(प्रीतिं करोति)** प्रीति को पैदा करती है। **(यथा मुक्तात्मनां मुक्तिः)** जैसे कि मुक्तात्माओं के मुक्ति।

**भावार्थ—**हे दशवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथ भगवान्! आप देवाधिदेव हैं। कर्म शत्रुओं को आपने जीता है। जिस प्रकार सिद्धों को सिद्धि अत्यन्त विस्तृत प्रीति को धारण करती है, उसी प्रकार समवसरण में आपकी कल्याणकारी रसीली वाणी, दीर्घ संसार के भंजक भव्यात्मा जीवों को अत्यन्त विस्तृत रूप से स्व विषय में अनुराग पैदा करती है। आपकी दिव्य वाणी की महिमा अचिन्त्य है।

**पादद्वये मुदित-मानसमानतानां**
**श्रेयन्! मुने! विगत-मान! समानतानां।**
**शोभां करोति तव कां च न भा सुराणां**
**देवाऽधिदेव! मणि-कांचन-भासुराणां ॥११॥**

**अन्वयार्थ—(देवाधिदेव! विगत-मान! मुने! श्रेयन्!)** हे देवाधिदेव! हे मान कषाय रहित!

हे प्रत्यक्ष ज्ञान के धारक! हे ग्यारहवें तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथ भगवान्! **(तव पादद्वये मुदित-मानसं 'यथा स्यात् तथा')** आपके चरण युगल में हर्षित चित्त जैसे हो उस प्रकार **(आनतानां)** नम्रीभूत हुए **(समान-तानां)** पूजा विस्तार वाले और **(मणि-कांचन-भासुराणां)** मणि व सुवर्ण से दैदीप्यमान **(सुराणां)** देवों के **(तव भा कां च शोभां)** आपकी कांति किस शोभा को **(न करोति?)** नहीं करती है?

**भावार्थ—**हे श्रेयांसनाथ! आप देवों के भी देव-परमात्मा हैं, आपने मान कषाय का निर्मूल नाश किया है तथा आप ही अतीन्द्रिय ज्ञानी हैं। आपके चरण युगल में परम आह्लादित मन जिस प्रकार हो वैसे नम्रीभूत हुए, पूजा के विस्तार वाले और मणि व सुवर्ण से जो देदीप्यमान हैं, ऐसे देवों के, आपके शरीर की कांति किस शोभा को नहीं बढ़ाती? अर्थात् आपके शरीर की स्वाभाविक कांति इतनी देदीप्यमान है, जो कि मणि-सुवर्ण से देदीप्यमान देवों की दीप्ति को प्रकाशमान करती है। आपकी कांति के सामने देवों की कांति बिल्कुल निस्तेज है।

**घोरांऽधकार - नरक - क्षत - वारणानि**
**श्री वासुपूज्य! जिनदक्ष! तवाऽरणानि।**
**मुक्त्यै भवन्ति भव-सागर-तारणानि**
**वाक्यानि चित्तभव-सा-गरता-रणानि॥१२॥**

**अन्वयार्थ—(जिनदक्ष!)** हे सामान्य केवलियों में मुख्य जिनेन्द्र! **(श्री वासुपूज्य!)** हे बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्य भगवान्! **(घोरांऽधकार-नरक-क्षत-वारणानि)** घोर अन्धकार वाले नरक के पीड़ितों की पीड़ा का निवारण करने वाले, **(अरणानि)** कलह-विवाद रहित, **(भव-सागर-तारणानि)** संसार सागर के तारक तथा **(चित्तभव-सा-गरता-रणानि)** कामदेव की लक्ष्मीरूपी जहरपने को दूर करने वाले **(तव वाक्यानि)** आपके वाक्य **(मुक्त्यै)** मुक्ति प्राप्ति के लिए **(भवन्ति)** होते हैं।

**भावार्थ—**हे श्री वासुपूज्य भगवान्! आप सामान्य केवलियों में मुख्य जिनेन्द्र हुए हैं। आपकी वाणी का ऐसा ही कोई अचिन्त्य माहात्म्य है, जिससे कि घोर पापरूपी अंधकार में पड़े हुए नारकी जीवों को भी शान्ति मिलती है। उस आपकी वाणी में किसी प्रकार का कलह-विवाद नहीं है तथा आपकी वाणी कामवासना की विषता को समूल नाश करने वाली है। इतना ही नहीं, आपकी वाणी श्रवणकर संसारी प्राणी मोक्ष तक प्राप्त कर लेते हैं।

**भव्य - प्रजा - कुमुदिनी - विधुरंजनानां**
**हंता विभासि दलयन् विधुरं जनानां।**
**इत्थं स्वरूपमखिलं तव ये विदंति**
**राज्यं भजंति विमलेश्वर! ते वि-दंति॥१३॥**

**अन्वयार्थ—(विमलेश्वर!)** हे विमलनाथ! **(भव्य-प्रजा-कुमुदिनी-विधुः)** भव्य प्रजारूपी कुमुदिनी के लिए चन्द्र स्वरूप और **(अंजनानां हंता)** कर्म कालिमा के नाशक **('त्वं')** आप **(जनानां विधुरं दलयन्)** जनसमूह की आपत्ति को विनष्ट करते हुए **(विभासि)** शोभते हो **(इत्थं)** इस प्रकार **(ये)** जो **(तव अखिलं स्वरूपं)** आपके सम्पूर्ण स्वरूप को **(विदंति)** जानते हैं **(ते)** वे भव्य जीव **(विदंति राज्यं)** विशिष्ट हाथियों वाले राज्य को **(भजंति)** भोगते हैं।

**भावार्थ—**हे तेरहवें तीर्थंकर श्री विमलनाथ भगवान्! आप भव्य प्रजारूपी कुमुदिनी–चन्द्रविकासी कमल के लिए आह्लादकारी चन्द्रमा के समान हो। भव्य जीवों के संताप निवारक व आनंदवर्द्धक हो। कर्म कालिमा का आपने नाश किया है तथा प्राणियों की आपत्ति को दूर करते हुए शोभते हो और भी अनंत गुण आप में हैं। इस प्रकार जो कोई भी भव्य जीव आपके अखिल स्वरूप को अनुभव में लाते हैं, वे नियमपूर्वक विशिष्ट गजबंधी महामुदित राज्य को–चक्रवर्ती के वैभव को भोगते हैं। जो कि चक्रवर्ती उसी भव से या अगले किसी भव से अवश्य मोक्ष प्राप्त करते हैं।

**स्वर्गाऽपवर्ग-सुख-पात्र! जिनाऽतिमात्रं**
**यस्त्वां स्मरन् भुवन-मित्र! जिनाति मात्रं।**
**श्रीमन्ननंत वर-निवृति-कांत! कांतां**
**भव्यः स याति पदवीं व्रतिकांऽत-कांतां ॥१४॥**

**अन्वयार्थ—(स्वर्गाऽपवर्ग-सुख-पात्र!)** हे स्वर्ग व मोक्ष सुख के आधारभूत! **(जिन!)** हे राग-द्वेष के विजेता! **(भुवन-मित्र!)** हे त्रिभुवन के बन्धु! **(श्रीमन्!)** हे उभय लक्ष्मी के स्वामी! **(वर-निवृतिकांत!)** हे श्रेष्ठ मुक्ति के भर्ता! **(व्रतिक!)** हे व्रतों के धारक! **(अनंत!)** अनंत नामक चौदहवें तीर्थंकर! **(यः मात्रं त्वां)** जो भव्य जीव केवल आपको **(अतिमात्रं स्मरन्)** निरन्तर स्मरण करता हुआ **(जिनाति)** जीर्ण होता है **(स भव्यः)** ऐसा वह भव्य जीव **(कांतां अंतकांतां पदवीं)** मनोज्ञ व मरण का मरण करने वाली मोक्ष पदवी को **(याति)** पाता है।

**भावार्थ—**हे चौदहवें तीर्थंकर श्री अनंतनाथ भगवान्! आप स्वर्ग व मोक्ष सुख के आधारभूत हैं, रागद्वेष को जीतने वाले हैं, त्रिभुवन के सहायक हैं, अनंत चतुष्टयादि अन्तरंग व समवसरणादि बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी हैं, श्रेष्ठ मुक्ति के भर्ता-भोक्ता हैं और व्रतों के धारक हैं। जो कोई भव्य जीव निरन्तर केवल आपको स्मरण करता हुआ वृद्ध दशा को प्राप्त करता है–अन्त समय तक उत्साहपूर्वक केवल आपका नाम चिन्तन करता है, ऐसा वह भव्यात्मा जन्म-मरण रहित मनोज्ञ मोक्ष पद को प्राप्त करता है, फिर अन्य पदों के प्राप्त करने में तो संदेह ही क्या है?

**जन्माऽभिषेकमकरोत् सुर-राज-नामा-**
**यस्याऽऽश्रितो गुण - गणैः सु-रराज नाऽमा।**

**धर्मः करोत्वनलसं प्रतिबोधनानि**
**सिद्ध्यै स नः सपदि सम्प्रति वो धनानि॥१५॥**

**अन्वयार्थ—(यस्य)** जिन धर्मनाथ भगवान् का **(सुरराजनामा)** इन्द्र ने **(जन्माऽभिषेकं)** जन्माभिषेक **(अकरोत्)** किया **('पुन यस्य')** और जिनके **(आश्रितः ना)** आश्रित हुआ व्यक्ति **(गुण-गणैः अमा)** अनेक गुणों सहित **(सु-रराज)** सुशोभित हुआ **(स धर्मः)** वे धर्मनाथ तीर्थंकर **(सपदि)** अति शीघ्र **(नः सिद्ध्यै)** हमारे मोक्ष प्राप्ति के लिए **(अनलसं 'यथा स्यात् तथा')** आलस्य रहित जिस प्रकार हों वैसे **(प्रतिबोधनानि)** सदुपदेश सूचक सम्बोधन वाक्यों को तथा **(वः)** तुम्हारे लिए **(सम्प्रति)** शीघ्र **(धनानि)** नाना विभूतियों को **(करोतु)** करें।

**भावार्थ—**हे पन्द्रहवें तीर्थंकर श्री धर्मनाथ भगवान्! इन्द्र ने अनेक देवी-देवताओं के साथ आपका जन्माभिषेक करके जन्म महोत्सव मनाया था तथा जो पुरुष आपके आश्रित हो जाता है, वह अनेक गुणों से सुशोभित हो जाता है। अतः आप जिस किसी प्रकार भी, हम आलस्य रहित हों, हमारे लिए सदुपदेश सूचक सम्बोधनों को करें और इन संसारी प्राणियों के लिए नाना विभूतियाँ प्रदान करें। भगवन्! इस कार्य में तनिक भी देर नहीं होनी चाहिए।

**नाऽस्तानि यानि महसा विधुनाऽमितानि**
**चेतस्तमांसि तपसा विधुनोमि तानि।**
**इत्याऽऽचरन् वर-तपो गत-कामि-नीति**
**शान्तिः पदं दिशतु मेऽगत-कामिनीति॥१६॥**

**अन्वयार्थ-(यानि)** जिन **(अमितानि)** प्रचुर **(चेतस्तमांसि)** मन सम्बन्धी अन्धकार को **(महसा विधुना)** तेजस्वी चन्द्रमा द्वारा **(न अस्तानि)** नहीं नाश कराया जा सका **(तानि तपसा विधुनोमि)** उनको तपश्चर्या के बल से मैं नष्ट करता हूँ, **(इति)** इस हेतु **(गत-कामि-नीति वर-तपः)** विषयी पुरुषों की प्रवृत्ति रहित श्रेष्ठ तप को **(आचरन्)** आचरण करने वाले **(शान्तिः)** शान्तिनाथ भगवान् **(मे)** मेरे लिए **(अगत-कामिनीति पदं)** कामिनी व कष्टों की पहुँच रहित पद को **(दिशतु)** प्रदान करें।

**भावार्थ—**हे सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ भगवान्! आपने विषयी पुरुषों की प्रवृत्ति रहित श्रेष्ठ तपश्चर्या के सामर्थ्य से मन सम्बन्धी अज्ञानान्धकार को नष्ट किया है, क्योंकि बेचारा चन्द्रमा अपने तेज से इस मन सम्बन्धी प्रचुर अन्धकार को नष्ट करने में असमर्थ है। वह रात्रि सम्बन्धी अंधकार को ही दूर कर सकता है। अतः आप मुझे अविनाशी सुखस्वरूप मोक्ष पद को प्रदान करें। जिसे कि आपने पाया है।

**कुन्थुः क्षितौ क्षिति-पतिर्गत-मान-सेनः**
**पूर्वं पुनर्मुनिरभूद्धत-मानसेनः।**

**योऽसौ करोतु मम जंतु-दया-निधीनां**
**संवर्द्धनानि विविधर्द्ध्युदयानि धीनां॥१७॥**

**अन्वयार्थ–(यः)** जो **(क्षितौ)** पृथ्वी पर **(पूर्वं)** पहले तो **(गत-मानसेनः)** अपरिमित सेना के धारक **(क्षिति-पतिः)** चक्रवर्ती **(पुनः)** पश्चात् **(हत-मानसेनः)** कामदेव के नाशक **(मुनिः)** मुनि **(अभूत्)** हुए **(असौ कुन्थुः)** ऐसे वे कुन्थुनाथ भगवान् **(मम)** मेरे **(जन्तु-दया-निधीनां धीनां)** प्राणिमात्र के प्रतिपालना की निधानरूप बुद्धियों के **(विविधर्द्ध्यदयानिं)** बहुत प्रकार अणिमा, महिमा, गरिमा आदि ऋद्धियों का उदय वाली **(संवर्द्धनानि)** सम्यक् वृद्धियों को **(करोतु)** करें।

**भावार्थ–**हे सत्रहवें तीर्थंकर श्री कुन्थुनाथ भगवान्! आप पहले तो इस धरातल पर षट्खंड के अधिपति-चक्रवर्ती हुए और पश्चात् कर्मों का नाश करने के लिए मुनि अवस्था को अंगीकार किया, इस प्रकार आपने लौकिक उत्कृष्ट सुख को भोगकर अविनाशी मोक्ष सुख को भी प्राप्त किया। मेरी भी आप जैसा बनने की प्रबल भावना है।

**या ते ऋणोति नितरामुदितानि दानं**
**यच्छत्य-भीप्सति न वा मुदिता निदानं।**
**सा नो करोति जनताऽजन-कोपिताऽपि**
**चित्तं जिनाऽर! गुण-भाजन! कोपि तापि॥१८॥**

**अन्वयार्थ–(गुण-भाजन!)** हे गुणों के निधान! **(जिनाऽर!)** हे जिनेन्द्र अरनाथ! **(या जनता)** जो जनता **(नितरां)** अत्यन्त **(मुदिता सतीं)** हर्षित होती हुई **(ते उदितानि)** आपके वाक्यों को **(ऋणोति)** श्रवण करती है **(दानं यच्छति)** दान देती है **(वा)** और **(निदान)** निदान **(न अभीप्सति)** नहीं चाहती है **(अजन-कोपिता अपि)** दुष्टों से क्रोधित भी **(सा)** वह जनता **(चित्तं)** अपने चित्त को **(कोपि तापि)** कोप युक्त व संताप युक्त **(नो करोति)** नहीं करती है।

**भावार्थ–**हे अठारहवें तीर्थंकर श्री अरनाथ भगवान्! आप गुणों के निधान हैं। जो जनता भक्तिवश अत्यन्त प्रसन्न होती हुई आपकी वाणी को श्रवण करती है एवं आहारदान, औषधदान, अभयदान तथा ज्ञानदान देती है, साथ ही सांसारिक सुखों की इच्छा नहीं करती, वह दुष्टों द्वारा क्रोधादि कषायों को प्राप्त कराई गई भी जनता अपने मन को कदापि कोपयुक्त व संतापयुक्त नहीं करती। आपकी वाणी का यह अचिन्त्य माहात्म्य है कि जनता त्याग व संयम के मार्ग में लग जाती है तथा कारण मिलने पर भी, कषाय-कलुषित नहीं होती।

**मल्लेर्वचांस्यनिकृतीनि स-भावनानि**
**धर्मोपदेशन-कृतीनि सभाऽवनानि।**

**कुर्वन्तु भव्य-निवहस्य नभोगतानां**
**मंक्षु श्रियं कृत-मुदं जन-भोग-तानां ॥१९॥**

**अन्वयार्थ—(मल्लेः)** मल्लिनाथ भगवान् के **(अनिकृतीनि)** मायाचार रहित, **(स-भावनानि)** भावना से परिपूर्ण, **(धर्मोपदेशन-कृतीनि)** धर्म की शिक्षा देने वाले तथा **(सभाऽवनानि वचांसि)** सभा रक्षक वचन **(भव्यनिवहस्य)** भव्य समूह के **(मंक्षु)** शीघ्र ही **(जन-भोग-तानां नभो-गतानां)** मनुष्य के सुखों का विस्तार वाले तीर्थंकरों-अर्हन्तों की **(कृतमुदं श्रियं)** आनन्ददायिनी लक्ष्मी को **(कुर्वन्तु)** करें।

**भावार्थ—**हे उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथ भगवान्! आपके वचन वंचना से रहित हैं, भावना से परिपूर्ण हैं, धर्म की शिक्षा देने वाले हैं। साथ ही समवसरण सभा में स्थित भव्य जीवों को पापों से बचाने वाले हैं। अतः आपके दिव्य वचन शीघ्र ही भव्य जीवों को मनुष्य सुखों के विस्तार वाले तीर्थंकर पद की आनन्ददायिनी लक्ष्मी को प्रदान करें।

**विशेष—**वैसे सांसारिक सुखों की अपेक्षा मनुष्य के सुखों का पूर्ण विस्तार चक्रवर्ती पद में पाया जाता है लेकिन तीर्थंकर पद भी मनुष्य ही प्राप्त करते हैं, अतः मनुष्य के वास्तविक पूर्ण सुखों का विस्तार तीर्थंकर पद में मानना चाहिए। इसी की यहाँ प्रार्थना की गई है।

**संस्तूयसे शुभवता मुनि-नायकेन**
**नीतो जिनाऽऽशु भवता मुनिनायकेन!**
**नाथेन-नाथ! मुनिसुव्रत! मुक्त-मानां**
**मुक्तिं चरन् स मुनिसुव्रतमुक्तमानां ॥२०॥**

**अन्वयार्थ—(जिन!)** हे पूर्ण इन्द्रिय विजेता! **(मुनि-नायकेन!)** हे गणधरों के स्वामी! **(नाथेन-नाथ!)** हे चक्रवर्तियों के स्वामी तीर्थंकरदेव! **(मुनि-सुव्रत!)** हे मुनिसुव्रत भगवान्! **('येन')** जिस **(शुभवता)** पुण्यशाली **(मुनि-नायकेन)** मुनीश्वर के द्वारा **('त्वं' संस्तूयसे)** आप स्तुति किए जाते हैं **(स)** वह मुनीश्वर **(आशु)** शीघ्र ही **(मुनिसुव्रतं चरन्)** मुनियों के महाव्रतों का आचरण करता हुआ **(मुक्त-मानां)** मुक्तात्माओं का जहाँ आदर है तथा **(उक्त-मानां)** कही गई है मान मर्यादा जिसकी, ऐसी **(मुक्तिं)** मुक्ति को **(भवता)** आप द्वारा **(नीतः)** पहुँचाया जाता है।

**भावार्थ—**हे बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान्! आप पूर्ण इन्द्रिय विजेता हैं, गणधरों के स्वामी हैं और बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं के स्वामी जो चक्रवर्ती हैं, उनके भी आप स्वामी हैं। अतएव जो पुण्यशाली मुनीश्वर आपकी स्तुति करते हैं, वे शीघ्र ही अच्छी तरह से महाव्रतों का पालन करते हुए, मुक्तात्माओं का आदर वाली तथा कही गई मान मर्यादा वाली मुक्ति को आप द्वारा प्राप्त करते हैं।

**चित्तेन मेरु-गिरि-धीर! दयालुनाऽसि**
**सर्वोपकार-कृत-धीरदया लुनासि।**
**इत्थं स्तुतो नमि-मुनि र्ममताऽपसानां**
**लक्ष्मीं करोतु मम निर्मम! तापसानां॥२१॥**

**अन्वयार्थ—(मेरु-गिरि-धीर!)** हे सुमेरु पर्वत के समान निष्कम्प! **(निर्मम!)** हे निर्मोही! **('त्वं')** आप **(सर्वोपकार-कृत-धीः)** सर्वोपकारी बुद्धि वाले **(असि)** हैं। तथा **(दयालुना चित्तेन)** दयालु चित्त के द्वारा **(अदयाः)** हिंसाओं को **(लुनासि)** नष्ट करते हैं। **(इत्थं स्तुतः )** इस प्रकार स्तुति किए गए **(नमि-मुनिः)** नमि नामक मुनिराज **(मम)** मेरे **(ममताऽपसानां)** ममत्व बुद्धि के नाशक **(तापसानां)** महर्षियों की **(लक्ष्मीं)** लक्ष्मी को **(करोतु)** प्रदान करें।

**भावार्थ—**हे इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नमिनाथ भगवान्! आप सुमेरु पर्वत के समान निष्कम्प हैं, निर्मोही हैं, सर्वोपकारी बुद्धि वाले तथा दयालु स्वभाव से हिंसाओं को दूर करने वाले हैं। अतः उक्त प्रकार से जो कोई भव्यजीव आपकी स्तुति करता है, उसे आप ममत्व बुद्धि के नाशक महर्षियों की लक्ष्मी को प्रदान करें।

**येनोद्यत्रृंगगिरनारगिराविनाऽपि**
**नेमिः स्तुतोऽपि पशुनाऽपि गिरा विनाऽपि।**
**कंदर्प-दर्प-दलनः क्षत-मोह-तानः**
**तस्य श्रियो दिशतु दक्षतमोऽहता नः॥२२॥**

**अन्वयार्थ—(कंदर्प-दर्प-दलनः)** कामदेव के घमण्ड को नष्ट करने वाले, **(क्षत-मोह-तानः)** मोह के विस्तार को नष्ट करने वाले तथा **(दक्ष-तमः)** अतिशय निपुण **(नेमिः)** नेमिनाथ भगवान् **(येन इना अपि)** जिस प्रद्युम्न कामदेव के द्वारा तथा **(गिरा विना अपि)** वाणी रहित **(पशुना अपि)** पशु के द्वारा भी **(उद्य त्रृंगगिरनार-गिरौ)** ऊँचे श्रेष्ठ शिखर वाले गिरनार पर्वत पर **(स्तुतः अपि)** स्तुति किए गए हैं **(नः)** हमारे लिए **(तस्य अहताः श्रियः)** उन स्वयं की अविनाशी लक्ष्मियों को **(दिशतु)** प्रदान करें।

**भावार्थ—**हे बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान्! आप कामदेव के नाशक हैं। मोह के विस्तार को आपने दूर किया है। आप अतिशय निपुण भी हैं। इसके अलावा प्रद्युम्न कामदेव व बलभद्र नारायण आदि ने तथा अव्यक्त वाणी वाले पशुओं ने भी गिरनार पर्वत के शिखर पर आपकी स्तुति-पूजा की है। आप हमारे लिए अपनी अखंड अविनाशी लक्ष्मी प्रदान करें।

**गन्धर्व - यक्ष - नर - किन्नर-दृश्यमानः**
**प्रीतिं करिष्यति न किं नर-दृश्यमानः।**

**भानु - प्रभा - प्रविकसत्कमलोपमायां**
**पार्श्वः प्रसूत-जनता-कमलोऽपमायां॥२३॥**

**अन्वयार्थ—(प्रसूत-जनता-कमलः)** उत्पन्न हुई है जनता के लक्ष्मी जिनसे, **(अमानः)** गर्व रहित तथा **(गन्धर्व-यक्ष-नर-किन्नर-दृश्यमानः)** गन्धर्वों, यक्षों, मनुष्यों व किन्नरों द्वारा दर्शन किए गए **(पार्श्वः)** पार्श्वनाथ भगवान् **(भानुप्रभा-प्रविकसत्कमलोपमायां)** सूर्य के प्रकाश में प्रफुल्लित हुए कमलों की उपमा वाली **(नर-दृशि)** मनुष्यों की दृष्टि में **(किं)** क्या **(अपमायां प्रीतिं)** माया रहित प्रीति को **(न करिष्यति?)** नहीं करेंगे?

**भावार्थ—**हे तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान्! आप द्वारा जनता के विविध वैभव हुए हैं, आप गर्व रहित हैं। गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य व किन्नर आपके दर्शन करते रहते हैं। अतः आप उन मनुष्यों की दृष्टि में माया रहित प्रीति को करेंगे ही कि जिनकी दृष्टि सूर्य के प्रकाश द्वारा प्रफुल्लित हुए कमलों की उपमा को धारण करने वाली है। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में या प्रकाश से कमल प्रफुल्लित रहते हैं, उसी प्रकार आप पार्श्वनाथ भगवान् रूपी सूर्य के केवलज्ञानादि गुणरूपी प्रकाश में या प्रकाश से कमलरूपी भव्य पुरुषों की दृष्टि प्रफुल्लित हुई है। आपके प्रति विशेष भक्ति जागृत हुई है। अतः इसमें सन्देह नहीं कि आप उनके प्रति माया रहित प्रीति को (मुक्ति वधू के द्वारा की जाने वाली मुक्तात्माओं की प्रीति को—मोक्ष सुख को) करेंगे।



**श्रीवर्द्धमान-वचसा पर—मा-करेण**
**रत्नत्रयोत्तम-निधेः परमाऽऽक्रेण।**
**कुर्वन्ति यानि मुनयोऽजनता हि तानि**
**वृत्तानि सन्तु सततं जनता-हितानि॥२४॥**

**अन्वयार्थ—(हि)** निश्चय से **(पर-मा-करेण)** उत्कृष्ट मोक्षरूपी लक्ष्मी को करने वाले तथा **(रत्नत्रयोत्तम-निधेः परमाऽऽकरेण)** रत्नत्रयरूपी उत्तम निधि के उत्कृष्ट उत्पत्ति स्थान ऐसे **(श्री-वर्द्धमान-वचसा)** श्री वर्द्धमान भगवान् के वचन द्वारा **(अजनताः मुनयः)** लोकोत्तर मुनिराज **(यानि वृत्तानि कुर्वन्ति)** जिन अहिंसादि महाव्रतरूप आचरणों को करते हैं **(तानि)** वे आचरण **(सततं)** निरन्तर **(जनता-हितानि)** प्रजा का कल्याण करने वाले **(सन्तु)** हों।

**भावार्थ—**हे चौबीसवें तीर्थंकर श्री महावीर भगवान्! आपके वचन निश्चय से मोक्ष प्राप्त कराने वाले हैं। साथ ही रत्नत्रयरूपी उत्तम निधि के उत्कृष्ट उत्पत्ति स्थान भी हैं। जो लोकोत्तर मुनिराज आपकी वाणी से अहिंसादि महाव्रतों को पालन करते हैं, वे अहिंसादि महाव्रतरूप सदाचरण, लोक का सदैव कल्याण करने वाले हों। आप प्रभु का शासन आ चन्द्र दिवाकर लोक का कल्याण करता रहे। दुनिया आप प्ररूपित व्रतों को धारण कर मोक्ष प्राप्त करती रहे।

**वृत्तात्समुल्लसित - चित्त - वचः प्रसूतेः**
**श्रीदेवनंदिमुनि - चित्त - वचः प्रसूतेः।**
**यः पाठकोऽल्पतर-जल्प-कृतेस्त्रिसन्ध्यं**
**लोकत्रयं समनुरंजयति त्रिसन्ध्यं॥२५॥**

**अन्वयार्थ—(वृत्तात्समुल्लसित-चित्त-वचः प्रसूतेः)** वसंततिलका नामक छन्द से प्रति सुन्दर अन्तरंग वचनों की-भक्ति भरे वचनों की उत्पत्ति वाली तथा **(अल्पतर-जल्पकृतेः)** संक्षेप में कही गई **(श्रीदेवनंदि-मुनि-चित्त-वचः प्रसूतेः)** श्री देवनंदी नामक मुनिराज की निर्दोष रचना का-इस चतुर्विंशति तीर्थंकरों की स्तुति का **(यः)** जो भव्यात्मा **(त्रिसंध्यं पाठकः)** त्रिकाल पाठ करने वाला है **('स' त्रि-संध्यं)** वह तीनों काल में—तीनों संध्याओं मे—हमेशा **(लोकत्रयं)** तीनों लोकों को **(समनुरंजयति)** भली प्रकार आकर्षित करता है।

**भावार्थ—**यह सिद्धिप्रिय स्तोत्र वसंततिलका नामक छन्द में है। अति सुन्दर और भक्ति भरे शब्दों में इसकी रचना हुई है। देवनंदी नामक मुनिराज ने इसे निर्दोष शब्दों में रचा है। यह एक अद्वितीय संक्षिप्त रचना है, जो भव्य जीव प्रतिदिन इसका तीनों काल पाठ—मनन करता है, वह तीनों लोकों को तीनों कालों में अपनी ओर आकर्षित करने वाले परमात्म पद को प्राप्त करता है।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

**तुष्टिं देशनया जनस्य मनसो येन स्थितं दित्सता**
**सर्वं वस्तु-विजानता शमवता येन क्षता कृच्छता।**
**भव्याऽऽनंद-करेण येन महती तत्त्व-प्रणीतिः कृता**
**तापं हन्तु जिनः स मे शुभधियां तातः सतामीशिता॥२६॥**

**अन्वयार्थ—(येन)** जिनके द्वारा **(देशनया)** धर्मोपदेश से **(जनस्य मनसः)** जनता के मन-की **(तुष्टिं दित्सता)** प्रसन्नता को प्रदान करते हुए **(स्थितं)** प्रवर्तित हुआ गया, **(येन शमवता)** जिन शान्त स्वभावी के द्वारा **(सर्वं वस्तुविजानता)** समस्त वस्तु स्वरूप को जानते हुए **(कृच्छता क्षता)** दुःख दूर किया गया तथा **(येन भव्याऽऽनंदकरेण)** जिन भव्य जीवों को आनंदित करने वाले के द्वारा **(महती तत्त्व-प्रणीतिः कृता)** सम्यक् तत्त्व-प्ररूपण किया गया। **(सतां ईशिता)** सत्पुरुषों के स्वामी और **(शुभधियां तातः)** निष्पाप बुद्धि के उत्पादक **(सः जिनः)** वे जिनेन्द्र भगवान् **(मे तापं हन्तु)** मेरे संताप को दूर करें।

**भावार्थ—**उक्त गुण विशिष्ट जिनेन्द्र भगवान् मेरे जन्म-मरणरूपी संताप को सदा के लिए बिल्कुल नष्ट कर दें।

❑ ❑ ❑

# ॐ

श्रीपूज्यपादापरनामदेवनन्द्याचार्यविरचिता

# तत्त्वार्थवृत्तिः सर्वार्थसिद्धिः

## प्रथमोऽध्यायः

**मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।**
**ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥१॥**

कश्चिद्भव्यः[१] प्रत्यासन्ननिष्ठः प्रज्ञावान् स्वहितमुपलिप्सुर्विविक्ते परमरम्ये भव्यसत्त्वविश्रामास्पदे क्वचिदाश्रमपदे मुनिपरिषण्मध्ये सन्निषण्णं मूर्तमिव मोक्षमार्गमवाग्विसर्गं वपुषा निरूपयन्तं युक्त्यागमकुशलं परहितप्रतिपादनैककार्यमार्यनिषेव्यं निर्ग्रन्थाचार्यवर्यमुपसद्य सविनयं परिपृच्छति स्म। भगवन्! किं नु खलु आत्मने हितं स्यादिति ? स आह मोक्ष इति। स एव पुनः प्रत्याह–किंस्वरूपोऽसौ मोक्षः कश्चास्य प्राप्त्युपाय इति ? आचार्य आह–निरवशेषनिराकृत-कर्ममलकलङ्कस्याशरीरस्यात्मनोऽ-चिन्त्यस्वाभाविक-ज्ञानादिगुणमव्याबाधसुखमात्यन्तिकमवस्थान्तरं मोक्ष इति। तस्यात्यन्त-परोक्षत्वाच्छद्मस्थाः प्रवादिनस्तीर्थकरम्मन्यास्तस्य[२] स्वरूपमस्पृशन्तीभिर्वाग्भिर्युक्त्याभास-निबन्धनाभिरन्यथैव परिकल्पयन्ति। ''चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं, तच्च ज्ञेयाकार-परिच्छेदपराङ्मुखमिति[३]'' तत्सदप्यसदेव, निराकारत्वात्[४] खरविषाणवत्। ''बुद्ध्यादिवैशेषिकगुणोच्छेदः पुरुषस्य मोक्ष''[५] इति च। तदपि परिकल्पनमसदेव विशेषलक्षणशून्यस्यावस्तुत्वात्[६]। ''प्रदीपनिर्वाणकल्पमात्मनिर्वाणमिति[७]'' च। तस्य खरविषाणवत्कल्पना तैरेवाहत्य[८] निरूपिता। इत्येवमादि।

तस्य स्वरूपमनवद्यमुत्तरत्र[९] वक्ष्यामः। तत्प्राप्त्युपायं प्रत्यपि ते विसंवदन्ते–''ज्ञानादेव चारित्रनिरपेक्षात्तत्प्राप्तिः, श्रद्धानमात्रादेव वा, ज्ञाननिरपेक्षाच्चारित्रमात्रादेवेति'' च। व्याध्यभिभूतस्य तद्विनिवृत्त्युपायभूतभेषज-विषयव्यस्तज्ञानादिसाधनत्वाभाववत्। एवं व्यस्तं[१०] ज्ञानादिर्मोक्षप्राप्त्युपायो न भवति। किं तर्हि? तत्त्रितयं समुदितमित्याह–

---

१. कश्चिद्भव्यः द्वैपायकनामा। प्रत्यासन्ननिष्ठः अतिनिकटीभवत्परमनिर्वाणः। २. तीर्थकरम्मन्याः तीर्थकरमात्मानं मन्यन्ते, न तु ते तीर्थकराः। परस्परविरुद्धार्थाभिधायित्वात्। ३. सांख्यः। ४. निराकारत्वात् स्वरूपव्यवसायाकारलक्षणशून्यत्वात्। ५. बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराः। एषामत्यन्तक्षये मोक्षमाह वैशेषिकः। ६. बुद्ध्यादय एव जीवस्य विशेषलक्षणानि। तदभावे लक्ष्यस्य सुतरामभावसिद्धेः। ७. बौद्धाः। ८. गत्यन्तराभावात्। ९. अन्ते। १०. व्यस्तं ज्ञानादीति श्लोकः–ज्ञानं पङ्गौ क्रिया चान्धे निःश्रद्धे नार्थकृद्द्वयम्। ततो ज्ञानक्रियाश्रद्धात्रयं तत्पदकारणम्।

## सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥

सम्यगित्यव्युत्पन्नः शब्दो व्युत्पन्नो वा। अञ्चतेः क्वौ समञ्चतीति सम्यगिति। अस्यार्थः प्रशंसा। स प्रत्येकं परिसमाप्यते। सम्यग्दर्शनं, सम्यग्ज्ञानं, सम्यक्चारित्रमिति। एतेषां स्वरूपं लक्षणतो विधानतश्च पुरस्ताद्विस्तरेण[११] निर्देक्ष्यामः। उद्देशमात्रं त्विदमुच्यते। पदार्थानां याथात्म्यप्रतिपत्ति-विषयश्रद्धानसंग्रहार्थं दर्शनस्य सम्यग्विशेषणम्। [१२]येन येन प्रकारेण जीवादयः पदार्था व्यवस्थितास्तेन तेनावगमः सम्यग्ज्ञानम्। अनध्यवसायसंशय-विपर्ययनिवृत्त्यर्थं[१३] सम्यग्विशेषणम्। संसारकारण-निवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य[१४] ज्ञानवतः कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमः सम्यक्चारित्रम्। अज्ञानपूर्वकाचरण-निवृत्त्यर्थं सम्यग्विशेषणम्। स्वयं [१५]पश्यति, [१६]दृश्यतेऽनेन, दृष्टिमात्रं[१७] वा दर्शनम्। जानाति, ज्ञायतेऽनेन, ज्ञाप्तिमात्रं वा ज्ञानम्। चरति, चर्यतेऽनेन चरणमात्रं वा चारित्रम्। नन्वेवं स एव कर्त्ता स एव करणमित्यायातम्। तच्च विरुद्धम्। सत्यं, स्वपरिणामपरिणामिनोर्भेदविवक्षायां [१८]तथाऽभिधानात्। यथाऽग्निर्दहतीन्धनं दाहपरिणामेन। उक्तः कर्त्रादिभिः साधनभावः पर्यायपर्यायिणोरेकत्वानेकत्वं प्रत्यनेकान्तोपपत्तौ स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्यविवक्षोपपत्तेरेकस्मिन्नप्यर्थे न विरुध्यते, अग्नौ दहनादिक्रियायाः [१९]कर्त्रादिसाधनभाववत्। ज्ञानग्रहणमादौ न्याय्यं, दर्शनस्य तत्पूर्वकत्वात् अल्पाच्तरत्वाच्च। नैतद्युक्तं, युगपदुत्पत्तेः। यदाऽस्य दर्शनमोहस्योपशमात् क्षयात्क्षयोपशमाद्वा आत्मा सम्यग्दर्शनपर्यायेणा-विर्भवति, तदैव तस्य मत्यज्ञानश्रुताज्ञाननिवृत्तिपूर्वकं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं [२०]चाविर्भवति घनपटलविगमे सवितुः प्रतापप्रकाशाभिव्यक्तिवत्। [२१]अल्पाच्तरादभ्यर्हितं पूर्वं निपतति। कथमभ्यर्हितत्वं? ज्ञानस्य सम्यग्व्यपदेशहेतुत्वात्। चारित्रात्पूर्वं ज्ञानं प्रयुक्तं, तत्पूर्वकत्वाच्चारित्रस्य[२२]। सर्वकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः, तत्प्राप्त्युपायो मार्गः। मार्ग इति चैकवचननिर्देशः समस्तस्य मार्गभावज्ञापनार्थः। तेन व्यस्तस्य मार्गत्वनिवृत्तिः कृता भवति। अतः सम्यग्दर्शनं, सम्यग्ज्ञानं, सम्यक्चारित्र-मित्येतत्त्रितयं समुदितं मोक्षस्य साक्षान्मार्गो वेदितव्यः।

**तत्रादावुद्दिष्टस्य सम्यग्दर्शनस्य लक्षणनिर्देशार्थमिदमुच्यते-**

## तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥

तत्त्वशब्दो भावसामान्यवाची। कथम्? तदिति सर्वनामपदम्। सर्वनाम च सामान्ये[२३] वर्तते।

---

११.सम्यग्दर्शनस्य त्वनन्तरमेव। ज्ञानस्यापि प्रथमाध्याय एव नवमसूत्रात् प्रभृतिः। चारित्रस्य च सप्तमनवमाध्याययोर्मध्ये। १२. येन येनेति-तेन तेन प्रकारेण मोहसंशयविपर्ययरहितं परिज्ञानं सम्यग्ज्ञानम्। मोह इति अनध्यवसायः, संशयः संदेहः, विपर्ययो विपरीतत्वं तैः रहितं सम्यग्ज्ञानमित्यर्थः। १३. एते त्रयो मिथ्याज्ञानरूपा यतः। तत एव च मोक्षसाधने नोपयुज्यन्ते। १४.उद्यतस्य। १५.कर्तृसाधनमेतत्। १६.करणे। १७.भावे। १८. अभेदवतोऽपि भेदेन कथनात्। १९.साधनभाव साधनता। २०.तदा मत्यज्ञानश्रुताज्ञानयोरभावो भवति सम्यक् च ते उत्पद्येते इति नास्ति भावः। तर्हि ते एव मिथ्यामतिश्रुते सम्यक्त्वेन विपरिणमेते इति। ज्ञानस्य प्रादुर्भावस्तु सदा ज्ञानावरणक्षयोपशमकारणक एव। अत एव ''श्रुतं मतिपूर्वमित्यत्र वक्ष्यते यत् सम्यक्त्वस्य तदपेक्षत्वादिति।'' २१. दर्शनस्य तत्पूर्वकत्वादिति प्रथमहेतुं निरस्य द्वितीयहेतुं दूषयन्ति। २२. इति क्रमस्य सिद्धिः। २३. सर्वेषां नाम (भवितुमर्हति) सर्वनाम इत्यन्वर्थसंज्ञाकरणात्।

तस्य भावस्तत्त्वम्। तस्य कस्य? योऽर्थो यथावस्थितस्तथा तस्य भवनमित्यर्थः। [२४]अर्यत इत्यर्थो[२५] निश्चीयत इत्यर्थः[२६]। तत्त्वेनार्थस्तत्त्वार्थः। अथवा भावेन भाववतोऽभिधानं, तदव्यतिरेकात्। तत्त्वमेवार्थस्तत्त्वार्थः। तत्त्वार्थस्य[२७] श्रद्धानं तत्त्वार्थश्रद्धानं, सम्यग्दर्शनं प्रत्येतव्यम्। तत्त्वार्थश्च वक्ष्यमाणो जीवादिः। [२८]दृशेरालोकार्थत्वात् श्रद्धानार्थगतिर्नोपपद्यते? धातूनामनेकार्थत्वाददोषः। प्रसिद्धार्थत्यागः कुत इति चेत् मोक्षमार्गप्रकरणात्, तत्त्वार्थश्रद्धानं ह्यात्मपरिणामो मोक्षस्य साधनं युज्यते भव्यजीव-विषयत्वात्। आलोकस्तु चक्षुरादिनिमित्तः सर्वसंसारिजीवसाधारणत्वान्न मोक्षमार्गो युक्तः। अर्थश्रद्धानमिति चेत्सर्वार्थग्रहणप्रसङ्गः। तत्त्वश्रद्धानमिति चेद्भावमात्रप्रसङ्गः। सत्ताद्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वादि तत्त्वमिति कैश्चित्कल्प्यत[२९] इति। तत्त्वमेकत्वमिति [३०]वा सर्वैक्यग्रहणप्रसङ्गः। पुरुष एवेदं सर्वमित्यादि कैश्चित्कल्प्यत[३१] इति। तस्मादव्यभिचारार्थमुभयोरुपादानम्[३२]। तत् द्विविधं, सरागवीतरागविषयभेदात्। [३३]प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याद्यभिव्यक्तिलक्षणं प्रथमम्। आत्मविशुद्धिमात्रमितरत्।

**अथैतत्सम्यग्दर्शनं जीवादिपदार्थविषयं कथमुत्पद्यत इत्यत आह—**

**तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥**

निसर्गः स्वभाव इत्यर्थः। अधिगमोऽर्थावबोधः। तयोर्हेतुत्वेन निर्देशः। कस्याः? क्रियायाः। का च क्रिया? उत्पद्यत इत्यध्याह्रियते, सोपस्कारत्वात्सूत्राणाम्। तदेतत्सम्यग्दर्शनं निसर्गादधिगमाद्वोत्पद्यत इति। अत्राह—निसर्गजे सम्यग्दर्शनेऽर्थाधिगमः स्याद्वा न वा? यद्यस्ति, तदपि अधिगमजमेव, नार्थान्तरम्। अथ नास्ति, कथमनवबुद्धतत्त्वस्यार्थश्रद्धानमिति? नैष दोषः। उभयत्र सम्यग्दर्शने अन्तरङ्गो हेतुस्तुल्यो दर्शनमोहस्योपशमः क्षयः क्षयोपशमो वा। [३४]तस्मिन्सति यद्बाह्योपदेशादृते प्रादुर्भवति तन्नैसर्गिकम्।

---

**२४.** अर्यते गम्यते ज्ञायते निश्चीयते इत्यर्थः। **२५.** इति 'अर्थ' शब्दस्य सिद्धिः। **२६.** इति 'अर्थ' शब्दस्य वाच्यार्थो भवति। **२७.** तत्त्वार्थस्येति-तत्त्वार्थस्य परमार्थभूतस्य पदार्थस्य श्रद्धा रुचिः। तत्त्वार्थस्तु जीवादिः। ननु अर्थशब्देन प्रयोजनाभिधानाभिधेयधनादिकं ग्राह्यमिति चेन्न तच्छ्रद्धानं मोक्षप्राप्तेरनुपयुक्तं। अर्थशब्दस्यानेकार्थत्वं यथा -हेतौ प्रयोजने वाक्ये निवृत्तौ विषये तथा। प्रकारे वस्तुनि द्रव्ये अर्थशब्दाः प्रवर्तते। **२८.** अत्र नन्वित्याशङ्कार्थकः शब्दोऽध्याहार्यः। **२९.** वैशेषिकैः। **३०.** कैश्चिदिति पूर्वेण संबन्धः। ते च वैयासा वेदान्तिनः। **३१.** पूर्वोक्तस्यैव स्पष्टीकरणम्। **३२.** इति पूर्वविवरणस्य स्पष्टीकरणम्। **३३.**प्रशमादीनां लक्षणानि यथा-तत्र रागादिदोषेभ्यश्चेतोनिवर्तनं प्रशमः। शारीरमानसागन्तुवेदनाप्रभवात्संसाराद्भयं संवेगः। सर्वेषु प्राणिषु चित्तस्य दयार्द्रत्वं अनुकम्पा। आप्तश्रुतव्रततत्त्वेषु अस्तित्वयुक्तं मनः आस्तिक्यमुच्यते। तथा चोक्तम्—

यद्रागादिषु दोषेषु चित्तवृत्तिनिबर्हणं। तं प्राहुः प्रशमं प्राज्ञाः समस्तव्रतभूषणम्।
शारीरमानसागन्तुवेदनाप्रभवाद्भवात्। स्वप्नेन्द्रजालसङ्कल्पाद्भीतिः संवेग उच्यते॥
सत्त्वे सर्वत्र चित्तस्य दयार्द्रत्वं दयालवः। धर्मस्य परमं मूलमनुकम्पां प्रचक्षते॥
आप्ते व्रते श्रुते तत्त्वे चित्तमस्तित्वसंयुतम्। आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तमुक्तियुक्तिधरे नरे॥

यथा हि पुरुषस्य पुरुषशक्तिरियमतीन्द्रियाप्यङ्गनाजनाङ्गसंभोगेन, अपत्योत्पादनेन च विपदि धैर्यावलम्बनेन वा प्रारब्धवस्तुनिबर्हणेन वा निश्चेतुं शक्यते, तथात्मस्वभावतयातिसूक्ष्मतमपि सम्यक्त्वरत्नं प्रशमसंवेगानु-कम्पास्तिक्यैरेव वाक्यैराकलयितुं शक्यम्। -यशस्तिलकचम्प्वाः षष्ठाश्वासे। **३४.** ''तस्मिन्सति यद्बाह्योपदेशादृते प्रादुर्भवति तन्नैसर्गिकं'' अस्य स्पष्टीकरणं - यत्सम्यग्दर्शनं बाह्योपदेशेन विनोत्पद्यते तत्सम्यग्दर्शनं निसर्गजमुच्यते। नैसर्गिकमपि सम्यग्दर्शनं गुरोरक्लेशकारित्वात्स्वाभाविकमुच्यते। न तु गुरूपदेशेन विना प्रायेण तदपि जायते। इति श्रुतसागर्यां। क्रमशः....

यत्परोपदेशपूर्वकं जीवाद्यधिगमनिमित्तं स्यात्तदुत्तरम्। इत्यनयोरयं भेदः। तद्ग्रहणं किमर्थम्? अनन्तरनिर्देशार्थम्। अनन्तरं सम्यग्दर्शनं तदित्यनेन प्रतिनिर्दिश्यते। इतरथा मोक्षमार्गोऽपि प्रकृतस्तस्याभि-सम्बन्धः स्यात्। ननु च "अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा"-इत्यनन्तरस्य सम्यग्दर्शनस्य ग्रहणं सिद्धमिति चेत्? न, "प्रत्यासत्तेः प्रधानं बलीय" इति मोक्षमार्ग एव सम्बध्येत। तस्मात्तद्वचनं क्रियते।

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनमित्युक्तम्। अथ किं तत्त्वमित्यत इदमाह-

**जीवाजीवास्त्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥**

तत्र चेतनालक्षणो जीवः। स च ज्ञानादिभेदादनेकधा भिद्यते। तद्विपर्ययलक्षणोऽजीवः। शुभाशुभकर्मागम-द्वाररूप आस्त्रवः। आत्मकर्मणोरन्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशात्मको बन्धः। आस्त्रवनिरोध-लक्षणः संवरः। एकदेशकर्म-संक्षयलक्षणा निर्जरा। कृत्स्नकर्मविप्रयोगलक्षणो मोक्षः। एषां प्रपञ्च [३५]उत्तरत्र वक्ष्यते। सर्वस्य फलस्यात्माधीनत्वादादौ जीवग्रहणम्। तदुपकारार्थत्वात्तदनन्तरमजीवाभिधानम्। तदुभयविषयत्वात्तदनन्तरमास्त्रवग्रहणम्। तत्पूर्वकत्वात्तदनन्तरं बन्धाभिधानम्। संवृतस्य बन्धाभावात्तत्-प्रत्यनीकप्रतिपत्त्यर्थं तदनन्तरं संवरवचनम्। संवरे सति निर्जरोपपत्तेस्तदन्तिके निर्जरावचनम्। अन्ते प्राप्यत्वान्मोक्षस्यान्ते वचनम्। इह पुण्यपापग्रहणं च कर्तव्यं, नव पदार्था [३६]इत्यन्यैरप्युक्तत्वात्। न कर्त्तव्यं, तयोरास्त्रवे बन्धे चान्तर्भावात्। यद्येवमास्त्रवादिग्रहणमनर्थकं, जीवाजीवयोरन्तर्भावात्। नानर्थकम्। इह मोक्षः प्रकृतः। सोऽवश्यं निर्देष्टव्यः। स च संसारपूर्वकः। संसारस्य प्रधानहेतुरास्त्रवो बन्धश्च। मोक्षस्य प्रधानहेतुः संवरो निर्जरा च। अतः [३७]प्रधानहेतुहेतुमत्फलनिदर्शनार्थत्वात्पृथगुपदेशः कृतः। दृश्यते हि सामान्येऽन्तर्भूतस्यापि विशेषस्य यथोपयोगं पृथगुपादानं प्रयोजनार्थम्। क्षत्रिया आयाताः सुरवर्माऽपीति। तत्त्वशब्दो भाववाचीत्युक्तः। स कथं जीवादिभिर्द्रव्यवचनैः सामानाधिकरण्यं प्रतिपद्यते? अव्यतिरेकात्तद्भावाध्यारोपाच्च सामानाधिकरण्यं भवति। यथा उपयोग एवात्मेति। यद्येवं तत्तल्लिङ्ग-सङ्ख्यानुवृत्तिः प्राप्नोति? विशेषणविशेष्यसम्बन्धे सत्यपि शब्दशक्तिव्यपेक्षया उपात्तलिङ्ग-

---

निसर्गोऽधिगमो वापि तदाप्तौ कारणद्वयम्। सम्यक्त्वभाक्पुमान्यस्मादल्पानल्पप्रयासतः॥

यदा पूर्वभवसंभालनेन वा वेदनानुभवेन वा धर्मश्रवणाकर्णनेन वार्हत्प्रतिनिधिनिध्यानेन वा महामहोत्सव-निहालनेन वा महर्द्धिप्राप्ताचार्यवन्दनेन वा नृषुनाकिषु वा तन्माहात्म्यसंभूतविभवसभावनेन वान्येन वा केनचित्कारणमात्रेण विचारकान्तारेषु मनोविहारास्पदं खेदमनापद्य यदा जीवादिषु पदार्थेषु याथात्म्यसमवधानं श्रद्धानं भवति तदा प्रयोक्तुः सुकरक्रियत्वाल्लूयन्ते शालयः स्वयमेव, विनीयन्ते कुशलाशयाः स्वयमेव इत्यादिवत्तन्निसर्गात्संजातमित्युच्यते। यदा तु अव्युत्पत्तिसंशीति-विपर्यस्तिसमधिकबोधस्य आधिमुक्ति-युक्तिसूक्ति-संबंधसविधस्य प्रमाणनयनिक्षेपानुयोगोपयोगावगाह्येषु समस्तेष्वैतिह्येषु परीक्षोपक्षेपादतिक्लिश्य चिरेण तत्त्वेषु रुचिः संजायते यदा विधातुरायासहेतुत्वान्मया निर्मापितोऽयं सूत्रानुसारो हारो, मयेदं संपादितं रत्नरचनाधिकरण-माभरणमित्यादिवत्तदधिगमादाविर्भूतमित्युच्यते। -य० ति० चम्प्वां षष्ठाश्वासे। **३५.** क्रमेण आद्यचतुरध्याय्यां जीवसंबंधः, पंचमेऽजीवः षष्ठसप्तमयोरास्त्रवः अष्टमे बन्धो, नवमे संवरो निर्जरा च, दशमेऽध्याये मोक्ष इति सप्ततत्त्वं वर्णितमास्ते। **३६.** कुन्दकुन्दाद्यैः। **३७.** प्रधानहेतुहेतुमदिति-प्रधानहेतुमन्तौ संसारमोक्षौ। संसारमोक्ष-लक्षण-फलप्रदर्शनार्थमास्त्रवादयः पृथग्व्यपदिश्यन्ते। तत्र आस्त्रवबंधयोः फलं संसारः। संवरनिर्जरयोः फलं मोक्षः।

सङ्ख्याव्यतिक्रमो न भवति। अयं क्रम आदिसूत्रेऽपि योज्यः।

**एवमेषामुद्दिष्टानां सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां च संव्यवहारविशेषव्यभिचारनिवृत्त्यर्थमाह—**

## नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥५॥

[३८]अतद्गुणे वस्तुनि संव्यवहारार्थं [३९]पुरुषकारान्नियुज्यमानं संज्ञाकर्म नाम। काष्ठपुस्तचित्रकर्माक्ष-निक्षेपादिषु सोऽयमिति स्थाप्यमाना स्थापना। गुणैर्द्रोष्यते गुणान्द्रोष्यतीति वा द्रव्यम्[४०]। वर्तमान-तत्पर्यायोपलक्षितं द्रव्यं भावः। तद्यथा—नामजीवः, स्थापनाजीवो, द्रव्यजीवो, भावजीव इति चतुर्धा जीवशब्दार्थो न्यस्यते। जीवनगुणमनपेक्ष्य यस्य कस्यचिन्नाम क्रियमाणं नामजीवः। अक्षनिक्षेपादिषु जीव इति वा मनुष्यजीव इति वा व्यवस्थाप्यमानः स्थापनाजीवः। द्रव्यजीवो द्विविधः। आगमद्रव्यजीवः नोआगमद्रव्यजीवश्चेति। तत्र जीवप्राभृतज्ञायी मनुष्यजीवप्राभृतज्ञायी वा अनुपयुक्त आत्मा आगमद्रव्य-जीवः। नोआगमद्रव्यजीवस्त्रेधा व्यवतिष्ठते। ज्ञायकशरीरभावितद्व्यतिरिक्तभेदात्। तत्र ज्ञातुर्यच्छरीरं त्रिकालगोचरं तज्ज्ञायकशरीरम्। सामान्यापेक्षया नोआगमभाविजीवो नास्ति, जीवनसामान्यस्य सदाऽपि विद्यमानत्वात्। विशेषापेक्षया त्वस्ति। गत्यन्तरे जीवो व्यवस्थितो मनुष्यभवप्राप्तिं प्रत्यभिमुखो मनुष्यभाविजीवः। [४१]तद्व्यतिरिक्तः कर्मनोकर्मविकल्पः। भावजीवो द्विविधः। आगमभावजीवो नोआगमभावजीवश्चेति। तत्र जीवप्राभृतविषयोपयोगाविष्टो मनुष्यजीवप्राभृतविषयोपयोगयुक्तो वा आत्मा आगमभावजीवः। जीवनपर्यायेण मनुष्यजीवत्वपर्यायेण वा समाविष्ट आत्मा नोआगमभावजीवः। एवमितरेषामपि पदार्थानामजीवादीनां नामादिनिक्षेपविधिर्नियोज्यः। स किमर्थः? अप्रकृतनिराकरणाय प्रकृतनिरूपणाय च। निक्षेपविधिना शब्दार्थः प्रस्तीर्यते। तच्छब्दग्रहणं किमर्थम्? सर्वसङ्ग्रहार्थम्। असति हि तच्छब्दे सम्यग्दर्शनादीनां प्रधानानामेव न्यासेनाभिसम्बन्धः स्यात्, तद्विषयभावेनोपगृहीता-नामप्रधानानां जीवादीनां न स्यात्। तच्छब्दग्रहणे पुनः क्रियमाणे सति सामर्थ्यात् प्रधानानामप्रधानानां च ग्रहणं सिद्धं भवति।

**एवं नामादिभिः प्रस्तीर्णानामधिकृतानां तत्त्वाधिगमः कुतः? इत्यत इदमुच्यते—**

## प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥

नामादिनिक्षेपविधिनोपक्षिप्तानां जीवादीनां तत्त्वं प्रमाणाभ्यां नयैश्चाधिगम्यते। प्रमाणनया वक्ष्यमाणलक्षणविकल्पाः। तत्र प्रमाणं द्विविधं, स्वार्थं परार्थं च। तत्र स्वार्थं प्रमाणं श्रुतवर्ज्यम्। श्रुतं पुनः स्वार्थं भवति परार्थं च। ज्ञानात्मकं स्वार्थं वचनात्मकं परार्थम्। तद्विकल्पा नयाः। अत्राह—नयशब्दस्य अल्पाच्तरत्वात्पूर्वनिपातः प्राप्नोति? नैष दोषः। अभ्यर्हितत्वात्प्रमाणस्य तत्पूर्वनिपातः।

---

**३८.** अतद्गुणे वस्तुनि इति कोर्थः—न विद्यन्ते शब्दप्रवृत्तिनिमित्तानि जगत्प्रसिद्धानि जातिगुणक्रियाद्रव्यलक्षण-गुणविशेषणानि यस्मिन्वस्तुनि तद्वस्तु अतद्गुणं तस्मिन्नतद्गुणे। तदुक्तं श्लोकः—द्रव्यक्रियाजातिगुणप्रभेदैः डवित्थकर्तृद्विज-पाटलादौ। शब्दप्रवृत्तिं मुनयो वदन्ति चतुष्टयीं शब्दविदः पुराणाः। **३९.** हठात्। **४०.** गुणैर्गुणान्वा द्रुतं गतं प्राप्तमिति द्रव्यमित्यप्यधिकः पाठः पुस्तकान्तरे दृश्यते। **४१.** तद्व्यतिरिक्तेति—तत्र कर्म तावत्प्रसिद्धं। नोकर्मस्वरूपं निरूप्यते। औदारिकवैक्रियिकाहारक-शरीरत्रयस्य षट्पर्याप्तीनां च योग्यपुद्गलानामादानं नोकर्म।

अभ्यर्हितत्वं च सर्वतो बलीयः। कुतोऽभ्यर्हितत्वम्? नयप्ररूपणप्रभवयोनित्वात्। एवं ह्युक्तं, ''प्रगृह्य प्रमाणतः परिणतिविशेषादर्थावधारणं नय'' इति। सकलविषयत्वाच्च प्रमाणस्य। तथा चोक्तं। ''सकलादेशः प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीन इति'' नयो द्विविधः। द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च। पर्यायार्थिकनयेन पर्यायतत्त्वमधिगन्तव्यम्। इतरेषां नामस्थापनाद्रव्याणां द्रव्यार्थिकनयेन, सामान्यात्मकत्वात्। द्रव्यमर्थः प्रयोजनमस्येत्यसौ द्रव्यार्थिकः। पर्यायोऽर्थः प्रयोजनमस्येत्यसौ पर्यायार्थिकः। तत्सर्वं समुदितं प्रमाणेनाधिगन्तव्यम्।

**एवं प्रमाणनयैरधिगतानां जीवादीनां पुनरप्यधिगमोपायान्तरप्रदर्शनार्थमाह—**

### निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ॥७॥

निर्देशः स्वरूपाभिधानम्। स्वामित्वमाधिपत्यम्। साधनमुत्पत्तिनिमित्तम्। अधिकरणमधिष्ठानम्। स्थितिः कालपरिच्छेदः। विधानं प्रकारः। (१) तत्र सम्यग्दर्शनं किमिति प्रश्ने तत्त्वार्थश्रद्धानमिति निर्देशो [४२]नामादिर्वा। (२) सम्यग्दर्शनं कस्येत्युक्ते, [४३]सामान्येन जीवस्य। विशेषेण[४४] **गत्यनुवादेन नरकगतौ**— सर्वासु पृथिवीषु नारकाणां पर्याप्तकानामौपशमिकं क्षायोपशमिकं चास्ति। [४५]प्रथमायां पृथिव्यां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति[४६]। **तिर्यग्गतौ** तिरश्चां पर्याप्तकानामौपशमिकमस्ति। क्षायिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तापर्याप्तकानामस्ति। तिरश्चीनां क्षायिकं नास्ति। [४७]कुत इत्युक्ते मनुष्यः कर्मभूमिज एव दर्शनमोहक्षपणप्रारम्भको भवति। क्षपणप्रारम्भकालात्पूर्वं तिर्यक्षु बद्धायुष्कोऽपि उत्कृष्टभोगभूमितिर्यक्पुरुषेष्वेवोत्पद्यते, न तिर्यक्स्त्रीषु। द्रव्यवेदस्त्रीणां तासां क्षायिकासम्भवात्। एवं तिरश्चामप्यपर्याप्तकानां क्षायोपशमिकं ज्ञेयम् ? न पर्याप्तकानाम्। औपशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकानाम्। **मनुष्यगतौ** मनुष्याणां पर्याप्तापर्याप्तकानाम् क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति। औपशमिकं पर्याप्तकानामेव नापर्याप्तकानाम्। मानुषीणां त्रितयमप्यस्ति पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकानाम्। क्षायिकं पुनर्भाववेदेनैव। **देवगतौ** सामान्येन देवानां पर्याप्तापर्याप्तकानां त्रितयमप्यस्ति। औपशमिकमपर्याप्तकानां कथमिति चेच्चारित्रमोहोपशमेन[४८] सह मृतान्प्रति। **विशेषेण** भवन—

---

४२. नामस्थापनाद्रव्यभावा वा निर्देश उच्यते इत्यर्थः। ४३. सामान्येन गुणस्थानापेक्षया सम्यग्दर्शनस्य स्वामी जीवो भवतीति स्वामित्वमुच्यते। ४४. विशेषेण तु चतुर्दशमार्गणानुवादेन स्वामित्वमुच्यते। ४५. अत्र श्लोकाः—प्रथमायां त्रितयं स्यात्पर्याप्तानां द्वयं तदितरेषाम्। अशमजमितरास्वपि वा क्षयजं पर्याप्तकानां तु ॥१॥ पर्याप्तानां त्रितयं द्वयं तिरश्चामशान्तमितरेषाम्। क्षायिकवर्ज्यं द्वितयं पर्याप्तास्वेव तत्स्त्रीषु ॥२॥ नृणां पर्याप्तानां त्रयमितरेषां द्वयं तु शमवर्ज्यम्। त्रयमपि नारीषु स्यात्पर्याप्तास्वेव नान्यासु ॥३॥ पर्याप्तापर्याप्तकदेवेषु त्रितयमस्ति सम्यक्त्वम्॥ देवेष्वकल्पजेषु च पर्याप्तेष्वक्षयजमेव ॥४॥ क्षायिकमविरत-दृष्टिप्रभृतिषु सम्भवति वेदकं तु पुनः। अस्त्वप्रमादकान्तेष्वौपशमं चोपशान्तानाम्॥५॥ इत्यप्यधिकः पाठः पुस्तकान्तरे विद्यते। ४६. प्रथमायामिति—नरकगतौ पूर्वं बद्धायुष्कस्य पश्चाद्गृहीतक्षायिकक्षायोपशमिकसम्यक्त्वस्याधः पृथ्वीषु उत्पादाभावात्। ननु वेदकयुक्तस्य तिर्यङ्मनुष्यनरकेषूत्पादाभावात्कथमपर्याप्तकानां तेषां क्षायोपशमिकमिति? सत्यं। क्षपणायाः प्रारंभकेण वेदकेन युक्तस्य तत्रोत्पादे विरोधाभावात्। एवं तिरश्चामपि अपर्याप्तानां क्षायोपशमिकत्वं ज्ञातव्यम्। ४७. तदुक्तं—दंसण-मोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु। मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ॥ ४८.चारित्रमोहोपशमेन सह मृतान्प्रति-मिथ्यात्वपूर्वकोपशमयुक्तानामेव मरणसंभवात्। वेदकपूर्वकौपशमिका नियमेन श्रेण्यारोहणं कुर्वन्ति। श्रेण्यारोहाच्चारित्र-मोहोपशमेन सह मृतानपेक्ष्यापर्याप्तावस्थायामपि देवानामौपशमिकं संभवति।

वासिव्यन्तरज्योतिष्काणां देवानां देवीनां च सौधर्मैशानकल्पवासिनीनां च क्षायिकं नास्ति। तेषां पर्याप्तकानामौपशमिकं क्षयोपशमिकं चास्ति। १। **इन्द्रियानुवादेन** पंचेन्द्रियाणां संज्ञिनां त्रितयमप्यस्ति, नेतरेषाम्। २। **कायानुवादेन** त्रसकायिकानां त्रितयमप्यस्ति, नेतरेषाम्। ३। **योगानुवादेन** त्रयाणां योगिनां त्रितयमप्यस्ति। अयोगिनां क्षायिकमेव। ४। **वेदानुवादेन** त्रिवेदानां त्रितयमप्यस्ति। अपगतवेदानामौपशमिकं क्षायिकं चास्ति। ५। **कषायानुवादेन** चतुष्कषायाणां त्रितयमप्यस्ति। अकषायाणामौपशमिकं क्षायिकं चास्ति। ६। **ज्ञानानुवादेन** आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानिनां त्रितयमप्यस्ति। [४९]परिहार–विशुद्धिसंयतानामौपशमिकं नास्ति। इतरत् द्वितयमप्यस्ति। सूक्ष्मसाम्पराय–यथाख्यातसंयतानामौपशमिकं क्षायिकं चास्ति। संयतासंयतानां च त्रितयमप्यस्ति। ८। **दर्शनानुवादेन** चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनिनां त्रितयमप्यस्ति। केवलदर्शनिनां क्षायिकमेव। ९। **लेश्यानुवादेन** षड्लेश्यानां त्रितयमप्यस्ति। अलेश्यानां क्षायिकमेव। १०। **भव्यानुवादेन** भव्यानां त्रितयमप्यस्ति, नाभव्यानाम्। ११। **सम्यक्त्वानुवादेन** यत्र यत्सम्यग्दर्शनं तत्र तदेव ज्ञेयम्। १२। **संज्ञानुवादेन** संज्ञिनां त्रितयमप्यस्ति नासंज्ञिनाम्। तदुभयव्यपदेशरहितानां क्षायिकमेव। १३। **आहारानुवादेन** आहारकाणां त्रितयमप्यस्ति। अनाहारकाणां छद्मस्थानां त्रितयमप्यस्ति। केवलिनां समुद्घातगतानां क्षायिकमेव। १४। (३) **साधनं** द्विविधमभ्यन्तरं बाह्यं च। अभ्यन्तरं दर्शनमोहस्योपशमः क्षयः क्षयोपशमो वा। बाह्यं नारकाणां प्राक्चतुर्थ्याः सम्यग्दर्शनस्य साधनंकेषांचिज्जातिस्मरणं, केषांचिद्धर्मश्रवणं, केषांचिद्वेदनाभिभवः। चतुर्थीमारभ्य आ सप्तम्या नारकाणां जातिस्मरणं वेदनाभिभवश्च। तिरश्चां केषांचिज्जातिस्मरणं, केषांचिद्धर्मश्रवणं, केषांचिज्जिनबिम्बदर्शनम्। मनुष्याणामपि तथैव। देवानां केषांचिज्जातिस्मरणं केषांचिद्धर्मश्रवणं केषांचिज्जिनमहिमदर्शनं, केषांचिद्देवर्द्धिदर्शनम्। एवं प्रागानतात्। आनतप्राणतारणा–च्युतदेवानां देवर्द्धिदर्शनं मुक्त्वाऽन्यत्रितयमप्यस्ति। नवग्रैवेयकवासिनां[५०] केषांचिज्जातिस्मरणं केषांचिद्धर्मश्रवणम्[५१]। अनुदिशानुत्तरविमानवासिनामियं कल्पना न सम्भवति। प्रागेव गृहीत–सम्यक्त्वानां तत्रोत्पत्तेः (४) **अधिकरणं** द्विविधम्। अभ्यन्तरं बाह्यं च। अभ्यन्तरं स्वस्वामिसम्बन्धार्ह एव आत्मा, विवक्षातः कारकप्रवृत्तेः। [५२]बाह्यं लोकनाडी। सा कियती? एकरज्जुविष्कम्भा चतुर्दशरज्ज्वायामा। (५)

**४९.** परिहारविशुद्धिसंयतानामौपकमिकं कस्मान्न भवति चेन्मनःपर्ययपरिहारशुद्ध्यौपशमिक–सम्यक्त्वाहारकर्द्धीनां मध्येऽन्यतरसंभवे परं त्रितयं न संभवति। एकस्मिन्मनःपर्यये तु मिथ्यात्वपूर्वकौपशमिकस्य प्रतिषेधो दृष्टो न वेदकपूर्वकस्य। उक्तं च–मणपज्जवपरिहारो उवसमसम्मत्तआहारया दोण्णि, एदेसिं एगदरे सेसाणं संभवो णत्थि। आहारया दोण्णि आहारकाहारकमिश्रौ॥ **५०.** नवग्रैवेयकवासिनामिति–नवग्रैवेयकवासिनामहमिन्द्रत्वात्कथं धर्मश्रवणमिति चेदुच्यते–कश्चित्सम्यग्दृष्टिस्तत्र परिपाटीं करोति। शास्त्रगुणनिकां करोति। तामाकर्ण्यान्यः कोऽपि तत्र स्थित एव सम्यग्दर्शनं गृह्णाति। अथवा प्रमाणनयनिक्षेपस्तेषां न विद्यते। तत्त्वविचारस्तु लिंगिनामिव विद्यते इति नास्ति दोषः। **५१.** धर्मश्रुतिजातिस्मृतिसुरर्द्धिजिनमहिमदर्शनं बाह्यम्। प्रथमदृशोऽङ्गं विना सुरर्द्धीक्षयाऽऽनतादिभुवाम् ॥१॥ ग्रैवेयकाणां पूर्वे द्वे सजिनार्च्चेक्षणे नरतिरश्चाम्। सरुगभिभवे त्रिषु प्राक् श्वभ्रेष्वन्येषु सद्वितीया सा ॥२॥ **५२.** जीवाकाशपुद्गलकालधर्माधर्माणां निश्चयनयेन स्वप्रदेशा एवाधिकरणं। व्यवहारेणाकाशरहितानामाकाशमधिकरणं। जीवस्य शरीरक्षेत्रादिरपि अधिकरणं। कुटलकुटादिपुद्गलानां भूम्यादिरप्याधारः। जीवादिद्रव्याणि गुणपर्यायाणां ज्ञानसुखादीनां आधारभूतानि।

**स्थिति**रौपशमिकस्य जघन्योत्कृष्टा चान्तर्मौहूर्तिकी। क्षायिकस्य संसारिणो जघन्यान्तर्मौहूर्तिकी। [५३]उत्कृष्टा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सान्तर्मुहूर्त्ताष्टवर्षहीनपूर्वकोटिद्वयाधिकानि। मुक्तस्य सादिरपर्यवसाना। क्षायोपशमिकस्य जघन्याऽन्तर्मौहूर्तिकी। उत्कृष्टा [५४]षट्षष्टिसागरोपमाणि। ६। **विधानं** सामान्यादेकं सम्यग्दर्शनम्। द्वितयं निसर्गजाधिगमजभेदात्।

एवं सङ्ख्येया [५५]विकल्पाः शब्दतः। असङ्ख्येया अनन्ताश्च भवन्ति श्रद्धातृश्रद्धातव्यभेदात्। एवमयं निर्देशादिविधिर्ज्ञानचारित्रयोर्जीवाजीवादिषु चागमानुसारेण योजयितव्यः।

**किमेतैरेव जीवादीनामधिगमो भवति उत अन्योऽप्यधिगमोपायोऽस्तीति परिपृष्टोऽस्तीत्याह–**

## सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥

सदित्यस्तित्वनिर्देशः। [५६]प्रशंसादिषु वर्तमानो नेह गृह्यते। सङ्ख्या भेदगणना। क्षेत्रं निवासो वर्तमान-कालविषयः। तदेव स्पर्शनं त्रिकालगोचरम्। कालो द्विविधः। मुख्यो व्यावहारिकश्च। तयोरुत्तरत्र निर्णयो वक्ष्यते। अन्तरं विरहकालः। भावः औपशमिकादिलक्षणः। अल्पबहुत्वमन्योऽन्यापेक्षया विशेषप्रतिपत्तिः। एतैश्च सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां चाधिगमो वेदितव्यः। ननु च ''निर्देशादेव सद्ग्रहणं सिद्धम्। विधानग्रहणात्संख्यागतिः। अधिकरणग्रहणात्क्षेत्रस्पर्शनावबोधः। स्थितिग्रहणात्कालसंग्रहः। भावो नामादिषु संगृहीत एव। पुनरेषां किमर्थं ग्रहणमिति''? सत्यं, सिद्धम्। विनेयाशयवशात्तत्त्वदेशनाविकल्पः। केचित्सङ्क्षेपरुचयः, अपरे नातिसङ्क्षेपेण नातिविस्तरेण प्रतिपाद्याः। ''सर्वसत्त्वानुग्रहार्थो हि सतां प्रयास'' इति अधिगमाभ्युपायभेदोद्देशः कृतः। इतरथा हि ''प्रमाणनयैरधिगमः'' [५७]इत्यनेनैव सिद्धत्वादितरेषां ग्रहणमनर्थकं स्यात्। तत्र जीवद्रव्यमधिकृत्य सदाद्यनुयोगद्वारनिरूपणं[५८] क्रियते।

---

**५३.**उत्कृष्टेति–तथाहि कश्चित्कर्मभूमिजो मनुष्यः पूर्वकोट्यायुरुत्पन्नो गर्भाष्टमवर्षानन्तरं अन्तर्मुहूर्तेन दर्शनमोहं क्षपयित्वा क्षायिकसद्दृष्टिर्भूत्वा तपो विधाय सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नस्ततश्च्युत्वा पूर्वकोट्यायुरुत्पद्य कर्मसंक्षयं कृत्वा मोक्षं याति, भवत्रयं नातिक्रामति। **५४.** वेदकस्योत्कृष्टास्थितिः षट्षष्टिसागरोपमाणि। सा कथं–सौधर्मे द्वौ सागरौ, शुक्रे षोडशसागराः, शतारे अष्टादशसागराः, अष्टमग्रैवेयके त्रिंशत्सागराः। एवं षट्षष्टिसागराः। अथवा सौधर्मे द्विरुत्पन्नस्य चत्वारः, सानत्कुमारे सप्तसागराः, ब्रह्मणि दशसागरा, लांतवे चतुर्दशसागराः, नवमग्रैवेयके एकत्रिंशत्सागराः, एवं षट्षष्टिः। अन्त्यसागरशेषे मनुष्यायुर्हीनं क्रियते तेन षट्षष्टिसागराः साधिका न भवन्ति। लांतवकप्पे तेरस अच्चुदकप्पे य होंति बावीसा। उवरिमं एक्कत्तीसं एवं सव्वाणि छासट्ठी॥ **५५.** आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसङ्क्षेपात्। विस्तारार्थाभ्यां भवमवपरमावादिगाढं च॥ १॥ इति दशविधम्। अस्या आर्याया विवरणार्थं वृत्तत्रयमाह। तथाहि। स्रग्धरा। आज्ञासम्यक्त्वमुक्तं यदुत विरुचितं वीतरागाज्ञयैव। त्यक्तग्रन्थप्रपंचं शिवममृतपथं श्रद्दधन्मोहशान्तेः। मार्गश्रद्धानमाहुः पुरुषवरपुराणोपदेशोपजाता या संज्ञानागमाब्धि–प्रसृतिभिरुपदेशादिरादेशि दृष्टिः। १॥ आकर्ण्याचारसूत्रं मुनिचरणविधेः सूचनं श्रद्दधानः। सूक्तोऽसौ सूत्रदृष्टिर्दुरधिगमगतेरर्थसार्थस्य बीजैः। कैश्चिज्जातोपलब्धेरसमशमवशाद्बीजदृष्टिः पदार्थान्। सङ्क्षेपेणैव बुद्ध्वा रुचिमुपगतवान् साधुसंक्षेपदृष्टिः॥ २॥ यः श्रुत्वा द्वादशांगीं कृतरुचिरिह तं विद्धि विस्तारदृष्टिम्। संजातार्थात्कुतश्चित्प्रवचनवचनान्यन्तरेणार्थदृष्टिः। दृष्टिः सांगांगबाह्य–प्रवचनमवगाह्योत्थिता यावगाढा। कैवल्यालोकितार्थे रुचिरिह परमावादिगाढेति रूढा॥ ३॥ इति श्रीगुणभद्रभदन्तेनात्मानुशासनप्रारंभे उक्तम्। एवं संख्येयविकल्पाः सम्यग्दर्शनप्ररूपकशब्दानां संख्यातत्वात्। **५६.**साध्वर्चितप्रशस्तेषु सत्येऽस्तित्वे च सम्मतः। इति वचनात्। **५७.**नामादयस्त्रयो द्रव्यार्थिकनयविषयाः। भावःपर्यायार्थिकनयविषयो यतः। **५८.**प्रवेशमार्गः।

जीवाश्चतुर्दशसु गुणस्थानेषु व्यवस्थिताः। १. मिथ्यादृष्टिः। २. सासादनसम्यग्दृष्टिः। ३. सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः। ४. असंयतसम्यग्दृष्टिः। ५. संयतासंयतः। ६. प्रमत्तसंयतः। ७. अप्रमत्तसंयतः। ८. अपूर्वकरणस्थाने उपशमकः क्षपकः। ९. अनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने उपशमकः क्षपकः। १०. सूक्ष्मसांपरायस्थाने उपशमकः क्षपकः,११. उपशान्तकषाय-वीतरागछद्मस्थः। १२. क्षीणकषाय-वीतरागछद्मस्थः। १३. सयोगकेवली। १४. अयोगकेवली चेति। एतेषामेव जीवसमासानां[५९] निरूपणार्थं चतुर्दशमार्गणास्थानानि ज्ञेयानि। गतीन्द्रियकाययोगवेदकषायज्ञानसंयमदर्शनलेश्याभव्यसम्यक्त्व-संज्ञाऽऽहारका इति। तत्र सत्त्वप्ररूपणा द्विविधा, सामान्येन विशेषेण च। **सामान्येन** तावत् अस्ति मिथ्यादृष्टिः। अस्ति सासादनसम्यग्दृष्टिरित्येवमादि[६०]। विशेषेण–**गत्यनुवादेन** नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु आद्यानि चत्वारि गुणस्थानानि सन्ति। तिर्यग्गतौ तान्येव संयतासंयतस्थानाधिकानि सन्ति। मनुष्यगतौ चतुर्दशापि सन्ति। देवगतौ नारकवत्। **इन्द्रियानुवादेन** एकेन्द्रियादिषु चतुरिन्द्रियपर्यन्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्। पञ्चेन्द्रियेषु चतुर्दशापि सन्ति। **कायानुवादेन** पृथिवीकायादिषु वनस्पतिकायान्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्। त्रसकायेषु चतुर्दशापि सन्ति। **योगानुवादेन** त्रिषु योगेषु त्रयोदशगुणस्थानानि भवन्ति। ततः परः अयोगकेवली। **वेदानुवादेन**[६१] त्रिषु वेदेषु मिथ्या-दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानि सन्ति। अपगतवेदेषु [६२]अनिवृत्तिबादराद्ययोगकेवल्यन्तानि। **कषायानुवादेन** क्रोधमानमायासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि अनिवृत्तिबादरस्थानान्तानि सन्ति। लोभकषाये तान्येव सूक्ष्मसाम्परायस्थानाधिकानि। अकषायः उपशान्तकषायः, क्षीणकषायः, सयोगकेवली, अयोगकेवली च। **ज्ञानानुवादेन** मत्यज्ञानश्रुताज्ञान-विभङ्गज्ञानेषु मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिश्चास्ति। आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानेषु असंयत-सम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति। मनःपर्ययज्ञाने प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ताः सन्ति। केवलज्ञाने सयोगोऽयोगश्च। **संयमानुवादेन** संयताः प्रमत्तादयोऽयोगकेवल्यन्ताः। सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयताः प्रमत्तादयोऽनिवृत्तिस्थानान्ताः। परिहारविशुद्धिसहिताः प्रमत्ताप्रमत्ताश्च। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयता एकस्मिन्नेव सूक्ष्मसाम्परायस्थाने। यथाख्यातविहारशुद्धिसंयता उपशांतकषायादयोऽयोगकेवल्यन्ताः। संयतासंयता एकस्मिन्नेव संयतासंयतस्थाने। असंयता आद्येषु चतुर्षु गुणस्थानेषु। **दर्शनानुवादेन** चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनयोर्मिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति। अवधिदर्शने असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि। केवलदर्शने सयोगकेवली अयोगकेवली च। **लेश्यानुवादेन** कृष्णनीलकपोतलेश्यासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि असंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानि सन्ति।

---

**५९.**जीवाः सम्यगासते येष्विति जीवसमासाः। **६०.**चतुर्दशगुणस्थानेषु वक्तव्यम्। **६१.**वेदानुवादेनेति। ननु एकस्यैव अनिवृत्तिगुणस्थानस्य सवेदत्वमवेदत्वं च कथमिति चेद्भण्यते-अनिवृत्तिगुणस्थानं षड्भागी क्रियते। तत्र प्रथमभागत्रये वेदानामनिवृत्तत्वात्सवेदत्वम्। अन्यश्च वेदानां निवृत्तत्वादवेदत्वं। **६२.**अत्रावेदभागानिवृत्तिकरणगुणस्थानं ग्राह्यम्। (१) सम्यग्मिथ्यादृष्टेः टिप्पणकारकाभिप्रायेण ज्ञातव्यम्। इत्यप्यधिकः पाठः पुस्तकान्तरे दृश्यते। (सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ज्ञानमज्ञानं च केवलं न सम्भवति। तस्याज्ञानत्रयाधारत्वात्। उक्तं च ''मिस्मे णाणत्तियमिस्सं अण्णाणत्तियेणेति'' तेन ज्ञानानुवादे मिश्रस्यानभिधानम्। तस्याज्ञानप्ररूणायामेवामिधानं ज्ञातव्यम्। ज्ञानस्य अयथार्थविषयत्वाभावात्। -इति श्रुतसागरः।)

तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यादीनि अप्रमत्तस्थानान्तानि। शुक्ललेश्यायां मिथ्यादृष्ट्यादीनि [६३]सयोग-केवल्यन्तानि। अलेश्या अयोगकेवलिनः। **भव्यानुवादेन** भव्येषु चतुर्दशापि सन्ति। अभव्य आद्ये एव स्थाने। **सम्यक्त्वानुवादेन** क्षायिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अयोगकेवल्यन्तानि सन्ति। क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अप्रमत्तान्तानि। औपशमिकसम्यक्त्वे असंयत-सम्यग्दृष्ट्यादीनि उपशान्तकषायान्तानि। सासादनसम्यग्दृष्टिः, सम्यङ्मिथ्यादृष्टिर्मिथ्यादृष्टिश्च स्वे स्वे स्थाने। **संज्ञानुवादेन** संज्ञिषु द्वादशगुणस्थानानि क्षीणकषायान्तानि। असंज्ञिषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्। तदुभयव्यपदेशरहितः सयोगकेवली अयोगकेवली च। **आहारानुवादेन** आहारकेषु मिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगकेवल्यन्तानि। अनाहारकेषु विग्रहगत्यापन्नेषु त्रीणि गुणस्थानानि, मिथ्यादृष्टिः, सासादनसम्यग्दृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिश्च। समुद्घातगतः सयोगकेवली अयोगकेवली च। सिद्धाः परमेष्ठिनः अतीतगुणस्थानाः। उक्ता सत्प्ररूपणा।

**संख्याप्ररूपणोच्यते**—सा द्विविधा सामान्येन तावत् जीवा मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः सासादन-सम्यग्दृष्टयः सम्यङ्मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयः, संयतासंयताश्च पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः[६४]। प्रमत्तसंयताः कोटीपृथक्त्वसंख्याः[६५] [पृथक्त्वमित्यागमसंज्ञा तिसृणां कोटीनामुपरि नवानामधः]। अप्रमत्तसंयताः संख्येयाः[६६]। चत्वार[६७] उपशमकाः प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा। उत्कर्षेण चतुःपंचाशत् स्वकालेन समुदिताः संख्येयाः। चत्वारः क्षपका अयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा। उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः। स्वकालेन समुदिताः संख्येया। सयोगकेवलिनः प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा। उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः। स्वकालेन समुदिताः शतसहस्रपृथक्त्वसंख्याः।

**विशेषेण गत्यनुवादेन**—(१) **नरकगतौ** प्रथमायां पृथिव्यां नारका मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः [६८]श्रेणयः [६९]प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। द्वितीयादिष्वा सप्तम्या मिथ्यादृष्टयः श्रेण्यसंख्येयभागप्रमिताः। स चासंख्येयभागः असंख्येया योजनकोट्यः। सर्वासु पृथिवीषु सासादनसम्यग्दृष्टयः, सम्यङ्मिथ्या-दृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयश्च पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः। **तिर्यग्गतौ** तिरश्चां मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः। सासादनसम्यग्दृष्टयः संयतासंयतान्ताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः। **मनुष्यगतौ** मनुष्या मिथ्यादृष्टयः

---

**६३**. सयोगकेवलिनि औपचारिकी लेश्या। **६४.** तथाहि। द्वितीये गुणस्थाने द्विपचाशत्कोट्यः॥ ५२००००००००॥ तृतीयगुणस्थाने चतुरधिकाः शतकोट्यः॥ १०४००००००००॥ चतुर्थगुणस्थाने सप्तशतकोट्यः॥ ७०००००००००॥ पंचमगुणस्थाने त्रयोदशकोट्यः॥ १३००००००००॥ तथा चोक्तम् ॥गाथा॥ तेरसकोडी देसे बावण्णं सासणे मुणेदव्वा॥ मिस्सावि य तद्दुगुणा असंजदा सत्तकोडिसयं॥१॥ **६५.** तथापि प्रमत्तसंयता निर्द्धारयितुं शक्याः। तेन तत्संख्या कथ्यते। कोटीपंचकं त्रिनवतिलक्षा अष्टानवतिसहस्राः शतद्वयं षट् च वेदितव्याः।५९३९८२०६। **६६.** सा संख्या न ज्ञायते इति चेदुच्यते। कोटीद्वयं षण्णवतिलक्षाः नवनवतिसहस्राः शतमेकं त्र्यधिकम। प्रमत्तसंयतार्द्धपरिमाण इत्यर्थः॥ २९६९९१०३। **६७.** अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्म-सांपरायोपशान्तकषायाश्चेति चत्वारः। **६८.** केयं श्रेणिरिति चेदुच्यते। सप्तरज्जुकमयी मुक्ताफलमालावदाकाशप्रदेशपंक्तिः श्रेणिरित्युच्यते। **६९.** प्रतरासंख्येयभागप्रमिता इति यदुक्तं स प्रतरः कियान् भवति? श्रेणिगुणिता श्रेणिः प्रतर उच्यते। प्रतरासंख्यातभागप्रमितानामसंख्यातानां श्रेणीनां यावन्तः प्रदेशास्तावन्तस्तत्र नारका इत्यर्थः।

श्रेण्यसंख्येयभागप्रमिताः। स चासंख्येयभागः असंख्येया योजनकोट्यः। सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः संख्येयाः। प्रमत्तादीनां सामान्योक्ता संख्या। **देवगतौ** देवा मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टयः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः। (२) **इन्द्रियानुवादेन**—एकेन्द्रियमिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः। द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रिया असंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। पंचेद्रियेषु मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्या। (३) **कायानुवादेन**—पृथिवीकायिका, अप्कायिकास्तेजःकायिका, वायुकायिका असंख्येयलोकाः। वनस्पतिकायिका अनन्तानन्ताः। त्रसकायिकसंख्या पचेन्द्रियवत्। (४) **योगानुवादेन**—मनोयोगिनो, वाग्योगिनश्च मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। काययोगिषु मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः। त्रियोगिनां सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः। प्रमत्तसंयतादयः सयोगकेवल्यन्ताः संख्येयाः। अयोगकेवलिनः सामान्योक्तसङ्ख्याः। (५) **वेदानुवादेन**—स्त्रीवेदाः, पुंवेदाश्च मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिता। नपुंसकवेदा मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः। स्त्रीवेदा, नपुंसकवेदाश्च सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। प्रमत्तसंयतादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः संख्येयाः। पुंवेदाः सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्या। प्रमत्तसंयतादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। अपगतवेदा अनिवृत्तिबादरादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्या। (६) **कषायानुवादेन**—क्रोधमानमायासु मिथ्यादृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। प्रमतसंयतादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः संख्येयाः। लोभकषायाणामुक्त एव क्रमः। अयं तु विशेषः—सूक्ष्मसाम्परायसंयताः सामान्योक्तसंख्याः। अकषाया उपशान्तकषायादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः। (७) **ज्ञानानुवादेन**—मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्च मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टयः सामान्योक्तसंख्याः। विभङ्गज्ञानिनो मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। सासादनसम्यग्दृष्टयः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः। मतिश्रुतज्ञानिनोऽसंयतसम्यग्दृष्ट्यादयः क्षीणकषायान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। अवधिज्ञानिनोऽसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ताः संख्येयाः। मनःपर्ययज्ञानिनः प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ताः संख्येयाः। केवलज्ञानिनः सयोगा अयोगाश्च सामान्योक्तसंख्याः। (८) **संयमानुवादेन**—सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयताः प्रमत्तादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। परिहारविशुद्धिसंयताः प्रमत्ताश्चाप्रमत्ताश्च संख्येयाः। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयता, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयताः, संयतासंयताः, असंयताश्च सामान्योक्त-संख्याः। (९) **दर्शनानुवादेन**—चक्षुर्दर्शनिनो मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। अचक्षुर्दर्शनिनो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः। उभये च सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः क्षीणकषायान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। अवधिदर्शनिनोऽवधिज्ञानिवत्। केवलदर्शनिनः केवलज्ञानिवत्। (१०) **लेश्यानुवादेन**—कृष्णनीलकपोतलेश्या मिथ्यादृष्ट्यादयोऽसंयत-

सम्यग्दृष्ट्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः। तेजःपद्मलेश्या मिथ्यादृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः स्त्रीवेदवत्। प्रमत्ताप्रमत्तसंयताः संख्येयाः। शुक्ललेश्या मिथ्यादृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः पल्योपमासंख्येय-भागप्रमिताः। प्रमत्ताप्रमत्तसंयताः संख्येयाः। अपूर्वकरणादयः सयोगकेवल्यन्ता, अलेश्याश्च सामान्योक्तसंख्याः।(११) **भव्यानुवादेन—**भव्येषु मिथ्यादृष्ट्यादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः। अभव्या अनन्ताः।(१२) **सम्यक्त्वानुवादेन—**क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टयः पल्योपमा-संख्येयभागप्रमिताः। संयतासंयतादय उपशान्तकषायान्ताः संख्येयाः। चत्वारः क्षपकाः सयोग-केवलिनोऽयोगकेवलिनश्च सामान्योक्तसंख्याः। क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयत-सम्यग्दृष्ट्यादयोऽप्रमत्तान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः। प्रमत्ताप्रमत्तसंयताः संख्येया। चत्वार औपशमिकाः सामान्योक्तसंख्याः। सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यङ्मिथ्यादृष्टयो मिथ्यादृष्टयश्च सामान्योक्तसंख्याः।(१३) **संज्ञानुवादेन—**संज्ञिषु मिथ्यादृष्ट्यादयः क्षीणकषायान्ताश्चक्षुर्दर्शनिवत्। असंज्ञिनो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः। तदुभयव्यपदेशरहिताः सामान्योक्तसंख्याः।(१४) **आहारानुवादेन—**[७०]अनाहारकेषु मिथ्यादृष्ट्यादयः सयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः। अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्य-संयतसम्यग्दृष्टयः सामान्योक्तसंख्याः। सयोगकेवलिनः संख्येयाः। अयोगकेवलिनः सामान्योक्तसंख्याः। संख्या निर्णीता।

**क्षेत्रमुच्यते—** तत् द्विविधम्। **सामान्येन विशेषेण च**। सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टीनां सर्वलोकः[७१]। [७२]सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनामयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः[७३], समुद्घातेऽसंख्येया[७४] वा[७५] भागाः सर्वलोको वा। **विशेषेण—**(१) **गत्यनुवादेन**

---

**७०.** अनाहारकेष्विति-मिश्रास्तु अनाहारका न भवन्ति मृतेरभावात्। तथा चोक्तं-मिश्रे क्षीणेऽकषाये च मरणं नास्ति देहिनाम्। शेषेष्वेकादशस्वस्ति मृतिरित्यूचिरे विदः। **७१.** स्वस्थानस्वस्थाने वेदनाकषायमारणान्तिकसमुद्घातेषु उपपादे च एवं पंचसु पदेषु सर्वलोको मिथ्यादृष्टीनां क्षेत्रम्। **७२.** सासादनस्य असंयतसम्यग्दृष्टेश्च स्वस्थानस्वस्थानविहारवत् स्वस्थानवेदनाकषायवैक्रियिकमारणान्तिकोपपादेषु लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रम्। मिश्रस्य तेष्विव मारणान्तिकोपपादरहितेषु। तद् रहितत्वं कुत इति चेत्तस्य मारणान्तिकमरणयोरभावात्। तदपि कुतः? ''मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि'' इत्यनेन 'मिस्सा आहारस्सयमिस्सा' इत्यादिना च तयोः प्रतिषेधान्निश्चीयते। एवं देशसंयतादिषु आगमानुसारेणावबोद्धव्यम्। **७३.** लोकस्यासंख्येयभाग इति-तु लोकस्यासंख्येयभागो दंडकपाटापेक्षया क्षेत्रं ज्ञातव्यं। तत्कथं? कायोत्सर्गेण स्थितश्चेद्दण्डसमुद्घातं द्वादशांगुलप्रमाणं समवृत्तं मूलशरीरप्रमाणसमवृत्तं वा। उपविष्टश्चेच्छरीरत्रिगुणबाहल्यं वायूनलोकोदयं वा प्रथमसमये करोति। कपाटसमुद्घातं धनुःप्रमाणबाहल्योदयं पूर्वाभिमुखश्चेद्दक्षिणोत्तरतः करोति। उत्तराभिमुखश्चेत्पूर्वापरत आत्मप्रसर्पणं करोति द्वितीये समये। एष विचारः संस्कृतमहापुराण-पंजिकायामस्ति। प्रतरावस्थायां सयोगकेवली वातवलयत्रयादर्वागेवात्मप्रदेशैर्निरन्तरं लोकं व्याप्नोति। लोकपूरणावस्थायां वातवलयत्रयमपि व्याप्नोति तेन सर्वलोकक्षेत्रम्। **७४.** एकस्मिन्काले सम्भवतां पूर्वोक्तशतसहस्रपृथक्त्वसंख्यानां सयोगकेवलिनां स्वस्थानस्वस्थानविहारवत्स्वस्थानापेक्षया च लोकस्यासंख्येयभागाः क्षेत्रम्। असंख्येयभागा इति वचनेन प्रतरसमुद्घाते लोकस्यासंख्यातबहुभागमात्रं क्षेत्रमित्युक्तं ज्ञेयम्। त्रिलोकसारे सत्तासीदी चदुस्सदेत्यादिना कथितेन सर्ववातवलयावरुद्धक्षेत्रेण (एतावता १०२४१९८७१४८७) सर्वलोकासंख्यातैकभागमात्रेण हीनस्य सर्वलोकस्य तत्क्षेत्रत्वात्। लोकपूरणापेक्षया सर्वलोकः क्षेत्रम्। **७५.** असंख्येयभागा इति वचनेन प्रतरसमुद्घाते असंख्येयभागोऽपि

**नरकगतौ**—सर्वासु पृथिवीषु नारकाणां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासंख्येयभागः। **तिर्यग्गतौ** तिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। **मनुष्यगतौ** मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोग-केवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। सयोगकेवलिनां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। **देवगतौ** देवानां सर्वेषां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासंख्येयभागः। (२) **इन्द्रियानुवादेन**—एकेन्द्रियाणां क्षेत्रं सर्वलोकः। विकलेन्द्रियाणां[७६] लोकस्यासंख्येयभागः। पंचेन्द्रियाणां मनुष्यवत्[७७]। (३) **कायानुवादेन**—पृथिवीकायादिवनस्पतिकायिकान्तानां सर्वलोकः। त्रसकायिकानां पंचेन्द्रियवत्।(४) **योगानुवादेन**—वाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। काययोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां[७८] च सामान्योक्तं क्षेत्रम्।(५) **वेदानुवादेन**—स्त्रीपुंवेदानां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। नपुंसकवेदानां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्ति—बादरान्तानामपगतवेदानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्। (६) **कषायानुवादेन**–क्रोधमानमायाकषायाणां लोभकषायाणां च मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सूक्ष्मसाम्परायाणामकषायाणां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्। (७) **ज्ञानानुवादेन**—मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। विभङ्गज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः। आभिनिबोधिकश्रुतावधि-ज्ञानिनामसंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणकषायान्तानां, मनःपर्ययज्ञानिनां च प्रमत्तादीनां क्षीणकषायान्तानां, केवलज्ञानिनां सयोगानामयोगानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्।(८) **संयमानुवादेन**—सामायिकच्छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयतानां चतुर्णां, परिहारविशुद्धिसंयतानां प्रमत्ताप्रमत्तानां, सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतानां, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां चतुर्णां, संयतासंयतानामसंयतानां च चतुर्णां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। (९) **दर्शनानुवादेन**—चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। अचक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादि—क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत्। केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत्।(१०) **लेश्यानुवादेन**—कृष्णनीलकापोतलेश्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। तेजःपद्मलेश्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। शुक्ललेश्यानां, मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। सयोगकेवलिनामलेश्यानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्। (११) **भव्यानुवादेन**—भव्यानां चतुर्दशानां सामान्योक्तंक्षेत्रम्। अभव्यानां सर्वलोकः (१२)

---

परामृष्टः। तेन दण्डकपाटसमुद्घातयोर्लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रमित्यवसेयम्। तत्र आरोहणावरोहणापेक्षया उत्कर्षेण चत्वारिंशत्केवलिनः सम्भवन्ति। तथापि क्षेत्रं लोकस्यासंख्येयभाग एव। उत्तरत्र सर्वत्र स्वस्थानादिपदानि यथासम्भवं योज्यानि।

**७६.** विकलेन्द्रियाणामिति–देवनारकवत्तेषां नियतोत्पादस्थानत्वात्। विकला हि अर्द्धतृतीयेषु द्वीपेषु लवणोद-कालोदसमुद्रयोः स्वयंभूरमणद्वीपार्द्धपरभागे स्वयंभूरमण–समुद्रे चोत्पद्यन्ते। न पुनरसंख्यद्वीपसमुद्रेषु न च नरकस्वर्गभूम्यादिषु।
**७७.** भागहारभूतासङ्ख्यातस्यानेकविधत्वेन क्षेत्रस्य तारतम्यसद्भावेऽपि लोकस्यासंख्येयभागत्वाविशेषान्मनुष्यवदिति वचनम्।
**७८.** वाङ्मानसयोगविशिष्टे सयोगकेवलिनि समुद्घातासम्भवोऽवगन्तव्यः। ओरालं दंडदुगे कवाडजुगले य तस्स मिस्सो दु। पदरे य लोगपूरे कम्मेव य होह कम्मइयं। इत्यनेन तत्र काययोगस्यैव कथनात्। काययोगे तु स्वस्थानसमुद्घातसम्भवो भवति।

**सम्यक्त्वानुवादेन**—क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां, क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां, औपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्युप-शान्तकषायान्तानां,सासादनसम्यग्दृष्टीनां, सम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् (१३) **संज्ञानुवादेन**—संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत्। असंज्ञिनां सर्वलोकः। [७९]तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्।(१४) **आहारानुवादेन**—आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्[८०]। सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः। अनाहारकाणां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयत-सम्यग्दृष्ट्ययोगकेवलिनां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागाः सर्वलोको वा। क्षेत्रनिर्णयः कृतः।

**स्पर्शनमुच्यते**–तद् द्विविधम्। **सामान्येन विशेषण** च। **सामान्येन तावत्**—मिथ्यादृष्टिभिः [८१]सर्वलोकः स्पृष्टः। [८२]सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, अष्टौ, द्वादश वा चतुर्दशभागा देशोनाः।सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, [८३]अष्टौ वा चतुर्दशभागाः देशोनाः। संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः [८४]षट्चतुर्दशभागा वा देशोनः। प्रमत्तसंयतादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम्। विशेषेण।(१) **गत्यनुवादेन—नरकगतौ** प्रथमायां[८५] पृथिव्यां नारकैश्चतुर्गुणस्थानै-र्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः। द्वितीयादिषु प्राक्सप्तम्या मिथ्यादृष्टिभिः सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोक-स्यासंख्येयभागः, एकः[८६], द्वौ, त्रयः, चत्वारः, पञ्च, चतुर्दशभागा वा देशोनाः।सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयत-

**७९.** ये न संज्ञिनो नाप्यसंज्ञिनस्तेषाम्।**८०.** समुद्घातरहितत्वादित्यर्थः।**८१.** असंख्यातयोजनकोट्याकाशप्रदेशपरिमाणः रज्जुस्तावदुच्यते। तल्लक्षणसमचतुरस्ररज्जुत्रिचत्वारिंशदधिकशतत्रयपरिमाणो लोक उच्यते। स लोको मिथ्यादृष्टिभिः सर्वः स्पृष्टः।इत्युक्तलक्षणे लोको स्वस्थानविहारः, परस्थानविहारो, मारणान्तिकसमुद्घातश्च प्राणिभिर्विधीयते।**८२.** तत्र स्वस्थान-विहारापेक्षया सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः। एवमग्रेऽपि स्वस्थानविहारापेक्षया लोकस्यासंख्येयभागो ज्ञातव्यः। परस्थानविहारापेक्षया तु सासादनदेवानां प्रथमपृथिवीत्रये विहारात् रज्जुद्वयम्। अच्युतान्तोपरिविहारात् षड्रज्जवः इत्यष्टौ, चतुर्दशभागा वा देशोनाः स्पृष्टाः।द्वादशभागाः कथं स्पृष्टा इति चेदुच्यते।सप्तमपृथिव्या परित्यक्तः सासादनादिगुणस्थान एव मरणान्तिकं विदधातीति नियमात्। षष्ठीतोमध्यलोके पंचरज्जवः सासादनो मरणान्तिकं करोति, मध्यलोकाच्च लोकाग्रे बादरपृथिवीकायिकबादराप्कायिकबादरवनस्पतिकायिकेषु उत्पद्यते इति सप्त रज्जव एवं द्वादशरज्जवो भवन्ति। सासादनसम्यग्दृष्टिर्हि वायुकायिकेषु, तेजःकायिकेषु, नरकेषु, सर्वसूक्ष्मकायिकेषु चतुःस्थानकेषु नोत्पद्यत इति नियमः।तथा चोक्तम्। वज्जिअ ठाणचउक्कं तेऊ वाऊ य णरयसुहुमं च। अण्णत्थ सव्वठाणे उववज्जदे सासणो जीवो ॥१॥ देशोना इति कथम्? केचित्प्रदेशाः सासादनसम्यग्दर्शनयोग्या न भवन्तीति देशोनाः।एवमुत्तरत्र सर्वत्रापि अस्पर्शनयोग्यप्रदेशोनत्वं वेदितव्यम्। **८३.** अष्टौ वेति–तत्कथं? सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्देवैः परस्थानविहारापेक्षयाष्टौ रज्जवः स्पृष्टाः। **८४.** षट् इति–तत्कथं? संयतासंयतैः स्वयंभूरमणतिर्यग्भिरच्युतान्तं मारणान्तिकापेक्षया षड्रज्जवः स्पृष्टः।**८५.** प्रथमायामिति– तत्कथं? सर्वेषां नारकाणां नियमेन संज्ञिपर्याप्तकपंचेद्रियेषु तिर्यक्षु मनुष्येषु च प्रादुर्भावः। तत्र प्रथमपृथिव्याः सन्निहितत्वेन अर्द्धरज्जुपरिमाणाभावात्। तत्र नारकैश्चतुर्गुणस्थानैर्लोकस्या-संख्येयभागः स्पृष्टः। **८६.** एको द्वाविति द्वितीय-पृथिव्यास्तिर्यग्लोकादधो रज्जुपरिमाणत्वादेको भागः, तृतीयपृथिव्यास्तिर्यग्लोकादधो रज्जुद्वयपरिमाणत्वाद्द्वौ भागौ, चतुर्थपृथिव्यास्तिर्यग्लोकादधो रज्जुत्रयपरिमाणत्वात्त्रयो भागाः, पंचमपृथिव्याश्चतूरज्जुपरिमाणत्वाच्चत्वारो भागाः षष्ठपृथिव्याः पंचरज्जुपरिमाणत्वात्पंचभागाः। तत्रत्यमिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिर्यथासंख्यमेते भागाः स्पृष्टाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां मारणान्तिकोत्पादायुर्बंधकाले नियमेन तद्गुणस्थानत्यागात्स्वस्थानविहारापेक्षया लोकस्यासंख्येयभागः।तेषां सम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां नियमेन मनुष्येष्वेवोत्पादान्मनुष्याणां अल्पक्षेत्रत्वात्सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः। स्वक्षेत्रव्यवहारापेक्षयेत्यर्थः।

सम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः। सप्तम्यां पृथिव्यां मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, षट् चतुर्दशभागा वा देशोना। शेषैस्त्रिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः। **तिर्यग्गतौ** तिरश्चां तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, [८७]सप्त चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः। असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। **मनुष्यगतौ** मनुष्यैर्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको[८८] वा स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, सप्तचतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्या-दृष्ट्यादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्सर्शनम्। **देवगतौ** देवैर्मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभि-र्लोकस्यासंख्येयभागः, अष्टौ[८९], नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टि-भिर्लोकस्यासंख्येयभागः, अष्टौ[९०] चतुर्दशभागा वा देशोनाः। (२) **इन्द्रियानुवादेन**—एकेन्द्रियैः सर्वलोकः स्पृष्टः। विकलेन्द्रियैर्लोकस्यासंख्येयभागः, [९१]सर्वलोको वा। पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्या-संख्येयभागः, अष्टौ [९२]चतुर्दशभागा वा देशोनाः, सर्वलोको वा। शेषाणां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। (३) **कायानुवादेन**—स्थावरकायिकैः सर्वलोकः स्पृष्टः। त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत् स्पर्शनम् (४) **योगानुवादेन**—वाङ्मानसयोगिभिर्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः, सर्वलोको वा। सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः। काययोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादीनां सयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्। (५) **वेदानुवादेन**—स्त्रीपुंवेदैर्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः, [९३]अष्टौ, नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः, सर्वलोको वा। सासादनसम्यग्दृष्टिभिः स्त्रीपुंवेदैर्लोकस्यासंख्येयभागोऽष्टौ, नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां स्त्रीपुंवेदानां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टीनां सासादनसम्यग्दृष्टीनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्। सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-भिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, अष्टौ, नव चतुर्दशभागा[९४] वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः, षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। प्रमत्ताद्यनिवृत्तिबादरान्तानामपगतवेदानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्। (६) **कषायानुवादेन**—चतुष्कषायाणामकषायाणां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्।

---

८७. सप्तेति—तिर्यक्सासादनस्य लोकाग्रे बादरपृथिव्यब्वनस्पतिषु मारणान्तिकापेक्षयापि सप्त रज्जवः। ८८. सर्वलोक इति—तत्कथं? मारणान्तिकापेक्षया पृथिवीकायिकादेस्तत्रोत्पादापेक्षया वा। यो हि यत्रोत्पद्यते तस्योत्पादावस्थायां तद्व्यपदेशो भवति। सर्वलोकस्पर्शनं चाग्रे सर्वत्रैवं द्रष्टव्यम्। ८९. अष्टौ नवेति—तत्कथं? मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिदेवानां कृततृतीयनरकभूमिविकृतीनां लोकाग्रे बादरपृथिव्यब्वनस्पतिमारणान्तिकापेक्षया नवरज्जवः स्पर्शनमेवमुत्तरत्रापि नवरज्जुस्पृष्टमितिवेदितव्या। ९०. अष्टाविति—तत्कथं? सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टीनामेकेन्द्रियेषु उत्पादाभावात् परक्षेत्रविहारापेक्षयाष्टरज्जुस्पर्शनं वेदितव्यम्। ९१. सर्वलोको वेतितन्मारणान्तिकापेक्षया ज्ञातव्यम्। ९२. अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वेति—मारणान्तिकोत्पादापेक्षया। ९३. अष्टौ नवेति—सर्वलोको वा तन्मारणान्तिकापेक्षया ज्ञातव्यम्। ९४. नव चतुर्दशेति—ते तु नवभागास्तृतीयभूमिलोकाग्रोत्पादापेक्षया वेदितव्याः।

(७) **ज्ञानानुवादेन**—मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। विभङ्गज्ञानिनां मिथ्यादृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः, अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः, [९५]सर्वलोको वा। सासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। (८) **संयमानुवादेन**—संयतानां सर्वेषां संयतासंयतानामसंयतानां[९६] च सामान्योक्तं स्पर्शनम्। (९) **दर्शनानुवादेन**—चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणाकषायान्तानां पञ्चेन्द्रियवत्[९७]। अचक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानामवधिकेवलदर्शनिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्। (१०) **लेश्यानुवादेन**—कृष्णनीलकापोतलेश्यैर्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, पञ्च[९८], चत्वारो, द्वौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः। [९९]द्वादशभागाः कुतो न लभ्यन्ते इति चेत् तत्रावस्थित-लेश्यापेक्षया पञ्चैव। अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादशभागा न दत्ताः। सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः[१००]। तेजोलेश्यैर्मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, [१०१]अष्टौ, नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यग्मिथ्यादृष्ट्य-संयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, [१०२] अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः। संयतासंयतैर्लोकस्या-संख्येयभागः, [१०३]अध्यर्धचतुर्दशभागा वा देशोनाः। प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः। पद्म-

---

**९५.** मनुष्यतिर्यग्विभङ्गज्ञानिभिः क्रियमाणमारणान्तिकापेक्षया सर्वलोक इति वचनम्। देवानां नव चतुर्दशभागा इति पूर्वमुक्तत्वात्। **९६.** मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानाम्। **९७.** पंचेन्द्रियवदिति–तत्कथं? पंचेद्रियेषु मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्या-संख्येयभागः स्वक्षेत्रविहारापेक्षया। अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः परक्षेत्रविहारापेक्षया। सर्वलोको वा मारणान्तिकोत्पादापेक्षया। शेषाणां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। **९८.** काऊ काऊ काऊ णीला णीला य णीलकिण्हा य। किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा पढमादिपुढवीणं ॥१॥ अस्या गाथाया अर्थः कथ्यते – प्रथमायां पृथिव्यां नारकाणां जघन्या कपोतलेश्या भवति। द्वितीयायां मध्यमा। तृतीयायामष्टस्विन्द्रकेषु उत्कृष्टा। सैव चरमेन्द्रके उत्कृष्टा, तत्रैव च केषांचिन्नारकाणां जघन्या नीललेश्या च भवति। चतुर्थ्यां तस्यां मध्यमा नीला। पञ्चम्यां पृथिव्यां उपरिमेषु चतुर्ष्विन्द्रकेषु उत्कृष्टा। सैव चरमेंद्रकेषु उत्कृष्टा नीललेश्या, जघन्या कृष्णलेश्या च भवति। षष्ट्यां मध्यमा कृष्णलेश्या। सप्तम्यां पृथिव्यां उत्कृष्टा कृष्णलेश्या। गोमट्टसारलेश्यामार्गणागतेयं गाथा। ततः षष्ठपृथिवीतः मारणान्तिकं कुर्वाणान् कृष्णलेश्यासासादनान्प्रति पंच चतुर्दश भागाः कथिताः। सप्तमपृथिवीपरित्यागः कुत इति चेत्–''तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंतीति'' वचनेन तत्रत्यसासादनानां मरणाभावात्। मरणाभावेऽपि मारणान्तिकाभावप्रतीतिः कथमिति चेत् कृष्णलेश्यापेक्षया पंच चतुर्दशभागा इति वचनान्यथानुपपत्तेः। पंचमपृथिवीचरमेन्द्रकात् नीललेश्योत्कृष्टस्थानान्मारणान्तिकं कुर्वद्भिः सासादनैश्चत्वारश्चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। ४/३४३। तृतीयपृथ्वीचरमेन्द्रकात्कापोतलेश्योत्कृष्टस्थानान्मारणान्तिकं कुर्वाणैर्द्वौ चतुर्दशभागौ स्पृष्टौ। २/३४३। देशोनत्वं भोगभूमिषु प्रणिधावस्पर्शनात्। **९९.** द्वादशभागाः कुतो नेति–पृच्छसि, तत्र षष्ठनरकेऽवस्थितलेश्यापेक्षया पंचैव रज्जवः स्पृष्टा भवन्ति। यतो मध्यलोकादुपरि कृष्णलेश्या नास्ति। ''पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेष्विति'' वचनात्। अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादशभागा न दत्ताः। **१००.** षष्ठपृथ्वीपर्यन्तस्थितानामशुभलेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टीनां मरणमस्ति। अतो लोकस्यासंख्येयभागः कथमिति चेत् तेषां मनुष्यक्षेत्रे एवोत्पत्तिसद्भावेन एकरज्जुविष्कम्भे सर्वत्र स्पर्शाभावादिति ब्रूमः। श्रेणिबद्धप्रकीर्णकवर्त्तिनामपि स्वकीयस्वकीयपृथिव्यामेव इन्द्रकपर्यतं तिर्यगागत्य पुनरूर्ध्वागमनात्तावानेव। अन्यथा लोकासंख्येयकथनानुपपत्तेः। **१०१.** विहारवत्स्थानापेक्षया अष्टौ चतुर्दशभागाः ८/३४३। विहारवन्तस्तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि-देवास्तृतीयपृथ्वीतोऽष्टमपृथिवीबादरपृथिवीकायिकत्वेनोत्पत्त्यर्थ मारणांतिकं कुर्वन्ति तदपेक्षया नव चतुर्दशभागाः ९/३४३। **१०२.** विहारवत्स्वस्थानापेक्षया। ८/३४३। **१०३.** तेजोलेश्या–देशसंयतैः क्रियमाणमारणान्तिकसमुद्घातापेक्षयाऽध्यर्धचतुर्दशभागाः। चतुर्दशभागैस्त्रिभिर्भवितव्यम् ३/३४३ सनत्कुमारमाहेन्द्रपर्यन्तं तेजोलेश्यासद्भावादिति चोदनायाः परिहारो गोम्मटसारे जीवकाण्डे

लेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः, [१०४]अष्टौ, चतुर्दशभागा वा देशोनाः। संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः, पञ्च[१०५] चतुर्दशभागा वा देशोनाः। प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः। शुक्ललेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः, षट् [१०६]चतुर्दशभागा वा देशोनाः। प्रमत्तादिसयोगकेवल्यन्तानां, अलेश्यानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्। (११) **भव्यानुवादेन**—भव्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। अभव्यैः सर्वलोकः स्पृष्टः। (१२) **सम्यक्त्वानुवादेन**—क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तम्। किंतु संयतासंयतानां [१०७]लोकस्यासंख्येयभागः। क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम्। औपशमिक-

---

लेश्यामार्गणायां स्पर्शाधिकारे **एवं तु समुग्घादे णव चोद्दस भागयं च किंचूणं। उववादे पढमपदं दिवड्ढ चोद्दस य किंचूणं॥१॥** इति गाथायास्तुरीयपादव्याख्यानं दृष्ट्वा ज्ञात्वा कर्तव्यः।

**१०४.** विहारवत्स्वस्थानवेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घातापेक्षया अष्टचतुर्दशभागाः ८/३४३। प्रागुक्तेष्वप्यष्टचतुर्दशभागेष्वयं क्रमो वेदितव्यः। **१०५.** पद्मलेश्यादेशसंयतैः क्रियमाणमारणान्तिकापेक्षया पंच चतुर्दशभागाः सहस्रारकल्पादुरि पद्मलेश्याभावात्। ''**पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेष्विति**'' वचनात्। **१०६**. शुक्ललेश्यादेशसंयतस्य मारणान्तिकापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनं सुगमम्। अच्युतकल्पादुपरि तस्योत्पत्त्यभावात्। इतरेषामपि मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतान्तानां षट्चतुर्दशभागा इति वचनात्। शुक्ललेश्यादेवानां मध्यलोकादधो विहारो नास्तीति युक्त्याऽवगम्यते। अन्यथा अष्टौ चतुर्दशभागा इति कथयेरन् खलु शास्त्रकाराः। ननु तेषां मध्यलोकपर्यन्तमपि विहारो नास्ति। केवलं मारणान्तिकोपपादापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनमिति वचनं मन्तव्यं सम्यङ्मिथ्यादृष्टेस्तदभावात्। **मिस्सो आहारस्स य मिस्सा चडमाणपढमपुव्वा य। पढमुवसम्मा तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति॥** इति वचनेन **मरणंसमुग्घादो वि य ण मिस्सह्मि इति** वचनेन च तदवगमः। लेखकदोषोऽयं षट्चतुर्दशभागा इति न च शास्त्रकारवचनमिति च नाशंकनीयम्। नेमिचन्द्रसैद्धान्तिकचक्रवर्तिभिरपिलेश्याधिकारे तथैवोक्तत्वात्। **सुक्कस्स य तिट्ठाणे छच्चोद्दसा ६/३४३ हीणा। णवरि समुग्घादह्मि य संखातीदा हवंति* भागा वा ॥१॥ सव्वो वा खलु लोगो** फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो इति।** ननु पंचानुत्तरपर्यन्तंशुक्ललेश्यासद्भावेन ततोऽधः शुक्यालेश्यासंयत-सम्यग्दृष्टिभिरुपपादपरिणतैः स्पृष्टत्वात् देशोनसप्तचतुर्दशभागा इति वचनं युक्तं? न युक्तं, मनुष्यक्षेत्रवर्तिमनुष्याणामेव तत्रोत्पत्तेः। ततः प्रच्युतानामपि मनुष्यक्षेत्रे एवोत्पत्तेर्लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावात्। एकरज्जुविष्कम्भे सर्वत्र स्पर्शाभावात्। कल्पातीतानां विहाराभावाच्च। ननु ''**सदरसहस्सरगोत्ति तिरयदुगं। तिरियाऊ उज्जोओ अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ**'' इति गोमट्टसारकर्मकाण्डबन्धोदयसत्त्वाधिकारगाथया सहस्रारकल्पादुपरितनदेवानां तिर्यगायुष्यादिबन्धाभावकथनात्तेषां तिर्यक्षूत्पत्त्यभावोऽवगम्यते। तथा च मनुष्येष्वेवोत्पत्तावपि स्वयम्प्रभाचलबहिर्वर्त्तितिरश्चामच्युतपर्यन्तमुत्पत्तिसद्भावात्। अन्यथा सामान्यस्पर्शकथनावसरेदेशसंयतापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनानुपपत्तेर्लोकासंख्येयभागकथनप्रसंगात्क्षायिकसम्यग्दृष्टि-देशसंयतवदानताद्यच्युतपर्यन्तदेवानां विहारवत्वाच्च। कल्पातीतानामेष क्रमो नास्तीति लोकासंख्येयभाग एवेत्यवगन्तव्यम्। **१०७.** प्राक्सामान्यकथनावसरे देशसंयतस्य षट्चतुर्दशभागा इत्युक्तम्। इदानीं क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतापेक्षया लोकासंख्येयभाग इति कथ्यते। तत इति चेत्, मानुषोत्तरपर्वतबहिर्वर्तितिर्यक्षु सर्वत्र क्षायिकसम्यक्त्वाभावात्। तत्र तदभावश्च। ''**दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु। मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ॥**'' इति गोमट्टसारजीवकाण्डे सम्यक्त्व-मार्गणातोऽवगम्यते। प्राग्बद्धतिर्यगायुषां पश्चाद्गृहीतक्षायिकसम्यक्त्वानामपि उत्तमभोगभूमितिर्यक्ष्वेवोत्पत्तेस्तत्र क्षायिक-सम्यक्त्वाभाव एव। ''**चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं। अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं।** इति गोम्मटसार कर्मकाण्ड ३३४ तमगाथाया वचनात्तिर्यगायुर्बन्धेऽपि सम्यक्त्वग्रहणमस्तीत्यवगन्तव्यम्।

---

*. प्रतरसमुद्घाते। **. लोकपूरणसमुद्घाते।

सम्यक्त्वानामसंयतसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम्। [१०८]शेषाणां [१०९]लोकस्यासंख्येयभागः। सासादन-सम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तम्।(१३) **सञ्ज्ञानुवादेन**—सञ्ज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत्। असञ्ज्ञिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तम्। (१४) **आहारानुवादेन**—आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तम्। [११०]सयोगकेवलिनां[१११] लोकस्या-संख्येयभागः। अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्या-संख्येयभागः, एकादश[११२] चतुर्दशभागा वा देशोनाः। असंयतसम्यग्दृष्टिभिः लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। [११३]सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः, सर्वलोको वा। [११४]अयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः। स्पर्शनं व्याख्यातम्।

**कालः प्रस्तूयते**। स द्विविधः **सामान्येन विशेषेण** च। **सामान्येन** तावत्-मिथ्यादृष्टेर्नाना-जीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवापेक्षया त्रयो भङ्गाः। अनादिरपर्यवसानः, [११५]अनादिसपर्यवसानः,

---

**१०८.** शेषाणामिति-औपशमिकसम्यक्त्वयुक्तानां देशसंयतानां कुतो लोकस्यासंख्येयभाग इति चेत्पृच्छसि मनुष्येष्वेव तत्संभवात्। वेदकपूर्वकौपशमिकयुक्तो हि श्रेण्यारोहणं विधाय मारणान्तिकं करोति। मिथ्यात्वपूर्वकौपशमिकयुक्तानां मारणान्तिकासंभवात्। लोकस्यासंख्येयभागः। **१०९.** शेषाणां लोकासंख्येयभाग इत्यनेन उपशमसम्यग्दृष्टिदेशसंयतापेक्षयापि लोकासंख्येयभागकथनान्मनुष्यक्षेत्रबहिर्वर्त्युपशमसम्यग्दृष्टीनां मरणरहितानां मारणान्तिकाभावोऽप्यवगम्यते। अन्यथा तदपेक्षया षट् चतुर्दशभागा इति कथयन्ति। मनुष्यक्षेत्रवर्तिद्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टीनां मरणमस्ति। मारणांतिकोऽस्ति नास्तीत्यत्र नास्माकं निश्चयः उपदेशाभावात्। यद्यस्ति तदपि लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावः। मनुष्यक्षेत्राद् बहिरभावात्। **११०.** स्वस्थानवर्तिनां दण्डकपाटसमुद्घातवर्तिनां च। **१११.** सयोगकेवलिनामितिआहारकावस्थायां समचतुरस्त्ररज्ज्वादिव्याप्तेरभावात्। दंडकपाटावस्थायां, कपाटप्रतरावस्थायां च सयोगकेवली औदारिकौदारिकमिश्रशरीरयोग्यपुद्गलादानादाहारकः। तथाचोक्तम्-**दंडजुगे ओरालं कवाडजुगले य पदरसंवरणे। मिस्सोरालं भणियं सेसतिये जाण कम्मइयं॥** दंडकपाटयोश्च पिंडिते अल्पक्षेत्रतया समचतुरस्त्ररज्जादिव्याप्तेरभावात्सिद्धो लोकस्यासंख्येयभागः। **११२.** षष्ठपृथ्वीपर्यन्तवर्तिसासादनानां मध्यलोके उत्पत्तिरस्ति। मध्यलोकवर्तिनामच्युतकल्पपर्यन्तमुत्पत्तिरस्ति। तत उपपादपरिणतैस्तैस्तावत्क्षेत्रं स्पृष्टम्। तत एकादश चतुर्दशभाग अनाहारकसासादनापेक्षयेति सुगमम्। यदि ग्रैवेयकपर्यन्तं तेषामुत्पत्तिरस्ति लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावः। मनुष्याणामेव ग्रैवेयकेषूत्पत्तिः। ननु सामान्य-कथनावसरे सासादनापेक्षया द्वादश चतुर्दशभागा इत्युक्तं तत्सम्भवः कथमिति चेत्-सासादना अष्टमपृथ्वीपर्यन्तं मारणान्तिकं कृत्वा मिथ्यात्वपरिणामेन म्रियन्ते। तत आहारकैः सासादनैरच्युतादुपरि अष्टमपृथ्वीपर्यन्तं क्षेत्रं स्पृष्टम्। अच्युतादधः षष्ठपृथ्वीपर्यन्तमाहारकैरनाहारकैरपि तैः स्पृष्टम्। एतदपेक्षया तत्सम्भवो भवति। अष्टम-पृथिव्यामुत्पद्यमानसासादनः मिथ्यापलिमेनैव म्रियत (इति) कुतो नियम इति चेत्-एतैराचार्यैरेकविकलेन्द्रियेषु सासादनानुत्पत्ति-पक्षांगीकरणात्। कथमेषा प्रतीतिरिति चेत्, पूर्वमेकविकलेन्द्रियेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमित्युक्तत्वात्पूर्वं तिर्यङ्मनुष्यसासादनापेक्षया सप्त चतुर्दशभागा इत्युक्तं तदप्यत्रोक्तमारणान्तिकापेक्षयेत्यवगन्तव्यम्। **११३.** प्रतरलोकपूरण-समुद्घातवर्तिनाम्। **११४.** आहारमार्गणायां गोम्मटसारे गाथा-**विग्गहगदिमावण्णा केवलिणो समुहदो अजोगी य। सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारिणो जीव ॥१॥** **११५.** अनादिरपर्यवसानो मिथ्यात्वकालोऽभव्येषु। अनादिमिथ्यादृष्टिर्यः कश्चन भव्यः प्रथमोपशमसम्यक्त्वं ग्रहीष्यति तस्य प्राक्तनमिथ्यात्वकालोऽनादिसपर्यवसानः। कश्चित्तु गृहीतसम्यक्त्वो मिथ्यात्वं प्राप्नोति तस्य तन्मिथ्यात्वं सादिसपर्यवसानम्।

सादिसपर्यवसानश्चेति। तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेणार्धपुद्गलपरिवर्तो[११६] देशोनः। सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण [११७]षडावलिकाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्य उत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्त्तः। असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। ''तिण्णि सहस्सा सत्त य सदाणि तेहत्तरिं च उस्सासा। एसो [११८]हवह मुहुत्तो सव्वेसिं चेव मणुयाणं।'' उत्कर्षेण [११९]त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि। संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना[१२०]। प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। [१२१]एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्तः। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः[१२२]। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्तः। चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्त्तः[१२३]। सयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः[१२४]। उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना[१२५]। विशेषेण (१)

---

**११६.** यः कश्चित् गृहीतवेदकोपशमसम्यक्त्वो मिथ्यात्वं प्राप्य संसारे परिभ्रमति स नियमेनार्द्धपुद्गलपरिवर्तन-कालपरिसमाप्तौ संसारे न तिष्ठति किं तु मुक्तो भवति। तदुक्तम्-''**पुद्गल-परिवर्तार्धपतितौव्यालीढवेदकोपशमौ। वसतः संसाराब्धौ क्षायिकदृष्टिर्भवचतुष्कः॥**'' इति। सम्यक्त्वग्रहणं पुनः अर्धपुद्गलपरिवर्तनपरिसमाप्तेः प्रागेव भवति। अन्यथा तदा मुक्त्यनुपपत्तिस्ततः सादिपर्यवसानमिथ्यात्वकालस्योत्कृष्टस्य देशोनार्धपुद्गलपरिवर्तत्वं युक्तमेव। **११७.** आवलिका चासंख्यातसमयलक्षणा भवति गोम्मटसारे जीवकाण्डे सम्यक्त्वमार्गणायां तथा चोक्तम्-**आवलि असंखसमया संखेज्जावलिसमूह उस्सासो। सत्तुस्सासो थोओ सत्तत्थोवो लवो भणिओ।** **११८.** त्रीणि सहस्राणि सप्त शतानि त्र्यधिकसप्ततिरुच्छ्वासा मुहूर्तः कथ्यते ३७७३। **११९.** यः कश्चित्संयमी सम्प्राप्तमृतिः सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नस्तत्र स्वस्थितिं जीवित्वा मृतो मनुष्यगतावुत्पन्नो यावद्देशसंयमं सकलसंयमं वा गृह्णाति तावत्साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपम-कालोऽसंयतसम्यग्दृष्टेरुत्कृष्टकालो वेदितव्यः। यद्यपि ''**वेदगसम्मत्तठिदि जहण्णमंतोमहुत्तमुक्कस्सं। छावट्ठिसायरुवमा णिद्दिट्ठा मणुवदेवभवे।**'' इति गाथोदितप्रकारेण वेदकसम्यक्त्वस्य उत्कर्षेण षट्षष्टि-सागरोपमपर्यतं स्थितिसम्भवेऽपि असंयमेन सह तावत्काले तस्यावस्थानासम्भवात्। मध्ये देशसंयमसकलसंयमयोः प्राप्ति-सम्भवादिह तस्योत्कृष्टत्वेनाग्रहणम्। इह खल्वसंयतसम्यग्दृष्टिकालः परीक्षितुमुपक्रान्तो न तु सम्यक्त्वकालः। **१२०.** वर्षाष्टकं शैशवमतीत्य गृहीतदेशसंयमः पूर्वकोट्यायुर्यो जीव आमरणाद्देशसंयमं पालयति तदपेक्षया देशोनपूर्वकोटी देशसंयतकालः। **१२१.** एकजीवमिति-तत्कथं? सर्वो जीव; परिणामविशेषवशात्प्रथमतोऽप्रमत्तगुणस्थानं प्रतिपद्यते पश्चात्तत्प्रतिपक्षभूतप्रमत्तगुणस्थानान्तरस्थितः निजायुःसमयशेषे अप्रमत्तगुणस्थानं **प्रतिपद्य** म्रियते इति प्रमत्तैकजीवं प्रति जघन्येन एकः समयः। तथा प्रमत्तस्थाने स्थितो निजायुः कालान्तसमयेऽप्रमत्तगुणस्थानं प्रतिपद्य म्रियते इति प्रमत्तैकजीवं प्रत्यपि जघन्येनैकसमयः। **१२२.** नन्वेवं मिथ्यादृष्टेरप्येकसमयः कस्मान्न सम्भवतीत्यनुपपन्नम्। कोऽर्थः? मिथ्यादृष्टेरेकसमयः कालो न घटते इत्यर्थः। कस्मान्न? प्रतिपन्नमिथ्यात्वस्यान्तर्मुहूर्तमध्ये मरणासम्भवात्। तदुक्तम् **मिथ्यात्वे दर्शनात्प्राप्ते नास्त्यनन्तानुबन्धिनाम्। यावदाकालिकापाकान्तर्मुहूर्त्ते मृतिर्न च॥१॥** सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः परिमाणकाले तद्गुणस्थानत्यागान्नैकसमयः सम्भवतीति **प्रतिपन्ना** संयतसंयतासंयतगुणोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमध्ये न म्रियते। अतोऽसंयतसंयतासंयतयोरप्येकसमयो न भवति। **१२३.** तत्कथम्? चतुर्णां क्षपकाणामपूर्वकरणानिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायक्षीणकषायाणामयोगकेवलिनां च मोक्षगामित्वेन चान्तरे मरणासम्भवात्। **१२४.** सयोगकेवलि-गुणस्थानानन्तरमन्तर्मुहूर्त्तमध्येऽयोगकेवलिगुणस्थाने प्राप्ते। **१२५.** अष्टवर्षान्तरं तपो गृहीत्वा केवलमुत्पादयतीति कियद्वर्षहीनत्वाद्देशोना पूर्वकोटी वेदितव्या।

**गत्यनुवादेन—नरकगतौ** नारकेषु सप्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति [१२६]जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण यथासंख्यं एक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि। सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः। असंयत-सम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण उक्त एवोत्कृष्टो देशोनः[१२७]। **तिर्यग्गतौ** तिरश्चां मिथ्यादृष्टीनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्ये-नान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः [१२८]पुद्गलपरिवर्ताः। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्या-दृष्टिसंयतासंयतानां सामान्योक्तः कालः। असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि। मनुष्यगतौ मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जधन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि [१२९]पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधि-कानि। सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्तः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण षडावलिकाः। सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्त्तः। असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्त-र्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि [१३०]सातिरेकाणि। शेषाणां सामान्योक्तः कालः। **देवगतौ** देवेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः[१३१]। उत्कर्षेणेक-त्रिंशत्सागरोपमाणि। सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः। असंयतसम्यग्दृष्टे-र्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि। (२) **इन्द्रियानुवादेन—**एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्[१३२]। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः [१३३]पुद्गलपरिवर्त्ताः। विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया

**१२६.** पश्चान्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानत्यागसम्भवात्। **१२७.** प्रथमपृथिव्यामपि देशोनत्वकथनात्तत्र गृहीतवेदकक्षायिक-सम्यक्त्वानामुत्कृष्टायुष्येणोत्पत्त्यभावोऽवगम्यते। **१२८.** यः कश्चिदनादिमिथ्यादृष्टिर्जीवो गत्यन्तरे स्थितः तिर्यग्गतिं प्रविष्टः स तिर्यग्गतावुत्कर्षेणानन्तकालमसंख्येयान्पुद्गलपरिवर्त्तान् तिष्ठति, तत ऊर्ध्वं गत्यन्तरं प्राप्नोति, ततस्तदपेक्षया तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिकालोऽनन्तःकालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ता इत्युक्तम्। **१२९.** पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि-सप्तचत्वारिंशित्पूर्वकोटिभिरभ्यधिकानीत्यर्थः। तथाहि—पुन्नपुंसकस्त्रीवेदेन अष्टावष्टौ वारान्पूर्वकोट्यायुषा उत्पद्यावान्तरेऽ-पर्याप्तमनुष्यक्षुद्रभवेनाष्टौ वारानुत्पद्यते। पुनरपि नपुंसकस्त्रीवेदेन अष्टावष्टौ पुंवेदेन सप्तति। ततो भोगभूमौ त्रिपल्योपमायुषि। भोगभूमिजानां नियमेन देवेषु उत्पादात्पश्चाद्गत्यतिक्रमः। पूर्वकोटिपृथक्त्वाधिक्यं देवगतिग्रहणेन वेदितव्यम्। **१३०.** सातिरेकाणीति। तत्कथं—कर्मभूमिजो हि मनुष्यः क्षायिकसम्यक्त्वयुक्तो दर्शनमोहक्षपणयुक्तो वा भोगभूमिज-मनुष्येषूत्पद्यते इति। मनुष्यगत्यपरित्यागात्सातिरेकाणि पश्चाद्गत्यतिक्रमः। यः कश्चिन्मनुष्यो बद्धमनुष्यायुष्कः पश्चात् गृहीतसम्यक्त्व उत्तमभोगभूमावुत्पद्यते तदपेक्षया सातिरेकाणि त्रिपल्योपमानि, प्राक्तन-मनुष्यभवसम्बन्धिना सम्यक्त्वग्रहणोत्तरकालवर्त्तिनायुषा अधिकानि। यतो विग्रहगतावपि मनुष्यगति-नामकर्मोदयोपेतत्वेन मनुष्यत्वापरित्यागत्वात्। **१३१.** उत्पन्नमात्रापेक्षया अन्तर्मुहूर्त्तानंतरं सम्यग्दृष्टिर्भवति यतः। नवमग्रैवेयकेषु कश्चिन्मिथ्यादृष्टिर्भवति यतः। **१३२.** तत्कीदृशमितिचेत्—उक्तलक्षण-मुहूर्त्तमध्ये तावदेकेन्द्रियो भूत्वा कश्चिज्जीवः षट्षष्टिसहस्र-द्वात्रिंशदधिकशतपरिमाणानि ६६१३२ जन्ममरणान्यनुभवति। तथा स एव जीवस्तस्यैव मुहूर्तस्य मध्ये द्वित्रिचतुःपंचेन्द्रियो भूत्वा यथासंख्यमशीतिषष्टिचत्वारिंशच्चतुर्विंशतिजन्म-

सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। उत्कर्षेण संख्येयानि वर्षसहस्राणि। पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं [१३४]पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम्। शेषाणां सामान्योक्तः कालः। (३) **कायानुवादेन**—पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। उत्कर्षेणासंख्येयो लोकः कालः। वनस्पतिकायिकानामेकेन्द्रियवत्। त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके। शेषाणां पञ्चेन्द्रियवत्। (४) **योगानुवादेन**—वाङ्मानसयोगिषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयत-प्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवापेक्षया जघन्येनैकः[१३५] समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्तः। सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः। सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः [१३६]समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्तः। चतुर्णामुपशमकानां क्षपकाणां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्तः। काययोगिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः। शेषाणाम–योगिवत्। अयोगानां सामान्यवत्। (५) **वेदानुवादेन**—स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति [१३७]जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम्। सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तः कालः। किं तु

---

मरणान्यनुभवति। सर्वेप्येते समुदिताः क्षुद्रभवा एतावन्त एव भवन्ति ६६३३६। उक्तं च गोम्मटसारे—**तिण्णि सया छत्तीसा छावट्ठि-सहस्सगाणि मरणाणि। अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा॥ सीदी सट्ठी तालं वियले चउवीस होंति पंचक्खे। छावट्ठिं च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे॥** यदा चैकान्तर्मुहूर्तस्य मध्ये एतावन्ति जन्ममरणानि भवन्ति तदैकस्मिन्नुच्छ्वासे अष्टादश जन्ममरणानि लभ्यन्ते। तत्रैकस्य क्षुद्रभवसंज्ञा। **१३३.** उत्कर्षेण अनन्तकालोऽसंख्यात-पुद्गलपरिवर्तनलक्षणो निरन्तरमेकेन्द्रियत्वेन मृत्वा पुनर्भवात्ततो विकलेन्द्रियः पंचेन्द्रियो वा भवति।

**१३४.** तत्कथं? पंचेन्द्रियमिथ्यादृष्ट्यैकजीवं प्रति उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटिपृथक्त्वैः षण्णवतिपूर्व-कोटिभिरभ्यधिकं इत्यर्थः। तथाहि—नपुंसकस्त्रीपुंवेदे हि संज्ञित्वेन अष्टावष्टौ वारान्पूर्वकोट्यायुषा समुत्पद्यते। तथैव चासंज्ञिकत्वेनैवमष्टचत्वारिंशद्वारान्, अवान्तरेऽन्तर्मुहूर्तमध्ये पंचेन्द्रियक्षुद्रभवेन अष्टौ वारान्पुनरपि द्वितीयवारं नपुंसकस्त्रीवेदाभ्यां पुंवेदसंज्ञित्वाभ्यामष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोट्यो भवन्ति। एवं षण्णवतिकोट्यः। **१३५.** जघन्येन एकः समय इति तत्कथं-वाङ्मानसयोगिषु मिथ्यादृष्ट्यादीनां षण्णां योगपरावर्तगुणस्थानपरावर्तापेक्षया जघन्येनैकः समयः। तथाहि—अविवक्षितत्वाद्-गुणस्थानकालान्त्यसमये वाङ्मानसान्तरयोगसंक्रमणं योगपरावर्तः। गुणांतरयुक्तवाङ्मानसान्यतरयोगकालान्त्यसमये मिथ्यात्वादिगुणसंक्रमो गुणपरावर्तः। गुणान्तरयुक्तवाङ्मनसा तदपेक्षया वा एकसमयः। उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्त्तस्तत्कथं? योगकालं यावदित्यर्थः। पश्चात्तेषां योगान्तरसंक्रमः। **१३६.** जघन्येनैकः समय इति—तथाहि केषांचिद्गुणान्तरयुक्तवाङ्मानसान्यतर-योगकालान्त्यसमये यदा सम्यङ्मिथ्यात्वसंक्रमणं तदैवान्येषां योगान्तरानुभूत-सम्यङ्मिथ्यात्व-कालान्त्यसमये वाङ्मानसान्यतरयोगसंक्रम इति कारणात् एकः समयः। **१३७.** जघन्येनान्तर्मुहूर्त इति तत्कथं? एकजीवस्य मिथ्यात्वयुक्तः स्त्रीवेदकालो जघन्येनानार्मुहूर्त्तस्ततो गुणान्तरसंक्रम इत्यर्थः। उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वं तत्कथं? स्त्रीवेदयुक्तोऽपि मिथ्यादृष्टिर्देवेष्वायुर्बध्नाति। ततस्तिर्यङ्मनुष्येषु नारकसम्मूर्च्छनवर्ज्यं तावद्यावत्पल्योपमशतं पृथक्त्वं। ततो वेदपरित्यागः।

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण पञ्च-पञ्चाशत्पल्योपमानि [१३८]देशोनानि। पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तः कालः। नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः। सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्ति-बादरान्तानां सामान्यवत्। किंत्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि[१३९]। अपगतवेदानां सामान्यवत्। (६) **कषायानुवादेन**—चतुष्कषायाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां मनोयोगिवत्। द्वयोरुपशमकयोर्द्वयोः क्षपकयोः केवललोभस्य च अकषायाणां च सामान्योक्तः कालः। (७) **ज्ञानानुवादेन**—मत्यज्ञानि-श्रुताज्ञानिषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्योः सामान्यवत्। विभङ्गज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि[१४०]। सासादन-सम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः। आभिनिबोधिकश्रुतावधि-मनःपर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्योक्तः कालः। (८) **संयमानुवादेन**—सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायथाख्यातशुद्धि-संयतानां संयतासंयतानामसंयतानां च सामान्योक्तः कालः। (९) **दर्शनानुवादेन**—चक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टे-र्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे। सासादन-सम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तः कालः। अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तः कालः। अवधिकेवलदर्शनिनोरवधिकेवलज्ञानिवत्। (१०) **लेश्यानुवादेन**—कृष्णनील-कापोतलेश्यासु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति [१४१]जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण [१४२]त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि सातिरेकाणि। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्-मिथ्यादृष्ट्योः सामान्योक्तः कालः। असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि[१४३] देशोनानि। तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यसंयत-

---

**१३८.** देशोनानि कथमिति चेत् स्त्रीवेदासंयतैकजीवं प्रति उत्कर्षेण पंचपंचाशत्पल्योपमानि, गृहीतसम्यक्त्वस्य स्त्रीवेदोत्पादाभावात्, पर्याप्तः सन्सम्यक्त्वं ग्रहीष्यतीति पर्याप्तिसमापकान्तर्मुहूर्त्तहीनत्वाद्देशोनानि। तानि पंचपंचाशत् पल्योपमानि स्त्रीवेदे षोडशस्वर्गे सम्भवन्तीति वेदितव्यम्। **१३९.** देशोनानि तत्कथं? कश्चिज्जीवः सप्तमनरके पतितस्तत्र नपुंसकः सन्नुत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुरुत्पद्यते स पर्याप्तः सन्सम्यक्त्वं गृहीष्यतीति कियत्कालं विश्रम्य विशुद्धो भूत्वा सम्यक्त्वं गृह्णाति अंते त्यजति चेति देशोनानि। **१४०.** देशोनानीति कथम्? विभंगज्ञानिमिथ्यादृष्ट्येकजीवं प्रति उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि। पर्याप्तश्च विभंगज्ञानं प्रतिपद्यत इति पर्याप्तिसमापकान्तर्मुहूर्त्तहीनत्वाद्देशोनानि। **१४१.** स तु कालः तिर्यङ्मनुष्यापेक्षया, तेषामेव लेश्यापरावर्तसम्भवात्। एवं सर्वत्र लेश्यायुक्तस्यान्त-र्मुहूर्तस्तिर्यङ्मनुष्यापेक्षया वेदितव्यः। **१४२.** तत्कथम्? नारकापेक्षया यथासंख्यं सप्तमपंचमतृतीयपृथिव्यां त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देवनारकाणामवस्थित-लेश्यत्वात्। व्रजन्नियमेन तल्लेश्यायुक्तो भवति। आगच्छतो नियमो नास्तीति सातिरेकाणि। **१४३.** उक्तलेश्यायुक्ता-संयतसम्यग्दृष्ट्येकजीवं प्रति उत्कर्षेण नारकापेक्षया उक्तान्येव सागरोपमाणि। पर्याप्तिसमापकांतर्मुहूर्ते सप्तम्यां मारणांतिके च सम्यक्त्वाभावाद्देशोनानि।

सम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे, अष्टादश च सागरोपमाणि [१४४]सातिरेकाणि। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः सामान्योक्तः कालः। संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः। शुक्ललेश्यानां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि [१४५]सातिरेकाणि। सासादनसम्यग्दृष्ट्यादिसयोग-केवल्यन्तानामलेश्यानां च सामान्योक्तः कालः। किंतु संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः [१४६]समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः। (११) **भव्यानुवादेन**—भव्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवापेक्षया द्वौ भङ्गौ। अनादिः सपर्यवसानः, सादिः सपर्यवसानश्च। तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः। सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः। अभव्यानामनाद्यपर्यवसानः। (१२) **सम्यक्त्वानुवादेन**—क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः। क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां [१४७]चतुर्णां सामान्योक्तः कालः। औपशमिकसम्यक्त्वेषु असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः। प्रमत्ताप्रमत्तयोश्चतुर्णामुपशमकानां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तः कालः। (१३) **संज्ञानुवादेन**—संज्ञिषु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां पुंवेदवत्। शेषाणां सामान्योक्तः कालः। असंज्ञिनां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। तिण्णि सया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि। अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा। ६६३३६। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः। तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तः कालः। (१४) **आहारानुवादेन**—आहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः, [१४८]उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागा असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः। शेषाणां सामान्योक्तः कालः। अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण त्रयः समयाः[१४९]। सासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। [१५०]उत्कर्षेणावलिकाया असंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण द्वौ समयौ।

---

**१४४.** कथमेतत्–प्रथमस्वर्गपटलापेक्षया द्वे सागरोपमे। द्वादशस्वर्गपटलापेक्षया अष्टादश सागरोपमाणि च। तल्लेश्यायुक्तानां मारणांतिकोत्पादसम्भवात्सातिरेकतः सागरोपमयुक्तत्वाच्च सातिरेकाणि किंचिदधिकानीत्यर्थः। **१४५.** ग्रैवेयकदेवापेक्षया तेषां मारणान्तिकोत्पादावस्थायामपि शुक्ललेश्यासम्भवात्सातिरेकाणि। **१४६.** कथमेतत्? संयतासंयत-शुक्ललेश्यैकजीवं प्रति गुणलेश्यापरावर्तापेक्षेतराभ्यां जघन्येनैकसमयः उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः। **१४७.** चतुर्णामिति–के ते चत्वारः। असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्तसंयताप्रमत्तसंयताश्चेति। **१४८.** उत्कर्षेणांगुलासंख्येयेति–अस्यायमर्थः उत्कर्षेणासंख्याता-संख्यातमानावच्छिन्नोत्सर्पिण्यसर्पिणीलक्षणोऽङ्गुलासंख्येयभागाः। शश्वदृजुगतिमत्वात्। **१४९.** एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारक इति वक्ष्यमाणत्वात्। **१५०.** आवलिकाया असंख्येयभाग इति–स च आवलिकाया असंख्येयभागः समयमात्रलक्षणत्वात् एकसमय एव स्यात्। आवल्याः असंख्यातसमयलक्षणत्वात्।

सयोगकेवलिनो नानाजीवापेक्षया जघन्येन त्रयः समयाः[१५१]। उत्कर्षेण संख्येयाः[१५२] समयाः। एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्च त्रयः समयाः। सयोगकेवलिनां सामान्योक्तः कालः। कालो वर्णितः।

**अन्तरं निरूप्यते**—विवक्षितस्य[१५३] गुणस्य गुणान्तरसंक्रमे सति पुनस्तत्प्राप्तेः प्राङ्मध्यमन्तरम्। तत् द्विविधम्। सामान्येन विशेषेण च। **सामान्येन तावत्**—मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे [१५४]षट्षष्टी देशोने सागरोपमाणाम्। सासादनसम्यग्दृष्टेरन्तरं नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागः। उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः। सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तरं नानाजीवापेक्षया सासादनवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः। असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः। असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः। चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण षण्मासाः। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। सयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्। **विशेषेण** (१) **गत्यनुवादेन** – नरकगतौ नारकाणां सप्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्ट्यसंयत–सम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण एक–त्रि–सप्त–दश–सप्तदश–द्वाविंशतित्रय–स्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्त्तश्च। उत्कर्षेण एक–त्रि–सप्त–दश–द्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि[१५५]। **तिर्यग्गतौ** तिरश्चां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि देशोनानि। सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां चतुर्णां सामान्योक्तमन्तरम्। **मनुष्यगतौ** मनुष्याणां मिथ्यादृष्टेस्तिर्यग्वत्[१५६]। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन

---

**१५१.** समये समये दण्डादिप्रारम्भकत्वात्। **१५२.** उत्कर्षेण संख्येयाः समयाः–जघन्योत्कृष्टसंख्यातमानावच्छिन्ना निरंतरं विषमसमये दंडादिप्रारंभकत्वात्। एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्च कालस्त्रयः समयाः प्रतरद्वयलोकपूरणलक्षणाः। **१५३.** विवक्षितस्य गुणस्थानस्य गुणस्थानांतरसंक्रमे सति पुनरपि तद्गुणस्थानप्राप्तिर्यावन्न भवति तावान्कालोऽन्तरमिति। **१५४.** षट्षष्टीति–तत्कथं? वेदकसम्यक्त्वेन युक्त एकां षट्षष्टिं तिष्ठति। वेदकसम्यक्त्वस्योत्कर्षेण एतावन्मात्रकालत्वात्। पुनरेवान्तरे अन्तर्मुहूर्तं यावत्सम्यङ्मिथ्यात्वं गतस्य पुनरौपशमिकसम्यक्त्वग्रहणयोग्यता पल्योपमासंख्येयभागे सति एतावदंतरे तत्र वेदकसम्यक्त्वग्रहणयोग्यता। ग्रहणयोग्यताया एवं संभवात्। **१५५.** अधिकमपि कस्मान्नेति चेत्–क्षपणारम्भकवेदकयुक्तस्य तिर्यक्षूत्पादाभावात्। तद्युक्तो हि देवेष्वेवोत्पद्यते। अतो मिथ्यात्वयुक्तस्त्रिपल्योपमायुष्को भोगभूमिषूत्पद्यते। तत्र चोत्पन्नानां तिर्यङ्मनुष्याणां किञ्चिदभ्यधिकाष्टचत्वारिंशद्दिनेषु सम्यक्त्वग्रहणयोग्यता भवति। नियमादेतावद्दिनेषु मिथ्यात्वपरित्यागात् सम्यक्त्वं गृह्णाति। त्रिपल्योपमायुः शेषे पुनर्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते–इति गर्भकाले किञ्चिदधिकाष्टचत्वारिंशद्दिनैरवसानकाले शेषेण च हीनत्वाद्देशोनानि ज्ञातव्यानि। **१५६.** यतो मनुष्या अपि भोगभूमौ तथाविधा भवन्ति।

पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्त्तश्च। उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि। असंयत-सम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि। संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि। शेषाणां सामान्यवत्। **देवगतौ** देवानां मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण एकत्रिंशत्सागरोपमाणि[१५७] देशोनानि। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्त्तश्च। उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। (२) **इन्द्रियानुवादेन—**एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभव-ग्रहणम्। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे [१५८]पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके। विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्यन्तरम्। एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः। एवमिन्द्रियं प्रत्यन्तरमुक्तम्। [१५९]गुणं [१६०]प्रत्युभतोऽपि नास्त्यन्तरम्। पञ्चेद्रियेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति पूर्वकोटी-पृथक्त्वैरभ्यधिकम्। असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षयानास्त्यन्तरम। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम्। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवा-पेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटी-पृथक्त्वरैभ्यधिकम्। शेषाणां सामान्योक्तम्। (३) **कायानुवादेन—**पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः। वनस्पतिकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। [१६१]उत्कर्षेणासंख्येया लोकाः। एवं कायं प्रत्यन्तरमुक्तम्। गुणं [१६२]प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तरम्। त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नाना-जीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्त्तश्च। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं

---

**१५७.** उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि तत्कथं? मिथ्यात्वयुक्तो ग्रैवेयकेषूत्पद्यते पश्चात्सम्यक्त्वमादाय एकत्रिंशत्सागरोपमाणि तिष्ठति। अवसानकाले शेषे पुनर्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते। अन्यथा गत्यनुक्रमः स्यादिति देशोनानि। **१५८.** पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके षण्णवतिपूर्वकोटिभिरभ्यधिके इत्यर्थः। **१५९.** गुणस्थानेत्यस्य नाम्न एकदेशं मिथ्यात्वादिकम्। **१६०.** एकेन्द्रियविकलेन्द्रियतोऽपीत्यर्थः। यतस्ते एकेन्द्रियविकलेन्द्रिया मिथ्यादृष्टय एव। एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणां चतुर्णां गुणस्थानान्तरासम्भवात्। पञ्चेन्द्रियाणां तु तत्सम्भवात्, मिथ्यात्वादेः सम्यक्त्वादिना अन्तरं द्रष्टव्यम्। **१६१.** उत्कर्षेणासंख्येयलोका इति—तत्कथं? पृथिव्यादिकायानां वनस्पतिकायिकैरन्तरं उत्कर्षेणासंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः। तेषां नैरंतर्यमुत्कर्षेणासंख्येयलोकाः वनस्पतिकायिकेभ्योऽन्येषां अल्पकालत्वात्। **१६२.** पृथिव्यादिचतुर्णां वनस्पतिकायिकानांचान्तरं नास्ति यतः पृथिव्यप्तेजो-वायुकायिकास्तथा वनस्पतिकायिका उभयेऽपि मिथ्यादृष्टयो वर्तन्ते।

प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके। शेषाणां पञ्चेन्द्रियवत्। (४) **योगानुवादेन**—कायवाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ता-प्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्-मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च सामान्यवत्। (५) **वेदानुवादेन**—स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि देशोनानि। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यमिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम्। असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम्। [१६३]द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण पल्योपम-शतपृथक्त्वम्। द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः उत्कर्षेण सागरोपम-शतपृथक्त्वम्। द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण संवत्सरः [१६४]सातिरेकः। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। [१६५]सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्य-निवृत्त्युपशमकान्तानां सामान्योक्तम्। द्वयोः क्षपकयोः स्त्रीवेदवत्। अपगतवेदेषु अनिवृत्तिबादरोपशमक-सूक्ष्मसाम्परायोपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्योक्तम्। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्त्तः। उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। शेषाणां सामान्यवत्। (६) **कषायानुवादेन**—क्रोधमानमायालोभकषायाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्त्युपशमकान्तानां मनोयोगिवत्। द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण संवत्सरः सातिरेकः। केवललोभस्य सूक्ष्मसाम्परायोपशमकस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। क्षपकस्य तस्य सामान्यवत्। अकषायेषु उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्।

---

**१६३.** द्वयोरुपशमकयोरिति—ननूपशमकाश्चत्वारो वर्तंते द्वयोरिति कस्मात् ? सत्यं अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणा-भ्यामुपरिवेदासंभवात्। एवं द्वयोः क्षपकयोरपि चर्चनीयम्। **१६४.** अष्टादशमासा इत्यर्थः। **१६५.** सासादनेत्यादि—अनिवृत्तिश्च तदुपशमकं च तद्गुणस्थानं येषामिति ग्राह्यं। नवमगुणस्थानस्य नवभागीकृतस्य तृतीयभागे नपुंसकवेदो निवर्तते। चतुर्थे भागे स्त्रीवेदो निवर्तते, षष्ठे भागे पुंवेदो निवर्तते यतः। द्वयोः क्षपकयोः स्त्रीवेदवत्। तत्कथं—नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकः समयः। उत्कर्षेणाष्टादशमासाः।

शेषाणां त्रयाणां सामान्यवत्। (७) **ज्ञानानुवादेन—**मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानिषुमिथ्यादृष्टेर्नाना-जीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्। [१६६]सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्, एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानिषु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। [१६७]उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना। संयतासंयतस्य नानाजीवा-पेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण [१६८]षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि। प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः, उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि। चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत्। किंतु अवधिज्ञानिषु नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रतिनास्त्यन्त-रम्। मनःपर्ययज्ञानिषु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं [१६९]चान्तर्मुहूर्त्तः। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण [१७०]पूर्वकोटी देशोना। चतुर्णां क्षपकाणामवधिज्ञानिवत्। द्वयोः केवलज्ञानिनोः सामान्यवत्। (८) **संयमानुवादेन—**सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्त्तः। द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण [१७१]पूर्वकोटी देशोना। द्वयोः क्षपकयोः सामान्यवत्। परिहारशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्त्तः। सूक्ष्मसाम्पराय-शुद्धिसंयतेषूपशमकस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। [१७२]एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। तस्यैव क्षपकस्य सामान्यवत्। यथाख्याते अकषायवत्। संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्। असंयतेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण त्रय-स्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। शेषाणां त्रयाणां सामान्यवत्। (९) **दर्शनानुवादेन—**चक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टेः

---

**१६६.** सासादनेति—नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। जघन्येनैकः समय उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येय-भागः। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरं। यतोऽज्ञानत्रययुक्तैकजीवेऽपि मिथ्यात्वस्यान्तरं नास्ति। गुणान्तरे ज्ञानत्रयव्यभिचारात्। सासादनेऽस्तीति चेन्न तस्य सम्यक्त्वग्रहणपूर्वकत्वात्। सम्यग्दृष्टेर्मिथ्याज्ञानविरोधात्। **१६७.** उत्कर्षेण पूर्वकोटीति—तत्कथं देशविरतादिगुणस्थानेऽन्तरं? अवसानकालशेषे पुनरसंयतत्वं प्रतिपद्यते इति देशोना। **१६८.** उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि। षट्षष्टिसागरोपमानंतरं पुनः संयतासंयतो भवति यतस्तत्कथं? असंयतप्रमत्तादिगुणस्थानेन अन्तरं पूर्वकोटी चतुष्टयाष्टवर्षैः सातिरेकाणि। मनुष्येषूत्पन्नो हि अष्टवर्षानन्तरं संयतासंयतत्वं प्रतिपद्यते इति। **१६९.** अधिकमपि कस्मान्नेति चेत् अधोगुणस्थानेषु वर्तमानानां मनःपर्ययासंभवात्। तेषु वर्तमानानां चाधिकमंतरं संभवति। **१७०.** उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोनेति तत्कथं? उपशमश्रेणीतो हि पतितास्ते मनःपर्ययज्ञानमपरित्यजन्तः प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थाने वर्तंते। यावत्पूर्वकोटीकालशेषं। पुनस्ते तदारोहणं कुर्वन्तीति देशोना। **१७१.** पूर्वकोटी देशोनेति—तत्कथं? अष्टवर्षानंतरं तपो गृहीत्वोपशमश्रेणीमारुह्य पतितः प्रमत्ताप्रमत्तयोः पूर्वकोटी कालशेषं यावद्वर्त्तित्वा पुनस्तदारोहणं करोतीति देशोना। **१७२.** एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरमिति। तत्कथम्? गुणांतरे सूक्ष्मसांपरायसंयमासम्भवात्।

सामान्यवत्। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्त्तश्च। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने। असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्य-प्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने। चतुर्णां क्षपकाणां सामान्योक्तम्। अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्ट्यादि-क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तमन्तरम्। अवधिदर्शनिनोऽवधिज्ञानिवत्। केवलदर्शनिनः केवलज्ञानिवत्। (१०) **लेश्यानुवादेन**—कृष्णनीलकापोतलेश्यासु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तमुहूर्तः। उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमा-संख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्त्तश्च। उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि। तेजःपद्मलेश्य-योर्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्ना-जीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि। संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्। शुक्ललेश्येषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्-मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्त्तश्च। उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। संयतासंयतप्रमत्तसंयतयोस्तेजोलेश्यावत्। अप्रमत्तसंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्त्तः। [१७३]अयदोति छलेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये। तत्तो दु सुक्कलेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु। १। त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्त्तः। उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं [१७४]प्रति नास्त्यन्तरम्। चतुर्णां क्षपकाणां सयोगकेवलिनामलेश्यानां च सामान्यवत्। (११) **भव्यानुवादेन**—भव्येषु मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत्। अभव्यानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्। (१२) **सम्यक्त्वानुवादेन**—क्षायिकसम्यग्दृष्टिष्व-संयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण [१७५]पूर्वकोटी देशोना। संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण [१७६]त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि। शेषाणां सामान्यवत्।

---

**१७३.** गोमट्टसारेऽपि लेश्याधिकारे उक्तेयं गाथा। गाथेयं कप्रतौ न दृश्यते। **१७४.** एकजीवं प्रति नास्त्यंतरं कस्मात्? उपशांतकषायस्य पतितस्य प्रमत्ते लेश्यांतरमसंस्पृश्य श्रेण्यारोहणादेकं जीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। **१७५.** उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना कस्मात्? गुणपरावर्तात्। **१७६.** त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि कस्मात्? गुणपरावर्तापेक्षया।

क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना। संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि देशोनानि। प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि। औपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयत-सम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण सप्त [१७७]रात्रिंदिनानि। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्त्तः। संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण चतुर्दश रात्रिंदिनानि। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्त्तः। प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पञ्चदश रात्रिंदिनानि। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्त्तः। त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्त्तः। उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्[१७८]। सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति [१७९]नास्त्यन्तरम्। मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्। (१३) **सञ्ज्ञानुवादेन**-संज्ञिषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। असंयत-सम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्त-र्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत्। असंज्ञिनां[१८०] नानाजीवापेक्षयैक-जीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्। तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्यवत्। (१४) **आहारानुवादेन**—आहारकेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्त्तश्च। उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागा असंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः। असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तः। उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागा असंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागा असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः। चतुर्णां क्षपकाणां सयोगकेवलिनां च सामान्यवत्। अनाहारकेषु

**१७७.** सप्तरात्रिंदिनानीति—औपशमिकसम्यक्त्वं हि यदि कश्चिदपि न गृह्णाति तदा सप्तरात्रिंदिनान्येव। संयतासंयतस्य चतुर्दश रात्रिंदिनानि प्रमत्ताप्रमत्तयोः पंचदशरात्रिंदिनानि। एकजीवं प्रति जघन्येनोत्कर्षेण चान्तर्मुहूर्तान्तरम्। तथा चोक्तम्—सम्मत्ते सत्तदिणा विरदाविरेदसु चउदसा होंति। विरदेसु दोसु पणदस विहरणकालो दु बोधव्वो। **१७८.** उपशान्तकषायैकजीवं प्रति नास्त्यन्तरं। वेदकपूर्वकौपशमिकेन हि श्रेण्यारोहणभाग्भवति। तस्याः पतितो न तेनैव श्रेण्यारोहणं करोति। सम्यक्त्वान्तरं मिथ्यात्वं वा गत्वा पश्चात्तदादाय करोति इति। अतो नास्ति तस्यान्तरम्। **१७९.** सासादनसम्यङ्मिथ्यादृष्टियुक्तैकजीवं प्रति नास्त्यंतरं। कथमिति चेत् गुणे गुणान्तरविरोधतः। सासादनादिगुणे स्थितस्य मिथ्यात्वादिना अन्तरासंभवात्। **१८०.** असंज्ञिनां नानाजीवैकजीवापेक्षया वा नास्त्यन्तरं कथमिति चेत्—एकगुणस्थानवर्तित्वेन तेषां सासादनादीनां अन्तरासंभवात्।

मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च [१८१]नास्त्यन्तरम्। सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। असंयतसम्यग्दृष्टेर्नाना-जीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण मासपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। असंयत-सम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण मासपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। सयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। अयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण षण्मासाः। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। अन्तरमवगतम्।

**भावो विभाव्यते।** स द्विविधः। **सामान्येन विशेषेण च। सामान्येन तावत्—** मिथ्यादृष्टिरित्यौदयिको भावः। सासादनसम्यग्दृष्टिरिति [१८२]पारिणामिको भावः। सम्यगमिथ्यादृष्टिरिति [१८३]क्षायोपशमिको भावः। असंयतसम्यग्दृष्टिरिति औपशमिको वा, क्षायिको वा, क्षायोपशमिको वा भावः। उक्तं च। [१८४]मिच्छे खलु ओदइओ बिदिए पुण पारिणामिओ भावो। मिस्से खओवसमिओ अविरदसम्मम्मि तिण्णेव। १। असंयतः[१८५]पुनरौदयिकेन भावेन। संयतासंयतः प्रमत्तसंयतोऽप्रमत्तसंयत इति च क्षायोपशमिको भावः। चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः। चतुर्षु क्षपकेषु सयोगायोगकेवलिनोश्च क्षायिको भावः। विशेषेण (१) **गत्यनुवादेन—नरकगतौ** प्रथमायां पृथिव्यां नारकाणां मिथ्यादृष्ट्याद्य-संयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां सामान्यवत्। द्वितीयादिष्वा सप्तम्या मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां सामान्यवत्। असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको वा क्षायोपशमिको वा भावः। असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन। **तिर्यग्गतौ** तिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तानां सामान्यवत्। **मनुष्यगतौ** मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत्। **देवगतौ** देवानां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयत-सम्यग्दृष्ट्यन्तानां सामान्यवत्। (२) **इन्द्रियानुवादेन—**एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणामौदयिको भावः। पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत्। (३) **कायानुवादेन—**स्थावरकायिका-नामौदयिको भावः। त्रसकायिकानां सामान्यमेव। (४) **योगानुवादेन—**कायवाङ्मानसयोगिनां

---

**१८१.** अनाहारकापेक्षया मिथ्यादृष्टेरिति—अनाहारकत्वस्य एकद्वित्रिसमयकृतत्वात् गुणस्थानस्य च ततो बहुकालत्वात्। तत्र तस्य गुणस्थानान्तरेणान्तरासंभवात्। **१८२.** पारिणामिको भाव इति—ननु अनंतानुबंधिक्रोधाद्युदयस्य प्रादुर्भावादौदयिकत्वं कस्मान्नोक्तमिति चेत् - अविवक्षितत्वात्। दर्शनमोहापेक्षया मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानचतुष्टये भावो निरूपयितुमभिप्रेतोऽतः सासादने सम्यक्त्वमिथ्यात्व-तदुभयलक्षणस्य त्रिविधस्यापि दर्शनमोहस्योदयक्षयोपशमाभावात् पारिणामिकत्वम्। **१८३.** सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति क्षायोपशमिको भावः। ननु सर्वघातिनामुदयाभावे देशघातिनां चोदये य उत्पद्यते भावः स क्षायोपशमिकः। न च सम्यङ्मिथ्यात्वप्रकृतेर्देशघातित्वं संभवति। सर्वघातित्वेनागमेऽस्याः प्रतिपादितत्वात्। सत्यं। उपचारतोऽस्या देशघातित्वस्यापि संभवात्। उपचारनिमित्तं च देशतः सम्यक्त्वव्याघातित्वं। नहि मिथ्यात्वप्रकृतिवत्सम्यङ्मिथ्यात्वप्रकृत्या सर्वस्य सम्यक्त्वरूपस्य घातः संभवति। सर्वज्ञोपदिष्टतत्त्वेषु रुच्यंतरस्यापि सद्भावात्। तदुपदिष्टतत्त्वेषु रुच्यरुच्यात्मको हि परिणामः सम्यङ्मिथ्यादृष्टित्वमित्यर्थः। **१८४.** गाथेयं कप्रतौ नास्ति। **१८५.** असंयतसम्यग्दृष्टौ सम्भवतोऽसंयतत्वस्यौदयिकत्वं प्राहुः संयतत्वस्य चारित्रमोहोदयहेतुत्वात्।

मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्यमेव। (५) **वेदानुवादेन**—स्त्रीपुन्नपुंसक-वेदानामवेदानां च सामान्यवत्। (६) **कषायानुवादेन**—क्रोधमानमायालोभकषायाणां अकषायाणां च सामान्यवत्। (७) **ज्ञानानुवादेन**—मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिविभङ्गज्ञानिनां मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्यवत्। (८) **संयमानुवादेन**—सर्वेषां संयतानां संयतासंयतानामसंयतानां च सामान्यवत्। (९) **दर्शनानुवादेन**—चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनकेवलदर्शनिनां सामान्यवत्। (१०) **लेश्यानुवादेन** - षड्लेश्यानामलेश्यानां च सामान्यवत्। (११) **भव्यानुवादेन**—भव्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत्। अभव्यानां [१८६]पारिणामिको भावः। (१२) **सम्यक्त्वानुवादेन**—क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः क्षायिको भावः। क्षायिकं सम्यक्त्वम्। असंयतत्वमौदयिकेन भावेन। संयतासंयत-प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः। क्षायिकं सम्यक्त्वं च। चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः। क्षायिकं सम्यक्त्वम्। शेषाणां सामान्यवत्। क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः क्षायोपशमिको भावः। क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम्। असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन। संयतासंयत-प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः। क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम्। औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको भावः। औपशमिकं सम्यक्त्वम्। असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन। संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां [१८७]क्षायोपशमिको भावः। औपशमिकं सम्यक्त्वम्। चतुर्णामुपशमका-नामौपशमिको भावः। औपशमिकं सम्यक्त्वम्। सासादनसम्यग्दृष्टेः पारिणामिको भावः। सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः क्षायोपशमिको भावः। मिथ्यादृष्टेरौदयिको भावः। (१३) **संज्ञानुवादेन**—संज्ञिनां सामान्यवत्। असंज्ञिना-मौदयिको भावः। तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्यवत्। (१४) **आहारानुवादेन**—आहारकाणामनाहारकाणां च सामान्यवत्। भावः परिसमाप्तः।

**अल्पबहुत्वमुपवर्ण्यते।** तत् द्विविधं सामान्येन विशेषेण च। **सामान्येन तावत्**—तत्र [१८८]उपशमकाः सर्वतः स्तोकाः स्वगुणस्थानकालेषु प्रवेशेन[१८९] तुल्यसंख्याः। उपशान्तकषायास्तावन्त एव। त्रयः क्षपकाः संख्येयगुणाः[१९०]। क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थास्तावन्त एव। सयोगकेवलिनोऽयोग-केवलिनश्च प्रवेशेन तुल्यसंख्याः। सयोगकेवलिनः स्वकालेन समुदिताः संख्येयगुणाः। ८९८५०२। अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः। २९६९९१०३। प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः। संयतासंयताः संख्येयगुणाः[१९१]।

---

**१८६.** अभव्यत्वधर्मस्य मुख्यत्वेन। मिथ्यात्वमुख्यत्वेन तु औदयिक एव स्यात्। **१८७.** अत्र औदयिको भाव इत्येकः पाठः। औपशमिको भाव इत्येकः पाठः। **१८८.** उपशमकानां इतरगुणस्थानवर्तिभ्योऽल्पत्वात्प्रथमतः कथनम्। तत्रापि त्रय उपशमकाः सकषायत्वादुपशान्तकषायेभ्यो भेदेन निर्दिष्टाः। प्रवेशेन तुल्यसंख्याः। सर्वेऽप्येते षोडशादिसंख्याः। प्रवेशेनेत्यस्य टिप्पणमग्रेऽवलोक्यम्। **१८९.** अष्टसु समयेषु प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा इत्यादिजघन्याः। उत्कृष्टास्तु १६। २४। ३०। ३६। ४२। ४८। ५४ स्वगुणस्थानकालेषु प्रवेशेन तुल्यसंख्याः। संख्याकथनावसरे प्रोक्ताः। तत्र द्रष्टव्यम्। **१९०.** संख्येयगुणा इति। त्रयः क्षपकाः संख्येयगुणा इति कोऽर्थः? उपशमकेभ्यो द्विगुणा इत्येवमादि संख्याविचारे विचारितमिह द्रष्टव्यम्। सूक्ष्मसाम्परायसंयता विशेषाधिकास्तत्संयमयुक्तानां उपशमकानामिव क्षपकाणामपि ग्रहणात्। **१९१.** संयतासंयताः संख्येयगुणाः। संयतासंयतानां नास्त्यल्पबहुत्वम्। एकगुणस्थानवर्तित्वात्। संयतानामिव गुणस्थानाभेदात्। १३००००००।

[१९२]सासादनसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः। सम्यग्मिथ्यादृष्टयः[१९३] संख्येगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयः[१९४] संख्येयगुणाः। मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः। विशेषेण (१) **गत्यनुवादेन—नरकगतौ** सर्वासु पृथिवीषु नारकेषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः। सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः, असंयतसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः। मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। **तिर्यग्गतौ** तिरश्चां सर्वतः स्तोकाः संयतासंयताः। इतरेषां सामान्यवत्। **मनुष्यगतौ** मनुष्याणामुपशमकादिप्रमत्तसंयतान्तानां समान्यवत्। ततः संख्येयगुणाः संयतासंयताः। सासादनसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः। सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः। मिथ्यादृष्ट्यो‌ऽसंख्येयगुणाः। **देवगतौ** देवानां नारकवत्। (२) **इन्द्रियानुवादेन—** एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु गुणास्थानभेदो नास्तीत्यल्पबहुत्वाभावः। इन्द्रियं प्रत्युच्यते। पञ्चेन्द्रियाद्येकेन्द्रियान्ता उत्तरोत्तरं बहवः। पञ्चेन्द्रियाणां सामान्यवत्। अयं तु विशेषः—मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। (३) **कायानुवादेन—**स्थावरकायेषु गुणस्थानभेदाभावादल्पबहुत्वाभावः। सर्वतस्तेजःकायिका अल्पाः। ततो बहवः पृथिवीकायिकाः। ततोऽप्कायिकाः। ततो वातकायिकाः। सर्वतोऽनन्तगुणा वनस्पतयः। त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत्। (४) **योगानुवादेन—**वाङ्मानसयोगिनां पञ्चेन्द्रियवत्। काययोगिनां सामान्यवत्। (५) **वेदानुवादेन—**स्त्रीपुंवेदानां पञ्चेन्द्रियवत्। नपुंसकवेदानामवेदानां च सामान्यवत्। (६) **कषायानुवादेन—**क्रोधमानमायाकषायाणां पुंवेदवत्। अयं तु विशेषः— मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः। लोभकषायाणां द्वयोरुपशमकयोस्तुल्यसंख्या। क्षपकाः संख्येयगुणाः। सूक्ष्मसाम्परायेषु ह्युपशमकसंयता विशेषाधिकाः। सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणाः। शेषाणां सामान्यवत्। (७) **ज्ञानानुवादेन—** मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः। मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः। विभंगज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः। मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। मतिश्रुतावधिज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाश्चत्वारः क्षपकाः संख्येयगुणाः। अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः। प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः। संयतासंयताः संख्येयगुणाः[१९५]। असंयतसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः। मनःपर्ययज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाः। चत्वारः क्षपकाः संख्येयगुणाः। अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः। प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः। केवलज्ञानिषु अयोगकेवलिभ्यः [१९६]सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः। (८) **संयमानुवादेन—**सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतेषु द्वयोरुपशमकयोस्तुल्यसंख्या। ततः संख्येयगुणौ क्षपकौ। अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः। प्रमत्ताः संख्येयगुणाः। परिहारविशुद्धिसंयतेषु अप्रमत्तेभ्यः प्रमत्ताः संख्येयगुणाः। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषु उपशमकेभ्यः क्षपकाः संख्येयगुणाः। यथाख्यातविहारशुद्धि-संयतेषु उपशान्तकषायेभ्यः क्षीणकषायाः संख्येयगुणाः। अयोगकेवलिनस्तावन्त एव। सयोगकेवलिनः

---

**१९२.** सासादनसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः ५२००००००० । **१९३.** सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः १०४००००००० । **१९४.** असंयतसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः ७०००००००००। – इति श्रुतसागरः। **१९५.** संयतासंयताः संख्येयगुणास्तिर्यगपेक्षया इत्यर्थः। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा देवनारक-तिर्यङ्मनुष्या इत्यर्थः। **१९६.** अयोगकेवलिनः एको वा द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः स्वकालेन समुदितास्तेभ्यः संख्येयाः सयोगकेवलिनः।८९८५०२।

संख्येयगुणाः। संयतासंयतानां नास्त्यल्पबहुत्वम्। असंयतेषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः। सम्यङ्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः। (९) **दर्शनानुवादेन**—चक्षुर्दर्शनिनां मनोयोगिवत्। अचक्षुर्दर्शनिनां काययोगिवत्। अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत्। केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत्। (१०) **लेश्यानुवादेन**—कृष्णनीलकापोतलेश्यानां असंयतवत्। तेजःपद्मलेश्यानां सर्वतः स्तोका अप्रमत्ताः। प्रमत्ताः संख्येयगुणाः। एवमितरेषां पञ्चेन्द्रियवत्। शुक्ललेश्यानां[१९७] सर्वतः स्तोका उपशमकाः क्षपकाः संख्येयगुणाः। सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः। अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः। प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः। संयतासंयताः संख्येयगुणाः। सासादन-सम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः। मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। (११) **भव्यानुवादेन**—भव्यानां सामान्यवत्। अभव्यानां नास्त्यल्पबहुत्वम्। (१२) **सम्यक्त्वानुवादेन**—क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाः। इतरेषां प्रमत्तान्तानां सामान्यवत्। ततः संयतासंयताः संख्येयगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वतः स्तोका अप्रमत्ताः। प्रमत्ताः संख्येयगुणाः। संयतासंयताः संख्येयगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। औपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाः। अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः। प्रमत्ताः संख्येयगुणाः। संयतासंयताः संख्येयगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। शेषाणां नास्त्यल्पबहुत्वम्। [१९८]विपक्षे एकैकगुणस्थानग्रहणात्। (१३) **सञ्ज्ञानुवादेन**—संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत्। असंज्ञिनां नास्त्यल्पबहुत्वम्। तदुभयव्यपदेशरहितानां केवलज्ञानिवत्। (१४) **आहारानुवादेन**—आहारकाणां काययोगिवत्। अनाहारकाणां सर्वतः स्तोकाः सयोगकेवलिनः। अयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः। सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः। एवं मिथ्यादृष्ट्यादीनां गत्यादिषु मार्गणाः कृता सामान्येन। तत्र सूक्ष्मभेद आगमाविरोधेनानुसर्त्तव्यः।

**एवं सम्यग्दर्शनस्यादावुद्दिष्टस्य लक्षणोत्पत्तिस्वामिविषयन्यासाधिगमोपाया निर्दिष्टाः। तत्सम्बन्धेन च जीवादीनां सञ्ज्ञापरिणामादिनिर्दिष्टम्। तदनन्तरं सम्यग्ज्ञानं विचारार्हमित्याह—**

## मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥९॥

ज्ञानशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते। मतिज्ञानं, श्रुतज्ञानं, अवधिज्ञानं, मनःपर्ययज्ञानं, केवलज्ञानमिति। इन्द्रियैर्मनसा च यथास्वमर्थान्मन्यते, अनया मनुते, मननमात्रं वा मतिः। [१९९]तदावरणक्षयोपशमे सति निरूप्यमाणं श्रूयते अनेनेति, तत् शृणोति, श्रवणमात्रं वा श्रुतम्। अनयोः प्रत्यासन्ननिर्देशः कृतः कार्य-

---

**१९७.** शुक्ललेश्यानां सर्वतः स्तोका उपशमकाः २२९६। क्षपकाः संख्येयगुणाः २९९०। सयोगकेवलिनः संख्येयगुणा ८९८५०२ अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः ५९३९८२०६ संयतासंयताः संख्येयगुणास्तिर्यङ्मनुष्यापेक्षया। **१९८.** कोऽर्थः? मिथ्यादृष्टिः सासादनो न भवति। सासादनसम्यग्दृष्टिस्तु मिथ्यादृष्टिर्भवति यतः। **१९९.** तदावरणेति —श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमे सति।

कारणभावात्। तथा च वक्ष्यते ''श्रुतं मतिपूर्वमिति''। [२००]अवाग्धानादवच्छिन्नविषयाद्वा[२०१] [२०२]अवधिः। परकीयमनोगतोऽर्थो मन इत्युच्यते, साहचर्यात्तस्य पर्ययणं परिगमनं मनःपर्ययः। मतिज्ञानप्रसङ्ग इति चेत् ? न। अपेक्षामात्रत्वात्। क्षयोपशमशक्तिमात्रविजृम्भितं तत्केवलं स्वपरमनोभिर्व्यपदिश्यते। यथा अभ्रे चन्द्रमसं पश्येति। बाह्येनाभ्यन्तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो[२०३] मार्गं केवन्ते सेवन्ते तत्केवलम्। असहायमिति वा। तदन्ते प्राप्यते इति अन्ते क्रियते। तस्य प्रत्यासन्नत्वात्तत्समीपे मनःपर्ययग्रहणम्। कुतः प्रत्यासत्तिः? [२०४]संयमैकाधिकरणत्वात्। तस्य अवधिर्विप्रकृष्टः कुतः ? [२०५]विप्रकृष्टांतरत्वात्। प्रत्यक्षात्परोक्षं पूर्वमुक्तं सुगमत्वात्। [२०६]श्रुतपरिचितानुभूता हि [२०७]मतिश्रुतपद्धतिः सर्वेण प्राणिगणेन प्रायः प्राप्यते यतः। एवमेतत्पञ्चविधं ज्ञानं तद्भेदादयश्च पुरस्ताद्वक्ष्यन्ते।

**प्रमाणनयैरधिगम इत्युक्तम्। प्रमाणं च केषाञ्चित्[२०८] ज्ञानमभिमतम्। केषाञ्चित्[२०९] सन्निकर्षः। [२१०]केषाञ्चिदिंद्रियमिति। अतोऽधिकृतानामेव मत्यादीनां प्रमाणत्वख्यापनार्थमाह—**

## तत्प्रमाणे ॥१०॥

तद्वचनं किमर्थं? प्रमाणान्तरपरिकल्पनानिवृत्यर्थम्। सन्निकर्षः प्रमाणमिन्द्रियं प्रमाणमिति केचित्कल्पयन्ति, तन्निवृत्यर्थं तदित्युच्यते। तदेव मत्यादि प्रमाणं नान्यदिति। अथ सन्निकर्षे प्रमाणे सति इन्द्रिये वा को दोषः? यदि सन्निकर्षः प्रमाणं, सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टानामर्थानामग्रहणप्रसङ्गः। नहि ते इन्द्रियैः सन्निकृष्यन्ते अतः सर्वज्ञत्वाभावः स्यात्। इन्द्रियमपि यदि प्रमाणं, स एव दोषः। अल्पविषयत्वात् चक्षुरादीनां, ज्ञेयस्य चापरिमाणत्वात्। सर्वेन्द्रियसन्निकर्षाभावश्च। चक्षुर्मनसोः प्राप्यकारित्वाभावात्। अप्राप्यकारित्वं च उत्तरत्र[२११] वक्ष्यते। यदि ज्ञानं प्रमाणं, फलाभावः। अधिगमो हि फलमिष्टं न भावान्तरम्। स चेत्प्रमाणं, न तस्यान्यत्फलं भवितुमर्हति। फलवता च प्रमाणेन भवितव्यम्। सन्निकर्षे इन्द्रिये वा प्रमाणे सति अधिगमः फलमर्थान्तरभूतं युज्यते इति ? तदयुक्तम्। यदि सन्निकर्षः प्रमाणं, अर्थाधिगमः फलं, तस्य द्विष्ठत्वात्तत्फलेनाधिगमेनापि द्विष्ठेन भवि-तव्यमिति अर्थादीनामप्यधिगमः प्राप्नोति। आत्मनश्चेतनत्वात्तत्रैव समवाय इति चेत् ? न। ज्ञस्वभावाभावे सर्वेषामचेतनत्वात्। ज्ञस्वभावाभ्युपगमो वा आत्मनस्तर्हि प्रतिज्ञाहानिः। ननु चोक्तं, ''ज्ञाने प्रमाणे सति फलाभावः'' इति? नैष दोषः, अर्थाधिगमे प्रीतिदर्शनात्। ज्ञस्वभावस्यात्मनः कर्ममलीमसस्य करणालम्बनादर्थनिश्चये प्रीतिरुपजायते सा फलमित्युच्यते। उपेक्षा अज्ञाननाशो वा फलम्। रागद्वेषयोरप्रणिधानमुपेक्षा।

---

२००. अवायन्ति व्रजन्तीत्यवायाः पुद्गलाः। तान् दधाति जानातीत्यवधिः। अवाग्धानात्पुद्गल-परिज्ञानादित्यर्थः। **२०१.** द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्नियतत्वेनावधीयते नियम्यते प्रमीयते परिच्छिद्यत इत्यर्थः। **२०२.** अवधान अवधिः। कोऽर्थः? अधस्ताद्बहुतरविषयग्रहणादवधिरुच्यते, देवाः खलु अवधिज्ञानेन सप्तमनरकपर्यन्तं पश्यन्ति। उपरि स्तोकं पश्यन्ति निजविमानध्वजदण्डपर्यन्तमित्यर्थः। अवच्छिन्नविषयत्वादवधिः कोऽर्थः—रूपिविषयत्वादवधिः। **२०३.** अर्थिनो मुनयः। **२०४.** संयमेन चारित्रेण एकमभिन्नं समानं अधिकरणं संयतात्मलक्षणमाश्रयो ययोस्तद्भावात्। **२०५.** केवलज्ञानोपेक्षया विप्रकृष्टेषु मतिश्रुतावधिष्वन्यतमत्वात्। **२०६.** श्रुतेन परिचिता सा चानुभूता च। **२०७.** मतिश्रुतपद्धतेर्वचनेन श्रुतायाः सकृत्स्वरूपसंवेदनमात्रं परिचितत्वमुच्यते। अशेषविशेषतः पुनः पुनश्चेतसि तत्स्वरूपपरिभावनमनुभूतत्वं कथ्यते। **२०८.** सौगतानाम्। **२०९.** यौगानाम्। **२१०.** सांख्यानाम्। **२११.** न चक्षुरनिन्द्रियाभ्यामिति सूत्रव्याख्यानावसरे।

अन्धकारकल्पाज्ञानाभावः अज्ञाननाशो वा फलमित्युच्यते। प्रमिणोति, प्रमीयतेऽनेन, प्रमितिमात्रं वा प्रमाणम्। किमनेन प्रमीयते? जीवादिरर्थः। यदि जीवादेरधिगमे प्रमाणं, प्रमाणाधिगमे अन्यत्प्रमाणं परिकल्पयितव्यम्। तथा सत्यनवस्था। नानवस्था प्रदीपवत्। यथा घटादीनां प्रकाशने प्रदीपो हेतुः, स्वरूपप्रकाशनेऽपि स एव, न प्रकाशान्तरं मृग्यं, तथा प्रमाणमपीति अवश्यं चैतदभ्युपगन्तव्यम्। प्रमेयवत्प्रमाणस्य प्रमाणान्तरपरिकल्पनायां स्वाधिगमाभावात्[२१२] स्मृत्यभावः। तदभावाद्व्यवहारलोपः स्यात्। वक्ष्यमाणभेदापेक्षया द्विवचननिर्देशः। वक्ष्यते हि ''आद्ये परोक्षं, प्रत्यक्षमन्यदिति'' स च द्विवचननिर्देशः प्रमाणान्तरसंख्यानिवृत्त्यर्थ [२१३]उपमानार्थापत्त्यादीनामत्रैवान्तर्भावात्।

**उक्तस्य पञ्चविधस्य ज्ञानस्य प्रमाणद्वयान्तःपातित्वे प्रतिपादिते प्रत्यक्षानुमानादिप्रमाणद्वयकल्पना-निवृत्त्यर्थमाह—**

## आद्ये परोक्षम् ॥११॥

आदिशब्दः प्राथम्य वचनः। आदौ भवमाद्यम्। कथं द्वयोः प्रथमत्वं? मुख्योपचारपरिकल्पनया। मतिज्ञानं तावन्मुख्यकल्पनया प्रथमम्, श्रुतमपि तस्य [२१४]प्रत्यासत्त्या प्रथममित्युपचर्यते। द्विवचननिर्देश-सामर्थ्याद्गौणस्यापि ग्रहणम्। आद्यं च आद्यं च आद्ये मतिश्रुते इत्यर्थः। तदुभयमपि परोक्षं प्रमाणमित्यभि-सम्बध्यते। कुतोऽस्य परोक्षत्वं? परायत्तत्वात्[२१५]। मतिज्ञानमिन्द्रियानिंद्रियनिमित्तमिति वक्ष्यते श्रुतमनिन्द्रियस्येति च। अतः पराणीन्द्रियाणि मनश्च प्रकाशोपदेशादि च बाह्यं निमित्तं प्रतीत्य तदावरणकर्मक्षयोपशमापेक्षस्यात्मन उत्पद्यमानं मतिश्रुतं परोक्षमित्याख्यायते। अत उपमानाग-मादीनामत्रैवान्तर्भावः।

**अभिहितलक्षणात्परोक्षादितरस्य सर्वस्य प्रत्यक्षत्वप्रतिपादनार्थमाह—**

## प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥

अक्ष्णोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा। तमेव[२१६] प्राप्तक्षयोपशमं प्रक्षीणावरणं वा प्रतिनियतं प्रत्यक्षम्। अवधिदर्शनं केवलदर्शनमपि अक्षमेव प्रतिनियतमतस्तस्यापि ग्रहणं प्राप्नोति ? नैष दोषः। ज्ञानमित्यनुवर्तते, तेन दर्शनस्य व्युदासः। एवमपि विभङ्गज्ञानमपि प्रतिनियतमतोऽस्यापि ग्रहणं प्राप्नोति? सम्यगित्यधिकारात्तन्निवृत्तिः। सम्यगित्यनुवर्तते[२१७], तेन ज्ञानं विशिष्यते, ततो विभङ्गज्ञानस्य निवृत्तिः कृता। तद्धि मिथ्यादर्शनोदयाद्विपरीतार्थविषयमिति न सम्यक्। स्यान्मतमिन्द्रियव्यापारजनितं ज्ञानं प्रत्यक्षं, व्यतीतेन्द्रियविषयव्यापारं परोक्षमित्येतदविसंवादिलक्षणमभ्युपगन्तव्यमिति ? तदयुक्तम्। आप्तस्य

---

**२१२.** स्वाधिगमा-भावात्प्रमाणं निजस्वरूपं न जानातीत्यर्थः। **२१३.** प्रत्यक्षं चानुमानं च शाब्दं चोपमया सह। अर्थापत्तिरभावश्च षट् प्रमाणानि जैमिनेः। जैमिनेः षट् प्रमाणानि चत्वारि न्यायवादिनः। सांख्यस्य त्रीणि वाच्यानि द्वे वैशेषिकबौद्धयोः॥८॥ **२१४.** प्रत्यासत्त्या-गौणस्यापि श्रुतज्ञानस्य सामीप्येन आद्यत्वेन ग्रहणं वेदितव्यम्। **२१५.** परापेक्षत्वात् इत्यपि पाठान्तरम्। परैरिन्द्रियादिभिरुक्ष्यते सिच्यतेऽभिबृह्यते इति परोक्षं। अक्ष आत्मा अक्षात्परावृत्तं परोक्षमिति। इति पाठः कप्रतावुपलभ्यतेऽधिकः। **२१६.** तमेवेति-तमेवाक्षमात्मानं अवधिमनःपर्ययापेक्षया परिप्राप्तक्षयोपशमम्। केवलज्ञानापेक्षया प्रक्षीणावरणम्। **२१७.** सम्यगिति-''सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'' इत्यत्र सूत्रे सम्यक्शब्दस्य ग्रहणमस्ति तेन कारणेन विभंगज्ञानस्य निषेधः कृतो भवति, तन्न प्रमाणमित्यर्थः।

प्रत्यक्षज्ञानाभावप्रसङ्गात्। यदि इन्द्रियनिमित्तमेव ज्ञानं प्रत्यक्षमिष्यते, एवं सत्याप्तस्य प्रत्यक्षज्ञानं न स्यात्। नहि तस्येन्द्रियपूर्वोऽर्थाधिगमः। अथ तस्यापि करणपूर्वकमेव ज्ञानं कल्प्यते, तस्यासर्वज्ञत्वं स्यात्। तस्य मानसं प्रत्यक्षमिति चेत् ? मनःप्रणिधानपूर्वकत्वात् ज्ञानस्य[२१८]सर्वज्ञत्वाभाव एव। आगम-तस्तत्सिद्धिरिति चेत् ? न, तस्य आगमस्य प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकत्वात्। योगिप्रत्यक्षमन्यज्ज्ञानं दिव्यमप्यस्तीति चेत्? न तस्य प्रत्यक्षत्वं, इन्द्रियनिमित्ताभावात्। अक्षमक्षं प्रति यद्वर्तते तत्प्रत्यक्षमित्यभ्युपगमात्। किञ्च सर्वज्ञत्वाभावः प्रतिज्ञाहानिर्वा। अस्य योगिनो यज्ज्ञानं तत्प्रत्यर्थवशवर्ति वा स्यात् अनेकार्थग्राहि वा? यदि प्रत्यर्थवशवर्ति, सर्वज्ञत्वमस्य नास्ति योगिनः, ज्ञेयस्यानन्त्यात्। अथानेकार्थग्राहि, या प्रतिज्ञा ''विजानाति न विज्ञानमेकमर्थद्वयं यथा। एकमर्थं विजानाति न विज्ञानद्वयं तथा'' इति सा हीयते। अथवा क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति प्रतिज्ञा हीयते। अनेकक्षणवर्त्येकविज्ञानाभ्युपगमात्। अनेकार्थग्रहणं हि क्रमेणेति। युगपदेवेति चेत् ? न, योऽस्य जन्मक्षणः स आत्मलाभार्थ एव। लब्धात्मलाभं हि किञ्चित्स्वकार्यं प्रति व्याप्रियते प्रदीपवदिति चेत् ? न, तस्याप्यनेकक्षणविषयतायां सत्यामेव प्रकाश्य-प्रकाशनाभ्युपगमात्। विकल्पातीतत्वात्तस्य शून्यताप्रसङ्गश्च[२१९]।

**अभिहितोभयप्रकारस्य प्रमाणस्य आदिप्रकारविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

### मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

आदावुद्दिष्टं यज्ज्ञानं तस्य पर्यायशब्दा एते वेदितव्याः। मतिज्ञानावरणक्षयोपशमान्तरङ्गनिमित्त-जनितोपयोगविषयत्वात्। [२२०]एतेषां श्रुतादिष्वप्रवृत्तेश्च। मननं मतिः। स्मरणं स्मृतिः सज्ज्ञानं सञ्ज्ञा। चिन्तनं चिन्ता। अभिनिबोधनमभिनिबोधः। इति यथासम्भवं विग्रहान्तरं विज्ञेयम्। सत्यपि प्रकृतिभेदे रूढिबललाभात् पर्यायशब्दत्वम्। यथा— इन्द्रः शक्रः पुरन्दरः इति, इन्दनादिक्रियाभेदेऽपि शचीपतेरेकस्यैव संज्ञाः। समभिरूढनयापेक्षया तेषामर्थान्तरकल्पनायां मत्यादिष्वपि स क्रमो विद्यत एव। किंतु मतिज्ञानावरणक्षयोपशमनिमित्तोपयोगं नातिवर्तत इति अयमत्रार्थो विवक्षितः। इतिशब्दः प्रकारार्थः। एवंप्रकारा अस्य पर्यायशब्दा इति। अभिधेयार्थो वा। [२२१]मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ता अभिनिबोध इत्येतैर्योऽर्थोऽभिधीयते स एक एव इति।

---

**२१८.** युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगमिति परैरभ्युपगमात्सर्ववस्तुषु युगपन्मनःप्रणिधानं न घटते। ततः सर्वज्ञत्वाभावः। एकं ज्ञानमनेकार्थं न जानातीति प्रतिज्ञासद्भावाच्च क्रमेण सर्ववस्तुज्ञानं च न घटते, वस्तूनामानन्त्यादेकवस्तुपरिज्ञानावसरे अन्यवस्तुपरिज्ञानाभावाच्च सर्वज्ञत्वाभावः सुघटः। **२१९.** स्वस्मिन्सकलविकल्पाभावात्सकलविकल्पाविषयत्वाच्च योगिप्रत्यक्षस्य शून्यताप्रसङ्गः। तत्त्वं विशुद्धं सकलैर्विकल्पैर्विश्वाभिलापास्पदतामतीतम्। **न स्वस्य वेद्यं न च तन्निगद्यं सुषुप्त्यवस्थं भवदुक्तिबाह्यम् ॥१॥ इति वचनात्॥** **२२०.** मत्यादिपर्यायशब्दानाम्। **२२१.** मतिःस्मृतिरित्यादि—बहिरंगमन्तरगं चार्थं यया आत्मा परिस्फुटं मन्यते सा मतिः। सा अवग्रहेहावायधारणात्मिका, स्वसंवेदनं, इन्द्रियज्ञानं च सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षमिति। अतीतार्थग्राहिणी प्रतीतिः स्मृतिरिति। तदेवेदं तत्सदृशं चेति प्रत्यभिज्ञानं संज्ञा कथ्यते। यथाग्निं विना धूमो न स्यात्तथात्मानं विना शरीव्यापारवचनादिकं न स्यादिति वितर्कणं ऊहनं चिन्ताभिधीयते। धूमादिलिंगदर्शनादग्न्यादिप्रतीतिरनुमानं अभिनिबोधोऽभिधीयते। इति शब्दात्प्रतिभा–बुद्धिमेधा प्रभृतयो मतिज्ञानप्रकारा वेदितव्याः। अकस्माद्बाह्यकारणं विना व्युष्टे ममेष्टः समेष्यतीति एवंरूपं यद्विज्ञानमुत्पद्यते सा प्रतिभाभिधीयते। अर्थग्रहणशक्तिर्बुद्धिरुच्यते। पाठग्रहणशक्तिर्मेधाभिधीयते। उक्तं च—मतिरागामिकी ज्ञेया बुद्धिस्तत्कालदर्शिनी। प्रज्ञा चातीतकालज्ञा मेधा कालत्रयात्मिका॥

**अथास्यात्मलाभे किं निमित्तमित्याह—**

## तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥१४॥

इन्द्रतीति इन्द्र आत्मा तस्य ज्ञस्वभावस्य तदावरणक्षयोपशमे सति स्वयमर्थान् ग्रहीतुम-समर्थस्य यदर्थोपलब्धिनिमित्तं लिङ्गं तदिन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियमित्युच्यते। अथवा लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम्। आत्मनः सूक्ष्मस्यास्तित्वाधिगमे लिङ्गमिन्द्रियम्। यथा इह धूमोऽग्नेः। एवमिदं स्पर्शनादिकरणं नासीत कर्तर्यात्मनि भवितुमर्हतीति ज्ञातुरस्तित्वं गम्यते। अथवा इन्द्र इति नामकर्मोच्यते। तेन सृष्टमिन्द्रियमिति। तत्स्पर्शनादि उत्तरत्र वक्ष्यते। अनिन्द्रियं मनः अंतःकरणमित्यनर्थान्तरम्। कथं पुनरिन्द्रियप्रतिषेधेन इन्द्रलिङ्गे एव मनसि अनिन्द्रियशब्दस्य प्रवृत्तिः ? ईषदर्थस्य नञः प्रयोगात्। ईषदिन्द्रियमनिन्द्रियमिति। यथा अनुदरा कन्या इति। कथमीषदर्थः? इमानीन्द्रियाणि प्रतिनियतदेशविषयाणि कालान्तरावस्थायीनि च। न तथा मनः। इन्द्रस्य लिङ्गमपि तत्प्रतिनियतदेशविषयं कालान्तरावस्थायि च। तदन्तःकरणमिति चोच्यते। गुणदोषविचारस्मरणादिव्यापारेषु इन्द्रियानपेक्षत्वाच्चक्षुरादिवद् बहिरनुपलब्धेश्च अन्तर्गतं करणमित्युच्यते। तदिति किमर्थम्?। मतिज्ञाननिर्देशार्थम्। ननु च तदनन्तरं अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति ? तस्यैव ग्रहणं भवति। इहार्थमुत्तरार्थं च तदित्युच्यते। यन्मत्यादिपर्यायशब्दवाच्यं ज्ञानं तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं तदेवावग्रहेहावायधारणा इति। इतरथा हि प्रथमं मत्यादिशब्दवाच्यं ज्ञानमित्युक्त्या इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं श्रुतम्। तदेवावग्रहेहावायधारणा इत्यनिष्टमभिसम्बध्येत।

**एवं निर्ज्ञातोत्पत्तिनिमित्तमनिर्णीतभेदमिति तद्भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## अवग्रहेहावायधारणाः ॥१५॥

**विषयविषयिसन्निपातसमयानन्तरमाद्यग्रहणमवग्रहः।** विषयविषयिसन्निपाते सति दर्शनं भवति, तदनन्तरमर्थस्य ग्रहणमवग्रहः। यथा—चक्षुषा शुक्लं रूपमिति ग्रहणमवग्रहः। अवग्रह-गृहीतेऽर्थे तद्विशेषाकाङ्क्षणमीहा। यथा—शुक्लं रूपं किं बलाका[२२२] पताका वेति। विशेष-निर्ज्ञानाद्याथात्म्यावगमनमवायः। उत्पतननिपतनपक्षविक्षेपादिभिर्बलाकैवेयं न पताकेति। अवेतस्य[२२३]

---

**२२२.** ननु ईहा संशयज्ञानं भवितुर्महति, किं बलाका पताकेति उभयकोटीपरामर्शप्रत्ययत्वात् प्रसिद्ध-संशयज्ञानवत्। तथा च कथमस्याः प्रामाण्यमिति न शंकितव्यं हेतोरसिद्धेः। तस्या भवितव्यताप्रत्ययरूपत्वेन उभयकोटीपरामर्शिप्रत्यय-रूपत्वाघटनात्। किं बलाका पताकेति वचनं तु निदर्शनद्वयोः प्रदर्शनार्थमुक्तम्। तथा च किं बलाकेत्यत्र बलाकया भवितव्यमिति तात्पर्यम्। किं पातकेत्यत्र च पताकया भवितव्यमिति तात्पर्यम्। कथमेषा प्रतीतिरिति चेत् प्ररूपणशास्त्रे ज्ञानमार्गणायां मतिज्ञानव्याख्यानावसरे श्रीमदभयसूरिवर्यैस्तथैव निरूपितत्वात्। तथाहि तद्ग्रन्थः—अवग्रहेण इदं श्वेतमिति ज्ञातेऽर्थे विशेषस्य बलाकारूपस्य पताकारूपस्य वा यथावस्थितस्य आकांक्षा, बलाकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा बलाकायामेव संजायमाना ईहाख्यं द्वितीयं ज्ञानं भवेत्। अथवा पताकारूपं विषयमालम्ब्य उत्पद्यमाना अनया पताकया भवितव्यमिति भवितव्यता-प्रत्ययरूपा आकांक्षा ईहानाम द्वितीयं ज्ञानं भवेत्। एवमिन्द्रियान्तरविषयेषु मनोविषये च अवग्रहगृहीते यथावस्थि-तस्य विशेषस्य आकांक्षारूपा ईहेति निश्चेतव्यम्। मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य तारतम्यभेदेन अवग्रहेहाज्ञानयोर्भेदसंभवात्। अस्मिन् सम्यग्ज्ञानप्रकरणे बलाका वा पताका वा इति संशयस्य, बलाकायां पताकया भवितव्यमिति विपर्ययस्य च मिथ्याज्ञानस्यानवतारात्। **२२३.** अवेतस्य अवायज्ञानविषयीभूतस्येति तदर्थः।

कालान्तरेऽविस्मरणकारणं धारणा। यथा–सैवेयं बलाका[२२४] पूर्वाह्णे यामहमद्राक्षमिति। एषामवग्रहादीना-मुपन्यासक्रमः उत्पत्तिक्रमकृतः।

**उक्तानामवग्रहादीनां प्रभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह–**

## बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥

अवग्रहादयः क्रियाविशेषाः प्रकृताः। तदपेक्षोऽयं कर्मनिर्देशः। बह्वादीनां सेतराणामिति। बहुशब्दस्य संख्यावैपुल्यवाचिनो ग्रहणम्–विशेषात्[२२५]। संख्यावाची यथा–एको द्वौ बहव इति। वैपुल्यवाची यथा–बहुरोदनो बहुः सूप इति। विधशब्दः प्रकारवाची। क्षिप्रग्रहणमचिरप्रतिपत्त्यर्थम्। अनिःसृतग्रहणं असकलपुद्गलोद्गमार्थम्। अनुक्तमभिप्रायेण ग्रहणम्। ध्रुवं निरन्तरं यथार्थग्रहणम्। सेतरग्रहणं प्रतिपक्षसंग्रहार्थं। बहूनामवग्रहः। अल्पस्यावग्रहः। बहुविधस्यावग्रहः। [२२६]एकविधस्यावग्रहः। क्षिप्रमवग्रहः। चिरेणावग्रहः। अनिःसृतस्यावग्रहः। निःसृतस्यावग्रहः। अनुक्तस्यावग्रहः। उक्तस्यावग्रहः। ध्रुवस्यावग्रहः। अध्रुवस्यावग्रहश्चेति अवग्रहो द्वादशविकल्पः। एवमीहादयो[२२७]ऽपि। त एते पञ्चभिरिन्द्रियद्वारैर्मनसा च प्रत्येकं प्रादुर्भाव्यन्ते। तत्र [२२८]बह्ववग्रहादयो मतिज्ञानावरणक्षयोपशम-प्रकर्षात् प्रभवन्ति। [२२९]नेतरे इति। तेषामभ्यर्हितत्वादादौ ग्रहणं क्रियते। बहुबहुविधयोः कः प्रतिविशेषः? यावता बहुषु बहुविधेष्वपि बहुत्वमस्ति। एकप्रकारनानाप्रकारकृतो विशेषः। उक्तनिःसृतयोः कः प्रतिविशेषः? यावता सकलनिःसरणान्निःसृतम्। उक्तमप्येवंविधमेव। अयमस्ति विशेषः–अन्योपदेशपूर्वकं ग्रहणमुक्तम्। स्वत एव ग्रहणं निःसृतम्। अपरेषां क्षिप्रनिःसृत इति पाठः। त एवं वर्णयन्ति–श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दमवगृह्यमाणं मयूरस्य वा कुररस्य वेति कश्चित्प्रतिपद्यते। अपरः स्वरूपमेवाश्रित्य इति। ध्रुवावग्रहणस्य धारणायाश्च कः प्रतिविशेषः? उच्यते। क्षयोपशमप्राप्तिकाले विशुद्धपरिणामसन्तत्या प्राप्तात्क्षयोपशमात्प्रथमसमये यथावग्रहस्तथैव द्वितीयादिष्वपि समयेषु न न्यूनो नाभ्यधिक इति ध्रुवावग्रह इत्युच्यते। यदा पुनर्विशुद्ध-परिणामस्य संक्लेशपरिणामस्य च मिश्रणात्क्षयोपशमो भवति तत उत्पद्यमानोऽवग्रहः कदाचिद्बहूनां, कदाचिदल्पस्य, कदाचिद्बहुविधस्य, कदाचिदेकविधस्य वेति न्यूनाधिकभावादध्रुवावग्रह इत्युच्यते। धारणा पुनर्गृहीतार्थाविस्मरणकारणमिति महदनयोरन्तरम्।

**यद्यवग्रहादयो बह्वादीनां कर्मणामाक्षेप्तारो, बह्वादीनि पुनर्विशेषणानि कस्येत्यत आह–**

## अर्थस्य ॥१७॥

**चक्षुरादिविषयोऽर्थः**[२३०]। तस्य बह्वादिविशेषणविशिष्टस्य अवग्रहादयो भवन्तीत्यभिसम्बन्धः

---

**२२४.** एवंविधप्रत्यभिज्ञानरूपज्ञानस्य कारणभूतं संस्कारविशिष्टं ज्ञानं धारणा नत्विद मित्यर्थः। **२२५.** अविशेष्योक्तत्वात्। **२२६.** बह्वेकविधयोरविशेष इति न मन्तव्यम्। बहूनामवग्रह इत्यत्र बहुत्वसंख्याया मुख्यतया ग्रहणेन नैकविधस्यावग्रह इत्यर्थः। **२२७.** एवं ईहापि द्वादशप्रकारा, तथावायोऽपि द्वादशप्रकारः। तथा धारणापि द्वादशप्रकारा एवं द्वादशचतुष्के अष्टचत्वारिंशद्भेदा भवन्ति। सा अष्टचत्वारिंशत्षड्भिरिन्द्रियैर्गुणिता अष्टाशीत्यधिका द्विशती भवति। **२२८.** आदिशब्देन बहुविधावग्रहादयो गृह्यन्ते। **२२९.** सूत्रे इतरशब्दगृहीता अवग्रहादयः। **२३०.** चक्षुरादीति– स्थिरस्थूलरूपञ्चक्षुरादींद्रियाणां ग्राह्यो विषयो गोचरो गम्य इति यावत्। वस्तुरूपोऽर्थ उच्यते। द्रव्यं वा अर्थ उच्यते।

क्रियते। किमर्थमिदमुच्यते यावता बह्वादिरर्थ एव? सत्यमेवं किन्तु प्रवादिपरिकल्पना-निवृत्यर्थमर्थस्येत्युच्यते। केचित्प्रवादिनो मन्यन्ते रूपादयो गुणा एव इन्द्रियैः सन्निकृष्यन्ते तेषामेव ग्रहणमिति। तदयुक्तम्। नहि ते रूपादयो गुणा [२३१]अमूर्ता इन्द्रियैः सन्निकर्षमापद्यन्ते। न तर्हि इदानीमिदं भवति रूपं मया दृष्टं, गन्धो वा घ्रात इति। भवति च। कथं? इयर्ति पर्यायांस्तैर्वाऽर्यत इत्यर्थो द्रव्यं तस्मिन्निन्द्रियैः सन्निकृष्यमाणे [२३२]तदव्यतिरेकाद्रूपादिष्वपि संव्यवहारो युज्यते।

**किमिमे अवग्रहादयः सर्वस्येन्द्रियानिन्द्रियस्य भवन्ति उत कश्चिद्विषयविशेषोऽस्तीत्यत आह –**

## व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥१८॥

व्यञ्जनमव्यक्तं शब्दादिजातं तस्यावग्रहो भवति। किमर्थमिदं नियमार्थं, अवग्रह एव नेहादय इति। तर्हिं एवकारः कर्तव्यः? न कर्तव्यः? सिद्धे विधिरारभ्यमाणो नियमार्थ इति अन्तरेणैवकारं नियमार्थो भविष्यति। ननु अवग्रहग्रहणमुभयत्र तुल्यं तत्र किं कृतोऽयं विशेषः[२३३]? अर्थावग्रहव्यञ्जनावग्रहयोर्व्यक्ता-व्यक्तकृतो विशेषः। कथम्? अभिनवशरावार्द्रीकरणवत्। यथा जलकणद्वित्रिसिक्तः शरावोऽभिनवो नार्द्रीभवति, स एव पुनः पुनः सिच्यमानः शनैस्तिम्यते, एवं श्रोत्रादिष्विन्द्रियेषु शब्दादिपरिणताः पुद्गला द्वित्र्यादिषु समयेषु गृह्यमाणा न व्यक्तीभवन्ति, पुनःपुनरवग्रहे सति व्यक्तीभवन्ति। अतोऽव्यक्तग्रहणात्प्राग्व्यञ्जनावग्रहः। व्यक्तग्रहणमर्थावग्रहः। ततोऽव्यक्तावग्रहणादीहादयो न भवन्ति।

**सर्वेन्द्रियाणामविशेषेण व्यञ्जनावग्रहप्रसङ्गे यत्रासम्भवस्तदर्थप्रतिषेधमाह–**

## न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥

चक्षुषा अनिन्द्रियेण च व्यञ्जनावग्रहो न भवति। कुतः? अप्राप्यकारित्वात्। यतोऽप्राप्तमर्थमविदिक्कं युक्तसन्निकर्षविशेषेऽवस्थितं बाह्यप्रकाशाभिव्यक्तमुपलभते चक्षुः, मनश्चाप्राप्तमित्यनयोर्व्यञ्जनावग्रहो नास्ति। चक्षुषोऽप्राप्यकारित्वं कथमध्यवसीयते? आगमतो युक्तितश्च। आगमतस्तावत्– [२३४]**पुट्ठं सुणोदि सद्दं अपुट्ठं पुण पस्सदे रूवं। गंधं रसं च फासं बद्धं पुट्ठं वियाणादि।** युक्तितश्च–अप्राप्यकारि चक्षुः स्पृष्टानवग्रहात्। यदि प्राप्यकारि स्यात् त्वगिन्द्रियवत् स्पृष्टमञ्जनं गृह्णीयात्। न तु गृह्णात्यतो[२३५] मनोवदप्राप्यकारीत्यवसेयम्। ततश्चक्षुर्मनसी वर्जयित्वा शेषाणामिन्द्रियाणां व्यञ्जनावग्रहः। सर्वेषामिन्द्रियानिन्द्रियाणामर्थावग्रह इति सिद्धं।

**आह निर्दिष्टं मतिज्ञानं लक्षणतो विकल्पतश्च; तदनन्तरमुद्दिष्टं यत् श्रुतं तस्येदानीं लक्षणं विकल्पश्च वक्तव्य इत्यत आह–**

## श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥२०॥

श्रुतशब्दोऽयं श्रवणमुपादाय व्युत्पादितोऽपि रूढिवशात्कस्मिंश्चिज्ज्ञानविशेषे वर्तते। यथा कुशलवन-

---

**२३१.** परमतापेक्षया। **२३२.** तदव्यतिरेकात्–तस्माद्द्रव्याद्रूपादीनामव्यतिरेके अपृथक्त्वे रूपादिष्वपि संव्यवहारो युज्यते। २३३. विशेषाभावे षट्त्रिंशत्त्रिशतमतिज्ञानसंख्याविघटनादित्यभिप्रायः पूर्वपक्षिणः। **२३४.** स्पृष्टं शब्दं शृणोत्यक्षमस्पृष्टं रूपमीक्षते। स्पृष्टं बद्धं च जानाति स्पर्शं गंधं रसं तथा ॥६८॥ –इति तत्त्वार्थश्लोकवार्तिके। **२३५.** न तु गृह्णाति इति–चक्षुःस्पृष्टं वस्तु नेक्षते इत्यर्थः।

कर्मप्रतीत्या व्युत्पादितोऽपि कुशलशब्दो रूढिवशात्पर्यवदाते निपुणे वर्तते। कः पुनरसौ ज्ञानविशेष इति? अत आह ''श्रुतं मतिपूर्वमिति'' श्रुतस्य प्रमाणत्वं पूरयतीति पूर्वं, निमित्तं कारणमित्यनर्थान्तरम्। मतिर्निर्दिष्टा। मतिः पूर्वमस्य मतिपूर्वं, मतिकारणमित्यर्थः। यदि मतिपूर्वं श्रुतं तदपि मत्यात्मकं प्राप्नोति, कारणसदृशं हि लोके कार्यं दृष्टमिति ? नैतदैकान्तिकम्। दण्डादिकारणोऽयं घटो न दण्डाद्यात्मकः। अपि च सति तस्मिन् तदभावात्, सत्यपि मतिज्ञाने बाह्यश्रुतज्ञाननिमित्तसन्निधानेऽपि प्रबलश्रुतावरणोदयस्य श्रुताभावः। श्रुतावरणक्षयोपशमप्रकर्षे तु सति श्रुतज्ञानमुत्पद्यत इति मतिज्ञानं निमित्तमात्रं ज्ञेयम्। आह– श्रुतमनादिनिधनमिष्यते। तस्य मतिपूर्वकत्वे तदभावः। आदिमतोऽन्तवत्वात्। [२३६]ततश्च पुरुषकृतत्वाद–प्रामाण्यमिति ? नैष दोषः द्रव्यादिसामान्यार्पणात् श्रुतमनादिनिधनमिष्यते। नहि केनचित्पुरुषेण क्वचित्कदाचित्कथञ्चिदुत्प्रेक्षितमिति। तेषामेव विशेषापेक्षया आदिरन्तश्च सम्भवतीति मतिपूर्वमित्युच्यते। यथांकुरो बीजपूर्वकं स च सन्तानापेक्षया अनादिनिधन इति। न चापौरुषेयत्वं प्रामाण्यकारणम्। [२३७]चौर्याद्युपदेशस्यास्मर्यमाणकर्तृकस्य प्रामाण्यप्रसङ्गात्। अनित्यस्य च प्रत्यक्षादेः प्रामाण्ये को विरोधः। आह–प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तौ [२३८]युगपज्ज्ञानपरिणामान्मतिपूर्वकत्वं श्रुतस्य नोपपद्यत इति ? तदयुक्तं सम्यक्त्वस्य[२३९] तदपेक्षत्वात्। आत्मलाभस्तु क्रमवानिति मतिपूर्वकत्वव्याघाताभावः। आह – मतिपूर्वं श्रुतमित्येतल्लक्षणमव्यापि श्रुतपूर्वमपि श्रुतमिष्यते। तद्यथा– [२४०]शब्दपरिणतपुद्गलस्कन्धादाहितवर्णपद–वाक्यादिभावाच्चक्षुरादिविषयाच्च आद्यश्रुतविषयभावमापन्नादव्यभिचारिणः कृतसंगीतिर्जनो घटाज्जलधारणादिकार्यसम्बन्ध्यन्तरं प्रतिपद्यते धूमादेर्वाग्न्यादिद्रव्यं, तदा श्रुतात् श्रुतप्रतिपत्तिरिति ? नैष दोषः। तस्यापि मतिपूर्वकत्वमुपचारतः। [२४१]श्रुतमपि क्वचिन्मतिपूर्वकत्वान्मतिरित्युपचर्यत इति। भेदशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते द्विभेदमनेकभेदं द्वादशभेदमिति। द्विभेदं तावत्–अङ्गबाह्यमङ्गप्रविष्टमिति। अङ्गबाह्यमनेकविधं दशवैकालिकोत्तराध्ययनादि। अङ्गप्रविष्टं द्वादशविधम्। तद्यथा–आचारः। सूत्रकृतम्। स्थानम्। समवायः। व्याख्याप्रज्ञप्तिः। ज्ञातृधर्मकथा। उपासकाध्ययनम्। अन्तकृद्दशम्। अनुत्तरोपपादिक–दशम्। प्रश्नव्याकरणम्। विपाकसूत्रम्। दृष्टिवाद इति। दृष्टिवादः पञ्चविधः–परिकर्म। सूत्रम्। प्रथमानुयोगः। पूर्वगतम्। चूलिका चेति। तत्र पूर्वगतं चतुर्दशविधम्–उत्पादपूर्वम्। अग्रायणीयम्।

---

**२३६.** ततश्चेति–द्रव्यक्षेत्रकालादौ समर्पणे श्रुतज्ञानमनादिनिधनं वर्तते। चतुर्थकालादौ पूर्वविदेहादौ कल्पादिषु च श्रुतस्य सर्वसामान्यापेक्षणात्। न हि केनचित्पुरुषेण क्वचित्क्षेत्रे कदाचित्काले केनचित्प्रकारेण श्रुतज्ञानं कृतं वर्तते। द्रव्यादीनामेव विशेषापेक्षया श्रुतज्ञानस्यादिरन्तश्च घटते, यतो वृषभसेनादयो द्रव्यभूतास्तैः श्रुतज्ञानस्यादिः कृतः, वीरांगजांतविशेषापेक्षया श्रुतस्यान्तश्च संगच्छते तेन श्रुतं मतिपूर्वं इत्युच्यते। **२३७.** यदि वेदकृत् पुमान् भवद्भिर्न स्मर्यते तर्हि वेदाःकिमकृता भवन्ति? तत्र दृष्टान्तः यदि चौर्यपरदाराद्युपदेशस्य न कर्ता स्मर्यते तर्हि तदुपदेशोऽपि अपौरुषेयस्तस्यापि प्रमाण्यप्रसंगो भवति। न च वेदोऽकृत्रिमः। तथा चोक्तम्–वेदहेतुं तु काणादा वदन्ति चतुराननम्। जैनाः कालासुरं बौद्धाश्चाष्टकान् सकला सदा॥ **२३८.** मतिश्रुतोत्पत्तेः। **२३९.** ज्ञानसम्यग्भावस्य। **२४०.** शब्दपरिणतेति–अस्यायमर्थः–घट इत्युक्ते घकारटकारविसर्गात्मकं शब्दं मतिज्ञानेनप्रतिपद्यते। तस्मादपि घटार्थाज्जलधारणादिकार्यं श्रुतज्ञानेन प्रतिपद्यते। धूमादेरिति तत्रापि धूमदर्शनं मतिज्ञानं तस्मादग्निविषयज्ञानं श्रुतज्ञानं तस्मादपि दाहपाकादिककार्यं श्रुतमिति। एवं श्रुताच्छ्रुतं भवति। **२४१.** श्रुतमपि क्वचिन्मतिरित्युपचर्यते मतिपूर्वकत्वात् इति पाठान्तरम्।

वीर्यप्रवादम्। अस्तिनास्तिप्रवादम्। ज्ञानप्रवादम्। सत्यप्रवादम्। आत्मप्रवादम्। कर्मप्रवादम्। प्रत्याख्यान-नामधेयम्। विद्यानुप्रवादम्। कल्याणनामधेयम्। प्राणावायम्। क्रियाविशालम्। लोकबिन्दुसारमिति। तदेतत् श्रुतं द्विभेदमनेकभेदं द्वादशभेदमिति। किंकृतोऽयं विशेष:? वक्तृविशेषकृतो विशेषः। त्रयो वक्तारः। सर्वज्ञतीर्थकरः। इतरो वा श्रुतकेवली। आरातीयश्चेति। तत्र सर्वज्ञेन परमर्षिणा परमाचिन्त्यकेवलज्ञान-विभूतिविशेषेण अर्थत आगम उद्दिष्टः। तस्य प्रत्यक्षदर्शित्वात्प्रक्षीणदोषत्वाच्च प्रामाण्यम्। तस्य साक्षाच्छिष्यैर्बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तैर्गणधरैः श्रुतकेवलिभिरनुस्मृत-ग्रन्थरचनमङ्गपूर्वलक्षणं तत्प्रमाणं, तत्प्रामाण्यात्। आरातीयैः पुनराचार्यैः कालदोषात्सङ्क्षिप्तायुर्मतिबलशिष्यानुग्रहार्थं [२४२]दशवैकालिकाद्युप-निबद्धं, तत्प्रमाणमर्थतस्तदेवेदमिति, क्षीरार्णवजलं घटगृहीतमिव।

**व्याख्यातं परोक्षम्। प्रत्यक्षमिदानीं वक्तव्यम्—तत् द्वेधा—देशप्रत्यक्षं सकलप्रत्यक्षं च। देशप्रत्यक्षमवधि-मन:पर्ययज्ञाने, सर्वप्रत्यक्षं केवलम्। यद्येवमिदमेव तावदवधिज्ञानं त्रि:प्रकारस्य प्रत्यक्षस्याद्यं व्याक्रियतामित्यत्रोच्यते। द्विविधोऽवधिः। भवप्रत्ययः क्षयोपशमनिमित्तश्चेति। तत्र भवप्रत्यय उच्यते—**

## भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥२१॥

भव इत्युच्यते। को भव:? आयुर्नामकर्मोदयनिमित्त आत्मनः पर्यायो भवः। प्रत्ययः कारणं निमित्तमित्यनर्थान्तरम्। भवः प्रत्ययोऽस्य भवप्रत्ययोऽवधिः। देवनारकाणां वेदितव्यः। यद्येवं तत्र क्षयोपशमनिमित्तत्वं न प्राप्नोति ? नैष दोषः तदाश्रयात्तत्सिद्धेः। भवं प्रतीत्य क्षयोपशमः सञ्जायत इति कृत्वा भवः प्रधानकारणमित्युपदिश्यते। यथा पतत्रिणो गमनमाकाशे भवनिमित्तं न शिक्षागुणविशेषः, तथा देवनारकाणां व्रतनियमाद्यभावेऽपि जायत इति [२४३]भवप्रत्यय इत्युच्यते। इतरथा हि भवः साधारण इति कृत्वा सर्वेषामविशेषः स्यात्। इष्यते च तत्रावधेः प्रकर्षाप्रकर्षवृत्तिः। देवनारकाणामित्यविशेषाभिधानेऽपि सम्यग्दृष्टीनामेव ग्रहणं। कुतः अवधिग्रहणात् मिथ्यादृष्टीनां च विभङ्ग इत्युच्यते ? प्रकर्षाप्रकर्षवृत्तिश्च आगमतो विज्ञेया।

यदि भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणां, अथ क्षयोपशमहेतुकः केषामित्यत आह—

## क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥

अवधिज्ञानावरणस्य देशघातिस्पर्द्धकानामुदये सति सर्वघातिस्पर्द्धकाना[२४४]-मुदयाभावः क्षयः। तेषामेवानुदयप्राप्तानां सदवस्था उपशमः। तौ निमित्तमस्येति क्षयोपशमनिमित्तः। स शेषाणां वेदितव्यः। के पुनः शेषा:? मनुष्यास्तिर्यञ्चश्च। तेष्वपि यत्र सामर्थ्यमस्ति तत्रैव वेदितव्यः। न ह्यसंज्ञिनामपर्याप्तकानां च तत्सामर्थ्यमस्ति। संज्ञिनां पर्याप्तकानां च न सर्वेषाम्। केषां तर्हि ? यथोक्तसम्यग्दर्शनादिनिमित्तसन्निधाने सत्युपशान्तक्षीणकर्मणां तस्योपलब्धिर्भवति। सर्वस्य क्षयोपशम-निमित्तत्वे क्षयोपशमग्रहणं नियमार्थं,

---

**२४२.** दशवैकालिकादीति—यदंगबाह्यं श्रुतं तदनेकभेदं। मुख्यवृत्त्या चतुर्दशभेदं प्रकीर्णकाभिधानं इत्यर्थः। ते के अंगबाह्यश्रुतभेदा इति चेदुच्यंते। १ सामायिकं, स्तुतिः, वंदना, प्रतिक्रमणं, वैनयिकं, कृतिकर्म, दशवैकालिकं उत्तराध्ययनं, कल्प्यव्यवहारं, कल्प्याकल्प्यं, महाकल्पं, पुण्डरीकं, महापुडरीकं। अशीतिका चेति चतुर्दश प्रकीर्णानि रचितान्यारातीयाचार्यैः। **२४३.** भवप्रत्यय इष्यते इत्यपि पाठः। **२४४.** स्पर्धकेति—कर्मपुद्गलशक्तीनां क्रमवृद्धिः क्रमहानिश्च स्पर्धकं तावदुच्यते।

क्षयोपशम एव निमित्तं न भव[२४५] इति। स एषोऽवधिः षड्विकल्पः। कुतः? अनुगाम्यननुगामि-वर्द्धमानहीयमानावस्थितानवस्थितभेदात्। कश्चिदवधिर्भास्करप्रकाशवद्गच्छन्तमनुगच्छति। कश्चिन्नानुगच्छति तत्रैवातिपतति [२४६]उन्मुग्धप्रश्नादेशिपुरुषवचनवत्। अपरोऽवधिः अरणिनिर्मथनोत्पन्न-शुष्कपत्रोपचीयमानेन्धननिचयसमिद्धपावकवत्सम्यग्दर्शनादिगुणविशुद्धिपरिणामसन्निधानाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वर्द्धते आ असंख्येयलोकेभ्यः। अपरोऽवधिः परिच्छिन्नोपादानसन्तत्यग्निशिखावत्-सम्यग्दर्शनादिगुणहानिसंक्लेशपरिणामविवृद्धियोगाद्यत्परिमाणउत्पन्नस्ततो हीयते आ अंगुल्यसंख्येयभागात्। इतरोऽवधिः सम्यग्दर्शनादिगुणावस्थानाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्तत्परिमाण एवावतिष्ठते न हीयते नापि वर्द्धते लिङ्गवत्। आ भवक्षयादाकेवलज्ञानोत्पत्तेर्वा। अन्योऽवधिः सम्यग्दर्शनादिगुणहानिवृद्धि-योगाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वर्द्धते यावदनेन वर्धितव्यं, हीयते च यावदनेन हातव्यं वायुवेगप्रेरित-जलोर्मिवत्। एवं षड्विकल्पोऽवधिर्भवति। एवं व्याख्यातमवधिज्ञानम्[२४७]।

**तदनन्तरमिदानीं मनःपर्ययज्ञानं वक्तव्यं तस्य भेदपुरःसरं लक्षणं व्याचिख्यासुरिदमाह—**

## ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥

ऋज्वी निर्वर्तिता[२४८] प्रगुणा च। कस्मान्निर्वर्तिता? वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परमनोगतस्य विज्ञानात्। ऋज्वी मतिर्यस्य सोऽयं ऋजुमतिः। अनिर्वर्तिता कुटिला च विपुला च। कस्मादनिर्वर्तिता? वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परकीयमनोगतस्य विज्ञानात्। विपुला मतिर्यस्य सोऽयं विपुलमतिः। ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च ऋजुविपुलमती। एकस्य मतिशब्दस्य गतार्थत्वादप्रयोगः। अथवा ऋजुश्च विपुला च ऋजुविपुले। ऋजुविपुले मती ययोस्तौ ऋजुविपुलमती। स एष मनःपर्ययो द्विविधः ऋजुमतिर्विपुलमतिरिति। आह—उक्तो भेदः, लक्षणमिदानीं वक्तव्यमित्यत्रोच्यते—वीर्यान्तरायमनःपर्ययज्ञानावरणक्षयोपशमा-ङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भादात्मनःपरकीयमनःसम्बन्धेन लब्धप्रवृत्तिरुपयोगो मनःपर्ययः। मतिज्ञानप्रसङ्ग इति चेद् उक्तमुत्तरं पुरस्तात् ''अपेक्षाकारणं मन'' इति। परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्थः, अनेन ज्ञायते इत्येतावदत्रापेक्ष्यते। तत्र ऋजुमतिर्मनःपर्ययः कालतो जघन्येन जीवानामात्मनश्च द्वित्राणि भवग्रहणानि, उत्कर्षेण सप्ताष्टानि गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति। क्षेत्रतो जघन्येन गव्यूतिपृथक्त्वं[२४९], उत्कर्षेण योजनपृथक्त्वस्याभ्यन्तरं न बहिः। द्वितीयः कालतो जघन्येन सप्ताष्टानि भवग्रहणानि, उत्कर्षेणासंख्येयानि गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति। क्षेत्रतो जघन्येन योजनपृथक्त्वं, उत्कर्षेण मानुषोत्तरशैलाभ्यन्तरं न बहिः।

**उक्तयोरनयोः पुनरपि विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

---

**२४५.** तीर्थकृतां भवप्रत्ययोऽप्यवधिर्भवतीत्यर्थः ''भवपच्चइगो सुरणिरयाणं तित्थे वि सव्व अंगुट्ठो'' इति वचनात्। **२४६.** उन्मुग्धेति—विवेकपराङ्मुखस्य प्रश्ने सति आदेष्टृपुरुषवचनं यथा तत्रैवातिपतति न तेनाग्रे प्रवर्त्तते। **२४७.** परमावधिसर्वावधी विशिष्टसंयमोत्पन्नौ हानिवृद्धिरहितौ ज्ञातव्यौ। तौ तु चरमशरीरस्यैव भवतः। गृहस्थावस्थायां तीर्थकरस्य देवनारकाणां च देशावधिरेव वेदितव्यम्। **२४८.** निर्वर्तितेति—निवर्तिता पश्चाद्वालिता व्याघोटिता। वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परमनोगतस्य विज्ञानात् अनिर्वर्तिता न पश्चाद्वालिता न व्याघोटिता तत्रैव स्थिरीकृता मतिर्विपुला मतिः प्रतिपद्यते। **२४९.** त्रिसंख्यातोऽधिका नवसंख्यातो न्यूना संख्या।

## विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः॥२४॥

तदावरणक्षयोपशमे सति आत्मनः प्रसादो विशुद्धिः। प्रतिपतनं प्रतिपातः। न प्रतिपातः अप्रतिपातः। उपशान्तकषायस्य चारित्रमोहोद्रेकात्प्रच्युतसंयमशिखरस्य प्रतिपातो भवति। क्षीणकषायस्य प्रतिपात-कारणाभावादप्रतिपातः। विशुद्धिश्च अप्रतिपातश्च विशुद्ध्यप्रतिपातौ ताभ्याम्। तयोर्विशेषस्तद्विशेषः। तत्र विशुद्ध्या तावत्–ऋजुमतेर्विपुलमतिर्द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्विशुद्धतरः। कथं? इह यः कार्मण-द्रव्यानन्तभागोऽन्त्यः सर्वावधिना ज्ञातस्तस्य पुनरनन्तभागीकृतस्यान्त्यो भागः ऋजुमतेर्विषयः। तस्य ऋजुमतेर्विषयस्यानन्तभागीकृतस्यान्त्यो भागो विपुलमतेर्विषयः। अनन्तस्यानन्तभेदत्वात्। द्रव्यक्षेत्रकालतो विशुद्धिरुक्ता। भावतो विशुद्धिः सूक्ष्मतरद्रव्यविषयत्वादेव वेदितव्या, प्रकृष्टक्षयोपशमविशुद्धियोगात्। अप्रतिपातेनापि विपुलमतिर्विशिष्टः स्वामिनां प्रवर्द्धमानचारित्रोदयत्वात्। ऋजुमतिः पुनः प्रतिपाती स्वामिनां कषायोद्रेकाद्धीयमानचारित्रोदयत्वात्।

## विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः॥२५॥

विशुद्धिः प्रसादः। क्षेत्रं यत्रस्थान्भावान्प्रतिपद्यते। स्वामी प्रयोक्ता। विषयो ज्ञेयः। तत्रावधे-र्मनःपर्ययो विशुद्धतरः। कुतः? सूक्ष्मविषयत्वात्। क्षेत्रमुक्तं, विषयो वक्ष्यते। स्वामित्वं प्रत्युच्यते। प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेषु वर्तते प्रमत्तादिक्षीणकषायान्तेषु। तत्र चोत्पद्यमानः प्रवर्द्धमानचारित्रेषु, न हीयमानचारित्रेषु। प्रवर्द्धमानचारित्रेषु चोत्पद्यमानः सप्तविधान्यतमर्द्धिप्राप्तेषूपजायते, नेतरेषु। ऋद्धिप्राप्तेषु केषुचिन्न सर्वेष्विति। [२५०]अस्य स्वामिविशेषविशिष्टसंयमग्रहणं वाक्ये कृतम् न सूत्रे। अवधिः पुनश्चातुर्गतिकेष्विति स्वामिभेदादप्यनयोर्विशेषः।

**इदानीं केवलज्ञानलक्षणाभिधानं प्राप्तकालं तदुल्लंघ्य ज्ञानानां विषयनिबन्धः परीक्ष्यते। कुतः? तस्य ''मोहक्षयात् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलं'' इत्यत्र वक्ष्यमाणत्वात्। यद्येवमाद्ययोरेव तावन्मतिश्रुतयोर्विषय-निबन्ध उच्यतामित्यत आह–**

## मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु॥२६॥

निबन्धनं [२५१]निबन्धः। कस्य? विषयस्य। तद्विषयग्रहणं कर्तव्यम्? न कर्तव्यम्। प्रकृतं विषयग्रहणं। क्व प्रकृतं? विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्य इत्यतस्तस्यार्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवतीति विषयस्येत्यभि-सम्बध्यते। द्रव्येष्विति बहुवचननिर्देशः सर्वेषां जीवधर्माधर्मकालाकाशपुद्गलानां संग्रहार्थः। तद्विशेषणार्थमसर्वपर्यायग्रहणम्। तानि द्रव्याणि मतिश्रुतयोर्विषयभावमापद्यमानानि कतिपयैरेव पर्यायैर्विषयभावमास्कन्दन्ति न सर्वपर्यायैरनन्तैरपीति। अत्राह–धर्मास्तिकायादीन्यतीन्द्रियाणि तेषु मतिज्ञानं न प्रवर्तते। अतः सर्वद्रव्येषु मतिज्ञानं वर्तत इत्ययुक्तम्? नैष दोषः। अनिन्द्रियाख्यं करणमस्ति तदालम्बनो[२५२] नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमलब्धिपूर्वक उपयोगोऽवग्रहादिरूपः प्रागेवोपजायते ततस्तत्पूर्वं श्रुतज्ञानं [२५३]तद्विषयेषु स्वयोग्येषु व्याप्रियते।

---

**२५०.** अस्यायं स्वामिविशेषो विशिष्टसंयमग्रहणं वा प्रकृतम्। इत्येकः पाठः। अस्यायं स्वामिविशेषो विशिष्टसंयतग्रहणं वा कृतं न सूत्रे। इत्यप्यन्यः पाठः पुस्तकान्तरे विद्यते। **२५१.** सम्बन्धः। **२५२.** तत्कारणकः। **२५३.** नोइन्द्रियविषयद्रव्येषु।

**अथ मतिश्रुतयोरनन्तरनिर्देशार्हस्यावधेः को विषयनिबन्ध इत्यत आह–**

## रूपिष्ववधेः ॥२७॥

विषयनिबन्ध इत्यनुवर्तते। रूपिष्वित्यनेन पुद्गलद्रव्यसम्बन्धाश्च जीवाः परिगृह्यन्ते। रूपिष्वेवावधेर्विषयनिबन्धो नारूपेष्विति नियमः क्रियते। रूपिष्वपि भवन्न सर्वपर्यायेषु स्वयोग्येष्वेवेत्यवधारणार्थमसर्वपर्यायेष्वित्यभिसम्बध्यते।

**अथ तदनन्तरनिर्देशभाजो मनःपर्ययस्य को विषयनिबन्ध इत्यत आह–**

## तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य ॥२८॥

[२५४]यदेतद्रूपिद्रव्यं सर्वावधिज्ञानविषयत्वेन समर्थितं तस्यानन्तभागीकृतस्यैकस्मिन्भागे मनःपर्ययः प्रवर्तते।*

**अथान्ते यन्निर्दिष्टं केवलज्ञानं तस्य को विषयनिबन्ध इत्यत आह–**

## सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥

द्रव्याणि च पर्यायाश्च द्रव्यपर्याया इति इतरेतरयोगलक्षणो द्वन्द्वः। तद्विशेषणं सर्वग्रहणं प्रत्येकमभिसम्बध्यते सर्वेषु द्रव्येषु सर्वेषु पर्यायेष्विति। जीवद्रव्याणि तावदनन्तानन्तानि, पुद्गलद्रव्याणि च ततोऽप्यनन्तानन्तानि अणुस्कन्धभेदेन भिन्नानि, धर्माधर्माकाशानि त्रीणि, कालश्चासंख्येयस्तेषां[२५५] पर्यायाश्च त्रिकालभुवः प्रत्येकमनन्तानन्तास्तेषु। द्रव्यं पर्यायजातं वा न किञ्चित्केवलज्ञानस्य विषयभावमतिक्रान्तमस्ति। अपरिमितमाहात्म्यं हि तदिति ज्ञापनार्थं सर्वद्रव्यपर्यायेष्वित्युच्यते।

**आह विषयनिबन्धोऽवधृतो[२५६] मत्यादीनां इदं तु न निर्ज्ञातमेकस्मिन्नात्मनि स्वनिमित्तसन्निधानोपजनितवृत्तीनि ज्ञानानि यौगपद्येन कति भवन्तीत्यत उच्यते–**

## एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥३०॥

एकशब्दः संख्यावाची, आदिशब्दोऽवयववचनः, एक आदिर्येषां तानि इमान्येकादीनि भाज्यानि –विभक्तव्यानि यौगपद्येनैकस्मिन्नात्मनि। आ कुतः? आ चतुर्भ्यः? तद्यथा–एकं तावत्केवलज्ञानं न तेन सहान्यानि क्षायोपशमिकानि युगपदवतिष्ठन्ते। द्वे मतिश्रुते।

त्रीणि मतिश्रुतावधिज्ञानानि, मतिश्रुतमनःपर्ययज्ञानानि वा। [२५७]चत्वारि मतिश्रुतावधिमनःपर्यय–ज्ञानानि। न पञ्च सन्ति केवलस्यासहायत्वात्।

---

**२५४.** अवधेर्मनःपर्ययस्य सूक्ष्मविषयत्वदर्शनार्थं सूत्रमिदं न तु विषयनिबन्धनार्थम्। यतो मनःपर्ययस्यावधि–विषयानन्तभागेऽन्यत्रापि च दर्शिता वृत्तिः प्रवर्तते* इत्यप्यधिकः पाठः। **२५५.** लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ठ्ठिया हु एक्केक्का। रयणाणं रासी इव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥१॥ इतिगाथोक्तप्रकारेणकालद्रव्यस्याणुरूपत्वान्नानात्वं धर्माधर्माकाशानामनेकप्रदेशत्वेऽपि खण्डात्मकत्वाभावादेकैकत्वमवबोद्धव्यम्। **२५६.** विवृतः इत्यपि पाठान्तरम्। **२५७.** चत्वारि इति–एकस्मिञ्जीवे क्षायोपशमिकानि ज्ञानानि युगपच्चत्वारि भवन्ति। लब्धिरूपाणि चत्वारि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययरूपाणि भवन्तीत्यर्थः। परन्तु एकस्मिन्समये उपयोगवदेकज्ञानमेव भवेत्। यदा मतिज्ञानं उपयोगवत्तदा न श्रुतं। यदा श्रुतं तदा न मतिज्ञानं। यदावधिरुपयोगवांस्तदा न मतिश्रुते। यदा मनःपर्ययस्तदा न मतिश्रुतावधयः। केवलज्ञानं तु न क्षायोपशमिक–मतस्तत्स्वावरणक्षये सदैवोपयोगमयमेव तत्र न लब्ध्यवकाशः। न तेन सहान्यानि ज्ञानानि संभवन्ति।

यथोक्तानि मत्यादीनि ज्ञानव्यपदेशमेव लभन्ते, उतान्यथापीत्यत आह–

**मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥**

विपर्ययो मिथ्येत्यर्थः। कुतः? सम्यगधिकारात्। चशब्दः समुच्चयार्थः। विपर्ययश्च सम्यक्चेति। कुतः पुनरेषां विपर्ययः? मिथ्यादर्शनेन सहैकार्थसमवायात्। सरजस्ककटुकालाबुगतदुग्धवत्। ननु[२५८] च तत्राधारदोषात् दुग्धस्य रसविपर्ययो भवति, न च तथा मत्यज्ञानादीनां विषयग्रहणे विपर्ययः। तथा हि, सम्यग्दृष्टिर्यथा चक्षुरादिभिः रूपादीनुपलभते[२५९] तथा मिथ्यादृष्टिरपि मत्यज्ञानेन। यथा च सम्यग्दृष्टिः श्रुतेन रूपादीनि जानाति निरूपयति च तथा मिथ्यादृष्टिरपि श्रुताज्ञानेन। यथा चावधिज्ञानेन सम्यग्दृष्टिः रूपिणोऽर्थानवगच्छति तथा मिथ्यादृष्टिर्विभङ्गज्ञानेनेति। अत्रोच्यते–

**सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥३२॥**

सद्विद्यमानमसदविद्यमानमित्यर्थः। तयोरविशेषेण यदृच्छया उपलब्धेर्विपर्ययो भवति। कदाचिद्रूपादि सदप्यसदिति प्रतिपद्यते, असदपि सदिति, कदाचित्सत्सदेव, असदप्यसदेवेति मिथ्यादर्शनोदयादध्यवस्यति। यथा पित्तोदयाकुलितबुद्धिर्मातरं भार्येति, भार्यामपि मातेति मन्यते। यदृच्छया मातरं मातैवेति भार्यामपि भार्यैवेति च। तदापि न तत्सम्यग्ज्ञानम्। एवं मत्यादीनामपि रूपादिषु विपर्ययो वेदितव्यः। तथा हि– कश्चिन्मिथ्यादर्शनपरिणाम आत्मन्यवस्थितो रूपाद्युपलब्धौ सत्यामपि कारणविपर्यासं, भेदाभेदविपर्यासं, स्वरूपविपर्यासं च जनयति। कारणविपर्यासस्तावत्–रूपादीनामेकं कारणममूर्तं नित्यमिति [२६०]केचित्कल्पयन्ति। [२६१]अपरे पृथिव्यादिजातिभिन्नाः [२६२]परमाणवश्चतुस्त्रिद्व्येकगुणास्तुल्यजातीयानां कार्याणामारम्भका इति। [२६३]अन्ये वर्णयन्ति–पृथिव्यादीनि चत्वारि भूतानि, भौतिकधर्मा वर्णगन्धरसस्पर्शाः, एतेषां समुदायो रूपपरमाणुरष्टक इत्यादि। [२६४]इतरे [२६५]वर्णयन्ति–पृथिव्यप्तेजोवायवः काठिन्यादि-द्रवत्वाद्युष्णत्वादीरणत्वादिगुणा[२६६] जातिभिन्नाः परमाणवः कार्यस्यारंभकाः। भेदाभेदविपर्यासः कारणात्कार्यमर्थान्तरभूतमेवेति[२६७] च अनर्थान्तरभूतमेवेति च परिकल्पना[२६८]। स्वरूपविपर्यासो रूपादयो निर्विकल्पाः[२६९] सन्ति न सन्त्येव वा। तदाकारपरिणतं [२७०]विज्ञानमेव। न तदालम्बनं वस्तु बाह्यमिति। एवमन्यानपि परिकल्पनाभेदान् दृष्टेष्टविरुद्धान्मिथ्यादर्शनोदयात्कल्पयन्ति तत्र च श्रद्धानमुत्पादयन्ति। ततस्तन्मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं अवध्यज्ञानं च भवति। सम्यग्दर्शनं पुनस्तत्त्वार्थाधिगमे श्रद्धानमुत्पादयति[२७१]। ततस्तन्मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं भवति।

**आह प्रमाणं द्विप्रकारं वर्णितम्। प्रमाणैकदेशाश्च नयास्तदनन्तरोद्देशभाजो निर्देष्टव्या इत्यत आह–**

---

**२५८.** ननु मणिकनकादयो विष्ठागृहे पतिता अपि न दुष्यन्ति तथा मत्यादयोऽपि। सत्यम्। मणिकनकादयोऽपि परिणामिकद्रव्ययोगे दुष्यन्त एव तथा मत्यादयोपि मिथ्यादर्शनयोगे दुष्यन्ति। **२५९.** जानाति निरूपयति इत्यपि पाठान्तरं। **२६०.** वेदान्तिनः। **२६१.** यौगाः। **२६२.** पार्थिवपरमाणुषु गन्धरसरूपस्पर्शाः। आप्येषु रसरूपस्पर्शाः। तैजसेषु रूपस्पर्शौ। वायवीयेषु स्पर्शः। **२६३.** सौगतविशेषाः। **२६४.** चार्वाकाः। **२६५.** अन्ये कल्पयन्ति इत्यपि पाठान्तरम्। **२६६.** प्रेरणत्वादिगुणाः। **२६७.** यौगानां कल्पना। **२६८.** सांख्यानाम्। **२६९.** वैभाषिककल्पना। **२७०.** विज्ञानाद्वैतवादिकल्पना। **२७१.** श्रद्धानं जनयति इत्यपि पाठांतरं।

## नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः ॥३३॥

एतेषां सामान्यविशेषलक्षणं वक्तव्यम्। सामान्यलक्षणं तावद्वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात्साध्यविशेषस्य [२७२]याथात्म्यप्रापणप्रवणप्रयोगो नयः[२७३]। स द्वेधा द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति। द्रव्यं सामान्यमुत्सर्गः अनुवृत्तिरित्यर्थस्तद्विषयो द्रव्यार्थिकः। पर्यायो विशेषोऽपवादो व्यावृत्तिरित्यिर्थः। तद्विषयः पर्यायार्थिकः। तयोर्भेदा नैगमादयः। तेषां विशेषलक्षणमुच्यते—अनभिनिर्वृत्तार्थसङ्कल्पमात्रग्राही नैगमः। कञ्चित्पुरुषं परिगृहीतपरशुं गच्छन्तमवलोक्य कश्चित्पृच्छति किमर्थं भवान्गच्छतीति ? स आह प्रस्थमानेतुमिति। नासौ तदा प्रस्थपर्यायः सन्निहितः। तदभिनिर्वृत्तये सङ्कल्पमात्रे प्रस्थव्यवहारः। तथा एधोदकाद्याहरणं व्याप्रियमाणं कञ्चित्पुरुषं कश्चित्पृच्छति किं करोति भवानिति ? स आह ओदनं पचामीति। न तदौदनपर्यायः सन्निहितः। तदर्थे व्यापारे स प्रयुज्यते। एवम्प्रकारोलोकसंव्यवहारोऽनभि-निर्वृत्तार्थसङ्कल्पमात्रविषयो नैगमनयस्य गोचरः ।१। स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय पर्यायानाक्रान्त-भेदानविशेषेण समस्तग्रहणात्संग्रहः। सत् द्रव्यं घट इत्यादि। सदित्युक्ते सदिति वाग्विज्ञानानु-प्रवृत्तिलिङ्गानुमितसत्ताधारभूतानामविशेषेण सर्वेषां संग्रहः। तथा द्रव्यमित्युक्तेऽपि द्रवति गच्छति तांस्तान्पर्यायानित्युपलक्षितानां जीवाजीवतद्भेदप्रभेदानां संग्रहः। तथा घट इत्युक्तेऽपि घटबुद्ध्यभिधानानुगमलिङ्गानुमितसकलार्थसंग्रहः। एवम्प्रकारोऽन्योऽपि संग्रहनयस्य विषयः।२। संग्रह-नयाक्षिप्तानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहारः। को विधिः? यः संग्रहगृहीतोऽर्थस्तदानुपूर्व्येणैव व्यवहारः प्रवर्तत इत्ययं विधिः। तद्यथा—सर्वसंग्रहेण यत्संगृहीतं तच्चानपेक्षितविशेषं नालं संव्यवहारायेति व्यवहारनय आश्रीयते। यत्सत्तत् द्रव्यं गुणो वेति। द्रव्येणापि संग्रहाक्षिप्तेन जीवाजीवविशेषानपेक्षेण न शक्यः संव्यवहार इति जीवद्रव्यमजीवद्रव्यमिति वा व्यवहार आश्रीयते। जीवाजीवावपि संग्रहाक्षिप्तौ नालं संव्यवहारायेति प्रत्येकं देवनारकादिर्घटादिश्च व्यवहारेणाश्रीयते। एवमयं नयस्तावद्वर्तते यावत्पुनर्नास्ति विभागः। ३। ऋजुं प्रगुणं सूत्रयति तन्त्रयति इति ऋजुसूत्रः। पूर्वान्परांस्त्रिकालविषयानतिशय्य वर्तमानकालविषयानादत्ते, अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन व्यवहाराभावात्। तच्च वर्तमानं समयमात्रं तद्विषयपर्यायमात्रग्राह्योऽयमृजुसूत्रः। ननु संव्यवहारलोपप्रसङ्ग इति चेद् ? अस्य नयस्य विषयमात्रप्रदर्शनं क्रियते। सर्वनयसमूहसाध्यो हि लोकसंव्यवहारः। ४। लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्तिपरः[२७४] **शब्दनयः**। तत्र लिङ्गव्यभिचारः—पुष्यस्तारका नक्षत्रमिति। संख्याव्यभिचारः—जलमापो, वर्षा ऋतु-राम्रा वनं वरणा नगरमिति। साधनव्यभिचारः—(कारकव्यभिचारः) सेना पर्वतमधिवसति[२७५]।

---

**२७२.** याथात्म्यप्ररूपणप्रवणप्रयोग इत्यपि पाठान्तरम्। **२७३.** नयंति प्रापयन्ति प्रमाणैकदेशानिति नयाः। अविरोधेन प्रतीत्यनतिक्रमेण। हेत्वर्पणात् द्रव्यपर्यायाद्यर्पणात्। साध्यविशेषस्य नित्यानित्यत्वादेः। यथावस्थितस्वरूपप्रदर्शनसमर्थव्यापारो नय उच्यते। नयो ज्ञातुरभिप्राय इत्यर्थः। नैगमसंग्रहव्यवहारास्त्रयो नया द्रव्यार्थिका वेदितव्याः। ऋजुसूत्रशब्द-समभिरूढैवंभूताश्चत्वारो नयाः पर्यायार्थिका ज्ञातव्याः। नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रनया अर्थनयाः। अन्ये शब्दनयाः। **२७४.** लिङ्गादीनां व्यभिचारो दोषो नास्तीत्यभिप्रायपरः। **२७५.** अधितिष्ठतीत्यर्थः।

पुरुषव्यभिचारः–एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति[२७६]। कालव्यभिचारः–विश्वदृश्वाऽस्य पुत्रो जनिता। [२७७]भाविकृत्यमासीदिति। उपग्रहव्यभिचारः–सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते [२७८]विरमत्युपरमतीति[२७९]। एवंप्रकारं व्यवहारं न्याय्यं[२८०] मन्यते। अन्यार्थस्यान्यार्थेन सम्बन्धाभावाल्लोक-समयविरोध इति चेत् ? विरुध्यताम्। तत्त्वमिह मीमांस्यते[२८१] न भैषज्यमातुरेच्छानुवर्ति। ५। नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढः। यतो नानार्थान्समतीत्यैकमर्थमाभिमुख्येन रूढः समभिरूढः। गौरित्ययं शब्दो वागादिष्वर्थेषु वर्तमानः पशावभिरूढः। अथवा अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः। तत्रैकस्यार्थस्यैकेन गतार्थत्वात्पर्यायशब्दप्रयोगोऽनर्थकः। शब्दभेदश्चेदस्ति अर्थभेदेनाप्यवश्यं भवितव्यमिति नानार्थ-समभिरोहणात्समभिरूढः। इन्दनादिन्द्रः, शकनाच्छक्रः, पूर्दारणात्पुरन्दर इत्येवं सर्वत्र। अथवा यो यत्राभिरूढः स तत्र समेत्याभिमुख्येनारोहणात्समभिरूढः यथा क्व भवानास्ते? आत्मनीति। कुतः? वस्त्वन्तरे वृत्त्यभावात्। यद्यन्यस्यान्यत्र वृत्तिः स्यात्, ज्ञानादीनां रूपादीनां चाकाशे वृत्तिः स्यात्। ६। येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीत्येवम्भूतः। स्वाभिधेयक्रियापरिणतिक्षण एव स शब्दो युक्तो नान्यदेति। यदैवेन्दति तदैवेन्द्रो नाभिषेचको न पूजक इति। यदैव गच्छति तदैव गौर्न स्थितो न शयित इति। अथवा येनात्मना येन ज्ञानेन भूतः परिणतस्तेनैवाध्यवसाययति। यथेन्द्राग्निज्ञानपरिणत[२८२] आत्मैवेन्द्रोऽग्निश्चेति। ७। उक्ता नैगमादयो नया [२८३]उत्तरोत्तरसूक्ष्मविषयत्वादेषां क्रमः पूर्वपूर्वहेतुकत्वाच्च[२८४]। एवमेते नया पूर्वपूर्वविरुद्धमहाविषया उत्तरोत्तरानुकूलाल्पविषयाः। द्रव्यस्यानन्तशक्तेः प्रतिशक्तिभिद्यमाना बहुविकल्पा जायन्ते। त एते गुणप्रधानतया [२८५]परस्परतन्त्राः सम्यग्दर्शनहेतवः पुरुषार्थक्रियासाधनसामर्थ्यात्तन्त्वादय इव यथोपायं विनिवेश्यमानाः पटादिसञ्ज्ञाः स्वतंत्राश्चासमर्थाः। ''तन्त्वादय इवेति विषम उपन्यासः। तन्त्वादयो निरपेक्षा अपि काञ्चिदर्थमात्रां जनयन्ति। भवति हि कश्चित्प्रत्येकं तन्तुस्त्वक्त्राणे समर्थः। एकश्च बल्वजो बन्धने समर्थः। इमे पुनर्नवा निरपेक्षाः सन्तो न काञ्चिदपि सम्यग्दर्शनमात्रां प्रादुर्भावयन्तीति।'' नैष दोषः। अभिहितानवबोधात्। अभिहितमर्थमनवबुध्य परेणेदमुपालभ्यते। एतदुक्तं–निरपेक्षेषु तन्त्वादिषु पटादिकार्यं नास्तीति। यत्तु तेनोपदर्शितं न तत्पटादिकार्यं, किं तर्हि ? केवलं तन्त्वादिकार्यं। तन्त्वादिकार्यमपि तन्त्वाद्यवयवेषु निरपेक्षेषु नास्त्येवेत्यस्मत्पक्षसिद्धिरेव। अथ तन्त्वादिषु

---

**२७६.** अस्यायमर्थः–एहि त्वमागच्छ त्वं, एवं मन्ये, अहं रथेन यास्यामि एतावता त्वं रथेन यास्यसि, ते पिता अग्रे रथेन यात इत्यर्थः। अत्र मध्यमपुरुषस्थाने उत्तमपुरुषः उत्तमपुरुषस्थाने मध्यमः पुरुषः। तदर्थं सूत्रमिदम्। प्रहासे मन्योपदेशे तूत्तमैकवचनं चोत्तमे मध्यमस्य। **२७७.** अत्र भविष्यत्कालेऽतीतकालविभक्तिः। **२७८.** अत्र परस्मैपदोपग्रहः। अत्र सूत्रम्। समवप्रविभ्यः। **२७९.** रमु क्रीडायामित्यत्रात्मनेपदोपग्रहः। व्याङ्परिभ्यो रमः इति व्यभिचारसूत्रम्। देवदत्त उपरमति। **२८०.** जलं पततीति वक्तव्ये आपः पतन्तीति व्यवहारो जायते अत्राप्शब्दोत्तरं बहुत्वाभिधायकयप्रत्ययोपनिबन्धनं वस्तुतो निरर्थकमेव बहुत्वस्य जले अन्वयायोगात्। तथापि शब्दानुशासनशास्त्रमहिम्ना बहुत्ववाचक-प्रत्ययसमभिव्यवहारः कर्तव्य एव भवति। **२८१.** परीक्ष्यते। **२८२.** इन्द्रज्ञानपरिणत आत्मा इन्द्र उच्यते। अग्निज्ञानपरिणतत्वादात्मा अग्निश्चेति एवम्भूतनयलक्षणम्। **२८३.** नैगमात्संग्रहोऽल्पविषयस्तन्मात्रग्राहित्वात् नैगमस्तु भावाभावविषयाद्बहुविषयः। यथैव हि भावे सङ्कल्पस्तथाऽभावे नैगमस्य सङ्कल्पः। एवमुत्तरत्रापि योज्यम्। **२८४.** नैगमः संग्रहस्य हेतुः। संग्रहो व्यवहारस्य हेतुः। व्यवहार ऋजुसूत्रस्य हेतुः। ऋजुसूत्रः शब्दस्य हेतुः। शब्दः समभिरूढस्य हेतुः। समभिरूढ एवम्भूतस्य हेतुरित्यर्थः। **२८५.** अधीनाः।

पटादिकार्यं शक्त्यपेक्षया अस्तीत्युच्यते। नयेष्वपि निरपेक्षेषु बुद्ध्यभिधानरूपेषु कारणवशात्सम्यग्दर्शन-हेतुत्वपरिणतिसद्भावात् शक्त्यात्मनास्तित्वमिति साम्यमेवोपन्यासस्य।

**ज्ञानदर्शनयोस्तत्त्वं नवानां चैव लक्षणम्।**
**ज्ञानस्य च प्रमाणत्वमध्यायेऽस्मिन्निरूपितम् ॥१॥**

**॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसंज्ञायां प्रथमोध्यायः॥**

# अथ द्वितीयोऽध्यायः

**आह सम्यग्दर्शनस्य विषयभावेनोपदिष्टेषु जीवादिष्वादावुपन्यस्तस्य जीवस्य किं स्वतत्त्व-मित्युच्यते—**

**औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपरिणामिकौ च ॥१॥**

आत्मनि कर्मणः स्वशक्तेः कारणवशादनुद्भूतिरुपशमः। यथा कतकादिद्रव्यसम्बन्धादम्भसि पङ्कस्य उपशमः। क्षयः आत्यन्तिकी निवृत्तिः। यथा तस्मिन्नेवाम्भसि शुचिभाजनान्तरसंक्रान्तेपङ्कस्यात्यन्ता-भावः। उभयात्मको मिश्रः। यथा तस्मिन्नेवाम्भसि कतकादिद्रव्यसम्बन्धात्पङ्कस्य क्षीणाक्षीणवृत्तिः। द्रव्यादिनिमित्तवशात्कर्मणां फलप्राप्तिरुदयः। द्रव्यात्मलाभमात्रहेतुकः परिणामः। उपशमः प्रयोजन-मस्येत्यौपशमिकः। एवं क्षायिकः, क्षायोपशमिकः औदयिकः, पारिणामिकः। त एते पञ्च भावा असाधारणा जीवस्य स्वतत्त्वमित्युच्यन्ते। सम्यग्दर्शनस्य प्रकृतत्वात्तस्य त्रिषु विकल्पेषु औपशमिकमादौ लभ्यत इति तस्यादौ ग्रहणं क्रियते। तदनन्तरं क्षायिकग्रहणं, तस्य प्रतियोगित्वात्संसार्यपेक्षया द्रव्यतस्ततोऽसंख्येयगुणत्वाच्च। तत उत्तरं मिश्रग्रहणं तदुभयात्मकत्वात्ततोऽसंख्येयगुणत्वाच्च। तेषां सर्वेषामनन्तगुणत्वादौदयिकपारिणामिकग्रहणमन्ते क्रियते। अत्र द्वन्द्वनिर्देशः कर्तव्यः। "औपशमिक-क्षायिकमिश्रौदयिकपरिणामिका इति। तथा सति द्विश्चशब्दो न कर्तव्यो भवति" ? नैवं शंक्यम्। [१]अन्यगुणापेक्षया मिश्र इति प्रतीयेत। वाक्ये पुनः सति च शब्देन प्रकृतोभयानुकर्षः[२] कृतो भवति। तर्हि क्षायोपशमिकग्रहणमेव कर्तव्यमिति चेत् ? न। गौरवात्। मिश्रग्रहणं मध्ये क्रियते उभयापेक्षार्थम्। भव्यस्य औपशमिकक्षायिकौ भावौ। [३]मिश्रः पुनरभव्यस्यापि भवति औदयिकपारिणामिकाभ्यां सह भव्यस्यापीति। [४]भावापेक्षया तल्लिङ्गसंख्याप्रसङ्गः स्वतत्त्वस्येति चेत् ? न उपात्तलिङ्गसंख्यात्वात्। तद्भावस्तत्त्वम्। स्वं तत्त्वं स्वतत्त्वमिति।

**अत्राह तस्यैकस्यात्मनो ये भावा औपशमिकादयस्ते किं भेदवन्त उताभेदा इति। अत्रोच्यते, भेदवन्तः। यद्येवं, भेदा उच्यन्तामित्यत आह—**

**द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥**

द्व्यादीनां संख्याशब्दानां कृतद्वन्द्वानां भेदशब्देन सह स्वपदार्थेऽन्यपदार्थे वा वृत्तिर्वेदितव्या। द्वौ च नव च अष्टादश च एकविंशतिश्च त्रयश्च द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रय एव भेदास्ते भेदा येषामिति वा वृत्तिर्द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा इति। यदा स्वपदार्थे वृत्तिस्तदा औपशमिकादीनां द्विनवाष्टादशैक-विंशतित्रयो भेदा इत्यभिसम्बन्धः क्रियते अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम इति। यदाऽन्यपदार्थे वृत्तिस्तदा निर्दिष्टविभक्त्यन्ता एवाभिसम्बध्यन्ते। औपशमिकादयो भावा द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा इति। यथाक्रमवचनं यथासंख्यप्रतिपत्यर्थम्। औपशमिको द्विभेदः। क्षायिको नवभेदः। मिश्रोऽष्टादशभेदः।

१. औपशमिकक्षायिकव्यतिरिक्तः। २. औपशमिकक्षायिकयोः। ३. अभव्यस्य मिश्रो भावः क्षायोपशमिकाज्ञानत्रयादिः। ४. भावशब्दापेक्षया।

औदयिक एकविंशतिभेदः। पारिणामिकस्त्रिभेद इति।

**यद्येवमौपशमिकस्य कौ द्वौ भेदावित्यत आह—**

## सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥

व्याख्यातलक्षणे सम्यक्त्वचारित्रे। औपशमिकत्वं कथमिति चेद् ? उच्यते। चारित्रमोहो द्विविधः कषायवेदनीयो नोकषायवेदनीयश्चेति। तत्र कषायवेदनीयस्य भेदा अनन्तानुबंधिनः क्रोधमानमाया-लोभाश्चत्वारः, दर्शनमोहस्य त्रयो भेदाः सम्यक्त्वं, मिथ्यात्वं, सम्यङ्मिथ्यात्वमिति, आसां सप्तानां प्रकृतीनामुपशमादौपशमिकं सम्यक्त्वम्। अनादिमिथ्यादृष्टेर्भव्यस्य कर्मोदयापादितकालुष्ये सति कुतस्तदुपशमः? काललब्ध्यादिनिमित्तत्वात्। तत्र काललब्धिस्तावत्–कर्माविष्ट आत्मा भव्यः कालेऽर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तनाख्येऽवशिष्टे प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य योग्यो भवति, नाधिके इतीयमेका काललब्धिः। अपरा कर्मस्थितिका काललब्धिः। उत्कृष्टस्थितिकेषु कर्मसु जघन्यस्थितिकेषु च प्रथमसम्यक्त्वलाभो न भवति। क्व तर्हि भवति?। अन्तःकोटीकोटीसागरोपमस्थितिकेषु कर्मसु बन्धमापद्यमानेषु विशुद्धपरिणामवशात्सत्कर्मसु च ततः संख्येयसागरोपमसहस्रोनायामन्तः कोटीकोटी-सागरोपमस्थितौ स्थापितेषु प्रथमसम्यक्त्वयोग्यो भवति। अपरा काललब्धिर्भवापेक्षया। भव्यः पञ्चेन्द्रियः सञ्ज्ञी पर्याप्तकः सर्वविशुद्धः प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयति। आदिशब्देन जातिस्मरणादिः परिगृह्यते। कृत्स्नस्य मोहनीयस्योपशमादौपशमिकं चारित्रम्। तत्र सम्यक्त्वस्यादौ वचनं तत्पूर्वकत्वाच्चारित्रस्य।

**यः क्षायिको भावो नवविध उद्दिष्टस्तस्य भेदस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—**

## ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥४॥

चशब्दः सम्यक्त्वचारित्रानुकर्षणार्थः। ज्ञानावरणस्यात्यन्तक्षयात्केवलज्ञानं क्षायिकं तथा केवलदर्शनम्। दानान्तरायस्यात्यन्तक्षयादनन्तप्राणिगणानुग्रहकरं क्षायिकमभयदानम्। लाभान्तराय-स्याशेषस्य निरासात्परित्यक्तकवलाहारक्रियाणां केवलिना यतः शरीरबलाधानहेतवोऽन्यमनुजासाधारणाः परमशुभाः सूक्ष्मा अनन्ताः प्रतिसमयं पुद्गलाः सम्बन्धमुपयान्ति स क्षायिको लाभः। कृत्स्नस्य भोगान्तरायस्यात्यन्ताभावादाविर्भूतोऽतिशयवाननन्तो भोगः क्षायिकः। यतः कुसुमवृष्ट्यादयो विशेषाः प्रादुर्भवन्ति। निरवशेषस्योपभोगान्तरायस्य प्रलयात्प्रादुर्भूतोऽनन्त उपभोगः क्षायिकः। यतः सिंहासन-चामरच्छत्रादयो विभूतयः। वीर्यान्तरायस्य कर्मणोऽत्यन्तक्षयादाविर्भूतमनन्तवीर्यं क्षायिकम्। पूर्वोक्तानां सप्तानां प्रकृतीनामत्यन्तक्षयात्क्षायिकं सम्यक्त्वम्। चारित्रमपि तथा। यदि क्षायिकदानादि-भावकृतमभयदानादि, सिद्धेष्वपि तत्प्रसङ्गः ? नैष दोषः। शरीरनामतीर्थकरनामकर्मोदयाद्यपेक्षत्वात् तेषां तदभावे तदप्रसङ्गः। कथं तर्हि तेषां सिद्धेषु वृत्तिः? परमानन्तवीर्याव्याबाधसुखरूपेणैव तेषां तत्र वृत्तिः। [५]केवलज्ञानरूपेणानन्तवीर्यवृत्तिवत्।

**य उक्तः क्षायोपशमिको भावोऽष्टादशविकल्पस्तद्भेदनिरूपणार्थमाह—**

---

५. केवलज्ञानरूपेणानन्तवीर्यवृत्तिवत्–आनन्दो ज्ञानमैश्वर्यं वीर्यं परमसूक्ष्मता। एतदात्यन्तिकं यत्र स मोक्षः परिकीर्तितः ॥१॥

**ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥५॥**

चत्वारश्च त्रयश्च त्रयश्च पञ्च च चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदा यासां ताश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः। यथाक्रममित्यनुवर्तते। तेनाभिसम्बन्धाच्चतुरादिभिर्ज्ञानादीन्यभिसम्बध्यन्ते। चत्वारि ज्ञानानि, त्रीण्यज्ञानानि, त्रीणि दर्शनानि, पञ्च लब्धय इति। [६]सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमाद्देशघातिस्पर्द्धका-नामुदये क्षायोपशमिको भावो भवति। तत्र ज्ञानादीनां वृत्तिः स्वावरणान्तरायक्षयोपशमाद्व्याख्यातव्या। सम्यक्त्वग्रहणेन वेदकसम्यक्त्वं गृह्यते। अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य मिथ्यात्वसम्यङ्-मिथ्यात्वयोश्चोदयक्षयात्सदुपशमाच्च [७]सम्यक्त्वस्य देशघातिस्पर्द्धकस्योदये तत्त्वार्थश्रद्धानं क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम्। अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानद्वादशकषायोदयक्षयात्सदुपशमाच्च सञ्ज्वलनकषाय-चतुष्टयान्यतमदेशघातिस्पर्द्धकोदये नोकषायनवकस्य यथासम्भवोदये च निवृत्तिपरिणामः आत्मनः क्षायोपशमिकं चारित्रम्। अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानकषायाष्टकोदयक्षयात्सदुपशमाच्च प्रत्याख्यान-कषायोदये सञ्ज्वलनकषायस्य देशघातिस्पर्द्धकोदये नोकषायनवकस्य यथासम्भवोदये च विरताविरत-परिणामः क्षायोपशमिकः संयमासंयम इत्याख्यायते।

**य एकविंशतिविकल्प औदयिको भाव उद्दिष्टस्तस्य भेदसञ्ज्ञासङ्कीर्तनार्थमिदमुच्यते—**

**गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥६॥**

यथाक्रममित्यनुवर्तते, तेनाभिसम्बन्धात्। गतिश्चतुर्भेदा, नरकगतिस्तिर्यग्गतिर्मनुष्यगतिर्देवगतिरिति। तत्र नरकगतिनामकर्मोदयान्नारको भावो भवतीति नरकगतिरौदयिकी। एवमितरत्रापि। कषायश्चतुर्भेदः, क्रोधो मानो माया लोभ इति। तत्र [८]क्रोधनिर्वर्त्तनस्य कर्मण उदयात्कोध औदयिकः। एवमितरत्रापि। लिंगं त्रिभेदं, स्त्रीवेदः पुंवेदो नपुंसकवेद इति। स्त्रीवेदकर्मण उदयात्स्त्रीवेद औदयिकः। एवमितरत्रापि। मिथ्यादर्शनमेकभेदं, मिथ्यादर्शनकर्मण उदयात्तत्त्वार्थाश्रद्धानपरिणामो मिथ्यादर्शनमौदयिकम्। ज्ञानावरणकर्मण उदयात्पदार्थानवबोधो भवति तदज्ञानमौदयिकम्। चारित्रमोहस्य सर्वघातिस्पर्द्ध-कस्योदयादसंयत औदयिकः। कर्मोदयसामान्यापेक्षोऽसिद्ध औदयिकः। लेश्या द्विविधा, द्रव्यलेश्या भावलेश्या चेति। जीवभावाधिकारात् द्रव्यलेश्या नाधिकृता। भावलेश्या कषायोदयरञ्जिता[९] योगप्रवृत्तिरिति कृत्वा औदयिकीत्युच्यते। सा षड्विधा कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या, चेति। ननु च उपशान्तकषाये, क्षीणकषाये सयोगकेवलिनि च शुक्ललेश्याऽस्तीत्यागमस्तत्र[१०] कषायानुरञ्जनाभावादौदयिकत्वं नोपपद्यते ? नैष दोषः। पूर्वभावप्रज्ञापननयापेक्षया याऽसौ योगप्रवृत्तिः

---

६. सर्वस्य ज्ञानस्य घातकवीर्यान्तरायादिकर्मोदयस्य क्षये सति तस्यैव सर्वस्य ज्ञानस्य घातिकर्मणोऽनुद्भूतस्ववीर्यवृत्तेः अप्रादुर्भावनिजशक्तिप्रवृत्तिनः सदवस्थानरूपोपशमे सति देशघातिकर्मोदये च मतिश्रुतावधिमनःपर्ययाश्चत्वारो मिश्रभावा भवन्ति। क्षायोपशमिका भवन्तीत्यर्थः। ७. सम्यक्त्वप्रकृतेः दर्शनमोहनीयभेदरूपायाः। ८. निष्पादनस्य। ९. जोगपउत्ती लेस्सा कसायउदयाणुरंजिया होई॥ इति॥ १०. अयदोत्ति छलेस्साओ सुह तिय लेस्सालो देसविरदतिए। तत्तो दु सुक्कलेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥२॥

कषायानुरञ्जिता सैवेत्युपचारादौदयिकीत्युच्यते। तदभावादयोगकेवल्यलेश्य इति निश्चीयते।

**यः पारिणामिको भावस्त्रिभेद उक्तस्तद्भेदस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह–**

## जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥७॥

जीवत्वं भव्यत्वमभव्यत्वमिति त्रयो भावाः पारिणामिका अन्यद्रव्यासाधारणाः[११] आत्मनो वेदितव्याः। कुतः पुनरेषां पारिणामिकत्वम्? कर्मोदयोपशमक्षयक्षयोपशमानपेक्षित्वात्। जीवत्वं चैतन्यमित्यर्थः। सम्यग्दर्शनादिभावेन भविष्यतीति भव्यः। तद्विपरीतोऽभव्यः। त एते त्रयो भावा जीवस्य पारिणामिकाः। ननु चास्तित्वनित्यत्वप्रदेशत्वादयोऽपि भावाः पारिणामिकाः सन्ति तेषामिह ग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्। कृतमेव। कथं? च शब्देन समुच्चितत्वात्। यद्येवं, त्रय इति संख्या विरुद्ध्यते ? न विरुद्ध्यते। असाधारणा जीवस्य भावाः पारिणामिकास्त्रय एव। अस्तित्वादयः[१२] पुनर्जीवाजीवविषयत्वात्साधारणा इति चशब्देन पृथग्गृह्यन्ते। आह–औपशमिकादिभावानुपपत्ति-रमूर्तत्वादात्मनः। कर्मबन्धापेक्षा हि ते भावाः। न चामूर्तेः कर्मणा बन्धो युज्यत इति? न, अनेकान्तात्। नायमेकान्तोऽमूर्तिरेवात्मेति। कर्मबन्धनपर्यायापेक्षया तदावेशात्स्यान्मूर्तः[१३]। शुद्धस्वरूपापेक्षया स्यादमूर्तः। यद्येवं कर्मबन्धावेशादस्यैकत्वे सत्यविवेकः[१४] प्राप्नोति? नैष दोषः। बन्धं प्रत्यविवेकत्वे सत्यपि लक्षणभेदादस्य नानात्वमवसीयते। उक्तं च–बन्धं पडि [१५]एयत्तं लक्खणदो हवह तस्स [१६]णाणत्तं। तह्मा [१७]अमुत्तिभावोऽणेयंतो[१८] होइ जीवस्स। १। इति।

**यद्येवं तदेव लक्षणमुच्यतां, येन नानात्वमवसीयते। इत्यत आह–**

## उपयोगो लक्षणम् ॥८॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोगः[१९]। तेन बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यप्यात्मा लक्ष्यते। सुवर्णरजतयोर्बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यपि वर्णादिभेदवत्।

**तद्भेददर्शनार्थमाह–**

## स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥

स उपयोगो द्विविधः ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति। ज्ञानोपयोगोऽष्टभेदः। मतिज्ञानं, श्रुतज्ञानं, अवधिज्ञानं, मनःपर्ययज्ञानं, केवलज्ञानं, मत्यज्ञानं, श्रुताज्ञानं, विभङ्गज्ञानं चेति। दर्शनोपयोगश्चतुर्विधः।

---

**११.** अत्रासाधारणवचनं वक्ष्यमाणास्तित्वादिसाधारणपारिणामिकभावापेक्षम्। **१२.** अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वं नित्यत्वं प्रदेशित्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं चैते दशभावाः। **१३.** कथं जीवस्य चेतनत्वं पुद्गलस्य च चेतनत्वमिति चेदुच्यते। यथा दीपकशिखया गृहीतः स्नेहो दीपशिखा भवति। तथा जीवेन शरीररूपतया गृहीतः पुद्गलोऽपि उपचाराज्जीव इत्युच्यते। तेन पुद्गलस्यापि चेतनत्वं भण्यते। तथा जीवोऽपि आत्मविवेकपराङ्मुख उपचरितासद्भूतव्यवहारनयापेक्षयाऽचेतन इत्युपचर्यते। एवं मूर्तत्वमप्युपचारेण जीवस्य ज्ञातव्यम्। **१४.** अपृथक्त्वम्। **१५.** एकत्वम्। **१६.** नानात्वम्। **१७.** अमूर्तित्वम्। **१८.** अनेकान्तः। **१९.** उपयोगइति–उपयुज्यते वस्तु प्रति प्रेर्यते यो वस्तुस्वरूपपरिज्ञानार्थमिति उपयोगः। अथवा आत्मन उप–समीपे योजनं उपयोगः सामान्येन ज्ञानं दर्शनं चोच्यते। स जीवस्य लक्षणं भवति। स्वतत्त्वलक्षणयोर्भेदो वर्तते। स्वतत्त्वं लक्ष्यं भवति। लक्षणं तु लक्ष्यं न भवेत्। इति स्वतत्त्वलक्षणयोर्महान्भेदः।

चक्षुर्दर्शनं, अचक्षुर्दर्शनं, अवधिदर्शनं केवलदर्शनं चेति। तयोः कथं भेदः? साकारानाकारभेदात्।[२०]साकारं ज्ञानमनाकारं [२१]दर्शनमिति। तच्छद्मस्थेषु क्रमेण वर्तते। निरावरणेषु युगपत्। पूर्वकालभाविनोऽपि दर्शनात् ज्ञानस्य प्रागुपन्यासोऽभ्यर्हितत्वात्। सम्यग्ज्ञानप्रकरणात्पूर्वं पञ्चविधो ज्ञानोपयोगो व्याख्यातः। इह पुनरुपयोगग्रहणाद्विपर्ययोऽपि गृह्यते इत्यष्टविध उच्यते।

**यथोक्तेनानेनाभिहितपरिणामेन सर्वात्मसाधारणेनोपयोगेन ये उपलक्षिता उपयोगिनस्ते द्विविधाः—**

## संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥

संसरणं संसारः परिवर्तनमित्यर्थः। स एषामस्ति ते संसारिणः। तत्परिवर्तनं पञ्चविधं द्रव्यपरिवर्तनं, क्षेत्रपरिवर्तनं, कालपरिवर्तनं, भवपरिवर्तनं, भावपरिवर्तनं चेति। तत्र द्रव्यपरिवर्तनं द्विविधं नोकर्मद्रव्य-परिवर्तनं कर्मद्रव्यपरिवर्तनं चेति। तत्र **नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम**, [२२]त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन एकस्मिन्समये गृहीताः स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा अगृहीताननन्तवारानतीत्य, मिश्रकांशचानन्तवारानतीत्य, मध्ये गृहीताश्चानन्तवारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्समुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम्। **कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते—**एकस्मिन्समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्मभावेन पुद्गला ये गृहीताः समयाधिकामावलिकामतीत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णाः पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम्। उक्तं च—[२३]सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण। अच्छइ अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्ट-संसारे।१। **क्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते—**सूक्ष्मनिगोदजीवोऽपर्याप्तकः सर्वजघन्यप्रदेशशरीरो लोकस्याष्टमध्य-प्रदेशान्स्वशरीरमध्ये कृत्वोत्पन्नः क्षुद्रभवग्रहणं जीवित्वा मृतः स एव पुनस्तेनैवावगाहेन द्विरुत्पन्नस्तथा त्रिस्तथा चतुरित्येवं यावद्घनांगुलस्यासंख्येयभागप्रमिताकाशप्रदेशास्तावत्कृत्वस्तत्रैव जनित्वा पुनरेकैकप्रदेशाधिकभावेन सर्वो लोक आत्मनो जन्मक्षेत्रभावमुपनीतो भवति यावत्तावत्क्षेत्रपरिवर्तनम्। उक्तं च—सव्वम्मि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण [२४]उप्पण्णं। ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे। १। **कालपरिवर्तनमुच्यते—**उत्सर्पिण्याः प्रथमसमये जातः कश्चिज्जीवः स्वायुषः परिसमाप्तौ मृतः, स एव पुनर्द्वितीयाया उत्सर्पिण्या द्वितीयसमये जातः स्वायुषः क्षयान्मृतः, स एव पुनस्तृतीयाया उत्सर्पिण्यास्तृतीयसमये जात एवमनेन क्रमेणोत्सर्पिणी परिसमाप्ता, तथावसर्पिणी च। एवं जन्मनैरन्तर्यमुक्तं, मरणस्यापि नैरन्तर्यं तथैव ग्राह्यमेतावत्कालपरिवर्तनम्। उक्तं च—उवसप्पिणिअवसप्पिणिसमयावलियासु णिरवसेसासु। जादो मुदो य बहुसो भमणेण दु कालसंसारे। १। **भवपरिवर्तनमुच्यते—**नरकगतौ सर्वजघन्यमायुर्दशवर्षसहस्राणि, तेनायुषा तत्रोत्पन्नः पुनः परिभ्रम्य तेनैवायुषा तत्रैव जातः, एवं दशवर्ष-सहस्राणां यावन्तः समयास्तावत्कृत्वस्तत्रैव जातो मृतः, पुनरेकैकसमयाधिकभावेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि

---

२०. प्रथमाध्याये। २१. वस्तुनो विशेषपरिज्ञानं ज्ञानं। विशेषमकृत्वा सत्तावलोकनमात्रं दर्शनं। २२. औदारिक-वैक्रियिकाहारकत्रयाणाम्। २३. सव्वेवि इति अनेन समानार्थः श्लोक इष्टोपदेशे—''भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः। उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य मम विज्ञस्य का स्पृहा।'' २४. जं ण उक्खुणं इत्यपि पाठान्तरम्।

परिसमापितानि, ततः प्रच्युत्य तिर्यग्गतावन्तर्मुहूर्तायुः समुत्पन्नः, पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त्रीणि पल्योपमानि तेन परिसमापितानि एवं मनुष्यगतौ च तिर्यञ्चवत्, देवगतौ नारकवत्, अयं तु विशेषः–एकत्रिंशत्-सागरोपमाणि परिसमापितानि यावत्तावद्भवपरिवर्तनम्। उक्तं च–णिरयादिजहण्णादिसु जावदु उवरिल्लयादु गेवेज्जा। मिच्छत्तसंसिदेण हु बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदा ॥१॥ **भावपरिवर्तनमुच्यते**–पञ्चेन्द्रियः सञ्ज्ञी पर्याप्तको मिथ्यादृष्टिः कश्चिज्जीवः सर्वजघन्यां स्वयोग्यां ज्ञानावरणप्रकृतेः स्थितिमन्तः-कोटीकोटीसंज्ञिकामापद्यते तस्य कषायाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि तत्स्थितियोग्यानि भवन्ति। तत्र सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थाननिमित्तान्यनुभागाध्यवसायस्थानान्य-संख्येयलोकप्रमितानि भवन्ति एवं सर्वजघन्यां स्थितिं, सर्वजघन्यं च कषायाध्यवसायस्थानं, सर्वजघन्य-मेवानुभागबन्धस्थानमास्कन्दतस्तद्योग्यं एकं सर्वजघन्यं योगस्थानं भवति, तेषामेव स्थितिकषायानुभाग-स्थानानां द्वितीयमसंख्येयभागवृद्धिसंयुक्तं योगस्थानं भवति एवं च तृतीयादिषु योगस्थानेषु चतुःस्थानपतितानि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति। तथा तामेव स्थितिं, तदेव कषायाध्यवसायस्थानं च प्रतिपद्यमानस्य द्वितीयमनुभवाध्यवसायस्थानं भवति, तस्य च योगस्थानानि पूर्ववद्वेदितव्यानि। एवं तृतीयादिष्वपि अनुभवाध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येयलोकपरिसमाप्तेः। एवं तामेव स्थितिमापद्यमानस्य द्वितीयं कषायाध्यवसायस्थानं भवति। तस्याप्यनुभवाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च पूर्ववद्वेदितव्यानि। एवं तृतीयादिष्वपि कषायाध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येयलोकपरि-समाप्तेर्वृद्धिक्रमो वेदितव्यः। उक्ताया जघन्यायाः स्थितेः समयाधिकायाः कषायादिस्थानानि पूर्ववदेकसमयाधिकक्रमेण आ उत्कृष्टस्थितेस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीपरिमितायाः कषायादिस्थानानि (पूर्ववत्) वेदितव्यानि। ''अनन्तभागवृद्धिः असंख्येयभागवृद्धिः, संख्येयभागवृद्धिः, संख्येयगुणवृद्धिः, असंख्येयगुणवृद्धिः, अनन्तगुणवृद्धिः'' इमानि षट्स्थानानि वृद्धेः हानेरपि तथैव। अनन्तभाग-वृद्ध्यनन्तगुणवृद्धिरहितानि चत्वारि स्थानानि ज्ञातव्यानि। एवं सर्वेषां कर्मणां मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च परिवर्तनक्रमो वेदितव्यः। तदेतत्सर्वं समुदितं भावपरिवर्तनम्। उक्तं च–सव्वा पयडिट्ठिदिओ अणुभागपदेसबंधठाणाणि। मिच्छत्तसंसिदेण य भमिदा पुण भावसंसारे ॥१॥ उक्तात्पञ्चविधात्संसारान्निवृत्ता ये ते मुक्ताः। संसारिणां प्रागुपादानं तत्पूर्वकत्वात्मुक्तव्यपदेशस्य।

**य एते संसारिणस्ते द्विविधाः–**

## समनस्कामनस्काः ॥११॥

मनो द्विविधं, द्रव्यमनो भावमनश्चेति। तत्र पुद्गलविपाकिकर्मोदयापेक्षं द्रव्यमनः। वीर्यान्तराय-नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमापेक्षयात्मनो विशुद्धिर्भावमनः। तेन मनसा सह वर्तन्त इति समनस्काः। न विद्यते मनो येषां त इमे अमनस्काः। एवं मनसो भावाभावाभ्यां संसारिणो द्विविधा विभज्यन्ते समनस्कामनस्का इति। अभ्यर्हितत्वात्समनस्कशब्दस्य पूर्वनिपातः। कथमभ्यर्हितत्वं? गुणदोष-विचारकत्वात्।

**पुनरपि संसारिणां भेदप्रतिपत्यर्थमाह–**

## संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

संसारिग्रहणमनर्थकं, प्रकृतत्वात्। क्व प्रकृतं?। संसारिणो मुक्ताश्चेति। नानर्थकम्। पूर्वापेक्षार्थं, य उक्ताः समनस्कामनस्कास्ते संसारिण इति। यदि हि पूर्वस्य विशेषणं न स्यात्, समनस्कामनस्कग्रहणं संसारिणो मुक्ताश्चेत्यनेन यथासंख्यमभिसंबध्येत।

एवं च कृत्वा संसारिग्रहणमादौ क्रियमाणमुपपन्नं भवति। तत्पूर्वापेक्षं सदुत्तरार्थमपि भवति। ते संसारिणो द्विविधास्त्रसाः स्थावरा इति। त्रसनामकर्मोदयवशीकृतास्त्रसाः। स्थावरनामकर्मोदयवशवर्तिनः स्थावराः। त्रस्यन्तीति त्रसाः, स्थानशीलाः स्थावरा इति चेद् ? न। आगमविरोधात्। आगमे हि कायानुवादेन त्रसा द्वीन्द्रियादारभ्य आ अयोगकेवलिन इति। तस्मान्न चलनाचलनापेक्षं त्रसस्थावरत्वम्। कर्मोदयापेक्षमेव। त्रसग्रहणमादौ क्रियते। अल्पाच्तरत्वादभ्यर्हितत्वाच्च। [२५]सर्वोपयोगसम्भवादभ्यर्हितत्वम्।

**एकेन्द्रियाणामतिबहुवक्तव्याभावादुल्लंघ्यानुपूर्वीं स्थावरभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह–**

## पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥

स्थावरनामकर्मभेदाः पृथिवीकायादयः सन्ति, तदुदयनिमित्ता अमी इति जीवेषु पृथिव्यादयः सञ्ज्ञा वेदितव्याः। प्रथनादिप्रकृतिनिष्पन्ना अपि रूढिवशात्प्रथनाद्यनपेक्षा वर्तन्ते। एषां पृथिव्यादीनामार्षे चातुर्विध्यमुक्तं प्रत्येकं। तत्कथमिति चेदुच्यते–पृथिवी। पृथिवीकायः। पृथिवीकायिकः। पृथिवीजीव इत्यादि। अत्र अचेतना वैस्रसिकपरिणामनिर्वृत्ता काठिन्यगुणात्मिका पृथिवी। अचेतनत्वादसत्यपि पृथिवीकायनामकर्मोदये [२६]प्रथनक्रियोपलक्षितेवेयम्। अथवा पृथिवी सामान्यमुत्तरत्रयेऽपि सद्भावात्। कायः शरीरं पृथिवीकायिकजीवपरित्यक्तः पृथिवीकायः। मृतमनुष्यादिकायवत्। पृथिवीकायोऽस्यास्तीति पृथिवीकायिकः। तत्कायसम्बन्धवशीकृत आत्मा। समवाप्तपृथिवीकायनामकर्मोदयः कार्मणकाययोगस्थो यो न तावत्पृथिवीं कायत्वेन गृह्णाति स पृथिवीजीवः। उक्तं च–[२७]पुढवी पुढवीकायो पुढवीकाइय पुढविजीवो य। साहारणोपमुक्को सरीरगहिदो भवंतरिदो।१। एवमबादिष्वपि[२८] योज्यम्। एते पञ्चविधाः

---

**२५.** द्वादशविधोपयोगसम्भवस्त्रसे। स्थावरे तु त्रिविध एव। **२६.** तत्र अध्वस्थिता धूलिः पृथिवी। इष्टकादिः पृथ्वीकायः। पृथ्वीकायिकजीवपरिहृतत्वात् इष्टकादिः पृथ्वीकायः कथ्यते मृतमनुष्यादिकायवत्। तत्र स्थावरकायनामकर्मोदयो नास्ति तेन तद्विराधनायामपि दोषो न भवति। पृथिवी कायः विद्यते यस्य स पृथिवीकायिकः तद्विराधनायां दोष उत्पद्यते। **२७.** इयं गाथा हस्तलिखितेषु नास्माभिर्लब्धा। **२८.** एवमबादिष्वपि योज्यम्–तद्यथा–आलोडितं यत्र तत्र विक्षिप्तं वस्त्रादिगालितं जलं आप उच्यते। अप्कायिकजीवपरिहृतं जलमप्कायः प्रोच्यते। आपः कायो विद्यते यस्य स अप्कायिकः। अपः कायत्वेन यो ग्रहीष्यति विग्रहप्राप्तो जीवः स अब्जीवः कथ्यते। इतस्ततो विक्षिप्तं जलादिसिक्तं वा प्रचुरभस्म प्राप्तं वा मनाक् तेजोमात्रं तेजः कथ्यते। भस्मादिकं परित्यक्तशरीरं तेजःकायो निरूप्यते। तद्विराधने दोषो नास्ति। स्थावरकाय–नामकर्मोदयरहितत्वात्। तेजः कायत्वेन गृहीतं येन स तेजःकायिकः। विग्रहगतौ प्राप्तो जीवस्तेजोमध्येऽवतरिष्यत्यतस्तेजोजीवः प्रतिपद्यते। वायुकायिक–जीवसम्मूर्च्छनोचितो वायुर्वायुमात्रं वा वायुरुच्यते। वायुकायिकजीवपरिहृतः सदा विलोडितो वायुर्वायुकायः कथ्यते। वायुः कायत्वेन गृहीतः येन स वायुकायिकः। वायुं कायत्वेन ग्रहीतुं प्रस्थितो यः स वायुजीव उच्यते। सार्द्रश्छिन्नो भिन्नो मर्दितो वा वनस्पतिरित्युच्यते। शुष्कादिर्वनस्पतिकायः। जीवसहितो वृक्षादिर्वनस्पति–कायिकः।

प्राणिनः स्थावराः। कति पुनरेषां प्राणाः? चत्वारः। स्पर्शनेन्द्रियप्राणः, कायबलप्राणः, उच्छ्वास-निश्वासप्राणः, आयुःप्राणश्चेति।

**अथ त्रसाः के ते इत्यत्रोच्यते—**

## द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥

द्वे इन्द्रिये यस्य सोऽयं द्वीन्द्रियः, द्वीन्द्रिय[२९] आदिर्येषां ते द्वीन्द्रियादयः[२९]। आदिशब्दो व्यवस्थावाची[३०]। क्व व्यवस्थिताः? आगमे। कथम्? द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रियश्चतुरिन्द्रियः, पञ्चेन्द्रियश्चेति। तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात्[३१] द्वीन्द्रियस्याप्यन्तर्भावः। कति पुनरेषां प्राणाः? द्वीन्द्रियस्य तावत् षट् प्राणाः पूर्वोक्ता एव रसनवाक्प्राणाधिकाः। त्रीन्द्रियस्य सप्त त एव घ्राणप्राणाधिकाः। चतुरिन्द्रियस्याष्टौ त एव चक्षुःप्राणाधिकाः। पञ्चेन्द्रियस्य तिरश्चोऽसंज्ञिनो नव त एव श्रोत्रप्राणाधिकाः। सञ्ज्ञिनो दश त एव मनोबलप्राणाधिकाः।

**आदिशब्देन निर्दिष्टानामनिर्ज्ञातसंख्यानामियत्तावधारणं कर्तव्यमित्यत आह—**

## पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५॥

इन्द्रियशब्दो व्याख्यातार्थः[३२] पञ्चग्रहणमवधारणार्थं, पञ्चैव नाधिकसंख्यानीति। कर्मेन्द्रियाणां [३३]वागादीनामिह ग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्। उपयोगप्रकरणात्। उपयोगसाधनानामिह ग्रहणं कृतं, न क्रियासाधनानामनवस्थानाच्च। क्रियासाधनानामङ्गोपाङ्गनामकर्मनिर्वर्तितानां सर्वेषामपि क्रियासाधन-त्वमस्तीति न पञ्चैव कर्मेन्द्रियाणि।

**तेषामन्तर्भेदप्रदर्शनार्थमाह—**

## द्विविधानि ॥१६॥



---

विग्रहगतिं प्राप्तो वनस्पतिमध्येऽवतरिष्यज्जीवो वनस्पतिजीवो भण्यते। प्रत्येकं चतुर्षु मध्ये पृथिव्यादिकं कायत्वेन गृहीतवन्तो जीवा, विग्रहगतिं प्राप्ताश्च प्राणिनः स्थावरा ज्ञातव्यास्तेषामेव पृथिव्यादिस्थावर-कर्मोदयसद्भावात्। न तु पृथिव्यादयः पृथिवीकायादयश्च। अजीवत्वात्कर्मोदयाभावाच्च।

२९. द्वीद्रियादय इति—स्पर्शनरसनयुक्ता द्वीन्द्रियाः। शंखशुक्तिवराटकगंडूपदजलौकस आदयः। त्रीन्द्रियाः स्पर्शन-रसनघ्राणसहिताः—कुंथुवृश्चिकशतपदीन्द्रगोपयूकालिक्षामत्कुणपिपीलिकादयः। स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःसहिता दंशमशक-पतंगभ्रमरादयः। स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रसहिताः पंचेन्द्रियाः—तद्भेदा इमे ज्ञेयाः अण्डायिकाः—सर्पगृहकोकिलाब्राह्मण्यादयः। पोतायिकाश्च सिंहव्याघ्रचित्रकमार्जारादयः अनावरणजन्मानः। गोमहिषीमनुष्यादयः सावरणजन्मानो जरायिकाः। रसो घृतादिस्तत्र चर्मादियोगे आय आगमनं विद्यते येषां ते रसायिकाः, प्रथमधातूद्भवाश्च रसायिकाः। रसासृङ्मासमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः। इति वचनाद्रसः प्रथमो धातुस्तेन सूक्ष्मत्वाद्वक्तुं न शक्यते। संस्वेदः प्रस्वेदः तत्र भवाः संस्वेदिमा भवार्थ इमप्रत्ययः। चक्रवर्तिकक्षाद्युत्पन्नास्तेऽपि सूक्ष्मत्वाद्वक्तुं न शक्यन्ते। समन्तात्पुद्गलानां मूर्च्छनं संघातीभवनं संमूर्च्छः, तत्र भवाः सम्मूर्छिमाः सर्पदर्दुरमनुष्यादयोपि संमूर्च्छनादुत्पद्यन्ते। उक्तं च—शुक्रसिंहाणकश्लेष्मकर्णदन्तमलेषु च। अत्यन्ताशुचिदेहेषु सद्यः सम्मूर्छनो भवेत्। उद्भेदनमुद्भेदो भूमिकाष्ठपाषाणादिकं भित्त्वा ऊर्ध्वं निःस्सरणमुद्भेदः। उद्भेदो विद्यते येषां ते उद्भेदिमाः। अत्रास्त्वर्थे इम प्रत्ययः। यथा रत्नानि भंक्त्वा केनचिद्दर्दुरो निष्कासितः। उपपादिमा देवनारकाः। **३०.** मर्यादावाची, तेन पंचेन्द्रियादूर्ध्वं षडिन्द्रियादिजीवो न भवतीत्यभिप्रायः। **३१.** तद्गुणसंविज्ञानबहुब्रीहिसमास उदाहरणं लम्बकर्णः। अतद्गुणसंविज्ञाने बहुधनः। **३२.** तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तमिति सूत्रव्याख्यानावसरे। **३३.** वाक्पाणिपादपायूपस्थानाम्।

विधशब्दः प्रकारवाची, द्वौ विधौ येषां तानि द्विविधानि, द्विप्रकाराणीत्यर्थः। कौ पुनस्तौ द्वौ प्रकारौ?। द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियमिति।

**तत्र द्रव्येन्द्रियस्वरूपप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥

निर्वर्त्यते निष्पाद्यते इति निर्वृत्तिः। केन निर्वर्त्यते? कर्मणा। सा द्विविधा बाह्याभ्यन्तरभेदात्। [३४]उत्सेधांगुलासंख्येयभागप्रमितानां शुद्धानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतचक्षुरादीन्द्रियसंस्थानेनावस्थितानां वृत्तिरभ्यन्तरा निर्वत्तिः। तेष्वात्मप्रदेशेष्विन्द्रियव्यपदेशभाक्षु यः प्रतिनियतसंस्थानो नामकर्मोदया-पादितावस्थाविशेषः पुद्‌गलप्रचयः सा बाह्या निर्वृत्तिः। येन निर्वृत्तेरुपकारः क्रियते तदुपकरणम्। पूर्ववत्तदपि द्विविधम्। तत्राभ्यन्तरं कृष्णशुक्लमण्डलम्। बाह्यमक्षिपत्रपक्ष्मद्वयादि। एवं शेषेष्विन्द्रियेषु ज्ञेयम्।

**भावेन्द्रियमुच्यत—**

## लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥१८॥

लम्भनं लब्धिः। का पुनरसौ?। ज्ञानावरणक्षयोपशमविशेषः। यत्सन्निधानादात्मा [३५]द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्तिं प्रति व्याप्रियते। तन्निमित्त आत्मनः परिणाम उपयोगस्तदुभयं भावेन्द्रियम्। इन्द्रियफलमुपयोगस्तस्य कथमिन्द्रियत्वम्? कारणधर्मस्य कार्ये दर्शनात्। यथा घटाकारपरिणतं विज्ञानं घट इति। स्वार्थस्य तत्र मुख्यत्वाच्च। इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियमिति य स्वार्थः स उपयोगो मुख्यः। उपयोगलक्षणो जीव इति वचनात्। अत उपयोगस्येन्द्रियत्वं न्याय्यम्।

**उक्तानामिन्द्रियाणां सञ्ज्ञानुपूर्वीप्रतिपादनार्थमाह—**

## स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि ॥१९॥

लोके इन्द्रियाणां पारतन्त्र्यविवक्षा दृश्यते। अनेनाक्ष्णा सुष्ठु पश्यामि, अनेन कर्णेन सुष्ठु शृणोमीति। ततः पारतन्त्र्यात्स्पर्शनादीनां करणत्वं। वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भात् आत्मना स्पृश्यतेऽनेनेति स्पर्शनम्। रस्यतेऽनेनेति रसनम्। घ्रायतेऽनेनेति घ्राणम्। चक्षेरनेकार्थत्वाद्दर्शनार्थ-विवक्षायां चष्टे अर्थान्पश्यत्यनेनेति चक्षुः। श्रूयतेऽनेनेति श्रोत्रम्। स्वातन्त्र्यविवक्षा च दृश्यते। इदं मे अक्षि सुष्ठु पश्यति। अयं मे कर्णः सुष्ठु शृणोति। ततः स्पर्शनादीनां कर्तरि निष्पत्तिः स्पृशतीति स्पर्शनम्। रसतीति रसनम्। जिघ्रतीति घ्राणम्। चष्टे इति चक्षुः। शृणोतीति श्रोत्रम्। एषां निर्देशक्रम एकैकवृद्धिक्रमप्रज्ञापनार्थः।

**तेषामिन्द्रियाणां विषयप्रदर्शनार्थमाह—**

## स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥२०॥

द्रव्यपर्याययोः प्राधान्यविवक्षायां कर्मभावसाधनत्वं स्पर्शादिशब्दानां वेदितव्यम्। द्रव्य-प्राधान्यविवक्षायां कर्मनिर्देशः। स्पृश्यत इति स्पर्शः। रस्यत इति रसः। गन्ध्यत इति गन्धः। वर्ण्यत इति

---

३४. उत्सेधांगुलमिति व्यवहारांगुलं घनरूपं तदेवात्रगृह्यते। परमागमे देहगेहग्रामनरकादिप्रमाणमुत्सेधांगुलेनैवेति नियमितत्वात्। ३५. द्रव्येन्द्रियरूपनिर्वृत्तिम्।

वर्णः। शब्द्यत इति शब्दः। पर्यायप्राधान्यविवक्षायां भावनिर्देशः। स्पर्शनं स्पर्शः। रसनं रसः। गन्धनं गन्धः। वर्णनं वर्णः। शब्दनं शब्दः। एषां क्रम इन्द्रियक्रमेणैव व्याख्यातः।

**अत्राह यत्तावन्मनोऽनवस्थानादिन्द्रियं न भवतीति प्रत्याख्यातं तत्किमुपयोगस्योपकारि उत नेति?। तदप्युपकार्येव। तेन विनेन्द्रियाणां विषयेषु स्वप्रयोजनवृत्त्यभावात्। किमस्यैषां सहकारित्वमात्रमेव प्रयोजनमुतान्यदपीत्यत आह–**

## श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥२१॥

श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम्। स विषयोऽनिन्द्रियस्य। परिप्राप्तश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमस्यात्मनः–श्रुतस्यार्थेऽनिन्द्रियालम्बनज्ञानप्रवृत्तेः। अथवा श्रुतज्ञानं श्रुतं तदनिन्द्रियस्यार्थः प्रयोजनमिति यावत्। स्वातन्त्र्यसाध्यमिदं प्रयोजनमनिन्द्रियस्य।

**उक्तानामिन्द्रियाणां प्रतिनियतविषयाणां स्वामित्वनिर्देशे कर्तव्ये यत्प्रथमं गृहीतं स्पर्शनं तस्य तावत्स्वामित्वावधारणार्थमाह–**

## वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥

एकं प्रथममित्यर्थः। किं तत्? स्पर्शनम्। तत्केषाम्? पृथिव्यादीनां वनस्पत्यन्तानां वेदितव्यम्। तस्योत्पत्तिकारणमुच्यते। वीर्यान्तरायस्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति शेषेन्द्रियसर्वघातिस्पर्धकोदये च शरीरनामलाभावष्टम्भे एकेन्द्रियजातिनामोदयवशवर्तितायां च सत्यां स्पर्शनमेकमिन्द्रियमाविर्भवति।

**इतरेषामिन्द्रियाणां स्वामित्वप्रदर्शनार्थमाह–**

## कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥

एकैकमिति वीप्सायां द्वित्वम्। एकैकेन वृद्धानि एकैकवृद्धानि। कृमिमादिं कृत्वा, स्पर्शनाधिकारात् स्पर्शनमादिं कृत्वा एकैकवृद्धानीत्यभिसम्बन्धः क्रियते। आदिशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते। कृम्यादीनां स्पर्शनं रसनाधिकम्। पिपीलिकादीनां स्पर्शनरसने घ्राणाधिके। भ्रमरादीनां स्पर्शनरसनघ्राणानि चक्षुरधिकानि। मनुष्यादीनां तान्येव श्रोत्राधिकानीति यथासंख्येनाभिसम्बन्धो व्याख्यातः। [३६]तेषां [३७]निष्पत्तिः [३८]स्पर्शनोत्पत्त्या व्याख्याता उत्तरोत्तरसर्वघातिस्पर्धकोदयेन।

**एवमेतेषु संसारिषु द्विभेदेषु इन्द्रियभेदात्पंचविधेषु ये पञ्चेन्द्रियास्तद्भेदस्यानुक्तस्य प्रतिपादनार्थमाह–**

## सञ्ज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥

मनो व्याख्यातम्[३९]। सह तेन ये वर्तन्ते ते समनस्काः सञ्ज्ञिन इत्युच्यते। पारिशेष्यादितरे संसारिणः प्राणिनोऽसञ्ज्ञिन इति सिद्धम्। ननु च सञ्ज्ञिन इत्यनेनैव गतार्थत्वात्समनस्का इति विशेषणमनर्थकम्। यतो मनोव्यापारो हिताहितप्राप्तिपरिहारपरीक्षा। [४०]संज्ञाऽपि सैवेति ? नैतद्युक्तम्। संज्ञाशब्दार्थव्यभिचारात्। संज्ञा नामेत्युच्यते। तद्वन्तः संज्ञिन इति सर्वेषामतिप्रसङ्ग। संज्ञानं संज्ञा ज्ञानमिति

---

३६. रसनादीनामिन्द्रियणाम्। ३७. उत्पत्तिः। ३८. पूर्वसूत्रव्याख्याने स्पर्शनेन्द्रियोत्पत्तिकथनेन। ३९. समनस्कामनस्का इत्यत्र। ४०. संज्ञापि सैवेति–शिक्षालापग्रहणादिलक्षणा क्रिया संज्ञिनां भवति। सा असंज्ञिनां न। असंज्ञिनामपि अनादिकाल–विषयानुभवनाभ्यासदाढर्यादाहारभयमैथुनपरिग्रहलक्षणोपलक्षिताश्चतस्रः संज्ञा, अभिलाष–प्रवृत्त्यादिकं च संगच्छत एव। किंतु शिक्षालापग्रहणादिकं न घटते।

चेत् सर्वेषां प्राणिनां ज्ञानात्मकत्वादतिप्रसङ्गः। आहारादिविषयाभिलाषः सञ्ज्ञेति चेत्, तुल्यम्। तस्मात्समनस्का इत्युच्यते। एवं च कृत्वा गर्भाण्डजमूर्च्छितसुषुप्त्याद्यवस्थासु हिताहितपरीक्षाभावेऽपि मनःसन्निधानात्संज्ञित्वमुपपन्नं भवति।

**यदि हिताहितादिविषयपरिस्पन्दः प्राणिनां मनःप्रणिधानपूर्वकः अथाभिनवशरीरग्रहणं प्रत्यागूर्णस्य विशीर्णपूर्वमूर्तेर्निर्मनस्कस्य यत्कर्म, तत्कुत इत्युच्यते–**

## विग्रहगतौ कर्मयोगः[४१] ॥२५॥

विग्रहो देहः। विग्रहार्था गतिर्विग्रहगतिः। अथवा विरुद्धो ग्रहो विग्रहो व्याघातः कर्मादानेऽपि नोकर्मपुद्गलादाननिरोध इत्यर्थः। विग्रहेण गतिर्विग्रहगतिः। सर्वशरीरप्ररोहणबीजभूतं कार्मणं शरीरं कर्मेत्युच्यते। योगो वाङ्मनःकायवर्गणानिमित्त आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः। कर्मणा कृतो योगः कर्मयोगो विग्रहगतौ भवतीत्यर्थः। तेन कर्मादानं देशान्तरसंक्रमश्च भवति।

**आह जीवपुद्गलानां गतिमास्कन्दतां देशान्तरसंक्रमः किमाकाशप्रदेशक्रमवृत्त्या भवति, उताविशेषेणेत्यत आह–**

## अनुश्रेणि गतिः ॥२६॥

लोकमध्यादारभ्य ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च आकाशप्रदेशानां क्रमसन्निविष्टानां पंक्तिः श्रेणिरित्युच्यते। अनुशब्दस्यानुपूर्व्येण वृत्तिः। श्रेणेरानुपूर्व्येणानुश्रेणीति जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवतीत्यर्थः। अनधिकृतानां पुद्गलानां कथं ग्रहणमिति चेद् ? गतिग्रहणात्। यदि जीवानामेव गतिरिष्टा स्याद् गतिग्रहणमनर्थक-मधिकारात्तत्सिद्धेः। उत्तरत्र जीवग्रहणाच्च पुद्गलसम्प्रत्ययः। ननु चन्द्रादीनां ज्योतिष्काणां मेरुप्रदक्षिणाकाले विद्याधरादीनां च विश्रेणिगतिरपि दृश्यते तत्र किमुच्यते अनुश्रेणि गतिरिति? कालदेशनियमोऽत्र वेदितव्यः। तत्र कालनियमस्तावज्जीवानां मरणकाले भवान्तरसंक्रमे मुक्तानां चोर्ध्वगमनकाले अनुश्रेण्येव गतिः। देशनियमोऽपि ऊर्ध्वलोकादधोगतिः। अधोलोकादूर्ध्वगतिः। तिर्यग्लोकादधोगतिः। ऊर्ध्वा वा। तत्रानुश्रेण्येव। [४२]पुद्गलानां च या लोकान्तप्रापिणी सा नियमादनुश्रेण्येव। इतरा गतिर्भजनीया[४३]।

**पुनरपि गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह–**

## अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥

विग्रहो व्याघातः कौटिल्यमित्यर्थः। स यस्यां न विद्यतेऽसावविग्रहा गतिः। कस्य? जीवस्य। कीदृशस्य? मुक्तस्य। कथं गम्यते मुक्तस्येति?। उत्तरसूत्रे संसारिग्रहणादिह मुक्तस्येति विज्ञायते। ननु च अनुश्रेणि गतिरित्यनेनैव श्रेण्यन्तरसंक्रमाभावो व्याख्यातः। नार्थोऽनेन? पूर्वसूत्रे विश्रेणिगतिरपि क्वचिदस्तीति ज्ञापनार्थमिदं वचनम्। ननु तत्रैव देशकालनियम उक्तः। न, अतस्तत्सिद्धेः।

**यद्यसङ्गस्यात्मनोऽप्रतिबन्धेन गतिरालोकान्तादवगतकाला प्रतिज्ञायते, सदेहस्य पुनर्गतिः किं प्रतिबन्धिनी, उत मुक्तात्मवदित्यत आह–**

---

**४१.** यदा आत्मा एकं शरीरं परित्यज्य उत्तरं शरीरं प्रति गच्छति तदा कार्मणशरीरेण सह योगः संगतिर्वर्तते। तेनायमर्थः कार्मणशरीराधारेण जीवो गत्यन्तरं गच्छति। **४२.** परमाणुरूपाणां। **४३.** अनियमिता।

## विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥२८॥

कालावधारणार्थं प्राक्चतुर्भ्य इत्युच्यते। प्रागिति वचनं मर्यादार्थं चतुर्थात्समयात्प्राग्विग्रहवती गतिर्भवति न चतुर्थे इति। कुत इति चेत् ? सर्वोत्कृष्टविग्रहनिमित्तनिष्कुटक्षेत्रे[४४] उत्पित्सुः प्राणी निष्कुटक्षेत्रानुपूर्व्यनुश्रेण्यभावादिषुगत्यभावे निष्कुटक्षेत्रप्रापणनिमित्तां त्रिविग्रहां गतिमारभते नोर्ध्वाम्। तथाविधोपपादक्षेत्राभावात्। चशब्दः समुच्चयार्थः। [४५]विग्रहवती चाविग्रहवती चेति।

**विग्रहवत्या गतेः कालोऽवधृतः। अविग्रहायाः कियान् काल इत्युच्यते—**

## एकसमयाऽविग्रहा ॥२९॥

एकः समयो यस्याः सा एकसमया। न विद्यते विग्रहो यस्याः सा अविग्रहा। गतिमतां हि जीव-पुद्गलनामव्याघातेनैकसमयिकी गतिरालोकान्तादपीति।

**अनादिकर्मबन्धसन्ततौ मिथ्यादर्शनादिप्रत्ययवशात्कर्माण्याददानो विग्रहगतावप्याहारकः प्रसक्तस्ततो नियमार्थमिदमुच्यते—**

## एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥३०॥

अधिकारात्समयाभिसम्बन्धः। वाशब्दो विकल्पार्थः। विकल्पश्च यथेच्छातिसर्गः। एकं वा द्वौ वा त्रीन्वा समयाननाहारको भवतीत्यर्थः। [४६]त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्यपुद्गलग्रहणमाहारः। तदभावादनाहारकः। कर्मादानं हि निरन्तरं, कार्मणशरीरसद्भावे। उपपादक्षेत्रं प्रति ऋज्व्यां गतावाहारकः। इतरेषु [४७]समयेष्वनाहारकः[४८]।

**एवं गच्छतोऽभिनवमूर्त्यन्तरनिर्वृत्तिजन्मप्रकारप्रतिपादनार्थमाह—**

## सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥३१॥

त्रिषु लोकेषूर्ध्वमधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो मूर्च्छनं सम्मूर्च्छनमवयवप्रकल्पनम्। स्त्रिया उदरे शुक्रशोणितयोर्गरणं मिश्रणं गर्भः। मात्रोपभुक्ताहारगरणाद्वा गर्भः। [४९]उपेत्योत्पद्यतेऽस्मिन्निति उपपादः।

---

**४४.** लोकाग्रकोणं निष्कुटक्षेत्रम्। **४५.** विग्रहवती चेति—अविग्रहवती गतिरिषुगतिनाम्नी भवति। यथा इषोर्बाणस्य गतिर्गमनं वेध्यपर्यन्तमृज्वी भवति। तदा सिद्धादीनां संसारिणां चाविग्रहा गतिरेकसमयिकी समाना एव। विग्रहवती वक्रगतिः संसारिणामेव भवति। तस्याः त्रयः प्रकारा भवन्ति। पाणिमुक्तालांगलिकागोमूत्रिकाभेदात्। पाणिमुक्ता यथा पाणिना तिर्यक्प्रक्षिप्तस्य गतिरेकवक्रा तथा संसारिणः पाणिमुक्ता गतिरेकवक्रा द्वैसमयिकी भवति। लांगलिकागतिर्द्विवक्रा। यथा लाङ्गलं हलं द्विवक्रं भवति तथा संसारिणां द्विवक्रा लांगलिका गतिर्भवति सा त्रैसमयिकी। गोमूत्रिका बहुवक्रा। त्रिवक्रा भवति सा गोमूत्रिका गतिः संसारिणां चतुःसमयिकी भवति अत एवाह 'प्राक्चतुर्भ्यः' सा विग्रहवती गतिश्चतुर्भ्यः समयेभ्यः प्राक् पूर्वं भवति। चतुर्थसमयस्य मध्ये अन्ते वा वक्रगतिर्न भवति इति ज्ञातव्यम्। सा चतुर्थसमये प्रांजलं सरलं गत्वा उत्पत्तिक्षेत्रे प्रविशति। **४६.** औदारिकवैक्रियिकाहारकाणां। **४७.** नोकर्मापेक्षया। **४८.** अनाहारक इति—तथा हि पाणिमुक्तायां एकवक्रायां गतौ प्रथमसमये अनाहारको द्वितीयसमये त्वाहारक एव। लाङ्गलिकायां द्विवक्रायां प्रथमसमये द्वितीयसमये चानाहारकः। तृतीयसमये ऋज्व्यां गतावाहारक एव। गोमूत्रिकायां त्रिवक्रायां गतौ प्रथमसमये द्वितीयसमये तृतीयसमये चानाहारकश्चतुर्थसमये ऋज्व्यां गतौ आहारक एव। इषुगतौ तु एकसमयिक्यामाहारक एव। तथा च ऋद्धिप्राप्तस्य यतेराहारकं शरीरमाहारकं भवति। **४९.** उपेत्य देवा नारकाश्च युवान एव उत्पद्यंते।

देवनारकोत्पत्तिस्थानविशेषसञ्ज्ञा। एते त्रयः संसारिणां जीवानां जन्मप्रकाराः शुभाशुभपरिणामनिमित्त-कर्मभेदविपाककृताः।

**अथाधिकृतस्य संसारिविषयोभोगोपलब्ध्यधिष्ठानप्रवणस्य[५०] जन्मनो योनिविकल्पा वक्तव्या इत्यत आह—**

**सचित्तशीतसंवृत्ताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥**

आत्मनश्चैतन्यविशेषपरिणामश्चित्तम् सह चित्तेन वर्तत इति सचित्तः। शीत इति स्पर्शविशेषः। [५१]शुक्लादिवदुभयवचनत्वात्तद्युक्तं द्रव्यमप्याह। सम्यग्वृतः संवृतः। संवृतः इति दुरुपलक्ष्यप्रदेश उच्यते। सह इतरैर्वर्तन्त इति सेतराः। सप्रतिपक्षा इत्यर्थः। के पुनरितरे? अचित्तोष्णविवृताः। उभयात्मको मिश्रः। सचित्ताचित्तः, शीतोष्णः, संवृतविवृत इति। चशब्दः समुच्चयार्थो मिश्राश्च योनयो भवन्तीति। इतरथा हि पूर्वोक्तानामेव विशेषणं स्यात्। एकश इति वीप्सार्थः। तस्य ग्रहणं क्रममिश्रप्रतिपत्यर्थम्। यथैवं विज्ञायेत—सचित्तश्च अचित्तश्च शीतश्च उष्णश्च संवृतश्च विवृतश्चेति। मैवं विज्ञायि सचित्तश्च शीतश्चेत्यादि। तद्ग्रहणं जन्मप्रकारप्रतिनिर्देशार्थम्। तेषां सम्मूर्च्छनादीनां जन्मनां योनय इति त एते नव योनयो वेदितव्याः। योनिजन्मनोरविशेष इति चेन्न, आधाराधेयभेदात्तद्भेदः। त एते सचित्तादयो योनय आधाराः। आधेया जन्मप्रकाराः। यतः सचित्तादियोन्यधिष्ठाने आत्मा सम्मूर्च्छनादिना जन्मना शरीराहारेन्द्रियादियोग्यान्पुद्गलानुपादत्ते। देवनारका अचित्तयोनयः। तेषां हि योनिरुपपाददेशपुद्गल-प्रचयोऽचित्तः। गर्भजा[५२] मिश्रयोनयः। तेषां हि मातुरुदरे शुक्रशोणितमचित्तं, तदात्मना चित्तवता मिश्रणान्मिश्रयोनिः। सम्मूर्च्छनजास्त्रिविकल्पयोनयः। केचित्सचित्तयोनयः। अन्ये अचित्तयोनयः। अपरे मिश्रयोनयः। सचित्तयोनयः साधारणशरीराः। कुतः? परस्पराश्रयत्वात्। इतरे अचित्तयोनयो मिश्रयोनयश्च। शीतोष्णयोनयो देवनारकास्तेषां हि उपपादस्थानानि कानिचिच्छीतानि, कानिचिदुष्णानीति। उष्णयोनयस्तेजस्कायिकाः। इतरे त्रिविकल्पयोनयः केचिच्छीतयोनयः केचिदुष्णयोनयोऽपरे मिश्रयोनय इति। देवनारकैकेन्द्रियाः संवृतयोनयो, [५३]विकलेन्द्रिया विवृतयोनयः। गर्भजा मिश्रयोनयः। तद्भेदाश्चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या आगमतो वेदितव्याः। उक्तं च—णिच्चदरधादु सत्तय तरु दस वियलिंदिएसु छच्चेव। सुरणिरयतिरिय चउरो चोद्दस मणुए [५४]सदसहस्सा। १।

**एवमेतस्मिन्नवयोनिभेदसंकटे त्रिविधजन्मनि सर्वप्राणभृतामनियमेन प्रसक्ते तदवधारणार्थमाह—**

**जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः॥३३॥**

यज्जालवत्प्राणिपरिवरणंविततमांसशोणितं तज्जरायुः। यन्नखत्वक्सदृशमुपात्तकाठिन्यं शुक्रशोणित-

---

**५०.** शरीरनिष्ठस्य। **५१.** शुक्लादिशब्दवच्छीतशब्दोः गुणगुणिनोर्वाचकत्वाच्छीतयुक्तं द्रव्यमाह। **५२.** गर्भजेति-अथवा शुक्रशोणितं यत्र मातुरुदरे पतितं वर्तते तदुदरं सचित्तं वर्तते तेन गर्भजाः सचित्ताचित्तलक्षणमिश्रयोनयः। **५३.** द्वीन्द्रियमारभ्य चतुरिंद्रयपर्यंतम्। **५४.** अस्यायमर्थः—नित्यनिगोदा इतरनिगोदाश्च पृथिव्यप्तेजोवायवश्च प्रत्येकं सप्तलक्षयोनयः वनस्पतिकायिका दशलक्षयोनयः। द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाश्च प्रत्येकं द्विलक्षयोनयः। सुरनारकास्तिर्यञ्चश्च पृथक्चतुर्लक्षयोनयः। मनुष्याश्चतुर्दशलक्षयोनयः।

परिवरणं परिमण्डलं तदण्डम्। किञ्चित्परिवरणमन्तरेण परिपूर्णावयवो योनिनिर्गतमात्र एव परिस्पन्दादि-सामर्थ्योपेतः पोतः। जरायौ जाता जरायुजाः। अण्डे जाता अण्डजाः। जरायुजाश्च अण्डजाश्च पोताश्च जरायुजाण्डजपोता गर्भयोनयः।

**यद्यमीषां जरायुजाण्डजपोतानां गर्भोऽवध्रियते, अथोपपादः केषां भवतीत्यत आह—**

## देवनारकाणामुपपादः[५५] ॥३४॥

देवानां नारकाणां च उपपादो जन्म वेदितव्यम्।

**अथान्येषां किं जन्मेत्यत आह—**

## शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥३५॥

गर्भजेभ्य औपपादिकेभ्यश्चान्ये शेषाः। तेषां सम्मूर्च्छनं जन्मेति। एते त्रयोऽपि योगा नियमार्थाः। उभयतो नियमश्च द्रष्टव्यः। जरायुजाण्डजपोतानामेव गर्भः। गर्भ एव च जरायुजाण्डजपोतानाम्। देवनारकाणामेवोपपादः। उपपाद एव देवनारकाणाम्। शेषाणामेव सम्मूर्च्छनम्। सम्मूर्च्छनमेव शेषाणामिति।

**तेषां पुनः संसारिणां त्रिविधजन्मनामाहितबहुविकल्पनवयोनिभेदानां शुभाशुभनामकर्म-विपाकनिर्वर्तितानि बन्धफलानुभवनाधिष्ठानानि शरीराणि कानीत्यत आह—**

## औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥३६॥

विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तीनि शीर्यन्त इति शरीराणि। औदारिकादिप्रकृतिविशेषोदय-प्राप्तवृत्तीनि औदारिकादीनि। उदारं स्थूलम्। उदारे भवमौदारिकम्। उदारं प्रयोजनमस्येति वा औदारिकम्। [५६]अष्टगुणैश्वर्ययोगादेकानेकाणुमहच्छरीरविविधकरणं विक्रिया सा प्रयोजनमस्येति वैक्रियिकम्। सूक्ष्मपदार्थनिर्ज्ञानार्थमसंयमपरिजिहीर्षया वा प्रमत्तसंयतेनाह्रियते निर्वर्त्यते तदित्याहारकम्[५७]। यत्तेजोनिमित्तं तेजसि वा भवं तत्तैजसम्। कर्मणां कार्यं कार्मणम्। सर्वेषां कर्मनिमित्तत्वेऽपि रूढिवशाद्विशिष्टविषये वृत्तिरवसेया।

**यथौदारिकस्येन्द्रियैरुपलब्धिस्तथेतरेषां कस्यात्र भवतीत्याह—**

## परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥

परशब्दस्यानेकार्थवृत्तित्वेऽपि विवक्षातो [५८]व्यवस्थार्थगतिः। पृथग्भूतानां शरीराणां सूक्ष्मगुणेन वीप्सानिर्देशः क्रियते परम्परमिति। औदारिकं स्थूलं, तत्र सूक्ष्मं वैक्रियिकं, ततः सूक्ष्ममाहारकं, ततः

---

**५५.** उपपाद इति–पल्यंकोपरि हंसतूलद्वयमध्ये चतुर्णिकायानां देवानां जन्म जायते। तथा नारकाणां च कंडरकच्छत्रकच्छिद्रसहितस्थानेषु तेषामधोमुखानामुपरिपादानामुत्पत्तिर्भवति ततस्तेऽधः पतन्ति। **५६.** अष्टगुणेति–मूलशरीरं जिनजन्मादिकालेऽपि देवानां न क्वापि गच्छति। उत्तरशरीरं त्वनेकमेकं वा जिनोत्सवादौ सर्वत्र गच्छति। **५७.** आहारकशरीरं किल प्रमत्तसंयतेनैव निष्पाद्यते। प्रमत्तसंयतस्य यदा सूक्ष्मपदार्थसंदेह उत्पद्यते संयमविचारे वा संदेह उत्पद्यते तदा स चिन्तयति। तीर्थंकरपरमदेवदर्शनं विनायं संदेहो न विनश्यति। स भगवानत्र क्षेत्रे नास्ति। किं क्रियतेऽस्माभिरिति चिन्तां कुर्वाणे प्रमत्तसंयते मुनौ सति तस्य तालुप्रदेशे रोमाग्रस्य अष्टमो भागश्छिद्रं वर्तते तस्माद्धस्तप्रमाणं घनघटित-स्फटिकबिंबाकारं पुत्तलकं निर्गच्छति। तत्पुत्तलकं यत्र कुत्रापि क्षेत्रे तीर्थकरपरमदेवो गृहस्थश्छद्मस्थो दीक्षितः केवली वा वर्त्तते तत्र गच्छति। तस्य शरीरं स्पृष्ट्वा पश्चादायाति। तेनैव तालुच्छिद्रेण तस्मिन्मुनौ प्रविशति तदा तस्य मुनेः संदेहो विनश्यति सुखी भवति च। इत्याहारकशरीरस्वरूपम्। **५८.** पूर्वापेक्षया परत्वमिति परशब्दो व्यवस्थार्थः।

सूक्ष्मं तैजसं, तैजसात्कार्मणं सूक्ष्ममिति।

**यदि परम्परं सूक्ष्मं, प्रदेशतोऽपि [५९]न्यूनं परम्परं हीनमिति विपरीतप्रतिपत्तिनिवृत्यर्थमाह—**

**प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥३८॥**

प्रदिश्यन्त[६०] इति प्रदेशाः परमाणवः। संख्यामतीतोऽसंख्येयः। असंख्येयो गुणोऽस्य तदिदमसंख्येय-गुणम्। कुतः? प्रदेशतः। नावगाहतः। परम्परमित्यनुवृत्तेराकार्मणात्प्रसङ्गे तन्निवृत्यर्थमाह—प्राक्तैजसादिति। औदारिकादसंख्येयगुणप्रदेशं[६१] वैक्रियिकम्। वैक्रियिकादसंख्येयगुणप्रदेशमाहारकमिति। को गुणकारः? पल्योपमासंख्येयभागः। यद्येवं, परम्परं महापरिमाणं प्राप्नोति? नैवम्, बन्धविशेषात्परिमाणभेदाभावः। तूलनिचयायस्पिण्डवत्।

**अथोत्तरयोः किं समप्रदेशत्वमुतास्ति कश्चिद्विशेष इत्यत आह—**

**अनन्तगुणे परे ॥३९॥**

प्रदेशत इत्यनुवर्तते, तेनैवमभिसम्बन्धः क्रियते—आहारकात्तैजसं प्रदेशतोऽनन्तगुणं, तैजसात्कार्मणं प्रदेशतोऽनन्तगुणमिति। को गुणकारः? अभव्यानामनन्तगुणः[६२], सिद्धानामनन्तो भागः।

**तत्रैतत्स्याच्छल्यकवन्मूर्तिमद्द्रव्योपचितत्वात्संसारिणो जीवस्याभिप्रेतगतिनिरोधप्रसङ्ग इति ? तन्न। किं कारणम्? यस्मादुभेऽप्येते—**

**अप्रतीघाते ॥४०॥**

मूर्तिमतो मूर्त्यन्तरेण व्याघातः प्रतीघातः। स नास्त्यनयोरित्यप्रतीघाते। सूक्ष्मपरिमाणादयस्पिण्डे तेजोऽनुप्रवेशवत्तैजसकर्मणयोर्नास्ति वज्रपटलादिषु व्याघातः। ननु च वैक्रियिकाहारकयोरपि नास्ति प्रतीघातः। सर्वत्राप्रतीघातोऽत्र विवक्षितः। यथा तैजसकार्मणयोरालोकान्तात् सर्वत्र नास्ति प्रतीघातः। न तथा वैक्रियिकाहारकयोः।

**आह किमेतावानेव विशेष उत कश्चिदन्योऽप्यस्तीत्याह—**

**अनादिसम्बन्धे च ॥४१॥**

चशब्दो विकल्पार्थः। अनादिसम्बन्धे सादिसम्बन्धे चेति। कार्यकारणभावसन्तत्या अनादिसम्बन्धे विशेषापेक्षया सादिसम्बन्धेऽपि च बीजवृक्षवत्। यथौदारिकवैक्रियिकाहारकाणि जीवस्य कादाचित्कानि, न तथा तैजसकार्मणे नित्यसम्बन्धिनी हि ते आसंसारक्षयात्।

**त एते तैजसकार्मणे किं कस्यचिदेव भवत उताविशेषेणेत्यत आह—**

**सर्वस्य ॥४२॥**

सर्वशब्दो निरवशेषवाची। निरवशेषस्य संसारिणो जीवस्य ते द्वे अपि शरीरे भवतः इत्यर्थः।

**अविशेषाभिधानात्तैरौदारिकादिभिः सर्वस्य संसारिणो यौगपद्येन सम्बन्धप्रसङ्गे सम्भविशरीर-प्रदर्शनार्थ-मिदमुच्यते—**

---

५९. अतिशयेन अव्ययपदम्। ६०.अविभागित्वेन प्ररूप्यन्ते। ६१. श्रेण्यसंख्येयभागरूपासंख्येयगुणम्। ६२. यत्र यत्र अभव्या गृह्यंते तत्र तत्र जघन्ययुक्तानंतप्रमाणं वेदितव्यम्।

## तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्या चतुर्भ्यः॥४३॥

तच्छब्दः प्रकृततैजसकार्मणप्रतिनिर्देशार्थः। ते तैजसकार्मणे आदिर्येषां तानि तदादीनि। भाज्यानि विकल्प्यानि। आ कुतः? आ चतुर्भ्यः। युगपदेकस्यात्मनः। [६३]कस्यचित् द्वे, तैजसकार्मणे। अपरस्य त्रीणि औदारिकतैजसकार्मणानि, वैक्रियिकतैजसकार्मणानि वा। अन्यस्य चत्वारि, औदारिकाहारक-तैजसकार्मणानीति विभागः क्रियते।

**पुनरपि तेषां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

अन्ते भवमन्त्यम्। किं तत्? कार्मणम्। इन्द्रियप्रणालिकया शब्दादीनामुपलब्धिरुपभोगः। तदभावान्निरुपभोगम्। [६४]विग्रहगतौ सत्यामपि [६५]इन्द्रियलब्धौ द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्त्यभावाच्छब्दाद्युपभोगाभाव इति। ननु तैजसमपि निरुपभोगं [६६]तत्र [६७]किमुच्यते निरुपभोगमन्त्यमिति? तैजसं शरीरं योगनिमित्तमपि[६८] न भवति, ततोऽस्योपभोगविचारेऽनधिकारः[६९]।

**एवं तत्रोक्तलक्षणेषु जन्मसु अमूनि शरीराणि प्रादुर्भावमापद्यमानानि किमविशेषेण भवन्ति, उत कश्चिदस्ति प्रतिविशेषः? इत्यत आह—**

## गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥

सूत्रक्रमापेक्षया आदौ भवमाद्यम्। औदारिकमित्यर्थः। यद्गर्भजं यच्च सम्मूर्च्छनजं तत्सर्वमौदारिकं द्रष्टव्यम्।

**तदनन्तरं यन्निर्दिष्टं, तत्कस्मिञ्जन्मनीत्यत आह—**

## औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥

उपपादे भवमौपपादिकम्। तत्सर्वं वैक्रियिकं वेदितव्यम्।

**यद्यौपपादिकं वैक्रियिकं, अनौपपादिकस्य वैक्रियिकत्वाभाव इत्यत आह—**

## लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥

चशब्देन वैक्रियिकमभिसम्बध्यते। तपोविशेषादृद्धिप्राप्तिर्लब्धिः। लब्धिः प्रत्ययः कारणमस्य [७०]लब्धिप्रत्ययम्। वैक्रियिकं लब्धिप्रत्ययं च भवतीत्यभिसम्बध्यते।

---

६३. विग्रहगतिं प्राप्तस्य। ६४. सर्वस्य विग्रहगतौ इत्यधिकः पाठः क्वचित्पुस्तके दृश्यते। ६५. भावेन्द्रियानिर्वृत्ति-क्षयोपशमरूपलब्धौ। ६६. भावेन्द्रिये। ६७. किमर्थम्। ६८. कार्मणकायेन विग्रहगतावात्मप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणो योगो यथा सम्भवति, तथा तैजसेन तावानपि योगो न सम्भवतीत्यर्थः। ६९. योगनिमित्तेष्वेव ह्यौदारिकादिषूपभोगोदृष्टस्ततस्तदनिमित्ते तैजसे उपभोगविचारानधिकारः। ७०. कस्यचित्षष्ठगुणस्थानवर्तिनो भवतीति वेदितव्यम्। उत्तरवैक्रियिकशरीरस्य कालस्थितिर्जघन्येनोत्कर्षेण चान्तर्मुहूर्तो भवति। तर्हि तीर्थकरजन्मादौ नंदीश्वरचैत्यालयादिगमने च वह्नीं वेलां विना तत्तत्संबंधि कर्म कथं कर्तुं लभ्येत इत्याह– घटिकाद्वयादुपर्युपर्यन्यदन्यच्छरीरं वैक्रियिकमुत्पादयन्ति। छिन्नपद्मिनीकंदोभय-पार्श्वलग्नतन्तुन्यायेनोत्तरशरीरेष्वात्मप्रदेशानन्तर्मुहूर्ते पूरयन्ति। तेनोत्तरशरीरं यथेष्टकालं तिष्ठति। तर्हि उत्तरशरीरे क्रियमाणे देवानां किमपि कष्टं भविष्यति? न भविष्यति प्रत्युत सुखं भवति। उक्तं च–स्वर्भोगवर्गप्रसिताक्षवर्गोऽप्युदीच्यदेहाक्षसुखैः प्रसक्ताः। अर्हत्प्रभौ व्यक्तविचित्रभावो भजन्तु मां प्राणतजिष्णुराज्यम्।

**किमेतदेव लब्ध्यपेक्षमुतान्यदप्यस्तीत्यत आह–**

**तैजसमपि ॥४८॥**

अपिशब्देन लब्धिप्रत्ययमभिसम्बध्यते। तैजसमपि[७१] लब्धिप्रत्ययं भवतीति।

**वैक्रियिकानन्तरं यदुपदिष्टं तस्य स्वरूपनिर्द्धारणार्थं स्वामिनिर्देशार्थं चाह–**

**शुभं विशुद्धमव्याघाति [७२]चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥**

शुभकारणत्वाच्छुभव्यपदेशः। शुभकर्मण आहारककाययोगस्य कारणत्वाच्छुभमित्युच्यते। अन्नस्य प्राणव्यपदेशवत्। विशुद्धकार्यत्वाद्विशुद्धव्यपदेशः। विशुद्धस्य पुण्यस्य कर्मणोऽशबलस्य निरवद्यस्य कार्यत्वाद्विशुद्धमित्युच्यते। तन्तूनां कार्पासव्यपदेशवत्। उभयतो व्याघाताभावादव्याघाति। न ह्याहारकशरीरेणान्यस्य व्याघातः। नाप्यन्येनाहारकस्येति। तस्य प्रयोजनसमुच्चयार्थश्चशब्दः क्रियते। तद्यथा–कदाचिल्लब्धिविशेषसद्भावज्ञापनार्थं, कदाचित्सूक्ष्मपदार्थनिर्द्धारणार्थं, संयमपरिपालनार्थं च। आहारकमिति प्रागुक्तस्य प्रत्याम्नायः। यदाऽऽहारकशरीरं निर्वर्तयितुमारभते, तदा प्रमत्तो भवतीति प्रमत्तसंयतस्येत्युच्यते। इष्टतोऽवधारणार्थमेवकारोपादानम्। यथैवं विज्ञायेत प्रमत्तसंयतस्यैवाहारकं नान्यस्येति। मैवं विज्ञायि, प्रमत्तसंयतस्याहारकमेवेति। माभूदौदारिकादिनिवृत्तिरिति।

**एवं विभक्तानि शरीराणि बिभ्रतां संसारिणां प्रतिगति किं त्रिलिङ्गसन्निधानं, उत लिङ्गनियमः कश्चिदस्तीत्यत आह–**

**नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥**

नरकाणि वक्ष्यन्ते, नरकेषु भवा नारकाः। सम्मूर्च्छनं सम्मूर्च्छः स येषामस्तीति सम्मूर्च्छिनः। नारकाश्च सम्मूर्च्छिनश्च नारकसम्मूर्छिनः। चारित्रमोहविकल्पनोकषायभेदस्य नपुंसकवेदस्याशुभ-नाम्नश्चोदयान्न स्त्रियो न पुमांस इति नपुंसकानि भवन्ति। नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकान्येवेति नियमः। तत्र हि स्त्रीपुंसविषयमनोज्ञशब्दगन्धरूपरसस्पर्शसम्बन्धनिमित्ता स्वल्पाऽपि सुखमात्रा नास्ति। यद्येवम-वध्रियते अर्थादापन्नमेतदुक्तेभ्योऽन्ये संसारिणस्त्रिलिङ्गा इति।

**यत्रात्यन्तं नपुंसकलिङ्गस्याभावस्तत्प्रतिपादनार्थमाह–**

**न देवाः[७३] ॥५१॥**

---

**७१.** तैजसमपि–तैजसं शरीरं द्विप्रकारं भवति। निःसरणात्मकमनिःसरणात्मकं च। कश्चिद्यतिरुग्रचारित्रः केनचिद्विराधितः सन्यदातिक्रुद्धो भवति तदा वामस्कंधाज्जीवप्रदेशसहितं तैजसशरीरं बहिर्निर्गच्छति। तद्द्वादशयोजनदीर्घं नवयोजनविस्तीर्णं काहलाकारं जाज्वल्यमानाग्निपुंजसदृशं दाह्यं वस्तु परिवेष्ट्यावतिष्ठते। यदा तत्र चिरं तिष्ठति तदा दाह्यंवस्तु भस्मसात्करोति। व्याघुट्य यतिशरीरे प्रविशत्सत्तं यतिमपि विनाशयति। एतन्निःसरणात्मकं। अनिःसरणात्मकं त्वौदारिक-वैक्रियिकाहारकशरीराभ्यंतरवर्ति तेषां त्रयाणामपि दीप्तिहेतुकं भवति। **७२.** आहरति गृह्णाति स्वीकरोति तत्त्वज्ञानमित्याहारकं शरीरं। शुभेन ऋद्धिविशेषेण उत्पद्यतेऽतः कारणान्मनःप्रीतिकरं शुभमित्युच्यते। शुभकर्मण आहारककाय-योगस्य हेतुत्वाद्वा शुभमित्युच्यते। विशुद्धस्य पुण्यकर्मणः संदिग्धार्थनिर्णयस्य अमिश्रस्य निरवद्यस्य कार्यस्य कारणात्संक्लेशरहितं विशद्धमित्युच्यते। **७३.** भवनवासिव्यंतरज्योतिष्ककल्पोपपन्नकल्पातीताश्च नपुंसकानि न भवन्ति। किन्तु अच्युतपर्यंतं स्त्रीत्वं पुंस्त्वं च। तत उत्तरं पुंवेद एव केवलः।

स्त्रैणं पौस्नं च यन्निरतिशयं सुखं शुभगतिनामोदयापेक्षं, तद्देवा अनुभवन्तीति न तेषु नपुंसकलिङ्गानि सन्ति।

**अथेतरे कियल्लिङ्गा इत्यत आह—**

## शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥

त्रयो वेदा येषां ते त्रिवेदाः। के पुनस्ते वेदाः? स्त्रीत्वं, पुंस्त्वं, नपुंसकत्वमिति। कथं तेषां सिद्धिः? वेद्यत इति वेदः। लिङ्गमित्यर्थः। तत् द्विविधं द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गं चेति। द्रव्यलिङ्गं योनिमेहनादि नामकर्मोदयनिर्वर्तितम्। नोकषायोदयापादितवृत्ति भावलिङ्गम्। स्त्रीवेदोदयात् स्त्यायत्यस्यां गर्भ इति स्त्री। पुंवेदोदयात् सूते जनयत्यपत्यमिति पुमान्। नपुंसकवेदोदयात्तदुभयशक्तिविकलं नपुंसकम्। रूढिशब्दाश्चैते। रूढिषु च क्रिया व्युत्पत्त्यर्थैव। यथा गच्छतीति गौरिति। इतरथा हि गर्भधारणादि-क्रियाप्राधान्ये, बालवृद्धानां, तिर्यङ्मनुष्याणां, देवानां, कार्मणकाययोगस्थानां च तदभावात्स्त्रीत्वादि-व्यपदेशो न स्यात्। त एते त्रयो वेदाः शेषाणां गर्भजानां भवन्ति।

**य इमे जन्मयोनिशरीरलिंगसम्बन्धाहितविशेषाः प्राणिनो निर्दिश्यन्ते देवादयो विचित्रधर्माधर्म-वशीकृताश्चतसृषु गतिषु शरीराणि धारयन्तस्ते किं यथाकालमुपभुक्तायुषो मूर्त्यन्तराण्यास्कन्दन्ति, उतायथा-कालमपीत्यत आह—**

## औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५३॥

औपपादिका व्याख्याताः देवनारका इति। चरमशब्दोऽन्त्यवाची। उत्तम उत्कृष्टः। चरम उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहाः[७४]। विपरीतसंसारास्तज्जन्मनिर्वाणार्हा इत्यर्थः। असंख्येयमतीतसंख्यानमुपमा-प्रमाणेन पल्यादिना गम्यमायुर्येषां त इमे असंख्येयवर्षायुषस्तिर्यङ्मनुष्या उत्तरकुर्वादिषु प्रसूताः। औपपादिकाश्च चरमोत्तमदेहाश्च असंख्येयवर्षायुषश्च औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषः। बाह्यस्योपघातनिमित्तस्य विषशस्त्रादेः सति सन्निधाने ह्रस्वं भवतीत्यपवर्त्यम्। अपवर्त्यमायुर्येषां त इमे अपवर्त्यायुषः। न अपवर्त्यायुषः अनपवर्त्यायुषः। न ह्येषामौपपादिकादीनां बाह्यनिमित्तवशादायुरपवर्त्यते इत्ययं नियमः। इतरेषामनियमः। चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्वप्रदर्शनार्थमुत्तमग्रहणं नार्थान्तरविशेषोऽस्ति। चरमदेहा इति वा पाठः। २।

**जीवस्वभावलक्षणसाधनविषयस्वरूपभेदाश्च।**
**गतिजन्मयोनिदेहानपवर्त्यायुष्कवेदाश्च ॥**
**अध्यायेऽस्मिन्निरूपिता भवन्तीति सम्बन्धः॥**

**॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसंज्ञिकायां द्वितीयोऽध्यायः॥**

---

७४. चरमोत्तमदेहास्तज्जन्मनिर्वाणयोग्यास्तीर्थकरपरमदेवा ज्ञातव्याः। गुरुदत्तपाण्डवानां उपसर्गेण मुक्तत्वदर्शनात् नास्त्यनपवर्त्यायुर्नियम इति न्यायकुमुदचन्द्रोदये प्रभाचंद्रेणोक्तत्वात्। तथा चोत्तमदेहेऽपि सुभौमब्रह्मदत्ता-पवर्त्यायुर्दर्शनात्। कृष्णस्य च जरत्कुमारवाणेनापमृत्युदर्शनात्सकलार्द्धचक्रवर्तिनामपि अनपवर्त्यायुर्नियमो नास्ति।

# अथ तृतीयोऽध्यायः

**भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणामित्येवमादिषु नारकाः श्रुतास्ततः पृच्छति के ते नारका इति। तत्प्रतिपादनार्थं तदधिकरणनिर्देशः क्रियते।**

## [१]रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥१॥

रत्नं च शर्करा च वालुका च पङ्कश्च धूमश्च तमश्च महातमश्च रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहा–तमांसि। प्रभाशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते। साहचर्यात्ताच्छब्द्यम्[२]। चित्रादिरत्नप्रभासहचरिता भूमिः रत्नप्रभा, शर्कराप्रभासहचरिता भूमिः शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभासहचरिता भूमिर्वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभासहचरिता भूमिः पङ्कप्रभा, धूमप्रभासहचरिता भूमिर्धूमप्रभा, तमःप्रभासहचरिता भूमिस्तमःप्रभा, महातमः–प्रभासहचरिता भूमिर्महातमःप्रभा इति। एताः सञ्ज्ञा अनेनोपायेन व्युत्पाद्यन्ते। भूमिग्रहणमधिकरण–विशेषप्रतिपत्त्यर्थम्। यथा स्वर्गपटलानि भूमिमनाश्रित्य व्यवस्थितानि, न तथा नारकावासाः। किं तर्हि, भूमिमाश्रिता इति। तासां भूमीनामालम्बनर्निज्ञानार्थं घनाम्बुवातादिग्रहणं क्रियते। घनाम्बु च वातश्च आकाशं च घनाम्बुवाताकाशानि। तानि प्रतिष्ठा आश्रयो यासां ता घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः। ([३]घनं च घनो मन्दो महान् आयत इत्यर्थः। अम्बु च जलं उदकमित्यर्थः वातशब्दोऽन्त्यदीपकः। तत एवं सम्बन्धनीयः। घनो घनवातः। अम्बु अम्बुवातः। वातस्तनुवातः इति महदपेक्षया तनुरिति सामर्थ्यगम्यः। अन्यः पाठः। सिद्धान्तपाठस्तु घनाम्बु च वातं चेति वातशब्दः सोपस्क्रियते। वातस्तनुवात इति वा।) सर्वा एता [४]भूमयो घनोदधिवलयप्रतिष्ठाः। घनोदधिवलयं घनवातवलयप्रतिष्ठम्। घनवातवलयं तनुवातवलयप्रतिष्ठम्। तनुवातवलयमाकाशप्रतिष्ठम्। आकाशमात्मप्रतिष्ठं तस्यैवाधाराधेयत्वात्। त्रीण्यप्येतानि वलयानि प्रत्येकं विंशतियोजनसहस्रबाहुल्यानि। सप्तग्रहणं संख्यान्तरनिवृत्त्यर्थम्। सप्त भूमयो नाष्टौ न नव चेति। अधोऽधोवचनं तिर्यक्प्रचयनिवृत्त्यर्थम्।

**किं ता भूमयो नारकाणां सर्वत्रावासा आहोस्वित्क्वचित्क्वचिदिति तन्निर्धारणार्थमाह–**

## तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपंचदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥२।

तासु रत्नप्रभादिषु भूमिषु नरकाण्यनेन संख्यायन्ते यथाक्रमम्। रत्नप्रभायां त्रिंशन्नरकशतसहस्राणि, शर्कराप्रभायां पञ्चविंशतिर्नरकशतसहस्राणि, वालुकाप्रभायां पञ्चदश नरकशतसहस्राणि, पङ्कप्रभायां दश नरकशतसहस्राणि, धूमप्रभायां त्रीणि नरकशतसहस्राणि, तमःप्रभायां पञ्चोनमेकं नरकशतसहस्रं,

---

१. अत्र वालुकास्थाने वालिका इति पाठोऽपि दृश्यते। तथा वालुकाया वालिकेऽत्यभिधा ज्ञातव्या। २. स शब्दो येषां ते तच्छब्दास्तेषां भावस्ताच्छब्द्यमिति व्युत्पत्त्या रत्नप्रभादिशब्दवाच्यत्वमित्यर्थः। ३. चतुष्कोणकंसस्थः पाठस्तालपत्रपुस्तके एव वर्तते। ४. एतेषां सप्तनरकाणां नामान्तराणि च भवन्ति। प्रथमा भूमिर्घम्मा। द्वितीया वंशा। तृतीया शैला शिला वा। चतुर्थी अंजना। पंचमी अरिष्टा। षष्ठी मघवी। सप्तमी माघवी।

महातमःप्रभायां पञ्च नरकाणि। रत्नप्रभायां नरकप्रस्तारास्त्रयोदश। ततोऽध आ सप्तम्या द्वौ द्वौ नरकप्रस्तारौ हीनौ। इतरो विशेषो लोकानुयोगतो वेदितव्यः।

**अथ तासु भूमिषु नारकाणां कः प्रतिविशेष इत्यत आह–**

### नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥३॥

लेश्यादयो व्याख्यातार्थाः। अशुभतरा इति प्रकर्षनिर्देशः। तिर्यग्गतिविषयाशुभलेश्याद्यपेक्षया, अधोऽधः स्वगत्यपेक्षया च वेदितव्यः। नित्यशब्द आभीक्ष्ण्यवचनः। नित्यमशुभतरा लेश्यादयो येषां ते नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया नारकाः। प्रथमाद्वितीययोः कापोती लेश्या, तृतीयायामुपरिष्टात्कापोती अधो नीला, चतुर्थ्यां नीला, पञ्चम्यामुपरि नीला अधः कृष्णा, षष्ठ्यां कृष्णा, सप्तम्यां परमकृष्णा। स्वायुषः प्रमाणावधृता द्रव्यलेश्या उक्ताः। भावलेश्यास्तु अन्तर्मुहूर्त–परिवर्तिन्यः। परिणामाः स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाः क्षेत्रविशेषनिमित्तवशादतिदुःखहेतवोऽशुभतराः। देहाश्च तेषामशुभनामकर्मोदयादत्यन्ताशुभतरा विकृताकृतयो हुण्डसंस्थाना दुर्दर्शनाः। तेषामुत्सेधः – प्रथमायां सप्त धनूंषि, त्रयो हस्ताः षडंगुलयः। अधोऽधो द्विगुणद्विगुण उत्सेधः। अभ्यन्तरासद्वेद्योदये सति अनादिपारिणामिक–शीतोष्णबाह्यनिमित्तजनिताः सुतीव्रा वेदना भवन्ति नारकाणाम्। प्रथमाद्वितीयातृतीया–चतुर्थीषु उष्णवेदनान्येव नरकाणि। पंचम्यामुपरि उष्णवेदने द्वे नरकशतसहस्रे। अधः शीतवेदनमेकं शतसहस्रम्। षष्ठीसप्तम्योः शीतवेदनान्येव। शुभं करिष्याम इति अशुभतरमेव विकुर्वन्ति, सुखहेतूनुत्पादयाम इति दुःखहेतूनेवोत्पादयन्ति। त एते भावा अधोऽधोऽशुभतरा वेदितव्याः।

किमेतेषां नारकाणां शीतोष्णजनितमेव दुःखमुतान्यथापि भवतीत्यत आह–

### परस्परोदीरितदुःखाः ॥४॥

कथं परस्परोदीरितदुःखत्वं नारकाणाम्? भवप्रत्ययेनावधिना मिथ्यादर्शनोदयाद्विभङ्गव्यपदेशभाजा च दूरादेवं दुःखहेतूनवगम्योत्पन्नदुखाः, प्रत्यासत्तौ परस्परालोकनाच्च प्रज्वलितकोपाग्नयः, पूर्वभवानुस्मरणाच्चातितीव्रानुबद्धवैराश्चश्वशृगालादिवत्स्वाभिघाते[५] प्रवर्तमानाः स्वविक्रियाकृतासि–वासिपरशुभिण्डिमालशक्तितोमरकुन्तायोघनादिभिरायुधैः स्वकरचरणदशनैश्च छेदनभेदनतक्षणदंशनादिभिः परस्परस्यातितीव्रं दुःखमुत्पादयन्ति।

**किमेतावानेव दुःखोत्पत्तिकारणप्रकार उतान्योऽपि कश्चिदस्तीत्यत आह–**

### संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥५॥

देवगतिनामकर्मविकल्पस्यासुरत्वसंवर्तनस्य कर्मण उदयादस्यन्ति परानित्यसुराः। पूर्वजन्मनि सम्भावितेनातितीव्रेण संक्लेशपरिणामेन यदुपार्जितं पापकर्म तस्योदयात्सततं क्लिष्टाः संक्लिष्टा असुराः संक्लिष्टासुराः। संक्लिष्टा इति विशेषणान्न सर्वे असुरा नारकाणां दुःखमुत्पादयन्ति। किं तर्हि ? अम्बावरीषादय एव केचनेति। अवधिप्रदर्शनार्थं प्राक्चतुर्थ्या इति विशेषणमुपरि तिसृषु पृथ्वीषु

---

५. स्वैः क्रियमाणाभिघाते।

संक्लिष्टासुरा बाधाहेतवो नातः परमिति प्रदर्शनार्थम्। चशब्दः पूर्वोक्तदुःखहेतुसमुच्चयार्थः। सुतप्तायोरसपायननिष्टप्तायस्तम्भालिङ्गनकूटशाल्मल्यारोहणावतरणायोघनाभिघातवासीक्षुरतक्षणक्षार-तप्ततैलावसेचनायः कुम्भीपाकाम्बरीषभर्जनवैतरणीमज्जनयन्त्रनिष्पीडनादिभिर्नारकाणां दुःखमुत्पादयन्ति। एवं छेदनभेदनादिभिः शकलीकृतमूर्तीनामपि तेषां न मरणमकाले भवति। कुतः? अनपवर्त्यायुष्कत्वात्।

**यद्येवं, तदेव तावदुच्यतां नारकाणामायुःपरिमाणमित्यत आह—**

**तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥**

यथाक्रममित्यनुवर्तते। तेषु नरकेषु भूमिक्रमेषु यथासंख्यमेकादयः स्थितयोऽभिसम्बध्यन्ते। रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिरेकसागरोपमा। शर्कराप्रभायां त्रिसागरोपमा। वालुकाप्रभायां सप्तसागरोपमा। पङ्कप्रभायां दशसागरोपमा। धूमप्रभायां सप्तदशसागरोपमा। तमःप्रभायां द्वाविंशतिसागरोपमा। महातमःप्रभायां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा इति। परा उत्कृष्टेत्यर्थः। सत्त्वानामिति वचनं भूमिनिवृत्यर्थम्। भूमिषु [६]सत्त्वानामियं स्थितिः। न भूमीनामिति।

**उक्तः सप्तभूमिविस्तीर्णोऽधोलोकः। इदानीं तिर्यग्लोको वक्तव्यः। कथं पुनस्तिर्यग्लोकः? यतोऽसंख्येयाः स्वयम्भूरमणपर्यन्तास्तिर्यक्प्रचयविशेषेणावस्थिता द्वीपसमुद्रास्ततस्तिर्यग्लोक इति। के पुनस्तिर्यग्व्यवस्थिता इत्यत आह—**

**जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥७॥**

जम्बूद्वीपादयो द्वीपाः। लवणोदादयः समुद्राः। यानि लोके शुभानि नामानि तन्नामानस्ते। तद्यथा— (१) जम्बूद्वीपो द्वीपः। लवणोदः समुद्रः। (२) धातकीखण्डो द्वीपः। कालोदः समुद्रः। (३) पुष्करवरो द्वीपः। पुष्करवरः समुद्रः। (४) वारुणीवरो द्वीप। वारुणीवरः समुद्रः। (५) क्षीरवरो द्वीपः। क्षीरवरः समुद्रः। (६) घृतवरो द्वीपः। घृतवरः समुद्रः। (७) इक्षुवरो द्वीपः। इक्षुवरः समुद्रः। (८) नन्दीश्वरवरो द्वीपः। नन्दीश्वरवरः समुद्र। (९) अरुणवरो द्वीपः। अरुणवरः समुद्रः। इत्येवमसंख्येया द्वीपसमुद्राः स्वयम्भूरमणपर्यन्ता वेदितव्याः।

**अमीषां विष्कम्भसन्निवेशसंस्थानविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

**द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८॥**

---

६. तेषु नरकेषु मद्यपायिनो, मांसभक्षकाः प्राणिघातका, असत्यवादिनः परस्त्रीलंपटा, महालोभाभिभूता, रात्रिभोजिनः स्त्रीबालवृद्धर्षिविश्वासघातका, जिनधर्मनिंदका, रौद्रध्यानाविष्टा इत्यादिपापकर्मानुष्ठातारः समुत्पद्यन्ते। उपरिपादा अधोमुखाः सर्वेऽपि ते समुत्पद्याधः पतन्ति दीर्घकालं दुःखान्यनुभवन्ति च। अन्यच्च- असंज्ञिनः प्रथमनरकमेव गच्छन्ति। सरीसृपा द्वितीयनरकमेव गच्छन्ति। पक्षिणस्तृतीयमेव। भुजगाश्चतुर्थमेव। सिंहाः पंचममेव। स्त्रियः षष्ठमेव। मत्स्या मनुष्याः सप्तममेव। यदि प्रथमनरकं कश्चिदविरतं गच्छति तर्हि अष्टवारान्। यदि द्वितीयं नरकं गच्छति। तर्हि सप्तवारान्। तृतीयं षड्वारान्। चतुर्थं पंचवारान्। पंचमं चतुर्वारान्। षष्ठं त्रीन्वारान्। सप्तमं द्वौ वाराविति। सप्तमान्नरकान्निर्गतस्तिर्यगेव भवति। पुनश्च नरकं गच्छति। षष्ठान्निर्गतो मनुष्यत्वं यदि प्राप्नोति तर्हि देशव्रतत्वं नाप्नोति। सम्यक्त्वं न तु निषिध्यते। पंचमान्निर्गतो देशव्रतित्वं लभते न महाव्रतित्वं। चतुर्थान्निर्गतः कोऽपि निर्वाणमपि गच्छति। तृतीयाद्द्वितीयात्प्रथमाच्च विनिर्गतः कश्चित्तीर्थकरोऽपि भवति।

द्विर्द्विरिति वीप्सायां वृत्तिवचनं विष्कम्भद्विगुणत्वव्याप्त्यर्थम्। आद्यस्य द्वीपस्य यो विष्कम्भस्तद्द्विगुणविष्कम्भो लवणजलधिः। तद्द्विगुणविष्कम्भो द्वितीयो द्वीपः। तद्द्विगुणविष्कम्भो द्वितीयो जलधिरिति। द्विर्द्विर्विष्कम्भो येषां ते द्विर्द्विर्विष्कम्भाः।

पूर्वपूर्वपरिक्षेपिवचनं ग्रामनगरादिवद्विनिवेशो मा विज्ञायीति। वलयाकृतिवचनं चतुरस्रादिसंस्थानान्तरनिवृत्त्यर्थम्।

**अत्राह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसंस्थानविष्कम्भा वक्तव्यास्तन्मूलत्वादितरविष्कम्भादिविज्ञानस्येत्युच्यते—**

### तन्मध्ये [७]मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥

तेषां मध्ये तन्मध्ये। केषां? पूर्वोक्तद्वीपसमुद्राणाम्। नाभिरिव नाभिर्मध्यम्। मेरुर्नाभिर्यस्य स मेरुनाभिः। वृत्त आदित्यमण्डलोपमानः। शतानां सहस्रं शतसहस्रम्। योजनानां शतसहस्रं योजनशतसहस्रम्। योजनशतसहस्रं विष्कम्भो यस्य सोऽयं योजनशतसहस्रविष्कम्भः। कोऽसौ? जम्बूद्वीपः। कथं जम्बूद्वीपः? जम्बूवृक्षोपलक्षिततत्वात्। उत्तरकुरूणां मध्ये जम्बूवृक्षोऽनादिनिधनः पृथिवीपरिमाणोऽकृत्रिमः सपरिवारस्तदुपलक्षितोऽयं द्वीपः।

**तत्र जम्बूद्वीपे षड्भिः कुलपर्वतैर्विभक्तानि सप्त क्षेत्राणि कानि तानीत्यत आह—**

### भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि[८] ॥१०॥

भरतादयः सञ्ज्ञा अनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्ताः। तत्र १. भरतवर्षः क्व सन्निविष्टः? दक्षिणदिग्भागे हिमवतोऽद्रेस्त्रयाणां च समुद्राणां मध्ये आरोपितचापाकारो **भरतवर्षः।** विजयार्द्धेन[९] गङ्गासिंधुभ्यां च विभक्तः षट्खण्डः। क्षुद्रहिमवन्तमुत्तरेण, दक्षिणेन महाहिमवन्तं, पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये २. **हैमवतवर्षः।** निषधस्य दक्षिणतो, महाहिमवत उत्तरतः, पूर्वापरसमुद्रयोरन्तराले ३. हरिवर्षः। निषधस्योत्तरान्नीलतो दक्षिणतः, पूर्वापरसमुद्रयोरन्तरे ४. विदेहस्य सन्निवेशो द्रष्टव्यः। नीलत उत्तरो रुक्मिणो दक्षिणः पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये ५. रम्यकवर्षः। रुक्मिण उत्तराच्छिखरिणो दक्षिणात्पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये सन्निवेशे ६. हैरण्यवतवर्षः। शिखरिण उत्तरतस्त्रयाणां च समुद्राणां मध्ये ७. ऐरावतवर्षः। स विजयार्द्धेन रक्तारक्तोदाभ्यां च विभक्तः षट्खण्डः।

**षट्कुलपर्वता इत्युक्तं, के पुनस्ते, कथं वा व्यवस्थिता इत्यत आह—**

### तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो

---

**७.** मेरुनाभिः—मेरुः सुदर्शननामा कनकपर्वत एकसहस्रयोजनानि भूमिमध्ये स्थितः। नवनवति–सहस्रयोजनानि बहिरुन्नतः। श्रीभद्रशालवनादुपरि पंचशतयोजनलभ्यनन्दनवनः। नंदनवनात्त्रिषष्टियोजनसहस्र–संप्राप्यसौमनसवनः। सौमनसवनात्सार्धपंचत्रिंशत्सहस्रयोजनगम्यपांडुकवनः। चत्वारिंशद्योजनोन्नत–चूलिकः। सा चूलिका सार्धपंचत्रिंशत्सहस्रयोजनमध्ये एव गणनीया। स एवंविधो मेरुर्नाभिर्मध्यप्रदेशो यस्य जंबूद्वीपस्य स मेरुनाभिः। **८.** क्षेत्राणि क्षियंति अधिवसन्ति प्राणिनो येष्विति क्षेत्राणि। **९.** तत्र विजयार्द्धपर्वते च भरतक्षेत्रसंबंधिम्लेच्छखंडेषु चतुर्थकालस्य आद्यन्तसदृशः कालो वर्तते। तत्रोत्कर्षेण पंचशतधनुरुत्सेधमंगं भवति। जघन्येन तु सप्तहस्तप्रमाणं शरीरं भवति। उत्कर्षेण कोटिपूर्वमायुर्भवति। उक्तं च—भरतम्लेच्छखंडेषु विजयार्धनगेषु च। चतुर्थसमयाद्यंततुल्यकालो न चापरः। जघन्येन पंचविंशत्यग्रशतवर्षाणामायुर्भवति।

## [10]वर्षधरपर्वताः ॥११॥

तानि क्षेत्राणि विभजन्त इत्येवंशीलास्तद्विभाजिनः। पूर्वापरायता इति पूर्वापरकोटिभ्यां लवणजल-धिस्पर्शिन इत्यर्थः। हिमवदादयोऽनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्तसञ्ज्ञा, वर्षविभागहेतुत्वाद्वर्षधरपर्वता इत्युच्यन्ते। तत्र क्व हिमवान्?। भरतस्य हैमवतस्य च सीमनि व्यवस्थितः। क्षुद्रहिमवान् योजनशतोच्छ्रायः। हैमवतस्य हरिवर्षस्य च विभागकरो महाहिमवान् द्वियोजनशतोच्छ्रायः। विदेहस्य दक्षिणतो हरिवर्षस्योत्तरतो निषधो नाम पर्वतश्चतुर्योजनशतोच्छ्रायः। उत्तरे त्रयोऽपि पर्वताः स्ववर्षविभाजिनो व्याख्याताः। उच्छ्रायश्च तेषां चत्वारि द्वे एकं च योजनशतं वेदितव्यम्। सर्वेषां पर्वतानामुच्छ्रायस्य चतुर्भागोऽवगाहः।

**तेषां वर्णविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः[11] ॥१२॥

त एते हिमवदादयः पर्वता हेमादिमया वेदितव्या यथाक्रमम्। हेममयो हिमवान् चीनपट्टवर्णः। अर्जुनमयो महाहिमवान् शुक्लवर्णः। तपनीयमयो निषधस्तरुणादित्यवर्णः। वैडूर्यमयो नीलो मयूरग्रीवाभः। रजतमयो रुक्मी शुक्लः। हेममयः शिखरी चीनपट्टवर्णः।

**[12]पुनरपि तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥१३॥

नानावर्णप्रभादिगुणोपेतैर्मणिभिर्विचित्राणि पार्श्वाणि येषां ते मणिविचित्रपार्श्वाः। अनिष्टस्य संस्थानस्य निवृत्यर्थमुपर्यादिवचनं क्रियते। चशब्दो मध्यसमुच्चयार्थः। य एषां मूले विस्तारः स उपरि मध्ये च तुल्यः।

**तेषां मध्ये लब्धास्पदा ह्रदा उच्यन्ते—**

## पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीकाह्रदास्तेषामुपरि ॥१४ ॥

पद्मः, महापद्मः, तिगिंछः, केसरी, महापुण्डरीकः, पुण्डरीक इति तेषां हिमवदादीनामुपरि यथाक्रममेते ह्रदा वेदितव्याः।

**तत्राद्यस्य संस्थानविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥१५ ॥

प्राक्प्रत्यक् योजनसहस्रायाम उदगवाक् पञ्चयोजनशतविस्तारो वज्रमयतलो विविधमणिकनक-विचित्रतटः पद्मनामा ह्रदः।

**तस्यावगाहप्रक्लृप्त्यर्थमिदमुच्यते—**

## दशयोजनावगाहः ॥१६॥

अवगाहोऽधःप्रवेशो निम्नता। दशयोजनान्यवगाहोऽस्य दशयोजनावगाहः। तन्मध्ये किम्?

---

१०. वर्षधरपर्वताः—वर्षाणां भरतादीनां सप्तानां क्षेत्राणां विभागप्रत्ययत्वाद्वर्षधराः। **११.** हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजत-हेमभिर्निर्वृत्ता हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः। प्रकृतेर्विकारोऽवयवो वा भक्ष्याच्छादनयोर्मयडिति साधुः। **१२.** पुनरपि तद्विशेषणार्थमाह इत्यपि पाठः।

## तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥

योजनप्रमाणं योजनं, क्रोशायामपत्रत्वात्क्रोशद्वयविष्कम्भकर्णिकत्वाच्च योजनायामविष्कम्भम्। जलतलात्क्रोशद्वयोच्छ्रायनालं तावद्बहुलपत्रनिचयं पुष्करमवगन्तव्यम्।

**इतरेषां ह्रदानां पुष्कराणां चायामादिनिर्ज्ञापनार्थमाह—**

## तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥१८॥

स च तच्च ते, तयोर्द्विगुणास्तद्द्विगुणास्तद्द्विगुणद्विगुणा इति द्वित्वं व्याप्तिज्ञापनार्थम्। केन द्विगुणाः? आयामादिना। पद्मह्रदस्य द्विगुणायामविष्कम्भावगाहो महापद्मो ह्रदः। तस्य द्विगुणायाम-विष्कम्भावगाहस्तिगिञ्छो ह्रदः। पुष्कराणि च किं? द्विगुणानि द्विगुणानीत्यभिसम्बध्यन्ते।

**तन्निवासिनीनां देवीनां सञ्ज्ञाजीवितपरिवारप्रतिपादनार्थमाह—**

## तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥१९॥

तेषु पुष्करेषु कर्णिकामध्यदेशनिवेशिनः शरद्विमलपूर्णचन्द्रद्युतिहराः क्रोशायामाः क्रोशार्द्धविष्कम्भा देशोनक्रोशोत्सेधाः प्रासादास्तेषु निवसन्तीत्येवंशीलास्तन्निवासिन्यो देव्यः [१३]श्रीह्रीधृतिकीर्ति-बुद्धिलक्ष्मी-संज्ञिकास्तेषु पद्मादिषु यथाक्रमं वेदितव्याः। पल्योपमस्थितय इत्यनेनायुषः प्रमाणमुक्तम्। समाने स्थाने भवाः सामानिकाः। सामानिकाश्च परिषदश्च सामानिकपरिषदः। सह सामानिक-परिषद्भिर्वर्तन्त इति ससामानिकपरिषत्काः। तस्य पद्मस्य परिवारपद्मेषु प्रासादानामुपरि सामानिकाः परिषदश्च वसन्ति।

**यकाभिः सरिद्भिस्तानि क्षेत्राणि प्रविभक्तानि, ता उच्यन्ते—**

## गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकांतासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥२०॥

सरितो न वाप्यः। ताः किमन्तरा उत समीपाः? इत्यत आह–तन्मध्यगाः। तेषां क्षेत्राणां मध्यं, तन्मध्यं, तन्मध्येन वा गच्छन्तीति तन्मध्यगाः।

**एकत्र सर्वासां प्रसङ्गनिवृत्त्यर्थं दिग्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥

द्वयोर्द्वयोः सरितोरेकैकं क्षेत्रं विषय इति वाक्यविशेषाभिसम्बन्धादेकत्र सर्वासां प्रसङ्गनिवृत्तिः कृता। पूर्वाः पूर्वगा इति वचनं दिग्विशेषप्रतिपत्त्यर्थम्। तत्र पूर्वा याः सरितस्ताः पूर्वगाः। पूर्वं जलधिं गच्छन्तीति पूर्वगाः। किमपेक्षं पूर्वत्वं? सूत्रनिर्देशापेक्षम्। यद्येवं गङ्गासिन्ध्वादयः सप्त पूर्वगा इति प्राप्तम् ? नैष दोषः। द्वयोर्द्वयोरित्यभिसम्बन्धात् द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगा इति वेदितव्याः।

**इतरासां दिग्विभागप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

---

१३. तत्र श्रीह्रीधृतयस्तिस्रो देव्यो निजनिजपरिवारसहिताः सौधर्मेन्द्रस्य संबद्धाः सौधर्मेन्द्रसेवापरा वर्तन्ते। कीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यस्तिस्रः सपरिवारा ईशानेन्द्रस्य संबद्धा वर्तन्ते। एवं पंचस्वपि मेरुषु ये षट् षट् कुलपर्वता वर्तन्ते तेषु षट् षट् देव्यो ज्ञातव्याः।

## शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥

द्वयोर्द्वयोर्वा अवशिष्टास्ता अपरगाः प्रत्येतव्याः। अपरसमुद्रं गच्छन्तीत्यपरगाः। तत्र पद्महृदप्रभवा पूर्वतोरणद्वारनिर्गता गङ्गा। अपरतोरणद्वारनिर्गता सिन्धुः। उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता रोहितास्या। महापद्महृदप्रभवा अवाच्यतोरणद्वारनिर्गता रोहित्। उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता हरिकान्ता। तिगिञ्छहृदप्रभवा दक्षिणतोरणद्वारनिर्गता हरित्। उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता सीतोदा। केसरिहृदप्रभवा अवाच्यतोरणद्वारनिर्गता सीता। उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता नरकान्ता। महापुण्डरीकहृदप्रभवा दक्षिणतोरणद्वारनिर्गता नारी। उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता रूप्यकूला। पुण्डरीकहृदप्रभवा अवाच्यतोरणद्वारनिर्गता सुवर्णकूला। पूर्वतोरणद्वार-निर्गता रक्ता। अपरतोरणद्वारनिर्गता रक्तोदा।

**तासां परिवारप्रतिपादनार्थमाह—**

## चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥

किमर्थं गङ्गासिन्ध्वादिग्रहणं क्रियते? नदीग्रहणार्थम्। प्रकृतास्ता अभिसम्बध्यन्ते, नैवं शङ्क्यम्। अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति अपरगाणामेव ग्रहणं स्यात्। गंगादिग्रहणमेवास्तीति चेत्पूर्वगाणामेव ग्रहणं स्यात्। अत उभयीनां ग्रहणार्थं गंगासिन्ध्वादिग्रहणं क्रियते। नदीग्रहणं द्विगुणा द्विगुणा इत्यभिसम्बन्धार्थम्। गङ्गा चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता। सिन्धुरपि। एवमुत्तरा अपि नद्यः[१४] प्रतिक्षेत्रं द्विगुणा द्विगुणा भवन्ति, आ विदेहान्तात्। तत उत्तरा अर्द्धार्द्धहीनाः।

**उक्तानां क्षेत्राणां विष्कम्भप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## भरतः षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः षट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥२४॥

षडधिका विंशतिः षड्विंशतिः। षड्विंशतिरधिकानि येषु तानि षड्विंशानिपञ्चयोजनशतानि विस्तारो यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारो भरतः। किमेतावानेव? नेत्याह। षट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य विस्तारोऽस्येत्यभिसम्बध्यते।

**इतरेषां विष्कम्भविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥२५॥

ततो भरतात् द्विगुणो द्विगुणो विस्तारो येषां त इमे तद्द्विगुणद्विगुणविस्ताराः। के ते? वर्षधरवर्षाः। किं सर्वे? नेत्याह, विदेहान्ता इति।

**अथोत्तरेषां कथमित्यत आह—**

## उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥२६॥

[१५]उत्तरा ऐरावतादयो नीलान्ता भरतादिभिर्दक्षिणैस्तुल्या द्रष्टव्याः। अतीतस्य सर्वस्यायं विशेषो वेदितव्यः। तेन हृदपुष्करादीनां तुल्यता योज्या।

**अत्राह, उक्तेषु भरतादिषु क्षेत्रेषु मनुष्याणां किं तुल्योऽनुभवादिराहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—**

---

१४. परिवारनद्यः।

## भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥

वृद्धिश्च ह्रासश्च वृद्धिह्रासौ। काभ्यां? षट्समयाभ्याम्। कयोः? भरतैरावतयोः। न तयोः क्षेत्रयोर्वृद्धिह्रासौ स्तोऽसम्भवात्। तत्स्थानां मनुष्याणां वृद्धिह्रासौ भवतः। अथवा अधिकरणनिर्देशो भरते ऐरावते च मनुष्याणां वृद्धिह्रासाविति। किंकृतौ वृद्धिह्रासौ? अनुभवायुःप्रमाणादिकृतौ। अनुभव उपभोगः, आयुर्जीवितं प्रमाणं, शरीरोत्सेध इत्येवमादिभिर्वृद्धिह्रासौ मनुष्याणां भवतः। किंहेतुकौ पुनस्तौ? कालहेतुकौ। स च कालो द्विविधः। उत्सर्पिणी अवसर्पिणी चेति। तद्भेदाः प्रत्येकं षट्। अन्वर्थसञ्ज्ञे चैते। अनुभवादिभिरुत्सर्पणशीला उत्सर्पिणी। तैरेवावसर्पणशीला अवसर्पिणी। तत्रावसर्पिणी षड्विधा– सुषमसुषमा। सुषमा। सुषमदुष्षमा। दुष्पमसुषमा। दुष्षमा। अतिदुष्षमा। उत्सर्पिण्यपि अतिदुष्षमाद्या सुषमसुषमान्ता षड्विधैव भवति। अवसर्पिण्याः परिमाणं दशसागरकोटी–कोट्यः। उत्सर्पिण्या अपि तावत्य एव। सोभयी कल्प इत्याख्यायते। तत्र सुषमसुषमा चतस्रः सागरोपमकोटीकोट्यः। तदादौ मनुष्या उत्तरकुरुमनुष्यतुल्याः। ततः क्रमेण हानौ सत्यां सुषमा भवति तिस्रः सागरोपमकोटीकोट्यः। तदादौ मनुष्या हरिवर्षमनुष्यसमाः। ततः क्रमेण हानौ सत्यां सुषमदुष्षमा भवति द्वे सागरोपमकोटीकोट्यौ। तदादौ मनुष्या हैमवतकमनुष्यसमाः। ततः क्रमेण हानौ सत्यां दुष्षमसुषमा भवति एकसागरोपम–कोटीकोटीद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रोना [१६]तदादौ मनुष्या विदेहजनतुल्या भवन्ति। ततः क्रमेण हानौ सत्यां दुष्षमा भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि ततः क्रमेण हानौ सत्यां अतिदुष्षमा भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि। एवमुत्सर्पिण्यपि विपरीतक्रमा वेदितव्या।

**अथेतरासु भूमिषु काऽवस्थेत्यत आह–**

## ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥

ताभ्यां भरतैरावताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता भवन्ति, न हि तत्रोत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ स्तः।

**किं तासु भूमिषु मनुष्यास्तुल्यायुष आहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह–**

---

**१५.** उत्तरादक्षिणतुल्याः–अस्यायमर्थः–भरतक्षेत्रस्य यावान्विस्तारस्तावानैरावतक्षेत्रविस्तारः। हिमवत्पर्वतस्य यावान्विस्तारस्तावान्शिखरिपर्वतविस्तारः। हैमवतक्षेत्रस्य यावान्विस्तारस्तावान्हैरण्यवतक्षेत्रस्य विस्तारः। महाहिमवत्पर्वतस्य यावान्विस्तारस्तावान् रुक्मिपर्वतविस्तारः। हरिक्षेत्रस्य यावान्विस्तारस्तावान्रम्यकक्षेत्रस्य विस्तरः। निषधपर्वतस्य यावान्विस्तरस्तावान्नीलपर्वतविस्तारः। एवमैरावतादिस्थितं ह्रदपुष्करादिकं भरतादिसदृशं ज्ञातव्यम्। **१६.** तदादौ मनुष्या विदेहजनतुल्या इति तस्यादौ मानवा विदेहमानवसदृशाः पंचशतधनुरुन्नतास्तदा चतुर्विंशतिस्तीर्थकरा उत्पद्यन्ते निर्वाणं यान्ति च। द्वादश चक्रवर्तिनो, नव बलभद्राः नव वासुदेवाः नव प्रतिवासुदेवा उत्पद्यन्ते। एकादश रुद्राः नवनारदाश्चोत्पद्यन्ते। चतुर्थकालस्यान्ते विंशत्यधिकशतवर्षायुषो मनुष्याः। सप्तहस्तोन्नताश्च। दुष्षमनामकः पंचमकालः एकविंशति–वर्षसहस्रप्रमाणस्तदादौ विंशत्यधिकशतवर्षायुषो मनुष्याः सप्तहस्तोन्नताः। तदन्ते विंशति वर्षायुषो मनुष्याः सार्द्धत्रयहस्तोन्नताश्च। ततोऽतिदुष्षमनामा षष्ठः कालः प्रवर्तते। स एकविंशतिवर्षसहस्राणि प्रवर्तते। तदादौ विंशतिवर्षायुषो मनुष्या एकहस्तोन्नताश्च। तदन्ते षोडशवर्षायुषो मनुष्या एकहस्तोन्नताश्च, तदन्ते प्रलयकालो भवति। तदुक्तं–सरसं विरसं तीक्ष्णं रूक्षमुष्णं विषं विषम्। क्षारमेघाः करिष्यन्ति सप्त सप्त दिनान्यलम्॥ सर्वस्मिन्नार्यखंडे प्रलयं गते सति कुलमनुष्ययुगलानि उद्ध्रियन्ते।

## एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवका: ॥२९॥

हैमवते भवा हैमवतका इत्येवं वुञि सति मनुष्यसम्प्रत्ययो भवति एवमुत्तरयोरपि। हैमवतकादयस्त्रय:। एकादयस्त्रय:। तत्र यथासंख्यमभिसम्बन्ध: क्रियते। एकपल्योपमस्थितयो हैमवतका:। द्विपल्योपमस्थितयो हारिवर्षका:। त्रिपल्योपमस्थितयो दैवकुरवका इति। तत्र पंचसु हैमवतेषु सुषमदुष्षमा सदाऽवस्थिता तत्र मनुष्या एकपल्योपमायुषो द्विधनु:सहस्रोच्छ्रिताश्चतुर्थभक्ताहारा[17] नीलोत्पलवर्णा:। पञ्चसु हरिवर्षेषु सुषमा सदाऽवस्थिता। तत्र मनुष्या द्विपल्योपमायुषश्चतुश्चापसहस्रोत्सेधा: षष्ठभक्ताहारा: शंखवर्णा:। पञ्चसु देवकुरुषु सुषमसुषमा सदाऽवस्थिता। तत्र मनुष्यास्त्रिपल्योपमायुष: षड्धनु:-सहस्रोच्छ्राया अष्टमभक्ताहारा: कनकवर्णा:।

**अथोत्तरेषु काऽवस्थेत्यत आह–**

## तथोत्तरा: ॥३०॥

यथा दक्षिणा व्याख्यातास्तथैवोत्तरा वेदितव्या:। हैरण्यवतका हैमवतकैस्तुल्या:। राम्यका हारिवर्षकैस्तुल्या:। दैवकुरवकैरौत्तरकुरवका: समाख्याता:।

**अथ विदेहेष्ववस्थितेषु का स्थितिरित्यत्रोच्यते–**

---

चित्राभूमि: समा प्रादुर्भवति। अत्रावसर्पिणी समाप्ता दशकोटिकोटिसागरोपमप्रमाणा। तदनंतरं दशकोटीकोटीसागरोपमप्रमाणो उत्सर्पिणीकाल: प्रवर्तते। तस्यादौ एकोनपंचाशद्दिनपर्यन्तं क्षीरमेघा अहर्निशं वर्षन्ति। तदनंतरं तावद्दिनपर्यन्तं अमृतमेघा वर्षन्ति। पृथिवी रूक्षतां मुञ्चति। तन्मेघमाहात्म्येन वर्षादिगुणो भवति। औषधितरुगुल्मतृणादीनि सरसानि भवन्ति। पूर्वोक्तानि युगलानि गुहादिभ्यो निर्गत्य औषध्यादिरसानुपजीव्य जीवन्ति। स काल: एकविंशतिवर्षसहस्राणि प्रवर्तते। तदादौ षोडशवर्षायुषो मनुष्या एकहस्तोत्सेधाश्च तस्य कालस्यान्ते विंशतिवर्षायुषो मनुष्या: सार्धत्रयहस्तोन्नताश्च। तदनंतरं दुष्षमानामक: काल: स एकविंशतिवर्षसहस्रप्रमाण:। तदादौ विंशतिवर्षायुषो मनुष्या: सार्धहस्तत्रयोत्सेधा: तस्य द्वितीयकालस्यान्ते वर्षसहस्रावशेषे स्थिते सति चतुर्दशकुलकरा उत्पद्यन्ते। तद्वर्षसहस्रमध्ये विपद्यन्ते। चतुर्दशस्य कुलकरस्य पुत्रस्तीर्थकरो भवति। तस्य तीर्थकरस्य पुत्रश्चक्रवर्ती भवति। ततो दुष्षमसुषमा कालस्तृतीयो भवति। तस्यादौ विंशत्यधिकशतवर्षायुषो मनुष्या भवन्ति। सप्तहस्तोत्सेधा भवन्ति। स काल: एककोटीकोटीसागरोपमप्रमाणो वर्तते। तन्मध्ये शलाकापुरुषा उत्पद्यन्ते। तस्य कालस्यान्ते कोटिपूर्वायुषो मनुष्या: सपादपंचशतधनुरुत्सेधा:। तदनंतरं सुषमदुष्षमा नाम चतुर्थ: काल: प्रवर्तते। स द्विकोटीकोटी-सागरोपमप्रमाण:। जघन्यभोगभूमिस्वभाव:। तथा सुषमानामक: पंचम: कालस्त्रिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाण:। तत्र मध्यमभोगभूमिस्वभाव:। तथा सुषमसुषमा षष्ठ: कालश्चतु:सागरोपमकोटीकोटीप्रमाण:। तत्रोत्तमभोगभूमिस्वभाव:। एवं चतुर्थपंचमषष्ठकालेषु ईतिरेकापि नास्ति। अहोरात्रिविभागो नास्ति। ज्योतिरंगकल्पवृक्षोद्योतेन सदैव दिवसो। मेघवृष्टिर्नास्ति। शीतबाधापि न वर्तते। आतपकष्टं कदाचिदपि नास्ति। क्रूरमृगबाधा नास्त्येव। अत्र दशसागरोपमकोटीकोटीप्रमाण उत्सर्पिणीकाल: समाप्त:। तदनन्तरं अवसर्पिणीकाल: प्रवर्तते स पूर्वोक्तलक्षणो ज्ञातव्य:। उत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां कालाभ्यामेक: कल्पो भवति। भोगभूमिजा मनुष्या: स्वभावेन मधुरभाषिणो भवन्ति। सर्वे कलाकुशला: सर्वेऽपि समभोगा अरजोऽम्बरा नि:स्वेदा: ईर्ष्यामात्सर्यादिरहिता:। बलित्वाबलित्वमुक्ता:। अनाचारकार्पण्यकोपाद्यरुचिग्लानिभयविषादकामज्वरोन्मादविरह-लालाशरीरमलनिद्रोन्मेषनिमेषदैन्यचिन्तानिष्टयोगेष्टवियोगान्तकजराराहिता:। क्षुतमात्रेण स्त्रियो म्रियन्ते। जृंभितमात्रेण पुरुषा: पंचत्वं प्राप्नुवन्ति। तत्र नपुंसक: कोऽपि नास्ति। मृगा: सर्वेऽपि विशिष्टतृणचारिण:। समानायुषश्च भवंतीति शेष:। **१७.** चतुर्थभक्ताहार एकान्तरेण भुक्ति:। षष्ठभक्ताहारो द्विदिनान्तरेण भुक्ति:। अष्टमभक्ताहारस्त्रिदिनान्तरेण भुक्ति:।

## विदेहेषु संख्येयकालाः ॥३१॥

सर्वेषु पञ्चसु[१८] महाविदेहेषु संख्येयकाला[१९] मनुष्याः। तत्र कालः [२०]सुषमदुःषमान्तोपमः सदाऽव-स्थितः। मनुष्याश्च पञ्चधनुःशतोत्सेधाः। नित्याहाराः। उत्कर्षेणैकपूर्वकोटीस्थितिकाः। जघन्येनान्त-र्मुहूर्तायुषः। तस्याश्च सम्बन्धे गाथां पठन्ति। [२१]पुव्वस्स दु परिमाणं सदरिं खलु कोडिसदसहस्साइं। छप्पण्णं च सहस्सा बोधव्वा वासकोडीणम् ॥१॥ ७०५६०००००००००००

**उक्तो भरतस्य विष्कम्भः। पुनः प्रकारान्तरेण तत्प्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥३२॥

जम्बूद्वीपविष्कम्भस्य योजनशतसहस्रस्य नवतिशतभागीकृतस्यैको भागो भरतस्य विष्कम्भः स पूर्वोक्त एव। उक्तं जम्बूद्वीपं परिवृत्य वेदिका[२२] स्थिता, ततः परो लवणोदः समुद्रो द्वियोजनशतसहस्र-वलयविष्कम्भः। ततः परो धातकीखण्डो द्वीपश्चतुर्योजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः।

**तत्र वर्षादीनां संख्याविधिप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## द्विर्धातकीखण्डे ॥३३ ॥

भरतादीनां द्रव्याणामिहाभ्यावृत्तिर्विवक्षिता। तत्र कथं सुच्? अध्याह्रियमाणक्रियाभ्यावृत्तिद्योतनार्थः सुच्। यथा द्विस्तावानयं प्रासादो मीयत इति। एवं द्विर्धातकीखण्डे भरतादयो मीयन्ते इति। तद्यथा - द्वाभ्यामिष्वाकारपर्वताभ्यां दक्षिणोत्तरायताभ्यां लवणोदकालोदवेदिकास्पृष्टकोटिभ्यां विभक्तो धातकीखण्डः-पूर्वापर इति। तत्र पूर्वस्य चापरस्य मध्ये द्वौ मन्दरौ। तयोरुभयतो भरतादीनि क्षेत्राणि हिमवदादयश्च वर्षधरपर्वताः। एवं द्वौ भरतौ द्वौ हिमवन्तौ इत्येवमादिसंख्यानं द्विगुणं वेदितव्यम्। जम्बूद्वीपहिमवदादीनां वर्षधराणां यो विष्कम्भस्तद्द्विगुणो धातकीखण्डे हिमवदादीनां वर्षधराणाम्। वर्षधराश्चक्रारवदवस्थिताः। अरविवरसंस्थानानि क्षेत्राणि। जम्बूद्वीपे यत्र जम्बूवृक्षः स्थितस्तत्र, धातकीखण्डे धातकीवृक्षः सपरिवारः। तद्योगाद्धातकीखण्ड इति द्वीपस्य नाम प्रतीतम्। तत्परिक्षेपी कालोद-समुद्रष्टङ्कच्छिन्नतीर्थोऽष्टयोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः। कालोदपरिक्षेपी पुष्करद्वीपः षोडशयोजनशत-

---

**१८.** विगतो विनष्टो देहः शरीरं मुनीनां येषु ते विदेहाः। प्रायेण मुक्तिपदप्राप्तिहेतुत्वात्। तेषु विदेहेषु पञ्चानां मेरूणां सम्बन्धिनः पञ्च पूर्वविदेहाः पञ्च अपरविदेहा उभये मिलित्वा पञ्चमहाविदेहाः कथ्यन्ते। **१९.** संख्यायते गणयितुं शक्यते इति संख्येयः। संख्येयः कालो जीवितं येषां ते संख्येयकालाः। **२०.** सुषमदुःषमाकालान्तकालसदृश इत्यर्थः। अत्र ''दुःषमसुषमादिः''। **२१.** पूर्वांगं वर्षलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा। ८४००००० । तद्वर्गितं भवेत्पूर्वं ७०५६०००००००००० तत्कोटी पूर्वकोट्यसौ। ७०५६०००००००००००००००००। पूर्वस्यायमर्थः – सप्ततिलक्षकोटिवर्षाणि षट्पञ्चाशत्सहस्र-कोटिवर्षाणि यदा भवन्ति तदैकं पूर्वमुच्यते। **२२.** जंबूद्वीपस्यान्ते या वेदिका वर्तते सा लक्षयोजनमध्ये गणनीया। समुद्रविस्तारमध्ये न गण्यते। एवं सर्वेषां द्वीपानां या वेदिकाः सन्ति ताः सर्वा अपि द्वीपविस्तारमध्ये गण्यन्ते न तु समुद्रविस्तारमध्ये। सर्वेऽप्यब्धय एकयोजनसहस्रगंभीराः। लवणोदस्यैव जलमुन्नतं वर्तते। अन्येषां जलं समं प्रसृतं भवति। लवणोदो लवणस्वादः। वारुणीसमुद्रो मद्यस्वादः। क्षीरोदो दुग्धस्वादः। घृतोदो घृतस्वादः। कालोदः पुष्करोदश्च स्वयंभूरमणश्चैते त्रयोऽम्बुस्वादाः। शेषाः सर्वेऽपि इक्षुस्वादाः। लवणोदः कालोदः स्वयंभूरमणाब्धिश्च त्रयः कच्छपमत्स्यादिसहिताः अन्ये सर्वेऽपि-निर्जलचराः।

सहस्त्रवलयविष्कम्भः।

**तत्र द्वीपाम्भोनिधिविष्कम्भद्विगुणपरिक्लृप्तिवद्धातकीखण्डवर्षादिद्विगुणवृद्धिप्रसङ्गे विशेषाव-धारणार्थमाह—**

## पुष्करार्द्धे च ॥३४॥

किं? द्विरित्यनुवर्तते। किमपेक्षा द्विरावृत्तिः —? जम्बूद्वीपभरतहिमवदाद्यपेक्षयैव। जम्बूद्वीपात्पुष्करार्द्धे द्वौ भरतौ द्वौ हिमवन्तौ इत्यादि। कुतः? व्याख्यानतः। यथा धातकीखण्डे हिमवदादीनां विष्कम्भस्तथा पुष्करार्द्धे हिमवदादीनां विष्कम्भो द्विगुण इति व्याख्यायते। नामानि तान्येव, इष्वाकारौ मन्दरौ च पूर्ववत्। यत्र जम्बूद्वीपे जम्बूवृक्षस्तत्र पुष्करं सपरिवारम्। तत एव तस्य द्वीपस्य नाम रूढं पुष्करद्वीप इति। अथ कथं पुष्करार्द्धसञ्ज्ञा? मानुषोत्तरशैलेन विभक्तार्द्धत्वात्पुष्करार्द्धसञ्ज्ञा।

**अत्राह किमर्थं जम्बूद्वीपहिमवदादिसंख्या द्विरावृत्ता पुष्करार्द्धे कथ्यते? न पुनः कृत्स्न एव पुष्करद्वीपे? इत्यत्रोच्यते—**

## प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥

पुष्करद्वीपबहुमध्यदेशभागी वलयवृत्तो मानुषोत्तरो नाम शैलः। तस्मात्प्रागेव मनुष्या न बहिरिति। ततो न बहिः पूर्वोक्तक्षेत्रविभागोऽस्ति। [२३]नास्मादुत्तरं कदाचिदपि विद्याधरा ऋद्धिप्राप्ता अपि मनुष्या गच्छन्ति अन्यत्रोपपादसमुद्घाताभ्यां। ततोऽस्यान्वर्थसञ्ज्ञा। एवं जम्बूद्वीपादिष्वर्द्धतृतीयेषु द्वयोश्च समुद्रयोर्मनुष्या वेदितव्याः।

**ते द्विविधाः—**

## आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥

गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्यन्ते इत्यार्याः। ते द्विविधाः ऋद्धिप्राप्तार्या, अनृद्धिप्राप्तार्याश्चेति। अनृद्धिप्राप्तार्याः पञ्चविधाः। क्षेत्रार्या जात्यार्याः[२४] कर्मार्याश्चारित्रार्या दर्शनार्याश्चेति। ऋद्धिप्राप्तार्याः सप्तविधाः। बुद्धिविक्रियातपोबलौषधरसाक्षीणभेदात्। म्लेच्छा द्विविधाः। अन्तर्द्वीपजाः कर्मभूमिजाश्चेति। [२५]तत्रान्तर्द्वीपा लवणोदधेरभ्यन्तरेष्टासु दिक्ष्वष्टौ, तदन्तरेषु चाष्टौ, हिमवच्छिखरिणोरुभयोश्च विजयार्द्धयोरन्तेष्वष्टौ।

---

**२३.** नास्मादुत्तरमिति—मानुषोत्तराद्बहिरर्द्धे मानवा न सन्ति। बहिर्भागे भरतक्षेत्रादिहिमवत्पर्वतादिविभागोऽपि नास्ति। मानुषोत्तराद्बहिर्विद्याधरा न गच्छन्ति। ऋद्धिप्राप्ता मुनयो न यान्ति। नद्योऽपि बहिर्न गच्छन्ति किंतु मानुषोत्तरपर्वतमाश्रित्य तिष्ठन्ति। मानवक्षेत्रत्रसाश्च बहिर्न व्रजन्ति। यदा मानुषोत्तरपर्वताद्बहिर्भागे मृतो जीवस्तिर्यग्देवो वा मनुष्यक्षेत्रमागच्छति तदा मानवविग्रहगत्यानुपूर्व्येण समागच्छन्मानुषोत्तराद्बहिर्भागेऽपि मनुष्य इत्युच्यते। तथा दंडकपाटप्रतरलोकपूरणसमुद्घातकाले च मानुषोत्तरबहिर्भागे च मनुष्या भवन्ति इति लभ्यते। **२४.** जात्यार्या इत्यादि—निर्णेजकदिवाकीर्त्यादयः शिल्पकर्मार्या ध्वन्यन्ते अल्पसावद्यकर्मार्यास्तु श्रावकप्रभृतयः। असावद्यकर्मार्यास्तु यतयः। जात्यार्यास्तु इक्ष्वाकुवंशाद्युद्भवाः। अस्यामवसर्पिण्यां इक्ष्वाकुवंशः स्वयं श्रीवृषभेश्वरः। तस्य कुले भवा इक्ष्वाकुवंश्याः। भरतसुतार्ककीर्तिकुले संजाताः सूर्यवंश्याः। बाहुबलिसुत-सोमयशोवंशे भवाः सोमवंश्याः। सोमप्रभश्रेयांसकुले समुत्पन्नाः कुरुवंश्याः। अकंपनमहाराजकुले समुद्भवा नाथवंश्याः। हरिकान्तनृपान्त्ये संभूता हरिवंश्याः। हरिवंशेऽपि यदुकुलजाता यादवाः। काश्यपकुले संभवा उग्रवंश्याः। इत्येवंविधा जात्यार्याः कथ्यन्ते। कोशलादिदेशोद्भवाः क्षेत्रार्या उच्यन्ते। **२५.** तत्रान्तर्द्वीपा लवणोदेऽष्टासु इत्याद्यन्यः पाठः।

तत्र दिक्षु द्वीपा वेदिकायास्तिर्यक्पंचयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति। शैलान्तेषु द्वीपाः षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति। दिक्षु द्वीपाः शतयोजनविस्ताराः। विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपास्तदर्धविष्कम्भाः। शैलान्तेषु पञ्चविंशतियोजनविस्ताराः। तत्र पूर्वस्यां दिश्येकोरुकाः। अपरस्यां दिशि लांगूलिनः। उत्तरस्यां दिश्यभाषकाः। दक्षिणस्यां दिशि विषाणिनः। शशकर्णशष्कुलीकर्णप्रावरणकर्णलम्बकर्णा विदिक्षु। अश्वसिंहश्वमहिषवराहव्याघ्रकाककपिमुखा अन्तरेषु। मेघविद्युन्मुखाः शिखरिण उभयोरन्तयोः। मत्स्यमुखकालमुखाः हिमवत उभयोरन्तयोः। हस्तिमुखा आदर्शमुखाः। उत्तरविजयार्द्धस्योभयोरन्तयोः। गोमुखमेषमुखाः दक्षिणदिग्विजयार्द्धस्योभयोरन्तयोः। एकोरुका मृदाहारा गुहावासिनः। शेषा पुष्पफलाहारा वृक्षवासिनः सर्वे ते पल्योपमायुषः। ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपा जलतलादेकयोजनोत्सेधाः। लवणोदधेर्बाह्यपार्श्वेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्याः। तथा कालोदेऽपि वेदितव्याः। त एतेऽन्तर्द्वीपजा म्लेच्छाः। कर्मभूमिजाश्च शकयवनशबरपुलिन्दादयः।

**काः पुनः कर्मभूमय इत्यत आह—**

## भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥

भरतैरावतविदेहाश्च पञ्च पञ्च, एताः कर्मभूमय इति व्यपदिश्यन्ते। तत्र विदेहग्रहणाद्देवकुरूत्तर-कुरुग्रहणे प्रसक्ते तत्प्रतिषेधार्थमाह 'अन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्य' इति। अन्यत्र शब्दो वर्जनार्थः। देवकुरव, उत्तरकुरवो, हैमवतो, हरिवर्षो, रम्यको, हैरण्यवतोऽन्तर्द्वीपाश्च भोगभूमय[२६] इति व्यपदिश्यन्ते। अथ कथं कर्मभूमित्वं शुभाशुभलक्षणस्य कर्मणोऽधिष्ठानत्वात्। ननु सर्वलोकत्रितयं कर्मणोऽधिष्ठानमेव, तत एवं प्रकर्षगतिर्विज्ञास्यते प्रकर्षेण यत्कर्मणोऽधिष्ठानमिति। तत्राशुभकर्मणस्तावत्सप्तमनरकप्रापणस्य भरतादिष्वेवार्जनं, शुभस्य सर्वार्थसिद्ध्यादिस्थानविशेषप्रापणस्य पुण्यकर्मण उपार्जनं तत्रैव। [२७]कृष्यादि-लक्षणस्य षड्विधस्य कर्मणः [२८]पात्रदानादिसहितस्य तत्रैवारम्भात्कर्मभूमिव्यपदेशो वेदितव्यः। इतरासु दशविधकल्पवृक्षकल्पितभोगानुभवनविषयत्वाद्भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते।

**उक्तासु भूमिषु स्थितिपरिच्छेदार्थमाह—**

---

**२६.** भोगभूमय इति—तत्रायं विशेषो येऽन्तर्द्वीपजास्ते कल्पवृक्षकल्पितभोगा न भवन्ति। तथा सर्वे भोगभूमिजा मृताः सन्तो देवत्वमेवाप्नुवन्ति। पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तरेषु ये अन्तर्द्वीपास्तत्रत्याः शुभकर्मभूमिसमीपवर्तित्वाच्चातुर्गतिका भवन्तीति केचिदाहुः। मानुषोत्तरात्परतः स्वयंभूरमणद्वीप-मध्यस्थितस्वयंप्रभपर्वतं यावदेकेन्द्रियपंचेन्द्रियास्पदा एव द्वीपाः कुत्सितभोगभूमयः कथ्यन्ते। तत्र पंचेन्द्रियास्तिर्यंच एव न तु मनुष्याः। असंख्येयवर्षायुषो गव्युत्युन्नतशरीराः। तेषां चत्वारि गुणस्थानानि भवन्ति। स्वयंप्रभपर्वतान्मानुषोत्तरात्परतश्च आलोकांतं ये तिर्यञ्चः सन्ति तेषु पंचगुणस्थानानि भवंति। पूर्वकोट्यायुषस्तत्र मत्स्याः सप्तमनरकहेतुकं पापमुपार्जयन्ति। स्थलचरास्तु केचित्स्वर्गादिहेतुपुण्यमप्युपार्जयन्ति। तेन अर्द्धो द्वीपः सर्वः समुद्रश्च समुद्राद्बहिश्चत्वारः कोणाश्च कर्मभूमिरित्युच्यते। इति विशेषः। **२७.** असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमित्यपि। कर्माणि षड्विधानि स्युः प्रजाजीवनहेतवः ॥१॥ अत्रासिकर्म सेवायां मषिर्लिपिविधौ स्मृता। कृषिर्भूकर्षणे प्रोक्ता विद्या शस्त्रोपजीवने ॥२॥ वाणिज्यं वाणिजां कर्म शिल्पं स्यात्करकौशलम्। तच्च चित्रकलापत्रच्छेदादि बहुधा स्मृतम् ॥३॥ **२८.** देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः। दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥१॥

## नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥

त्रीणि पल्योपमानि यस्याः सा त्रिपल्योपमा। अन्तर्गतो मुहूर्तो यस्याः सा अन्तर्मुहूर्ता। यथासंख्येन सम्बन्धः–मनुष्याणां परा उत्कृष्टा स्थितिः त्रिपल्योपमा। अपरा जघन्या अन्तर्मुहूर्ता। मध्ये अनेकविकल्पा। तत्र पल्यं त्रिविधं व्यवहारपल्यमुद्धारपल्यमद्धापल्यमिति। अन्वर्थसञ्ज्ञा एताः। आद्यं व्यवहारपल्य-मित्युच्यते उत्तरपल्यद्वयस्य व्यवहारबीजत्वात् नानेन किञ्चित्परिच्छेद्यमस्तीति। द्वितीयमुद्धारपल्यं। तत उद्धृतलोमकच्छेदाद्द्वीपसमुद्राः संख्यायन्त इति। तृतीयमद्धापल्यमद्धा कालस्थितिरित्यर्थः। तत्राद्यस्य प्रमाणं कथ्यते। तद्यथा–[२९]प्रमाणांगुलपरिमितयोजनविष्कम्भायामावगाहानि त्रीणि पल्यानि कुसूला इत्यर्थः। एकादिसप्तान्ताहोरात्रजाताविवालाग्राणि तावच्छिन्नानि यावद्द्वितीयं कर्तरिच्छेदं नाप्नुवन्ति, तादृशैर्लोमच्छेदैः परिपूर्णं घनीकृतं व्यवहारपल्यमित्युच्यते। ततो वर्षशते वर्षशते एकैकलोमापकर्षणविधिना यावता कालेन तद्रिक्तं भवेत्तावान्कालो व्यवहारपल्योपमाख्यः। तैरेव लोमच्छेदैः प्रत्येकमसंख्येयवर्ष-कोटीसमयमात्रच्छिन्नैस्तत्पूर्णमुद्धारपल्यम्। ततः समये समये एकैकस्मिन् रोमच्छेदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्रिक्तं भवति तावान्काल उद्धारपल्योपमाख्यः। येषामुद्धारपल्यानां दशकोटीकोट्य एकमुद्धारसागरोपमम्। अर्धतृतीयोद्धारसागरोपमाणां यावन्तो रोमच्छेदास्तावन्तो द्वीपसमुद्राः। पुनरुद्धार-पल्यरोमच्छेदैर्वर्षशतमात्रच्छिन्नैः पूर्णमुद्धारपल्यम्। ततः समये समये एकैकस्मिन् रोमच्छेदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्रिक्तं भवति तावान्कालोऽद्धापल्योपमाख्यः। एषामद्धापल्यानां दशकोटीकोट्य एकमद्धा-सागरोपमम्। दशाद्धासागरोपमकोटीकोट्य एकावसर्पिणी। तावत्येवोत्सर्पिणी। अनेनाद्धापल्येन नारकतैर्यग्योनानां देवमनुष्याणां च कर्मस्थितिर्भवस्थितिरायुःस्थितिः कायस्थितिश्च परिच्छेत्तव्या। उक्ता च संग्रहगाथा–ववहारुद्धारद्धा पल्ला तिण्णेव होंति बोद्धव्वा। संखादीव समुद्दा कम्मट्ठिदि वण्णिदा तदिये। १।

**यथैवेते उत्कृष्टजघन्ये स्थिती नृणां तथैव–**

## तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

तिरश्चां योनिस्तिर्यग्योनिः। तिर्यग्गतिनामकर्मोदयापादितं जन्मेत्यर्थः। तिर्यग्योनौ जातास्तिर्यग्यो-

---

**२९.** प्रमाणांगुलेति–किं तत्प्रमाणांगुलं? अवसर्पिण्याः संबधी प्रथमचक्रवर्ती तस्यांगुलं प्रमाणांगुलं अथवा उत्सर्पिण्याः संबंधी चरमश्चक्रवर्ती तस्यांगुलं प्रमाणांगुलं तेन प्रमाणांगुलेन इति। चतुर्विंशत्यंगुला हस्तः। तैश्चतुर्भिर्हस्तैर्मापित एको दण्डः, तैर्द्विसहस्रैर्दंडैर्मापिता एका प्रमाणगव्यूतिः। ताभिश्चतुर्भिर्गव्यूतिभिर्मापितं एकं मानवयोजनमित्यर्थः। मानवानां पंचशतयोजनैरेकं प्रमाणयोजनं। किं तन्मानवयोजनं येन प्रमाणयोजनं दिव्ययोजनं ज्ञायते? अष्टाभिः परमाणुभिरेकस्त्रसरेणुः। अष्टभिस्त्रसरेणुभिः पिंडितैरेका रथरेणुः। अष्टभी रथरेणुभिः पिंडिताभिरेकं चिकुराग्रमुच्यते। अष्टनिश्चिकुराग्रैः पिंडितैरेका लिक्षा। अष्टभिर्लिक्षाभिरेकः श्वेतसिद्धार्थ उच्यते। अष्टभिः श्वेतसिद्धार्थैः पिंडितैरेको यव उच्यते। अष्टभिर्यवैरगुंलमुच्यते। षड्भिरंगुलैः पाद उच्यते। द्वाभ्यां पादाभ्यां वितस्तिः कथ्यते। द्वाभ्यांवितस्तिभ्यां अरत्निः। चतुर्भिररत्निभिर्दंडः। द्विसहस्रदण्डैर्गव्यूतिः। चतुर्गव्यूतिभिर्मानवयोजनं भवति। पंचशतमानवयोजनैरेकं महायोजनं प्रमाणयोजनं दिव्ययोजनं भवति। तद्योजनप्रमाणा सा खनिः क्रियते। मूले मध्ये उपरि च समाना वर्तुलाकारा सातिरेकत्रिगुणा परिधिः।

निजाः। तेषां तिर्यग्योनिजानामुत्कृष्टा भवस्थितिस्त्रिपल्योपमा। जघन्या अन्तर्मुहूर्ता। मध्येऽनेकविकल्पा।

**भूबिललेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरिसरःसरिताम्।**
**मानं नृणां च भेदः स्थितिस्तिरश्चामपि तृतीयाध्याये ॥१॥**

**॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां तृतीयोऽध्यायः ॥**

# अथ चतुर्थोऽध्यायः

**भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणामित्येवमादि[१]ष्वसकृद्देवशब्द उक्तस्तत्र न ज्ञायन्ते के देवाः कतिविधा इति वा तन्निर्णयार्थमाह—**

## देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥

देवगतिनामकर्मोदये सत्यभ्यन्तरे हेतौ बाह्यविभूतिविशेषैर्द्वीपाद्रिसमुद्रादिषु प्रदेशेषु यथेष्टं दीव्यन्ति क्रीडन्तीति देवाः। इहैकवचननिर्देशो युक्तः 'देवश्चतुर्णिकायः' इति, स जात्यभिधानाद्बहूनां प्रतिपादको भवति। बहुत्वनिर्देशस्तदन्तर्गतभेदप्रतिपत्त्यर्थः। इन्द्रसामानिकादयो बहवो भेदाः सन्ति स्थित्यादिकृताश्च तत्सूचनार्थः। देवगतिनामकर्मोदयस्य [२]स्वधर्मविशेषापादितभेदस्य सामर्थ्यान्निचीयन्त इति निकायाः संघाता इत्यर्थः। चत्वारो निकाया येषां ते चतुर्णिकायाः। के पुनस्ते? भवनवासिनो, व्यन्तरा, ज्योतिष्का, वैमानिकाश्चेति।

**तेषां लेश्यावधारणार्थमुच्यते—**

## आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः॥२॥

आदित इत्युच्यते अन्ते मध्ये अन्यथा वा ग्रहणं मा विज्ञायीति। आदौ आदितः। द्वयोरेकस्य च निवृत्त्यर्थं त्रिग्रहणं क्रियते। अथ चतुर्णां निवृत्त्यर्थं कस्मान्न भवति? आदित इति वचनात्। षड्लेश्या उक्तास्तत्र चतसृणां लेश्यानां ग्रहणार्थं पीतान्तग्रहणं क्रियते। पीतं तेज इत्यर्थः। पीता अन्ते यासां ताः पीतान्ता लेश्या येषां ते पीतान्तलेश्याः। एतदुक्तं भवति—आदितस्त्रिषु भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्कनामसु देवानां कृष्णा, नीला, [३]कापोता पीतेति चतस्रो लेश्या भवन्ति।

**तेषां निकायानामन्तर्विकल्पप्रतिपादनार्थमाह—**

## दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः॥३॥

चतुर्णां देवनिकायानां दशादिभिः संख्याशब्दैर्यथासंख्यमभिसम्बन्धो वेदितव्यः। दशविकल्पा भवनवासिनः। अष्टविकल्पा व्यन्तराः। पञ्चविकल्पा ज्योतिष्काः। द्वादशविकल्पा वैमानिका इति। सर्ववैमानिकानां द्वादशविकल्पान्तः पातित्वे प्रसक्ते ग्रैवेयकादिनिवृत्यर्थं विशेषणमुपादीयते कल्पोपपन्नपर्यन्ता इति। अथ कथं [४]कल्पसञ्ज्ञा? इन्द्रादयः प्रकारा दश एतेषु कल्प्यन्त इति कल्पाः। भवनवासिषु तत्कल्पनासम्भवेऽपि [५]रूढिवशाद्वैमानिकेष्वेव वर्तते कल्पशब्दः। कल्पेषूपपन्नाः कल्पोपपन्नाः। कल्पोपपन्नाः पर्यन्ता येषां ते कल्पोपपन्नपर्यन्ताः।

---

**१.** आदिशब्देन, देवनारकाणामुपपादः। न देवाः। इति सूत्रद्वयं ग्राह्यम्। **२.** स्वधर्मशब्देन भवनवासित्वादीनामसुरत्वादीनां च ग्रहणं कर्तव्यम्। **३.** 'भवणतिया पुण्णगो असुहा' इतिवचनादपर्याप्तेषु भावनवानज्योतिष्केषु कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयं भवति। पर्याप्तेषु तेषु जघन्या तेजोलेश्या भवतीत्ययं विशेषोऽत्र ज्ञातव्यः। **४.** कल्पेषु षोडशस्वर्गेषु उपपन्ना उत्पन्नाः कल्पोपपन्नाः। ग्रैवेयकादिषु अहमिंद्रत्वं विना कोऽपि विकल्पो नास्ति। **५.** रूढिर्योगमपहरति।

**पुनरपि तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह–**

## इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्वि-षिकाश्चैकश: ॥४॥

अन्यदेवासाधारणाणिमादिगुणयोगादिन्दन्तीति इन्द्रा:[६]। आज्ञैश्वर्यवर्जितं यत्सामानायुर्वीर्य-परिवारभोगोपभोगादि तत्समानं तस्मिन्समाने भवा: सामानिका: महत्तरा: पितृगुरूपाध्यायतुल्या:। मन्त्रिपुरोहितस्थानीयास्त्रायस्त्रिंशा:। त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशा:। [७]वयस्य-पीठमर्दसदृशा: परिषदि भवा: पारिषदा:। आत्मरक्षा:[८] [९]शिरोरक्षोपमाना:। [१०]अर्थचरा रक्षकसमाना: लोकपाला: लोकं पालयन्तीति लोकपाला:। पदात्यादीनि सप्त [११]अनीकानि दण्डस्थानीयानि। प्रकीर्णका: पौरजानपदकल्पा: अभियोग्या दाससमाना वाहनादिकर्मणि प्रवत्ता:। अन्तेवासिस्थानीया: किल्विषं पापं येषामस्ति ते [१२]किल्विषिका:।

**एकैकस्य निकायस्य एकश: एते इन्द्रादयो दश विकल्पाश्चतुर्षु निकायेषूत्सर्गेण प्रसक्तास्ततोऽ-पवादार्थमाह–**

## त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्का: ॥५॥

व्यन्तरेषु ज्योतिष्केषु च त्रायस्त्रिंशांल्लोकपालांश्च वर्जयित्वा[१३] इतरेऽष्टौ विकल्पा द्रष्टव्या:।

**अथ तेषु निकायेषु किमेकैक इन्द्र उतान्य: प्रतिनियम: कश्चिदस्तीत्यत आह–**

## पूर्वयोर्द्वीन्द्रा: ॥६॥

पूर्वयोर्निकाययोर्भवनवासिव्यन्तरनिकाययो:। कथं द्वितीयस्य पूर्वत्वम्? समीप्यात्पूर्वत्वमुप-चर्योक्तम्। 'द्वीन्द्रा:' इति अन्तर्नीतवीप्सार्थ:। द्वौ द्वौ इन्द्रौ येषां ते द्वीन्द्रा[१४] इति। यथा सप्तपर्णोऽष्टापद इति। तद्यथा–भवनवासिषु तावदसुरकुमाराणां द्वाविन्द्रौ चमरो वैरोचनश्च। नागकुमाराणां धरणी भूतानन्दश्च। विद्युत्कुमाराणां हरिसिंहो हरिकान्तश्च। सुपर्णकुमाराणां [१५]वेणुदेवो वेणुधारी च। अग्निकुमाराणां अग्निशिखोऽग्निमाणवश्च। वातकुमाराणां वैलम्ब: प्रभञ्जनश्च। स्तनितकुमाराणां सुघोषो महाघोषश्च। उदधिकुमाराणां जलकान्तो जलप्रभश्च। द्वीपकुमाराणां पूर्णोवशिष्टश्च। दिक्कुमाराणां अमितगतिरमित-वाहनश्चेति। व्यन्तरेष्वपि किन्नराणां द्वाविन्द्रौ किन्नर: किम्पुरुषश्च। किम्पुरुषाणां सत्पुरुषो महापुरुषश्चेति। महोरगाणां अतिकायो महाकायश्च। गन्धर्वाणां गीतरतिर्गीतयशश्च। यक्षाणां पूर्णभद्रो मणिभद्रश्च। राक्षसानां भीमो महाभीमश्च। भूतानां प्रतिरूपोऽप्रतिरूपश्च। पिशाचानां कालो महाकालश्च।

**अथैषां देवानां सुखं कीदृशमित्युक्ते सुखावबोधनार्थमाह–**

## कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥

---

६. इंदन्ति परमैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति अपरामरासमानाणिमादिगुणयोगादिति इंद्रा:। ७. सन्धानकारी। ८. आत्मन इंद्रस्य रक्षा येभ्यस्ते आत्मरक्षा:। ९. अंगरक्षोपमाना:। १०. अर्थचरा अर्थेषु चरन्ति पर्यटन्ति इति अर्थचरा:। कोषनियुक्ता: कनकाध्यक्षादि-सदृशा:। कोट्टपाला: पत्तनरक्षका महातलवरा दुर्गपालापरनामानस्तत्समाना लोकपाला इत्यर्थ:। ११. सेना। १२. किल्विषिका दिवाकीर्तिसदृशा:। १३. वर्जयित्वेति–अयमर्थ इंद्रादयो दशापि भेदा भवनवासिषु कल्पवासिषु च वर्तन्ते। १४. असुरादीनां। १५. वेणुदेव इत्यत्र वेणुदण्ड इत्यपि पाठान्तरम्। अत्र वेणुताली इत्यपि पाठभेद:।

प्रवीचारो मैथुनोपसेवनम्। कायेन प्रवीचारो येषां ते कायप्रवीचाराः। आङ्[१६] अभिविध्यर्थः। असंहितया निर्देशोऽसन्देहार्थः। एते भवनवास्यादय ऐशानान्ताः संक्लिष्टकर्मत्वान्मनुष्यवत्स्त्रीविषय-सुखमनुभवन्तीत्यर्थः।

**अवधिग्रहणादितरेषां सुखविभागेऽनिर्ज्ञाते तत्प्रतिपादनार्थमाह—**

**शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः ॥८॥**

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम्। के पुनरुक्तावशिष्टाः? [१७]कल्पवासिनः। स्पर्शश्च रूपं च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रवीचारो येषां ते स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः। कथमभिसम्बन्धः? आर्षाविरोधेन। कुतः पुनः प्रवीचारग्रहणं? इष्ट सम्प्रत्ययार्थमिति। कः पुनरिष्टोऽभिसम्बन्धः? आर्षाविरोधी। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवा देवाङ्गनास्पर्शमात्रादेव परां प्रीतिमुपलभन्ते, तथा देव्योऽपि। ब्रह्मब्रह्मोत्तर-लांतवकापिष्ठेषु देवा दिव्याङ्गनानां शृंगाराकारविलासचतुरमनोज्ञवेषरूपावलोकनमात्रादेव परमसुख-माप्नुवन्ति। शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु देवा देववनितानां मधुरसंगीतमृदुहसितललितकथितभूषणरव-श्रवणमात्रादेव परां प्रीतिमास्कन्दन्ति। आनतप्राणतारणाच्युतकल्पेषु देवाः स्वांगनामनःसंकल्पमात्रादेव परं सुखमाप्नुवन्ति।

**अथोत्तरेषां किंप्रकारं सुखमित्युक्ते तन्निश्चयार्थमाह—**

**[१८]परेऽप्रवीचाराः ॥९॥**

परग्रहणमितराशेषसंग्रहार्थम्। अप्रवीचारग्रहणं परमसुखप्रतिपत्त्यर्थम्। प्रवीचारो हि वेदनाप्रतीकारः।

---

**१६.** आङिति—एकस्तावदाङ् ङकारानुबंधो द्वितीयस्त्वाकारमात्रो निरनुबंधस्तत्र द्वयोर्मध्ये यः सानुबंधो—ङकारानुबंधः स मर्यादायां, अभिविधौ, क्रियायोगे, ईषदर्थे च वर्तते। यस्तु वाक्ये स्मरणार्थे च वर्तते स निरनुबंधः स्वरे परे संधिं न प्राप्नोति। यस्तु मर्यादादिषु चतुर्ष्वर्थेषु वर्तते स स्वरे परे सानुबंधत्वात्संधिं प्राप्नोत्येवास्मिन्नर्थे सूत्रमिदं वर्तते। इदं किं? 'नाजोदन्तोऽनाङ्निस्तुतश्च।' अस्यायमर्थः—न इति संधिं न प्राप्नोति। कोऽसौ? अच् स्वरमात्रः। यथा अ अर्हन्प्रसीद। इ इंद्रं पश्य। उ उत्तिष्ठ। ओदन्त ओकारान्तो निपातः संधिं न प्राप्नोति। यथा अहो अर्हन्तं पश्य। तथानाङ्आङ्वर्जितः, निनिपातः संधिं न प्राप्नोति। यथा आ एवं किल स्वरूपमस्य इति वाक्ये आकारमात्रः। स्मरणे यथा आ एवं तन्मया कृतम्। आङ्पुनः संधिं प्राप्नोत्येव। यथा आ आत्मज्ञानं मर्यादीकृत्य आत्मज्ञानात्। आ एकदेशं अभिव्याप्यैकदेशात्। क्रियायोगे यथा—आसमंतात् आलोकि समन्ताद्दृष्टो जिन इत्यर्थः। ईषदर्थे यथा—आ ईषत् उपरतैः ओपरतैः। प्लुतश्च संधिं न प्राप्नोति। यथा—आगच्छ भो जिनदत्त ३ अत्र। उक्तं च— मर्यादायामभिविधौ क्रियायोगेषदर्थयोः। आकारः स च ङित्प्रोक्तो वाक्यस्मरणयोरङित्। तदुदाहरणेषु श्लोकोऽयं—आत्मज्ञानादैकदेशादालोक्योपरतैर्जिनः। आ एवं तत्त्वमस्यार्थ आ एवं तत्कृतं मया। इति युक्त्या आङ्संधिं प्राप्नोत्येव। कथमुमास्वामिभिर्भगवद्भिः आ ऐशानादित्यत्र संधिकार्यं न कृतम्? सत्यमुक्तं भवता असंहितया सूत्रे निर्देशोऽसंदेहार्थ इति। **१७.** कल्पवासिनः – ईशानान्तान्देवान्परिहृत्य सानत्कुमारादयोऽच्युतस्वर्गपर्यन्ता अमराः शेषा इत्युच्यन्ते। बे काये बे फासे चउ रूवे तहेव चउ सद्दे। चउरो य मणवियारा सेसा सुर बंभयारीया॥ धादुविहीणत्तादो रेदक्खलणं ण होह देवाणं। संकप्पसुहं जायदि वेदस्सोदीरणाविगमे॥ **१८.** परे नवग्रैवेयकनवानुदिशपंचानुत्तरसंजाताः सुमनसस्तेऽप्रवीचाराः। मनसाऽपि मैथुनसुखानुभवनसहिता न भवन्तीति भावः। तेषां कल्पवासिभ्योऽपि परमप्रकर्षहर्षलक्षणं सुखमुत्कृष्टं वर्तते। यतः प्रवीचारो हि कामसंभववेदनाप्रतीकारः। स तु कामसंभवस्तेषां कदाचिदपि न वर्तते। तेनाहमिन्द्राणामनवच्छिन्नं सुखमेव भवतीत्यायातम्।

तदभावे तेषां परमसुखमनवरतं भवति।

**उक्ता ये आदिनिकायदेवा दशविकल्पा इति तेषां सामान्यविशेषसञ्ज्ञाविज्ञापनार्थमिदमुच्यते–**

**[19]भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥**

भवनेषु वसन्तीत्येवंशीला भवनवासिनः। आदिनिकायस्येयं सामान्यसञ्ज्ञा। असुरादयो विशेषसञ्ज्ञा विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तयः। सर्वेषां देवानामवस्थितवयः स्वभावत्वेऽपि वेषभूषायुधयानवाहन–क्रीडनादिकुमारवदेषामाभासन्त इति भवनवासिषु कुमारव्यपदेशो रूढः। स प्रत्येकं परिसमाप्यते असुरकुमारा इत्येवमादि। क्व तेषां भवनानीति चेद् उच्यते–रत्नप्रभायाः पङ्कबहुलभागेऽसुरकुमाराणां भवनानि। खरपृथिवीभागे उपर्यधश्च एकैकयोजनसहस्रं वर्जयित्वा शेषनवानां कुमाराणामावासाः।

**द्वितीयनिकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञावधारणार्थमाह–**

**व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥**

विविधदेशान्तराणि येषां निवासास्ते व्यन्तरा इत्यन्वर्था सामान्यसञ्ज्ञेयमष्टानामपि विकल्पानाम्। तेषां व्यन्तराणामष्टौ विकल्पाः किन्नरादयो वेदितव्या नामकर्मोदयविशेषापादिताः। क्व पुनस्तेषामावासा इति चेद्? उच्यते–अस्माज्जम्बूद्वीपादसंख्येयान्द्वीपसमुद्रानतीत्य उपरिष्टे खरपृथिवीभागे सप्तानां व्यन्तराणामावासाः, राक्षसानां पङ्कबहुलभागे।

**तृतीयस्य निकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञासङ्कीर्तनार्थमाह–**

**ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥**

ज्योतिस्स्वभावत्वादेषां पञ्चानामपि ज्योतिष्का इति सामान्यसञ्ज्ञा अन्वर्था। सूर्यादयस्तद्वि–शेषसञ्ज्ञा नामकर्मोदयप्रत्ययाः। सूर्याचन्द्रमसाविति पृथग्ग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थम्। किं कृतं पुनः प्राधान्यं? प्रभावादिकृतम्। क्व पुनस्तेषामावासाः? इत्यत्रोच्यते अस्मात्समानभूमिभागादूर्ध्वं सप्तयोजनशतानि नवत्युत्तराणि ७९० उत्पत्य सर्वज्योतिषामधो–भागविन्यस्तास्तारकाश्चरन्ति। ततो दशयोजनान्युत्प्लुत्य सूर्याश्चरन्ति[20]। ततोऽशीतियोजनान्युत्पत्य चन्द्रमसो भ्रमन्ति। ततश्च–त्वारि योजनान्युत्पत्य नक्षत्राणि। ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य बुधाः। ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य शुक्राः। ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य बृहस्पतयः। ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्याङ्गारकाः। ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य

---

**१९.** भवनवासीति सामान्येनोत्सर्गेण संज्ञा वर्तते। अथापवादेन विशेषतया तेषां निर्जराणां संज्ञाः संज्ञाप्यन्ते। असून्प्राणान्रान्ति गृह्णन्ति परस्परयोधनेन नारकाणां दुःखमुत्पादयन्तीति असुराः। न सुरा वा असुराः। प्रायेण संक्लिष्टपरिणामत्वात्। नगेषु पर्वतेषु चंदनादिषु वृक्षेषु वा भवा नागाः। विद्योतन्ते इति विद्युतः। सुष्ठु शोभनानि पर्णानि पक्षा येषां ते सुपर्णाः। अगंति पातालं विहाय क्रीडार्थमूर्ध्वं आगच्छन्ति इति अग्नयः। वांति तीर्थकरविहारमार्गं शोधयन्ति ते वाताः। स्तनंति शब्दं कुर्वन्ति, स्तनः शब्दः संजातो वा येषां ते स्तनिताः। उदानि उदकानि धीयंते येषु ते उदधयः। उदधिक्रीडायोगात्त्रिदशा अपि उदधयः। द्वीपक्रीडायोगाद्विविषदोऽपि द्वीपाः। दिशन्ति अतिसर्जयन्ति अवकाशमिति दिशः दिक्क्रीडायोगादमृतांधसोऽपि दिशः। **२०.** सूर्यादधो मनागूनयोजने केतुर्वर्तते। चंद्रादधोभागे ईषदूनयोजने च राहुर्वर्तते। चंद्रसूर्यग्रहान्वर्जयित्वा शेषा नक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च एकस्मिन्निजनिजमार्गे व्रजन्ति।

शनैश्चराश्चरन्ति। स एष ज्योतिर्गणगोचरो नभोऽवकाशो दशाधिकयोजनशतबहलस्तिर्यगसंख्यात-द्वीपसमुद्रप्रमाणो घनोदधिपर्यन्तः। उक्तं च-**णउदुत्तरसत्तसया दस सीदी चदुदुगं तियचउक्कं। तारारविससिरिक्खा बुहभग्गव गुरु अंगिरारसणी ॥१॥**

**ज्योतिष्काणां गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥

मेरोः प्रदक्षिणा मेरुप्रदक्षिणाः। मेरुप्रदक्षिणा इति वचनं गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थं विपरीतगतिर्मा विज्ञायीति। [२१]नित्यगतय इति विशेषणमनुपरतक्रियाप्रतिपादनार्थम्। नृलोकग्रहणं विषयार्थम्। अर्धतृतीयेषु द्वीपेषु द्वयोश्च समुद्रयोर्ज्योतिष्का नित्यगतयो नान्यत्रेति। ज्योतिष्कविमानानां गतिहेत्वभावात्तद्वृत्त्यभाव इति चेत्? न, असिद्धत्वात्। गतिरताभियोग्यदेवप्रेरितगतिपरिणामात्कर्मविपाकस्य वैचित्र्यात्तेषां हि गतिमुखेनैव कर्म विपच्यत इति। एकादशभिर्योजनशतैरेकविंशैर्मेरुमप्राप्य ज्योतिष्काः प्रदक्षिणाश्चरन्ति।

**गतिमज्ज्योतिस्सम्बन्धेन व्यवहारकालप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## तत्कृतः कालविभागः ॥१४॥

तद्ग्रहणं गतिमज्ज्योतिःप्रतिनिर्देशार्थम्। न केवलया गत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भिः कालः परिच्छिद्यते, अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च। कालो द्विविधो व्यावहारिको मुख्यश्च। व्यावहारिकः कालविभागस्तत्कृतः समयावलिकादिः क्रियाविशेषपरिच्छिन्नोऽन्यस्यापरिच्छिन्नस्य परिच्छेदहेतुः। मुख्योऽन्यो वक्ष्यमाणलक्षणः।

**इतरत्र ज्योतिषामवस्थानप्रतिपादनार्थमाह—**

## बहिरवस्थिताः ॥१५॥

बहिरित्युच्यते, कुतो बहिः? नृलोकात्। कथमवगम्यते? अर्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवति। ननु च नृलोके नित्यगतिवचनादन्यत्रावस्थानं ज्योतिष्काणां सिद्धं। अतो बहिरवस्थिता इति वचनमनर्थकमिति। तत्र। किंकारणम्? नृलोकादन्यत्र बहिर्ज्योतिषामस्तित्वमवस्थानं चासिद्धम्। अतस्तदुभयसिद्ध्यर्थं बहिरवस्थिता[२२] इत्युच्यते। [२३]विपरीतगतिनिवृत्त्यर्थं कादाचित्कगतिनिवृत्त्यर्थं च सूत्रमारब्धम्।

---

**२१.** नित्यगतय इति – सर्वे ज्योतिष्का मेरुप्रदक्षिणेन गत्वा भ्रमन्ति नित्यगतयः। क्षणमपि तेषां गतिः केनापि भेत्तुं न शक्यते। ते तु मनुष्यलोकोपरिस्थिता ज्योतिष्काः सदागतयो भवन्ति। आधाराधेययोरैक्योपचारात्। ज्योतिष्कैरारूढा विमाना भ्रमन्ति। मानुषोत्तरपर्वताद्बहिर्ज्योतिष्का न भ्रमन्ति। अथ विशेषः–जंबूद्वीपोपरि द्वौ सूर्यौ वर्तेते। षट्पंचाशन्नक्षत्राणि वर्तन्ते। षट्सप्तत्याधिकमेकं शतं ग्रहाणां च वर्तते। लवणोदसमुद्रोपरि दिनमणयश्चत्वारः सन्ति। द्वादशाधिकं शतमुडूनां च वर्तते। द्वापंचाशदधिकं शतत्रयं ग्रहाणां च वर्तते। धातकीखंडोपरि प्रद्योतना द्वादश वर्तन्ते। षट्त्रिंशदधिकं शतत्रयं ऋक्षाणां च वर्तन्ते। षट्पंचाशदधिकं सहस्रं ग्रहाणामस्ति। कालोदसमुद्रोपरि त्रयीतनवो द्वाचत्वारिंशत्सन्ति। षट्सप्तयधिकानि एकदशशतानि नक्षत्राणां च वर्तन्ते। षण्णवत्यधिकानि षट्त्रिंशच्छतानि ग्रहणां सन्ति। पुष्करार्द्धद्वीपोपरि द्वासप्ततिरंशुमालिनो वर्तन्ते। षोडशाधिकं सहस्रद्वयं नक्षत्राणां च वर्तते। षट्त्रिंशदधिकानि त्रिषष्टिशतानि ग्रहाणां वर्तन्ते। मानुषोत्तराद्बहिः पुष्करार्द्धे पुष्करसमुद्रे च सूर्यादीनां संख्या परमागमाद्वेदितव्या। यत्र यावन्तः सूर्यास्तत्र तावन्तश्चंद्रमसोऽपि वेदितव्याः। बहुविधगणानि च नक्षत्राणि ज्ञातव्यानि। अथवा सर्वत्र एकैकस्य कुमुदबांधवस्य संबधिनो ग्रहा अष्टाशीतिरष्टाशीतिर्भवन्ति। एकैकस्य जैवातृकस्य अष्टाविंशति नक्षत्राणि भवन्ति। मानुषोत्तराभ्यन्तरेऽयं निर्णयः। **२२.** निश्चला वर्तन्ते इत्यर्थः। **२३.** अप्रदक्षिणागतिनिवृत्त्यर्थम्।

**तुरीयस्य निकायस्य सामान्यसञ्ज्ञासङ्कीर्तनार्थमाह–**

**वैमानिकाः ॥१६॥**

वैमानिकग्रहणमधिकारार्थम्। इत उत्तरं ये वक्ष्यन्ते तेषां वैमानिकसम्प्रत्ययो यथा स्यादित्यधिकारः क्रियते। विशेषेणात्मस्थान् सुकृतिनो मानयन्तीति विमानानि। विमानेषु भवा वैमानिकाः। तानि विमानानि त्रिविधानि। इन्द्रकश्रेणिपुष्पप्रकीर्णकभेदेन। तत्र इन्द्रकविमानानि इन्द्रवन्मध्ये व्यवस्थितानि। तेषां चतसृषु दिक्षु आकाशप्रदेशश्रेणिवदवस्थानात् श्रेणिविमानानि। विदिक्षु प्रकीर्णपुष्पवदवस्थानात्पुष्पप्रकीर्णकानि[२४]।

**तेषां वैमानिकानां भेदावबोधनार्थमाह–**

**कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥**

[२५]कल्पेषूपपन्नाः कल्पोपपन्नाः, कल्पानतीताः कल्पातीताश्चेति द्विविधा वैमानिकाः।

**तेषामवस्थानविशेषनिर्ज्ञापनार्थमाह–**

**[२६]उपर्युपरि ॥१८॥**

किमर्थमिदमुच्यते? तिर्यगवस्थितिप्रतिषेधार्थमुच्यते। न ज्योतिष्कवत्तिर्यगवस्थिताः न व्यन्तरवद-समावस्थितय उपर्युपरीत्युच्यन्ते। के ते? कल्पाः।

**यद्येवं, कियत्सु कल्पविमानेषु ते देवा भवन्तीत्यत आह–**

**सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतार-सहस्त्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसुग्रैवेयकेविजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ[२७] च ॥१९॥**

कथमेषां सौधर्मादिशब्दानां कल्पाभिधानं? चातुरर्थिकेनाणा, स्वभावतो वा कल्पस्याभिधानं भवति। अथ कथमिन्द्राभिधानं? स्वभावतः साहचर्याद्वा। तत्कथमिति चेद् ? उच्यते–सुधर्माः नाम

---

**२४.** पुष्पप्रकीर्णकानीति–अत्र विशेषः–जैनचैत्यालया ये शाश्वता वर्तन्ते। विमानेषु च ये देवप्रासादा वर्तन्ते। ते सर्वेऽपि यद्यप्यकृत्रिमा वर्तन्ते तथापि तेषां मानं मानवयोजनक्रोशादिकृतं ज्ञातव्यं। अन्यानि शाश्वतस्थानानि प्रमाणयोजनादिभिर्ज्ञातव्यानीति परिभाषेयं। परिभाषेति कोऽर्थः अनियमे नियमकारिणी परिभाषा। **२५.** कल्पेषु षोडशस्वर्गेषु उपपन्नाः संबद्धाः कल्पोपपन्नाः, कल्पेभ्योऽतीताः अतिक्रान्ता उपरितनक्षेत्रवर्तिनो नवग्रैवेयकदेवाः, नवानुदिशामृताशनाश्च पंचानुत्तरनिवासिनो निर्जराश्च त्रिप्रकारा अपि अहमिंद्राः कल्पातीताः कथ्यन्ते। ननु भवनवासिषु व्यंतरेषु ज्योतिष्केषु च इंद्रादीनां कल्पनं वर्तते। तेऽपि कल्पोपपन्नाः कथं नोच्यन्ते? इत्याह सत्यं, यद्यपि। तेषु इंद्रादिषु कल्पो वर्तते। तथापि वैमानिका एव कल्पोपपन्ना इति रूढिं गताः। तथा गच्छतीति गौः, धेनुर्वृषभ एव गौरुच्यते। गमनक्रियापरिणतोऽप्यश्वादिर्न गौरुच्यते। **२६.** उपर्युपरीत्ययं शब्दः समीपवाची च वर्तते। तत्रैवमर्थघटना कर्तव्या। यस्मिन्पटले सौधर्मस्वर्गो दक्षिणदिशि वर्तते तस्मिन्नेव पटले उत्तरदिशि समीपवर्तीशानस्वर्गोऽस्ति। एवं प्रतिपटलं यथासंभवं द्विद्विस्वर्गविचारोऽच्युतान्तं कर्तव्यः। **२७.** सर्वार्थसिद्धिशब्दस्य पृथग्विभक्तिदानं सर्वेभ्योऽपि उत्तमोत्तमत्वसूचनार्थं। नामप्रकृतिषु तीर्थकरत्वं च। सर्वार्थसिद्धिविमानं परमशुक्लं जंबूद्वीपप्रमाणं च वर्तते। सौधर्मैशानयोरुच्चत्वं सार्धैका रज्जुर्मेरुबुध्नाद्बोद्धव्या। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोरपि सार्धैका रज्जुरस्ति। ब्रह्मस्वर्गमारभ्याच्युतानां द्वयोर्द्वयोः स्वर्गयोरुच्चता अर्द्धार्द्धा रज्जुः। तेन द्वादशस्वर्गाणां समुदितास्तिस्त्रो रज्जवः। ग्रैवेयकादिमुक्तिपर्यन्तमेका रज्जुरुच्यते। अत्र यावन्ति विमानानि ऊर्ध्वलोके सन्ति तावन्ति जिनमंदिराणि सन्ति। तेषां नमस्कारवंदनास्तु।

सभा, साऽस्मिन्नस्तीति सौधर्मः कल्पः। तदस्मिन्नस्तीत्यण्। तत्कल्पसाहचर्यादिन्द्रोऽपि सौधर्मः। ईशानो नाम इन्द्रः स्वभावतः। ईशानस्य निवासः कल्प ऐशानस्तस्य निवास इत्यण्। तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि ऐशानः। सनत्कुमारो नाम इन्द्रः स्वभावतः। तस्य निवास इत्यण्। सानत्कुमारः कल्पः। तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि सानत्कुमारः। महेन्द्रो नामेन्द्रः स्वभावतस्तस्य निवासः कल्पो माहेन्द्रः। तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि माहेन्द्रः। एवमुत्तरत्रापि योज्यम्। आगमापेक्षया व्यवस्था भवतीति, उपर्युपरीत्यनेन द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः। प्रथमौ सौधर्मैशानकल्पौ, तयोरुपरि सानत्कुमारमाहेन्द्रौ, तयोरुपरि ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरौ, तयोरुपरि लान्तवकापिष्ठौ, तयोरुपरि शुक्रमहाशुक्रौ, तयोरुपरि शतारसहस्रारौ, तयोरुपरि आनतप्राणतौ, तयोरुपरि आरणाच्युतौ। अध उपरि च प्रत्येकमिन्द्रसम्बन्धो वेदितव्यः। मध्ये तु प्रतिद्वयम्। सौधर्मैशान-सानत्कुमारमाहेन्द्राणां चतुर्णां चत्वार इन्द्राः। ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोरेको ब्रह्मेन्द्रो नाम। लान्तवकपिष्ठयोरिको लान्तवाख्यः। शुक्रमहाशुक्रयोरेकः शुक्रसञ्ज्ञः। शतारसहस्रारयोरेकः शतारनामा। आनतप्राणतारणाच्युतानां चतुर्णां चत्वार एवं कल्पवासिनां द्वादश इन्द्रा भवन्ति। जम्बूद्वीपे महामन्दरो योजनसहस्रावगाहो भवति नवनवतियोजनसहस्रोच्छ्रायः। तस्याधस्तादधोलोकः। बाहुल्येन तत्प्रमाण (मेरुप्रमाण) स्तिर्यक्प्रसृतस्तिर्यग्लोकः। तस्योपरिष्टादूर्ध्वलोकः। मेरुचूलिका चत्वारिंशद्योजनोच्छ्राया। तस्या उपरि केशान्तरमात्रे व्यवस्थितमृजुविमानमिन्द्रकं सौधर्मस्य। सर्वमन्यल्लोकानुयोगाद्वेदितव्यम्। नवसु ग्रैवेयकेष्विति नवशब्दस्य पृथग्वचनं किमर्थम्? अन्यान्यपि नवविमानानि अनुदिशसञ्ज्ञकानि सन्तीति ज्ञापनार्थम्। तेनानुदिशानां ग्रहणं वेदितव्यम्।

**एषामधिकृतानां वैमानिकानां परस्परतो विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥२०॥

स्वोपात्तस्यायुष उदयात्तस्मिन्भवे शरीरेण सहावस्थानं स्थितिः। शापानुग्रहशक्तिः प्रभावः। सुखमिन्द्रियार्थानुभवः। शरीरवसनाभरणादिदीप्तिः द्युतिः। लेश्या उक्ता। लेश्याया विशुद्धिर्लेश्याविशुद्धिः। इन्द्रियाणामवधेश्च विषय [२८]इन्द्रियावधिविषयः। तेभ्यस्तैर्वाऽधिका इति। तस्मिन्नुपर्युपरि प्रतिकल्पं प्रतिप्रस्तारं च वैमानिकाः स्थित्यादिभिरधिका इत्यर्थः।

**यथा स्थित्यादिभिरुपर्युपर्यधिका एवं गत्यादिभिरपीत्यतिप्रसङ्गे तन्निवृत्यर्थमाह—**

## गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥

देशाद्देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः। शरीरं वैक्रियिकमुक्तम्। लोभकषायोदयाद्विषयेषु सङ्गः परिग्रहः। मानकषायादुत्पन्नोऽहङ्कारोऽभिमानः। एतैर्गत्यादिभिरुपर्युपरि हीनाः। देशान्तरविषयक्रीडारति-प्रकर्षाभावादुपर्युपरि गतिहीनाः। शरीरं सौधर्मैशानयोर्देवानां सप्तारत्निप्रमाणम्। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः षडरत्निप्रमाणम्। ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तर लान्तवकापिष्ठेषु पञ्चारत्निप्रमाणम्। शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु चतुररत्निप्रमाणम्। आनतप्राणतयोरर्द्धचतुर्थारत्निप्रमाणम्। आरणाच्युतयोस्त्र्यरत्निप्रमाणम्। अधोग्रैवेयकेषु

---

२८. इंद्रियावधीनां विषयः गोचरः गम्यः पदार्थः इंद्रियावधिविषयः।

अर्द्धतृतीयारत्निप्रमाणम्। मध्यग्रैवेयकेष्वरत्निद्वयप्रमाणम्। उपरिमग्रैवेयकेषु च अध्यर्द्धारत्निप्रमाणम्। अनुत्तरेष्वरत्निप्रमाणम्। परिग्रहश्च विमानपरिच्छदादिरुपर्युपरि हीनः। अभिमानश्चोपर्युपरि तनुकषायत्वाद्धीनः। पुरस्तात्त्रिषु निकायेषु देवानां लेश्याविधिरुक्तः।

**इदानीं वैमानिकेषु लेश्याविधिप्रतिपत्त्यर्थमाह–**

## पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥२२॥

पीता च पद्मा च शुक्ला च ताः पीतपद्मशुक्लाः। पीतपद्मशुक्ला लेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः। कथं ह्रस्वत्वम्?। औत्तरपदिकम्। यथाहुः–द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति। अथवा पीतश्च पद्मश्च शुक्लश्च पीतपद्मशुक्ला वर्णवन्तोऽर्थाः। तेषामिव लेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ल–लेश्याः। तत्र कस्य का लेश्येत्यत्रोच्यते–सौधर्मैशानयोः पीतलेश्याः। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः पीतपद्मलेश्याः। ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पद्मलेश्याः। शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु पद्मशुक्ललेश्याः। आनतादिषु शुक्ललेश्याः। तत्राप्यनुदिशानुत्तरेषु परमशुक्ललेश्याः। सूत्रेऽनभिहितं कथं मिश्रग्रहणं? साहचर्याल्लोकवत्। तद्यथा–छत्रिणो गच्छन्ति इति अच्छत्रिषु छत्रिव्यवहारः। एवमिहापि मिश्रयोरन्यतरग्रहणं भवति। अयमर्थः सूत्रतः कथं गम्यते? इति चेदुच्यते–एवमभिसम्बन्धः क्रियते, द्वयोः कल्पयुगलयोः पीतलेश्या। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः पद्मलेश्याया अविवक्षातः। ब्रह्मलोकादिषु त्रिषु कल्पयुगलेषु पद्मलेश्या। शुक्रमहाशुक्रयोः शुक्ललेश्याया अविवक्षातः। शेषेषु शतारादिषु शुक्ललेश्या। पद्मलेश्याया अविवक्षात इति नास्ति दोषः।



**आह कल्पोपपन्ना इत्युक्तं तत्रेदं न ज्ञायते के कल्पा इत्यत्रोच्यते–**

## प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥

इदं न ज्ञायते इत आरभ्य कल्पा भवन्तीति सौधर्मादिग्रहणमनुवर्तते। तेनायमर्थो लभ्यते–सौधर्मादयः प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पा इति पारिशेष्यादितरे। कल्पातीता इति।

**लौकान्तिका देवा वैमानिकाः सन्तः क्व गृह्यन्ते? कल्पोपपन्नेषु। कथमिति चेदुच्यते–**

## ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥२४॥

एत्य तस्मिन् लीयन्त इति आलयः आवासः। ब्रह्मलोक आलयो येषां ते ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका देवा वेदितव्याः। यद्येवं सर्वेषां ब्रह्मलोकालयानां देवानां लौकान्तिकत्वं प्रसक्तं? अन्वर्थसञ्ज्ञाग्रहणाददोषः। ब्रह्मलोको लोकस्तस्यान्तो लोकान्तस्तस्मिन्भवा लौकान्तिका इति न सर्वेषां ग्रहणम्। तेषां हि विमानानि ब्रह्मलोकस्यान्तेषु स्थितानि। अथवा जन्मजरामरणाकीर्णो लोकः संसारस्तस्यान्तो लोकान्तः। लोकान्ते भवा लौकान्तिका तेः सर्वे परीतसंसाराः। ततश्च्युता एकं गर्भावासं प्राप्य परिनिर्वास्यन्ति।

**तेषां सामान्येनोपदिष्टानां भेदप्रदर्शनार्थमाह–**

## सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥२५॥

क्व इमे सारस्वतादयः? अष्टास्वपि पूर्वोत्तरादिषु दिक्षु यथाक्रममेते सारस्वतादयो देवगणा वेदितव्याः।

तद्यथा – पूर्वोत्तरकोणे सारस्वतविमानं, पूर्वस्यां दिशि आदित्यविमानं, पूर्वदक्षिणस्यां दिशि वह्निविमानं दक्षिणस्यां दिशि अरुणविमानं, दक्षिणापरकोणे गर्दतोयविमानं, अपरस्यां दिशि तुषितविमानं, उत्तरापरस्यां दिशि अव्याबाधविमानं, उत्तरस्यां दिशि अरिष्टविमानम्। चशब्दसमुच्चितास्तेषामन्तरे द्वौ द्वौ देवगणौ। तद्यथा–सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभाः। आदित्यस्य च वह्नेश्चान्तरे चन्द्राभसत्याभाः। वह्न्यरुणान्तराले श्रेयस्करक्षेमंकराः। अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचराः। गर्दतोयतुषितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरक्षिताः। तुषिताव्याबाधमध्ये आत्मरक्षितसर्वरक्षिताः। अव्याबाधारिष्टान्तराले मरुद्वसवः। अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्वविश्वाः। सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात्, विषयरतिविरहाद्देवर्षयः, इतरेषां देवानामर्च्चनीयाः चतुर्दशपूर्वधराः, तीर्थङ्करनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्याः[२९]।

**आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युत्वैकं गर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ताः। किमेवमन्येष्वपि निर्वाण-प्राप्तिकालविभागो विद्यते? इत्यत आह–**

## विजयादिषु द्विचरमाः ॥२६॥

आदिशब्दः प्रकारार्थे वर्तते, तेन विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानुदिशविमानानामिष्टानां ग्रहणं सिद्धं भवति। कः पुनरत्र प्रकारः? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्ट्युपपादः। सर्वार्थसिद्धिप्रसङ्ग इति चेत् ? न, तेषां परमोत्कृष्टत्वात्। अन्वर्थसञ्ज्ञात एकचरमत्वसिद्धेः न। चरमत्वं देहस्य मनुष्यभवापेक्षया। द्वौ चरमौ देहौ येषां ते द्विचरमाः। विजयादिभ्यश्च्युता अप्रतिपतितसम्यक्त्वा मनुष्येषूत्पद्य संयममाराध्य पुनर्विजयादिषूत्पद्य ततश्च्युताः पुनर्मनुष्यभवमवाप्य सिद्ध्यन्तीति द्विचरमदेहत्वम्।

**आह जीवस्यौदयिकेषु भावेषु तिर्यग्योनिगतिरौदयिकीत्युक्तं, पुनश्च स्थितौ तिर्यग्योनिजाना चेति। तत्र न ज्ञायते के तिर्यग्योनयः? इत्यत्रोच्यते–**

## औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥

औपपादिका उक्ता देवनारकाः। मनुष्याश्च निर्दिष्टाः ''प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या'' इति। एभ्योऽन्ये संसारिणो जीवाः शेषास्तिर्यग्योनयो वेदितव्याः। तेषां तिरश्चां देवादीनामिव क्षेत्रविभागः पुनर्निर्देष्टव्यः। सर्वलोकव्यापित्वात्तेषां क्षेत्रविभागो नोक्तः।

**आह स्थितिरुक्ता नारकाणां, मनुष्याणां, तिरश्चां च। देवानां नोक्ता। तस्यां वक्तव्यायामादावुद्दिष्टानां भवनवासिनां स्थितिप्रतिपादनार्थमाह–**

## स्थिति–रसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता ॥२८॥

असुरादीनां सागरोपमादिभिर्यथाक्रममत्राभिसम्बन्धो वेदितव्यः। इयं स्थितिरुत्कृष्टा। जघन्याऽप्युत्तरत्र वक्ष्यते। तद्यथा–असुराणां सागरोपमा स्थितिः। नागानां त्रिपल्योपमा स्थितिः। सुपर्णानामर्द्धतृतीयानि। द्वीपानां द्वे। शेषाणां षण्णामध्यर्द्धपल्योपमम्।

**आद्यदेवनिकायस्थित्यभिधानादनन्तरं व्यन्तरज्योतिष्कस्थितिवचने क्रमप्राप्ते सति तदुल्लङ्घ्य वैमानिकानां**

---

२९. लौकान्तकदेवसंख्यानिरूपकः.श्लोकः–चतुर्लक्षतया सप्त सहस्राणि शताष्टकम्। विंशतिर्मिलिता ह्येते सर्वे लौकान्तिकाः स्मृताः॥

**स्थितिरुच्यते। कुतः? तयोरुत्तरत्र लघुनोपायेन स्थितिवचनात्। तेषु चादावुद्दिष्टयोः कल्पयोः स्थितिविधानार्थमाह–**

## सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥२९॥

सागरोपमे इति द्विवचननिर्देशात् द्वित्वगतिः। अधिके इत्ययमधिकारः। आ कुतः? आ सहस्रारात्[३०]। आ इदं तु कुतो ज्ञायते इति चेद् ? उत्तरत्र तुशब्दग्रहणात्। तेन सौधर्मैशानयोर्देवानां द्वे सागरोपमे सातिरेके प्रत्येतव्ये।

**उत्तरयोः स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह–**

## सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥३०॥

अनयोः कल्पयोर्देवानां सप्तसागरोपमाणि साधिकान्युत्कृष्टा स्थितिः।

**ब्रह्मलोकादिष्वच्युतावसानेषु स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह–**

## त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥३१॥

सप्तग्रहणं प्रकृतं, तस्येह त्र्यादिभिर्निर्दिष्टैरभिसम्बन्धो वेदितव्यः। सप्त त्रिभिरधिकानि, सप्त सप्तभिरधिकानीत्यादि, द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः। तुशब्दो विशेषणार्थः। किं विशिनष्टि? अधिक-शब्दोऽनुवर्तमानश्चतुर्भिरभिसम्बध्यते नोत्तराभ्यामित्ययमर्थो विशिष्यते। तेनायमर्थो भवति–ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरयोर्दशसागरोपमाणि साधिकानि। लान्तवकापिष्ठयोश्चतुर्दशसागरोपमाणि साधिकानि। शुक्रमहाशुक्रयोः षोडशसागरोपमाणि साधिकानि। शतारसहस्रारयोरष्टादशसागरोपमाणि साधिकानि। आनतप्राणतयोर्विंशतिसागरोपमाणि। आरणाच्युतयोर्द्वाविंशतिसागरोपमाणि।

**तत ऊर्ध्वं स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह–**

## आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु[३१] विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥३२॥

अधिकग्रहणमनुवर्तते। तेनेहाभिसम्बन्धो वेदितव्यः। एकैकेनाधिकानीति। नवग्रहणं किमर्थम्? प्रत्येकमेकैकमधिकमिति ज्ञापनार्थम्। इतरथा हि ग्रैवेयकेष्वेकमेवाधिकं स्यात्।। विजयादिष्विति आदि-शब्दस्य प्रकारार्थत्वादनुदिशानामपि ग्रहणम्। सर्वार्थसिद्धेस्तु पृथग्ग्रहणं जघन्याभावप्रतिपादनार्थम्। तेनायमर्थः, अधोग्रैवेयकेषु प्रथमे त्रयोविंशतिः। द्वितीये चतुर्विंशतिः। तृतीये पञ्चविंशतिः। मध्यमग्रैवेयकेषु प्रथमे षड्विंशतिः। द्वितीये सप्तविंशतिः। तृतीयेऽष्टाविंशतिः। उपरिमग्रैवेयकेषु प्रथमे एकोनत्रिंशत्। द्वितीये त्रिंशत्। तृतीये एकत्रिंशत्। अनुदिशविमानेषु द्वात्रिंशत्। विजयादिषु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्युत्कृष्टा स्थितिः। सर्वार्थसिद्धौ त्रयस्त्रिंशदेवेति।

**निर्दिष्टोत्कृष्टस्थितिकेषु जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह–**

---

**३०.** घातायुष्कसम्यग्दृष्ट्यपेक्षया किञ्चिदूनार्द्धसागरोपममधिकं भवति सौधर्मकल्पात्सहस्रारपर्यन्तम्। सम्मे घादेऊणं सायरदलमहियमासहस्सारा इति वचनात्। **३१.** नवग्रैवेयकाणां नामान्येवमाहुराचार्याः–१. सुदर्शनम्, २. अमोघम्, ३. सुप्रबुद्धम्, ४. यशोधरम्, ५. सुभद्रम्, ६. सुविशालम्, ७. सुमनसम्, ८. सौमनसम्, ९. प्रीतिंकरम्। नवानुदिशानां नामानि – १. अर्च्चिः, २. अर्च्चिमालिनी, ३. वैरं, ४. वैरोचनं एतानि पूर्वादिदिक्चतुष्के। ५. सौम्यं, ६. सौम्यरूपं, ७. अंकं, ८. स्फटिकं चेति विदिक्चतुष्के। मध्ये आदित्येन्द्रकं विमानं। एवं नवानुदिशानि।

### अपरा पल्योपममधिकम् ॥३३॥

पल्योपमं व्याख्यातम्। अपरा जघन्यस्थितिः। पल्योपमं साधिकम्। केषां? सौधर्मैशानीयानाम्। कथं गम्यते? परतः परत इत्युत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वात्।

**तत ऊर्ध्वं जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—**

### परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ॥३४॥

परस्मिन्देशे परतः। वीप्सायां द्वित्वम्। पूर्वशब्दस्यापि। अधिकग्रहणमनुवर्तते। तेनैवमभिसम्बन्धः क्रियते—सौधर्मैशानयोर्द्वे सागरोपमे साधिके उक्ते, ते साधिके सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्जघन्यस्थितिः। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः परा स्थितिः सप्तसागरोपमाणि साधिकानि, तानि ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्जघन्या स्थिति-रित्यादि।

**नारकाणामुत्कृष्टा स्थितिरुक्ता। जघन्यां सूत्रेऽनुपात्तामप्रकृतामपि लघुनोपायेन प्रतिपादयित-मिच्छन्नाह-**

### नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥

चशब्दः किमर्थः?। प्रकृतसमुच्चयार्थः। किं च प्रकृतं?। परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा अपरा स्थितिरिति। तेनायमर्थो लभ्यते—रत्नप्रभायां नारकाणां परा स्थितिरेकं सागरोपमम्। सा शर्कराप्रभायां जघन्या। शर्कराप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिस्त्रीणि सागरोपमाणि। सा वालुकाप्रभायां जघन्येत्यादि। एवं द्वितीयादिषु जघन्या स्थितिरुक्ता।

**प्रथमायां का जघन्येति तत्प्रदर्शनार्थमाह—**

### दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥

अपरा स्थितिरित्यनुवर्तते। रत्नप्रभायां दशवर्षसहस्राणि [३२]अपरा स्थितिर्वेदितव्या।

**अथ भवनवासिनां का जघन्या स्थितिरित्यत आह—**

### भवनेषु च ॥३७॥

चशब्दः किमर्थः? प्रकृतसमुच्चयार्थः। तेन भवनवासिनामपरा स्थितिर्दशवर्षसहस्राणीत्यभि-सम्बध्यते।

**व्यन्तराणां तर्हि का जघन्या स्थितिरित्यत आह—**

### व्यन्तराणां च ॥३८॥

चशब्दः प्रकृतसमुच्चयार्थः। तेन व्यन्तराणामपरा स्थितिर्दशवर्षसहस्राणीत्यवगम्यते।

**अथैषां परा स्थितिः का इत्यत्रोच्यते—**

### परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥

परा उत्कृष्टा स्थितिर्व्यन्तराणां पल्योपममधिकम्।

**इदानीं ज्योतिष्काणां परा स्थितिर्वक्तव्येत्यत आह—**

---

३२. रत्नप्रभायामिति—सा तु प्रथमपटले सीमंतकनाम्न्येव। द्वितीयपटले नवतिवर्षसहस्राणि जघन्या स्थितिः। तृतीयपटले नवतिवर्षलक्षाणि। इत्यादि सर्वत्र समयाधिका सती जघन्या स्थितिर्ज्ञातव्या।

**ज्योतिष्काणां च ॥४०॥**

चशब्दः प्रकृतसमुच्चयार्थः। तैनेवमभिसम्बन्धः। ज्योतिष्काणां परा स्थितिः [३३]पल्योपममधिकमिति।

**अथापरा कियतीत्यत आह–**

**तदष्टभागोऽ परा ॥४१॥**

तस्य पल्योपमस्याष्टभागो ज्योतिष्काणामपरा स्थितिरित्यर्थः।

**अथ लौकान्तिकानां विशेषोक्तानां स्थितिविशेषो नोक्तः। स कियानित्यत्रोच्यते–**

**लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥**

अविशिष्टाः सर्वे ते शुक्ललेश्याः पञ्चहस्तोत्सेधशरीराः।

**चतुर्णिकायदेवानां स्थानं भेदाः सुखादिकम्।**
**परापरा स्थितिर्लेश्या तुर्याध्याये निरूपितम् ॥**

**॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां चतुर्थोऽध्यायः॥**

३३. पल्योपममधिकमिति–अत्र विशेषः–चंद्राणां पल्यमेकं वर्षलक्षाधिकं। सूर्याणां पल्यमेकं वर्षसहस्राधिकं। शुक्राणां वर्षशताधिकं पल्यम्। बृहस्पतीनां पल्योपममेकमेव। बुधानां पल्यार्धं। नक्षत्राणा च पल्यार्द्धं। प्रकीर्णकतारकाणां पल्यचतुर्थभागः परा स्थितिर्वेदितव्या। प्रकीर्णकतारकाणां नक्षत्राणां च जघन्या स्थितिः पल्योपमाष्टमो भागः। सूर्यादीनां जघन्या स्थितिः पल्योपमचतुर्थो भागः।

# अथ पंचमोऽध्यायः

**इदानीं, सम्यग्दर्शनस्य विषयभावेनोपक्षिप्तेषु जीवादिषु जीवपदार्थो व्याख्यातार्थः। अथाजीवपदार्थो विचारप्राप्तस्तस्य सञ्ज्ञाभेदसङ्कीर्तनार्थमिदमुच्यते—**

## अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्‌गलाः ॥१॥

कायशब्दः शरीरे व्युत्पादितः। इहोपचारादध्यारोप्यते। कुत उपचारः? यथा शरीरं पुद्‌गलद्रव्य-प्रचयात्मकं तथा धर्मादिष्वपि प्रदेशप्रचयापेक्षया काया इव काया इति। अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकायाः। विशेषणं विशेष्येणेति वृत्तिः। ननु च नीलोत्पलादिषु व्यभिचारे सति विशेषणविशेष्ययोगः। इहापि व्यभिचारयोगोऽस्ति। अजीवशब्दोऽकाये कालेऽपि वर्तते, कायोऽपि जीवे। किमर्थः कायशब्दः? प्रदेशबहुत्वज्ञापनार्थः। धर्मादीनां प्रदेशा बहव इति। ननु च असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानामित्यनेनैव प्रदेशबहुत्वं ज्ञापितम्। सत्यमिदम्। परं किन्त्वस्मिन्विधौ सति तदवधारणं विज्ञायते, असंख्येयाः प्रदेशा न संख्येया नाप्यनन्ता इति। कालस्य प्रदेशप्रचयाभावज्ञापनार्थं च इह कायग्रहणम्। कालो वक्ष्यते। तस्य प्रदेशप्रतिषेधार्थमिह कायग्रहणम्। यथाऽणोः प्रदेशमात्रत्वाद्‌द्वितीयादयोऽस्य न सन्तीत्यप्रदेशोऽणुः। तथा [१]कालपरमाणुरप्येकप्रदेशत्वादप्रदेश इति। तेषां धर्मादीनामजीव इति सामान्यसञ्ज्ञा जीवलक्षणा-भावमुखेन प्रवृत्ता। धर्माधर्माकाशपुद्‌गला इति विशेषसञ्ज्ञाः सामयिक्यः।

**अत्राह सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्येत्येवमादिषु द्रव्याण्युक्तानि, कानि तानीत्युच्यंते—**

## द्रव्याणि ॥२॥

[२]यथास्वं पर्यायैर्द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि द्रव्याणि। द्रव्यत्वयोगाद्‌द्रव्यमिति चेन्न। उभयासिद्धेः। यथा दण्डदण्डिनोर्योगो भवति पृथक्सिद्धयोः, न च तथा द्रव्यद्रव्यत्वे पृथक्सिद्धे स्तः। यद्यपृथक्सिद्धयोरपि योगः स्यादाकाशकुसुमस्य प्रकृतिपुरुषस्य द्वितीयशिरसश्च योगः स्यादिति। अथ पृथक्सिद्धिरभ्युपगम्यते, द्रव्यत्वकल्पना निरर्थिका। गुणसमुदायो द्रव्यमिति चेत्तत्रापि गुणानां समुदायस्य च भेदाभावे तद्द्रव्यव्यपदेशो नोपपद्यते। भेदाभ्युपगमे च पूर्वोक्त एव दोषः। ननु गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्त इति विग्रहेऽपि स एव दोष इति चेन ? न कथञ्चिद्भेदाभेदोपपत्तेस्तद्‌व्यपदेशसिद्धिः, व्यतिरेकेणानुपलब्धेरभेदः सञ्ज्ञालक्षण-प्रयोजनादिभेदाद्भेद इति। प्रकृता धर्मादयो बहवस्तत्सामानाधिकरण्याद्बहुत्वनिर्देशः। स्यादेतत्संख्यानु-वृत्तिवत्पुल्लिङ्गानुवृत्तिरपि प्राप्नोति ? नैष दोष आविष्टलिङ्गाः शब्दाः कदाचिल्लिङ्गं न व्यभिचरन्ति। अतो धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति।

---

१. तथा कालपरमाणुरिति—पुद्‌गलपरमाणोर्यद्यपि निश्चयनयेनैकप्रदेशत्वमुक्तं तथापि उपचारेण बहुप्रदेशत्वमस्त्वेव। यतः पुद्‌गलपरमाणुरन्यपुद्‌गलपरमाणुभिः सह मिलति। एकत्र कायवत्पिंडीभवति। तेन उपचारेण काय उच्यते। कालपरमाणु-स्तूपचारेणापि काय इति नोच्यते। स तु स्वभावेन रत्नराशिरिव मुक्ताफलसमूहवद्वा पृथक्तिष्ठति। २. यथास्वमिति—द्रूयन्ते गम्यन्ते प्राप्यन्ते यथास्वं यथायथं आत्मीयैः पर्यायैर्यानि तानि द्रव्याणि। द्रवन्ति वा पर्यायैः प्रवर्तंते यानि तानि द्रव्याणि।

**अनन्तरत्वाच्चतुर्णामेव द्रव्यव्यपदेशप्रसङ्गेऽध्यारोपार्थमिदमुच्यते—**

## जीवाश्च ॥३॥

जीवशब्दो, व्याख्यातार्थः। बहुत्वनिर्देशो व्याख्यातभेदप्रतिपत्त्यर्थः। चशब्दो द्रव्यसञ्ज्ञानुकर्षणार्थः, जीवाश्च द्रव्याणीति। एवमेतानि वक्ष्यमाणेन कालेन सह षट् द्रव्याणि भवन्ति। ननु द्रव्यस्य लक्षणं वक्ष्यते ''गुणपर्ययवद्द्रव्यमिति'' तल्लक्षणयोगाद्धर्मादीनां द्रव्यत्वव्यपदेशो भवति नार्थः परिगणनेन ? परिगणनमवधारणार्थं तेनान्यवादिपरिकल्पितानां पृथिव्यादीनां निवृत्तिः कृता भवति। कथं ? [3]पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि पुद्गलद्रव्येऽन्तर्भवन्ति रूपरसगन्धस्पर्शवत्त्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत्। वायुमनसो रूपादियोगाभाव इति चेन् ? न, वायुस्तावद्रूपादिमान्स्पर्शवत्त्वाद्घटादिवत्। चक्षुरादिकरण-ग्राह्यत्वाभावाद्रूपाद्यभाव इति चेत्परमाण्वादिष्वतिप्रसङ्गः स्यात्। आपो गन्धवत्यः स्पर्शवत्त्वात्पृथिवीवत्। तेजोऽपि रसगन्धवत् रूपवत्त्वात् तद्वदेव मनोऽपि द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति। तत्र भावमनो ज्ञानम्, तस्य जीवगुणत्वादात्मन्यन्तर्भावः। द्रव्यमनश्च रूपादियोगात्पुद्गलद्रव्यविकारः। रूपादिवन्मनः ज्ञानोपयोगकारणत्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत्। ननु अमूर्तेऽपि शब्दे ज्ञानोपयोगकारणत्वदर्शनाद्व्यभिचारी हेतुरिति चेन्न, तस्य पौद्गलिकत्वान्मूर्तिमत्त्वोपपत्तेः। ननु यथा परमाणूनां रूपादिमत्कार्यत्वदर्शनाद्रूपादिमत्त्वम्, न तथा वायुमनसो रूपादिमत्कार्यं दृश्यते इति चेन् ? न, तेषामपि तदुपपत्तेः। सर्वेषां परमाणूनां सर्वरूपादिमत्कार्यत्वप्राप्तियोग्यताभ्युपगमात्। न च केचित्पार्थिवादिजातिविशेषयुक्ताः परमाणवः सन्ति, जातिसंकरेणारम्भदर्शनात्। दिशोऽप्याकाशेऽन्तर्भावः। आदित्योदयाद्यपेक्षया आकाशप्रदेशपंक्तिषु इत इदमिति व्यवहारोपपत्तेः।

**उक्तानां द्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥

नित्यं ध्रुवमित्यर्थः। नेः ध्रुवे त्यः इति निष्पादितत्वात्। धर्मादीनि द्रव्याणि गतिहेतुत्वादि-विशेषलक्षणद्रव्यार्थादेशादस्तित्वादिसामान्यलक्षणद्रव्यार्थादेशाच्च कदाचिदपि न व्ययन्तीति नित्यानि। वक्ष्यते हि तद्भावाव्ययं नित्यमिति। इयत्ताऽव्यभिचारादवस्थितानि धर्मादीनि षडपि द्रव्याणि कदाचिदपि षडिति इयत्त्वं नातिवर्तन्ते ततोऽवस्थितानीत्युच्यन्ते। न विद्यते रूपमेषामित्यरूपाणि, रूपप्रतिषेधेन तत्सहचारिणां रसादीनामपि प्रतिषेधः। तेनारूपाण्यमूर्तानीत्यर्थः।

**यथा सर्वेषां द्रव्याणां नित्यावस्थितानीत्येतत्साधारणं लक्षणं तथा अरूपित्वं पुद्गलानामपि प्राप्तम्। अतस्तदपवादार्थमाह—**

## रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥

---

३. पृथिव्यप्तेज इति—एषां पुद्गलद्रव्येऽन्तर्भावः। उक्तं च—

पुढवी जलं च छाया चउरिंदिय विसयकम्मपरमाणू। छव्विहभेयं भणियं पुग्गलदव्वं जिणिंदेहिं॥
अइथूलथूल थूलं थूलं सुहुमं च थूलसुहुमं च। सुहुमं च सुहुमसुहुमं धराइयं होइ छब्भेयं॥

रूपं मूर्तिरित्यर्थः। का मूर्तिः? [४]रूपादिसंस्थानपरिणामो मूर्तिः। रूपमेषामस्तीति रूपिणः। मूर्तिमन्त इत्यर्थः। अथवा रूपमिति गुणविशेषवचनशब्दस्तदेषामस्तीति रूपिणः। रसाद्यग्रहणमिति चेन् ? न, तदविनाभावात्तदन्तर्भावः। पुद्गला इति बहुवचनं भेदप्रतिपादनार्थम्। भिन्ना हि पुद्गलाः स्कन्धपरमाणु-भेदात्तद्विकल्प उपरिष्टाद्वक्ष्यते। यदि प्रधानवदरूपत्वमेकत्वं चेष्टं स्याद्विश्वरूपकार्यदर्शनविरोधः स्यात्।

**आह किं पुद्गलवद्धर्मादीन्यपि द्रव्याणि प्रत्येकं भिन्नानीत्यत्रोच्यते–**

## आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥

आङ् अयमभिविध्यर्थः। सौत्रीमानुपूर्वीमनुत्सृत्यैतदुक्तं, तेन [५]धर्माऽधर्मा[६]काशानि[७] गृह्यन्ते। एकशब्दः संख्यावचनस्तेन द्रव्यं विशिष्यते, एकं द्रव्यं एकद्रव्यमिति। यद्येवं बहुवचनमयुक्तं, धर्माद्यपेक्षया बहुत्वसिद्धिर्भवति। एकस्यानेकार्थप्रत्यायनशक्तियोगादेकैकमित्यस्तु लघुत्वाद्द्रव्यग्रहणमनर्थकं, तथापि द्रव्यापेक्षया एकत्वख्यापनार्थं द्रव्यग्रहणं। क्षेत्रभावाद्यपेक्षया असंख्येयत्वानन्तत्वविकल्पस्येष्टत्वात्। न जीवपुद्गलवदेषां[८] बहुत्वमित्येतदनेन ख्याप्यते।

**अधिकृतानामेव एकद्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते–**

## निष्क्रियाणि च ॥७॥

[९]उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानः पर्यायो द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्तिहेतुः क्रिया, तस्या निष्क्रान्तानि निष्क्रियाणि। अत्र चोद्यते–धर्मादीनि द्रव्याणि यदि निष्क्रियाणि ततस्तेषामुत्पादो न भवेत्। क्रियापूर्वको हि घटादीनामुत्पादो दृष्टः। उत्पादाभावाच्च व्ययाभाव इति। अतः सर्वद्रव्याणामुत्पादादित्रितयकल्पनाव्याघात इति? तन् न। किं कारणम्?। अन्यथोपपत्तेः। क्रियानिमित्तोत्पादाभावेऽप्येषां धर्मादीनामन्यथोत्पादः कल्प्यते। तद्यथा–द्विविध उत्पादः स्वनिमित्तस्तावदनन्तानामगुरुलघुगुणानामागमप्रामाण्यादभ्युपगम्य-मानानां षट्स्थानपतितया वृद्ध्या हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावादेतेषामुत्पादो व्ययश्च। परप्रत्ययोऽपि अश्वादिगतिस्थित्यवगाहनहेतुत्वात्क्षणे क्षणे तेषां भेदात्तद्धेतुत्वमपि भिन्नमिति परप्रत्ययापेक्ष उत्पादो विनाशश्च व्यवह्रियते। ननु यदि निष्क्रियाणि धर्मादीनि, जीवपुद्गलानां गत्यादिहेतुत्वं नोपपद्यते, जलादीनि हि क्रियावन्ति मत्स्यादीनां गत्यादिनिमित्तानि दृष्टानीति ? नैष दोषः। [१०]बलाधान-निमित्तत्वाच्चक्षुर्वत्। यथा रूपोपलब्धौ चक्षुर्निमित्तमपि न व्याक्षिप्तमनस्कस्यापि भवति। अधिकृतानां धर्माधर्माकाशानां निष्क्रियत्वेऽभ्युपगते जीवपुद्गलानां सक्रियत्वमर्थादापन्नम्। कालस्यापि सक्रियत्वमिति चेत् ? न; अनधिकारात्। अत एवासावेतैः सह नाधिक्रियते।

---

४. रूपमिति–**रूपरसादिसंस्थानलक्षणा मूर्तिर्विद्यते येषां ते रूपिणः।** अत्र नित्ययोगे इन्प्रत्ययः। तदुक्तं–भूमनिंदाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने। संसर्गेऽस्ति विवक्षायां मंत्वादयो भवन्त्यमी। ५. सकृत्सकलगतिपरिणामानां सान्निध्याधानाद्धर्मः। ६. सकृत्सकलस्थितिपरिणामसान्निध्याधानादधर्मः। ७. आकाशन्तेऽस्मिन्द्रव्याणि स्वयं वाऽऽकाशत इत्याकाशम्। ८. न जीवपुद्गलवदिति – यथा जीवद्रव्यं नानाजीवापेक्षया भिन्नं वर्तते। पुद्गलद्रव्यं च प्रदेशस्कंधत्वापेक्षया भिन्नमस्ति तथा धर्मोऽधर्मश्चाकाशश्च द्रव्यं भिन्नं भिन्नं वर्तते। ९. क्रियापरिणामशक्तियुक्तं द्रव्यमभ्यन्तरनिमित्तं प्रेरणादिकं बाह्यनिमित्तं तद्वशादित्यर्थः। १०. गत्यादिपरिणतस्य बलाधानं कुर्वन्ति, न तु स्वयं प्रेरयन्तीति भावः।

**अजीवकाया इत्यत्र कायग्रहणेन प्रदेशास्तित्वमात्रं निर्ज्ञात न त्वियत्तावधारिता प्रदेशानामतस्त-न्निर्धारणार्थमिदमुच्यते—**

## असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥

तत्रेहाजघन्योत्कृष्टासंख्येयः परिगृह्यते। प्रदिश्यत इति प्रदेशः। वक्ष्यमाणलक्षणः परमाणुः स यावति क्षेत्रे व्यवतिष्ठते स प्रदेश इति व्यवह्रियते। धर्माधर्मैकजीवास्तुल्यासंख्येयप्रदेशाः। तत्र धर्माधर्मौ निष्क्रियौ लोकाकाशं व्याप्य स्थितौ। जीवस्तावत्प्रदेशोऽपि सन् संहरणविसर्पणस्वभावत्वात्कर्मनिर्वर्तितं शरीरमणुमहद्वाऽधितिष्ठंस्तावदवगाह्य वर्तते, यदा[११] तु लोकपूरणं भवति मन्दरस्याधश्चित्रवज्रपटलमध्ये जीवस्याष्टौ मध्यप्रदेशा व्यवतिष्ठन्ते। इतरे प्रदेशा ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् कृत्स्नं लोकाकाशं व्यश्नुवते।

**अथाकाशस्य कति प्रदेशा इत्यत आह—**

## आकाशस्यानन्ताः ॥९॥

लोकेऽलोके [१२]चाकाशं वर्तते। अविद्यमानोऽन्तो येषां ते अनन्ताः। के? प्रदेशाः। कस्य? आकाशस्य। पूर्ववदस्यापि प्रदेशकल्पनाऽवसेया। उक्तममूर्तानां प्रदेशपरिमाणम्।

**इदानीं मूर्तानां पुद्गलानां प्रदेशपरिमाणं निर्ज्ञातव्यमित्यत आह—**

## संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

चशब्देनानन्ताश्चेत्यनुकृष्यते। कस्यचित्पुद्गलद्रव्यस्य द्व्यणुकादेः संख्येयाः प्रदेशाः, कस्यचिद-संख्येया, अनन्ताश्च। अनंतानन्तोपसंख्यानमिति चेत् ? न, अनन्तसामान्यात्। अनन्तप्रमाणं त्रिविधमुक्तं परीतानन्तं युक्तानन्तमनन्तानन्तं चेति। तत्सर्वमनन्तसामान्येन गृह्यते। स्यादेतदसंख्यातप्रदेशो लोकः अनन्तप्रदेशस्यानन्तानन्तप्रदेशस्य च स्कन्धस्याधिकरणमिति विरोधः? ततो नानन्त्यमिति? नैष दोषः। सूक्ष्मपरिणामावगाहनशक्तियोगात्परमाण्वादयो हि सूक्ष्मभावेन परिणता एकैकस्मिन्नप्याकाश-प्रदेशेऽनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते, अवगाहनशक्तिश्चैषामव्याहताऽस्ति तस्मादेकस्मिन्नपि प्रदेशेऽन-न्तानन्तानामवस्थानं न विरुद्ध्यते।

**पुद्गलानामित्यविशेषवचनात्परमाणोरपि प्रदेशवत्त्वप्रसंगे तत्प्रतिषेधार्थमाह—**

## नाणोः ॥११॥

अणोः प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेषः। कुतो न सन्तीति चेत् ? प्रदेशमात्रत्वात्। [१३]यथा आकाशप्रदेशस्यैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभावः। किं च ततोऽल्प-परिमाणाभावान्न ह्यणोरल्पीयानन्योऽस्ति। यतोऽस्य प्रदेशा भिद्येरन्।

**एषामवधृतप्रदेशानां धर्मादीनामाधारप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते—**

---

११. यदा त्विति–लोकपूरणं चतुर्भिः समयैः करोति चतुर्भिः संहरति। एवं लोकपूरणकरणेऽष्टौ समया लगन्ति। १२. आकाशमिति–आसमंताल्लोके अलोके च काशते इति आकाशम्। १३. यथेति–यथा एकाकाशप्रदेशस्यापि प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वं तथैकस्य अविभागस्य परमाणोरपि अप्रदेशत्वं ज्ञातव्यं। यत एकस्याणोर्भेदः केनापि कर्तुं न शक्यते। ''परमाणोः परं नाल्पं नभसो न परं महत्'', इति वचनादणोरप्यणीयानपरो न विद्यते। कथमणोः प्रदेशा भिद्यन्ते?

## [१४]लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥

उक्तानां धर्मादीनां द्रव्याणां लोकाकाशेऽवगाहो न बहिरित्यर्थः। यदि धर्मादीनां लोकाकाशमाधार आकाशस्य क आधार इति? आकाशस्य नास्त्यन्य आधारः। स्वप्रतिष्ठमाकाशम्। यद्याकाशं स्वप्रतिष्ठं, धर्मादीन्यपि स्वप्रतिष्ठान्येव। अथ धर्मादीनामन्य आधारः कल्प्यते, आकाशस्याप्यन्य आधारः कल्प्यः। तथा सत्यनवस्थाप्रसङ्ग इति चेत् ? नैष दोषः। नाकाशादन्यदधिकपरिमाणं द्रव्यमस्ति। यत्राकाशं स्थितमित्युच्यते। सर्वतोऽनन्तं हि तत्। ततो धर्मादीनां पुनरधिकरणमाकाशमित्युच्यते व्यवहारनयवशात्। एवम्भूतनयापेक्षया[१५] तु सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठान्येव। तथा चोक्तं, क्व भवानास्ते? आत्मनीति। धर्मादीनि लोकाकाशान्न बहिः सन्तीति एतावदत्राधाराधेयकल्पनासाध्यं फलम्। ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्टो यथा कुण्डे बदरादीनां। न तथाऽऽकाशं पूर्वम्। धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि। अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ? नैष दोषः। युगपद्भाविनामपि आधाराधेयभावो दृश्यते। घटे रूपादयः शरीरे हस्तादय इति। लोक इत्युच्यते। को लोकः?। धर्माधर्मादीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोक इति। अधिकरणसाधने घञ्। आकाशं द्विधा विभक्तं। लोकाकाशमलोकाकाशं[१६] चेति। लोक उक्तः। स यत्र तल्लोकाकाशम्। ततो बहिः सर्वतोऽनन्तमलोकाकाशम्। लोकालोकविभागश्च धर्माधर्मास्तिकायसद्भावाद्विज्ञेयः। असति हि तस्मिन्धर्मास्तिकाये जीवपुद्गलानां गतिनियमहेत्वभावाद्विभागो न स्यात्। असति चाधर्मास्तिकाये स्थितेराश्रयनिमित्ताभावात् स्थितेरभावः। तस्या अभावे लोकालोकविभागाभावो वा स्यात्। तस्मादुभयसद्भावाल्लोकालोकविभागसिद्धिः।

**तत्रावध्रियमाणानामवस्थानभेदसम्भवाद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥

कृत्स्नवचनमशेषव्याप्तिप्रदर्शनार्थम्। अगारेऽवस्थितो घट इति यथा तथा धर्माधर्मयोर्लोकाकाशेऽव-गाहो न भवति। किं तर्हि? कृत्स्ने, तिलेषु तैलवदिति। अन्योन्यप्रदेशप्रवेशव्याघाताभावोऽवगाहनशक्ति-योगाद्वेदितव्यः।

**अतो विपरीतानां मूर्तिमतामप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां पुद्गलानामवगाहविशेषप्रतिपत्त्यर्थ-माह—**

## एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥

एक एव प्रदेश एकप्रदेशः। एकप्रदेश आदिर्येषां त इमे एकप्रदेशादयः। तेषु पुद्गलानामवगाहो

---

**१४.** लोकाकाश इति—लोक्यन्ते धर्मादयः पदार्था यस्मिन्निति लोकः। लोकस्य संबंधी आकाशो लोकाकाशस्तस्मिन् लोकाकाशे। **१५.** एवंभूतनयापेक्षयेति—निश्चयनयापेक्षयेत्यर्थः। **१६.** लोकाकाशमलोकाकाशं चेति—अत्राह कश्चित् स्थितिदानस्वभावस्याधर्मद्रव्यस्य लोकाकाशे स्थितस्य परतोऽभावात्कथमलोकाकाशः स्थितिं करोति। तथा कालद्रव्यं विना कथमलोकाकाशो वर्तते? सत्यं यथा तप्तायः पिण्डो जलपार्श्वे स्थित एकस्मिन्पार्श्वे जलावकर्षणं करोति। तज्जलं सर्वत्र लोहपिंडे व्याप्नोति। तथा लोकस्य पार्श्वे स्थितमलोकाकाशं अधर्मं कालद्रव्यं च स्पृशत् स्थितिं करोति वर्तते च।

[17]भाज्यो विकल्प्यः। अवयवेन विग्रहःसमुदायः समासार्थ इति एकप्रदेशोऽपि गृह्यते। तद्यथा– एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे परमाणोरवगाहः। द्वयोरेकत्रोभयत्र च बद्धयोरबद्धयोश्च। त्रयाणामेकत्र द्वयोस्त्रिषु च बद्धानामबद्धानां च। एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां स्कन्धानामेकसंख्येयासंख्येयप्रदेशेषु लोकाकाशेऽवस्थानं प्रत्येतव्यम्। ननु युक्तं तावदमूर्त्तयोर्धर्माधर्मयोरेकत्राविरोधेनावरोध इति। मूर्तिमतां पुद्गलानां कथमित्यत्रोच्यते–अवगाहनस्वभावत्वात्सूक्ष्मपरिणामाच्च मूर्तिमतामप्यवगाहो न विरुध्यते। एकापवरके अनेकदीपप्रकाशावस्थानवत्। आगमप्रामाण्याच्च तथाऽध्यवसेयम्। तदुक्तम्– ओगाढगाढणिचिओ पुग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो। सुहुमेहिं बादरेहिं अणंताणंतेहिं विविहेहिं। १।

**अथ जीवानां कथमवगाहनमित्यत्रोच्यते–**

## असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥१५॥

लोकाकाशे इत्यनुवर्तते। तस्यासंख्येयभागीकृतस्यैको भागोऽसंख्येयभाग इत्युच्यते स आदिर्येषां तेऽसंख्येयभागादयः। तेषु जीवानामवगाहो वेदितव्यः। तद्यथा–[18]एकस्मिन्नसंख्येयभागे एको जीवोऽव-तिष्ठते एवं द्वित्रिचतुरादिष्वप्यसंख्येयभागेषु आ सर्वलोकादवगाहः प्रत्येतव्यः। नानाजीवानां तु सर्वलोक एव। यद्येकस्मिन्नसंख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते, कथं द्रव्यप्रमाणेनानन्तानन्तो जीवराशिः सशरीरोऽवतिष्ठते?। लोकाकाशे सूक्ष्मबादरभेदादवस्थानं प्रत्येतव्यम्। बादरास्तावत्सप्रतिघातशरीराः। सूक्ष्मास्तु सशरीरा अपि सूक्ष्मभावादेवैकनिगोदजीवावगाहेऽपि प्रदेशे साधारणशरीरा अनन्तानन्ता वसन्ति। न ते परस्परेण बादरैश्च व्याहन्यन्त इति नास्त्यवगाहविरोधः।

**अत्राह लोकाकाशतुल्यप्रदेश एकजीव इत्युक्तं, तस्य कथं लोकस्यासंख्येयभागादिषु वृत्तिः। ननु सर्वलोकव्याप्त्यैव भवितव्यमित्यत्रोच्यते–**

## प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥१६॥

अमूर्तस्वभावस्यात्मनोऽनादिबन्धं प्रत्येकत्वात् कथञ्चिन्मूर्ततां बिभ्रतः कार्मणशरीरवशान्महदणु च शरीरमधिष्ठितस्तद्वशात्प्रदेशसंहरणविसर्पणस्वभावस्य तावत्प्रमाणतायां सत्यामसंख्येयभागादिषु वृत्तिरुपपद्यते, प्रदीपवत्। यथा निरावरणव्योमप्रदेशेऽनवधृतप्रकाशपरिमाणस्य प्रदीपस्य शरावमाणि-कापवरकाद्यावरणवशात्तत्परिमाणतेति। अत्राह धर्मादीनामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशात्सङ्करे सत्येकत्वं प्राप्नोतीति? तन्न। परस्परमत्यन्तसंश्लेषे सत्यपि स्वभावं न जहति। उक्तं च–अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासम-ण्णमण्णस्स। मेलंता विय णिच्चं सगंसब्भावं ण विजहंति ॥१॥

**यद्येवं धर्मादीनां स्वभावभेद उच्यतामित्यत आह–**

## गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥१७॥

---

१७. भाज्यो विकल्पनीयो भाषणीय इत्यर्थः। यथा व्याकरणेऽवयवेन विग्रहो भवति समुदायः समासार्थो भवति। तथा एकप्रदेशोऽपि गृह्यते बहवश्च प्रदेशा गृह्यन्ते। १८. एकस्मिन्निति–जीवन्ति, जीविष्यन्ति, जीवितपूर्वा वा जीवास्तेषां जीवानां लोकाकाशेऽसंख्येयभागादिष्ववगाहो भवति। कोर्थः? लोकाकाशस्य असंख्येयाभागाः क्रियन्ते तेषां मध्ये एको भागो गृह्यते तस्मिन्नेकस्मिन्भागे एको जीवस्तिष्ठति।

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः। तद्विपरीता स्थितिः। उपगृह्यत इत्युपग्रहः। गतिश्च स्थितिश्च गतिस्थिती। गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ। धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देशः। उपक्रियत इत्युपकारः। कः पुनरसौ? गत्युपग्रहः स्थित्युपग्रहश्च। यद्येवं द्वित्वनिर्देशः प्राप्नोति? नैष दोषः। सामान्येन व्युत्पादित उपात्तसंख्यः शब्दः शब्दान्तरसम्बन्धे सत्यपि न पूर्वोपात्तां संख्यां जहाति। यथा – साधोः कार्यं तपः श्रुते इति। एतदुक्तं भवति–गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गत्युपग्रहे कर्तव्ये धर्मास्तिकायः साधारणाश्रयो जलवन्मत्स्यगमने। तथा स्थितिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां स्थित्युपग्रहे कर्तव्ये अधर्मास्तिकायः साधारणाश्रयः [१९]पृथिवीधातुरिवाश्वादिस्थिताविति। ननु च उपग्रहवचनमनर्थकमुपकार इत्येवं सिद्धत्वात्। गतिस्थिती धर्माधर्मयोरुपकार इति ? नैष दोषः; याथासंख्यनिवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनम्। धर्माधर्मयोर्गति-स्थित्योश्च यथासंख्यं भवति, एवं जीवपुद्गलानां यथासंख्यं प्राप्नोति धर्मस्योपकारो जीवानां गतिः अधर्मस्योपकारः पुद्गलानां स्थितिरिति ? तन्निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनं क्रियते। आह धर्माधर्मयोर्य उपकारः स आकाशस्य युक्तः सर्वगतत्वादिति चेत् ? तदयुक्तं, तस्यान्योपकारसद्भावात्। सर्वेषां धर्मादीनां द्रव्याणामवगाहनं तत्प्रयोजनम्। एकस्यानेकप्रयोजनकल्पनायां लोकालोकविभागाभावः। भूमिजलादीन्येव तत्प्रयोजनसमर्थानि नार्थो धर्माधर्माभ्यामिति चेन् ? न; असाधारणाश्रय इति विशिष्योक्तत्वात्। अनेककारणसाध्यत्वाच्चैकस्य कार्यस्य। तुल्यबलत्वात्तयोर्गतिस्थितिप्रतिबन्ध[२०] इति चेन् ? न; अप्रेरकत्वात्। अनुपलब्धेर्न तौ स्तः खरविषाणवदिति चेन्न–सर्वप्रवाद्यविप्रतिपत्तेः। सर्वे हि प्रवादिनः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षानर्थानभिवाञ्छन्ति। अस्मान्प्रति हेतोरसिद्धेश्च। सर्वज्ञेन निरतिशयप्रत्यक्षज्ञानचक्षुषा धर्मादयः सर्वे उपलभ्यन्ते। तदुपदेशाच्च श्रुतज्ञानिभिरपि।

**अत्राह यद्यतीन्द्रिययोर्धर्माधर्मयोरुपकारसम्बन्धेनास्तित्वमवध्रियते, तदनन्तरमुद्दिष्टस्य नभसोऽती-न्द्रियस्याधिगमे क उपकार इत्युच्यत–**

## आकाशस्यावगाहः ॥१८॥

उपकार इत्यनुवर्तते। जीवपुद्गलादीनामवगाहिनामवकाशदानमवगाह आकाशस्योपकारो वेदितव्यः। आह–जीवपुद्गलानां क्रियावतामवगाहिनामवकाशदानं युक्तम्। धर्मास्तिकायादयः पुनर्निष्क्रिया नित्य-सम्बन्धास्तेषां कथमवगाह इति चेन् ? न; उपचारतस्तत्सिद्धेः। यथा गमनाभावेऽपि सर्वगतमाकाशमित्युच्यते सर्वत्र सद्भावात्; एवं धर्माधर्मावपि अवगाहक्रियाभावेऽपि सर्वत्र व्याप्तिदर्शनादवगाहिनावित्युपचर्येते। आह यद्यवकाशदानमस्य स्वभावो वज्रादिभिर्लोष्टादीनां भित्त्यादिभिर्गवादीनां च व्याघातो न प्राप्नोति। दृश्यते च व्याघातः। तस्मादस्यावकाशदानं हीयते इति ? नैष दोषः। वज्रलोष्टादीनां स्थूलानां परस्परव्याघात इति नास्यावकाशदानसामर्थ्यं हीयते। तत्रावगाहिनामेव व्याघातात्। वज्रादयः पुनः स्थूलत्वात्परस्परं प्रत्यवकाशदानं न कुर्वन्तीति नासावाकाशदोषः। ये खलु पुद्गलाः सूक्ष्मास्ते परस्परं प्रत्यवकाशदानं

---

१९. अश्वादिस्थितौ भूम्याधारत्वादित्यर्थः। दधातीति धातुराधार इत्यर्थः। २०. 'प्रतिपक्षिकार्यकारणत्वे सति' इति शेषः।

कुर्वन्ति। यद्येवं नेदमाकाशस्यासाधारणं लक्षणमितरेषामपि तत्सद्भावादिति। तन्न सर्वपदार्थानां साधारणावगाहनहेतुत्वमस्यासाधारणं लक्षणमिति नास्ति दोषः। अलोकाकाशे [२१]तदभावादभाव इति चेन्न; स्वभावापरित्यागात्।

उक्त आकाशस्योपकारः। अथ तदनन्तरोद्दिष्टानां पुद्गलानां क उपकार इत्यत्रोच्यते–

**[२२]शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥**

इदमयुक्तं वर्तते। किमत्रायुक्तम्? पुद्गलानां क उपकार इति परिप्रश्ने पुद्गलानां लक्षणमुच्यते भवता शरीरादीनि पुद्गलमयानीति ? नैतदयुक्तम्। पुद्गलानां लक्षणमुत्तरत्र ''स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गला इत्यत्र'' वक्ष्यते। इदं तु जीवान् प्रति पुद्गलानामुपकारप्रतिपादनार्थमेवेति उपकारप्रकरण उच्यते। शरीराण्युक्तान्यौदारिकादीनि, सौक्ष्म्यादप्रत्यक्षाणि, तदुदयोपपादितवृत्तीन्युपचयशरीराणि कानिचित्प्रत्यक्षाणि कानिचिदप्रत्यक्षाणि। एतेषां कारणभूतानि कर्माण्यपि शरीरग्रहणेन गृह्यन्ते। एतानि पौद्गलिकानीति[२३] कृत्वा जीवानामुपकारे पुद्गलाः प्रवर्तन्ते। स्यान्मतं कार्मणमपौद्गलिकमनाकारत्वादाकाशवत्। आकारवतां हि औदारिकादीनां पौद्गलिकत्वं युक्तमिति ? तन्न। तदपि पौद्गलिकमेव, तद्विपाकस्य मूर्तिमत्सम्बन्धनिमित्तत्वात्। दृश्यते हि ब्रीह्यादीनामुदकादिद्रव्यसम्बन्धप्रापितपरिपाकानां पौद्गलिकत्वम्। तथा कार्मणमपि गुडकण्टकादिमूर्तिमद्द्रव्योपनिपाते सति विपच्यमानत्वात्पौद्गलिकमित्यवसेयम्। वाक् द्विविधा–द्रव्यवाक् भाववागिति। तत्र [२४]भाववाक् तावद्वीर्यान्तरायमतिश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामलाभनिमित्तत्वात् पौद्गलिकी। तदभावे तद्वृत्त्यभावात्। तत्सामर्थ्योपेतेन [२५]क्रियावताऽऽत्मना प्रेर्यमाणाः पुद्गला वाक्त्वेन विपरिणमन्त इति द्रव्यवागपि पौद्गलिकी श्रोत्रेन्द्रियविषयत्वात्। इतरेन्द्रियविषया कस्मान्न भवति? तद्ग्रहणायोग्यत्वात्। घ्राणग्राह्ये गन्धद्रव्ये रसाद्यनुपलब्धिवत्। अमूर्ता वागिति चेन्न; [२६]मूर्तिमद्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदर्शनान्मूर्तिम[२७]त्त्वसिद्धेः। मनो

---

**२१.** तस्य अवगाहदानस्य इत्यर्थः। अवकाशदानाभावश्च अवगाह्यद्रव्याभावात्। **२२.** शरीरादीनि–शीर्यन्ते विघटंत इति शरीराणि, उच्यते इति वाक्, मन्यते इति मनः। प्राणिति जीवति येन जीवः स प्राणः। अपानिति हर्षेण जीवति विकृत्या वा जीवति येन जीवः सोऽपानः। **२३.** पौद्गलिकानि इति–आत्मपरिणामं निमित्तमात्रं प्राप्य पुद्गलाः कर्मतया परिणमन्ते। तैस्तु कर्मभिरौदारिकादीनि शरीराण्युत्पद्यन्ते तेन सर्वाणि शरीराणि पौद्गलिकानि भवन्ति जीवानामुपकारेषु वर्तन्ते। तथा चोक्तं–जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये। स्वयमेव परिणमन्तेऽत्र पुद्गलाः कर्मभावेन। **२४.** भाववागिति–यदि पूर्वोक्तकर्मपुद्गलक्षयोपशमो न भवति अंगोपांगनामकर्मलाभश्च न स्यात्तदा वागुच्चारणे उत्साहो नोत्पद्येत तेन भाववाक् पौद्गलिकी भवति। **२५.** ताल्वोष्ठपुटव्यापारवता। **२६.** मूर्तिमता इन्द्रियेण ग्रहणम्। मूर्तिमता कुड्यादिनावरणम्। मूर्तिमता प्रतिकूलवाय्वादिना व्याघातः। **२७.** कथममूर्ता वाक् भवद्भिः पौद्गलिकीत्युच्यते? सत्यं मूर्तिमद्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिसद्भावाद्वाक् मूर्तिमत्येव। अस्यायमर्थः। वाक्मूर्तिमता कर्णेन्द्रियेण यदि गृह्यते तर्हि कथममूर्ता? तथा मूर्तिमता कुड्यादिना यदि अवरुध्यते प्रतिबध्यते तर्हि कथं वागमूर्ता? तथा वाग्ग्राहकमपि श्रोत्रेन्द्रियं काहलादिना शब्देनान्तरितं अपरं शब्दं ग्रहीतुं न शक्नोति। बधिरत्वलक्षणो व्याघातो भवति। शब्देन व्याहन्यमाना वाक्कथममूर्ता? तथा प्रतिकूलेन

द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति। भावमनस्तावल्लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलावलम्बनत्वात् पौद्गलिकम्। द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमांगोपांगनामलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादि-प्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहकाः पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम्। कश्चिदाह –मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति ? तदयुक्तम्। कथम्? उच्यते–तदिन्द्रियेणात्मना च सम्बद्धं वा स्यादसम्बद्धं वा?। यद्यसम्बद्धं तन्नात्मन उपकारकं भवितुमर्हति। इन्द्रियस्य च साचिव्यं न करोति। अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदणु इतेरषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात्। अदृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्परिभ्रमणमिति चेन् ? न; तत्सामर्थ्याभावात्। अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रियस्यादृष्टो गुणः, स निष्क्रियः सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थः। दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेषः क्रियावान्स्पर्शवान्प्राप्तवनस्पतौ परिस्पन्दहेतुस्तद्विपरीतलक्षणश्चायमिति क्रियाहेतुत्वाभावः। वीर्यान्तराय-ज्ञानावरणक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामोदयापेक्षिणाऽऽत्मनोदस्यमानः कोष्ट्यो वायुरुच्छ्वासलक्षणः प्राण इत्युच्यते। नैवात्मना बाह्यो वायुरभ्यन्तरीक्रियमाणो निश्वासलक्षणोऽपान इत्याख्यायते। एवं तावप्यात्मानुग्राहिणौ जीवितहेतुत्वात्। तेषां मनःप्राणापानानां मूर्तिमत्त्वमवसेयम्। कुतः? मूर्तिमद्भिः प्रतिघातादिदर्शनात्। प्रतिभयहेतुभिरशनिपातादिभिर्मनसः प्रतिघातो दृश्यते। सुरादिभिश्चाभिभवः। हस्ततलपुटादिभिरास्यसंवरणात्प्राणापानयोः प्रतिघात उपलभ्यते। श्लेष्मणा चाभिभवः। न चामूर्तस्य मूर्तिमद्भिरभिघातादयः स्युः। अत एवात्मास्तित्वसिद्धिः। यथा यन्त्रप्रतिमाचेष्टितं प्रयोक्तुरस्तित्वं गमयति, तथा प्राणापानादिकर्मापि क्रियावन्तमात्मानं साधयति।

**किमेतावानेव पुद्गलकृत उपकार आहोस्विदन्योऽप्यस्तीत्यत आह–**

## सुखदुः खजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥२०॥

सदसद्वेद्योदयेऽन्तरङ्गहेतौ सति बाह्यद्रव्यादिपरिपाकनिमित्तवशादुत्पद्यमानः प्रीतिपरितापरूपः परिणामः सुखदुःखमित्याख्यायते। भवधारणकारणायुराख्यकर्मोदयाद्भवस्थितिमादधानस्य जीवस्य पूर्वोक्तप्राणापानक्रियाविशेषाव्युच्छेदो जीवितमित्युच्यते। तदुच्छेदो मरणम्। एतानि सुखादीनि जीवस्य पुद्गलकृत उपकारः। कुतः? मूर्तिमद्धेतुसन्निधाने सति तदुत्पत्तेः। उपकाराधिकारादुपग्रहवचनमनर्थकम्। नानर्थकम्। स्वोपग्रहप्रदर्शनार्थमिदम्[२८]। पुद्गलानां पुद्गलकृत उपकार इति। तद्यथा–कांस्यादीनां भस्मादिभिर्जलादीनां कतकादिभिरयः प्रभृतीनामुदकादिभिरुपकारः[२९] क्रियते। चशब्दः किमर्थः?

---

मरुता वाक् व्याहन्यते कथममूर्ता? तथाभिमतप्रदेशे गच्छतः पदार्थस्य व्यावर्तनमभिभव उच्यते। कर्णेन्द्रियस्य झटिति शब्दस्य ग्रहणसामर्थ्यं घटादिशब्दैः खंड्यते। तिर्यग्वातेन च शब्दोऽभिभूयते कथं वागमूर्तिः? तथा पटहादिशब्दैर्मशकादिशब्दा अभिभूयन्ते।

२८. अन्वर्थकानि वचनानि किंचिदिष्टं ज्ञापयन्त्याचार्यस्येति न्यायोऽत्रावगन्तव्यः। अन्यत्रापि यथासम्भवमयं योजनीयः।

२९.खड्गधाराश्रितं तोयं भिनत्ति गजमस्तकम्।

समुच्चयार्थः। अन्योऽपि पुद्गलकृत उपकारोऽस्तीति समुच्चीयते। यथा शरीराणि [३०]एवं चक्षुरादीनीन्द्रियाण्यपीति।

**एवमाद्यमजीवकृतमुपकारं प्रदर्श्य जीवकृतोपकारप्रदर्शनार्थमाह—**

## परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥

परस्परशब्दः कर्मव्यतिहारे वर्तते। कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहारः। परस्परस्योपग्रहः परस्परोपग्रहः। जीवानामुपकारः। कः पुनरसौ? स्वामी भृत्यः, आचार्यः शिष्यः, इत्येवमादिभावेन वृत्तिः परस्परोपग्रहः। स्वामी तावद्वित्तत्यागादिना भृत्यानामुपकारे वर्तते। भृत्याश्च [३१]हितप्रतिपादनेनाहितप्रतिषेधेन च। आचार्य उभयलोकफलप्रदोपदेशदर्शनेन तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठानेन च शिष्याणामनुग्रहे वर्तते। शिष्या अपि तदानुकूल्यवृत्त्या आचार्याणाम्। उपकाराधिकारे पुनरुपग्रहवचनं किमर्थम्? पूर्वोक्तसुखादिचतुष्टयप्रदर्शनार्थं पुनरुपग्रहवचनं क्रियते। सुखादीन्यपि जीवानां जीवकृत उपकार इति।

**आह यद्यवश्यं सतोपकारिणा भवितव्यं संश्च कालोऽभिमतस्तस्य क उपकार इत्यत्रोच्यते—**

## वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥

वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा युटि स्त्रीलिङ्गे वर्तनेति भवति। वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति। धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्यायनिवृत्तिं प्रति स्वात्मनैव वर्तमानानां बाह्योपग्रहाद्विना तद्वृत्त्यभावात्तत्प्रवर्तनोपलक्षितः काल इति कृत्वा वर्तना कालस्योपकारः। को णिजर्थः?। वर्तते द्रव्यपर्यायस्तस्य वर्तयिता कालः। यद्येवं कालस्य क्रियावत्त्वं प्राप्नोति। यथा शिष्योऽधीते, उपाध्यायोऽध्यापयतीति ? नैष दोषः। निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृव्यपदेशो दृष्टः। यथा कारीषोऽग्निरध्यापयति। एवं कालस्य हेतुकर्तृता। स कथं काल इत्यवसीयते? समयादीनां क्रियाविशेषाणां समयादिभिर्निर्वर्त्यमानानां च पाकादीनां समयः [३२]पाक इत्येवमादिस्वसञ्ज्ञारूढिसद्भावेऽपि समयः कालः, ओदनपाककाल इत्यध्यारोप्यमाणः कालव्यपदेशस्तद्व्यपदेशनिमित्तस्य मुख्यस्य कालस्यास्तित्वं गमयति। कुतः? गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात्। द्रव्यस्य पर्यायो धर्मान्तरनिवृत्तिधर्मान्तरोपजननरूपः अपरिस्पन्दात्मकः परिणामः। जीवस्य क्रोधादिः,

---

**३०.** यथा शरीराणि पुद्गलकृत उपकारस्तथेन्द्रियाण्यपि तत्कृतोऽन्य उपकारः इत्यर्थः। **३१.** जीवानामिति—यो जीवो यस्य जीवस्य सुखं करोति स जीवस्तं जीवं बहुवारं सुखयति। यो दुःखयति स तं बहुवारान्दुःखयति। यो जीवयति स तं बहुवारं जीवयति। यो मारयति स तं बहुवारं मारयति। तथा चाह योगीन्द्रो भगवान्—मारिवि चूरिवि जीवडा जं तुहु दुक्खु करीसि। तं तह पासि अणंतगुणु अवसें जीव लहीसि। मारिवि जीवहं लक्खडा जं तुहु पाव करीसि। पुत्तकलत्तह कारणे तं तुहु एक्कु सहीसि। **३२.** समयः पाक इति—अत्र लोकप्रसिद्धो दृष्टान्तः कथ्यते। यथा तंदुलानां विक्लेदनं पचनं पाक उच्यते। ते तु तंदुलाः पच्यमानाः शनैःशनैरोदनत्वेन परिणमन्ते। तंदुलानां स्थूलत्वदर्शनात् समयं समयं प्रति सूक्ष्मः पाको भवतीति निश्चीयते। यदि प्रतिक्षणं तंदुलानां सूक्ष्मः पाको न भवेत् तदा स्थूलपाकस्यालाभो भवेत्। एवं सर्वेषां द्रव्याणां प्रतिसमयं स्थूलपर्यायविलोकनात् स्वयमेव वर्तनस्वभावत्वेन बाह्यं निश्चयकालं परमाणुरूपं अपेक्ष्य प्रतिक्षणं उत्तरोत्तरसूक्ष्मपर्यायेषु वर्तनं परिणमनं यद्भवति सा वर्तना निर्णीयते चेद्द्रव्याणां प्रतिसमयं परिणामो नैव भवेत्। तर्हि द्रव्याणां स्थूलपर्यायोऽपि न स्यात् तेन सा वर्तना अणुरूपस्य मुख्यस्य कालस्य निमित्तभूतेतिकारणाद्वर्त्तनया कृत्वा मुख्यकालोऽणुरूपोऽस्तीति निश्चीयते। वर्तनालक्षणो निश्चयकालस्योपकार इत्यायातम्।

पुद्गलस्य वर्णादिः। धर्माधर्माकाशानामगुरुलघुगुणवृद्धिहानिकृतः। क्रिया परिस्पन्दात्मिका। सा द्विविधा प्रायोगिकवैस्रसिकभेदात्। तत्र प्रायोगिकी शकटादीनां, वैस्रसिकी मेघादीनाम्। परत्वापरत्वे[३३] क्षेत्रकृते कालकृते च स्तः। ते अत्र कालोपकारप्रकरणात्कालकृते गह्येते। त एते वर्तनादय उपकाराः कालस्यास्तित्वं गमयन्ति। ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु, तद्भेदा परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम्। नानर्थकम्। कालद्वयसूचनार्थत्वात्प्रपञ्चस्य। कालो हि द्विविधः परमार्थकालो व्यवहारकालश्च। परमार्थकालो वर्तनालक्षणः। परिणामादिलक्षणो व्यवहारकालः। अन्येन परिच्छिन्नोऽन्यस्य परिच्छेदहेतुः क्रियाविशेषः काल इति व्यवह्रियते। स त्रिधा व्यवतिष्ठते भूतो वर्तमानो भविष्यन्निति। तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशो मुख्यः। भूतादिव्यपदेशो गौणः। व्यवहारकाले भूतादिव्यपदेशो मुख्यः। कालव्यपदेशो गौणः। क्रियावद्द्रव्यापेक्षत्वात्कालकृतत्वाच्च।

**अत्राह—धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवकालानामुपकारा उक्ताः। लक्षणं चोक्तम् ''उपयोगो लक्षणमित्ये-वमादि''। पुद्गलानां तु सामान्यलक्षणमुक्तं ''अजीवकाया इति'' विशेषलक्षणं नोक्तम्। तत्किमित्यत्रोच्यते–**

**स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥२३॥**

स्पृश्यते स्पर्शनमात्रं वा स्पर्शः। सोऽष्टविधः; मृदुकठिनगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षभेदात्। रस्यते रसनमात्रं वा रसः। स पञ्चविधः। [३४]तिक्ताम्लकटुमधुरकषायभेदात्। गन्ध्यते गन्धनमात्रं वा गन्धः। स द्वेधा। सुरभिरसुरभिरिति। वर्ण्यते वर्णनमात्रं वा वर्णः। स पञ्चविधः। कृष्णनीलपीतशुक्ललोहित-भेदात्। त एते मूलभेदाः प्रत्येकं संख्येयासंख्येयानन्तभेदाश्च भवन्ति। स्पर्शश्च रसश्च गन्धश्च वर्णश्च स्पर्शरसगन्धवर्णास्त एतेषां सन्तीति स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त इति। नित्ययोगे वन्निर्देशः। यथा क्षीरिणो न्यग्रोधा इति। ननु च रूपिणः पुद्गला इत्यत्र पुद्गलानां रूपवत्त्वमुक्तं तदविनाभाविनश्च रसादयस्तत्रैव परिगृहीता इति व्याख्यातं तस्मात्तेनैव पुद्गलानां रूपादिमत्त्वसिद्धेः सूत्रमिदमनर्थकमिति ? नैष दोषः। नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्यत्र धर्मादीनां नित्यत्वादिनिरूपणेन पुद्गलानामरूपत्वप्रसङ्गे तदपाकरणार्थं तदुक्तम्।

**इदं तु तेषां स्वरूपविशेषप्रतिपत्त्यर्थमुच्यते। अवशिष्टपुद्गलविकारप्रतिपत्यर्थमिदमुच्यते—**

**शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥२४॥**

शब्दो द्विविधो भाषालक्षणो विपरीतश्चेति। भाषालक्षणो द्विविधः साक्षरोऽनक्षरश्चेति। अक्षरीकृतः शास्त्राभिव्यञ्जकः संस्कृतविपरीतभेदादार्यम्लेच्छव्यवहारहेतुः। [३५]अनक्षरात्मको द्वीन्द्रियादीनाम-

---

**३३.** परत्वापरत्वे इति–अतिसमीपदेशवर्तिनि अतिवृद्धे व्रतादिगुणहीने चांडाले परव्यवहारो वर्तते। दूरदेशवर्तिनि गर्भरूपे व्रतादिगुणसहिते च अपरत्वव्यवहारो वर्तते। ते द्वेऽपि परत्वापरत्वे उक्तलक्षणे कालकृते ज्ञातव्ये कालोपकार इत्यर्थः। **३४.** तिक्तेति–लवणरसस्य मधुररसेऽन्तर्भावो वेदितव्योऽथवा सर्वेषां रसानां व्यंजको लवणरस इति कारणात्पंचस्वपि रसेष्वन्तर्भावः। येषु च जलादिषु एको द्वौ त्रयो वा गंधादयः प्रकटा न ज्ञायन्ते। तत्र स्पर्शसद्भावात् अप्रकटाः सन्तीति निश्चीयन्ते। **३५.** अनक्षरात्मक इति–अनक्षरः शब्दो द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियप्राणिनां ज्ञानातिशयस्वभावकथनप्रत्ययः। ज्ञानातिशयस्तु एकेन्द्रियापेक्षया ज्ञातव्यः। एकेन्द्रियाणां तु ज्ञानमात्रं वर्तते। अतिशयज्ञानं नास्ति। अतिशयज्ञानहेत्वभावात्।

तिशयज्ञानस्वरूपप्रतिपादनहेतुः स एष सर्वः[३६] प्रायोगिकः। अभाषात्मको द्विविधः। प्रायोगिको वैस्रसिकश्चेति। वैस्रसिको बलाहकादिप्रभवः। प्रायोगकश्चतुर्धा, ततविततघनसौषिरभेदात्। तत्र चर्मतननिमित्तः पुष्करभेरीदर्दुरादिप्रभवस्ततः। तन्त्रीकृतवीणासुघोषादिसमुद्भवो विततः। तालघण्टा-लालनाद्यभिघातजो घनः। वंशशंखादिनिमित्तः सौषिरः। बन्धो द्विविधो वैस्रसिकः प्रायोगिकश्च। पुरुषप्रयोगानपेक्षो वैस्रसिकः। तद्यथा—स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्तो विद्युदुल्काजलधाराग्नीन्द्रधनुरादिविषयः। पुरुषप्रयोगनिमित्तः प्रायोगिकः, अजीवविषयो जीवाजीवविषयश्चेति द्विधा भिन्नः। तत्राजीवविषयो जतुकाष्ठादिलक्षणः। जीवाजीवविषयः कर्मनोकर्मबन्धः। सौक्ष्म्यं द्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं च। तत्रान्त्यं परमाणूनाम्। आपेक्षिकं बिल्वामलकबदरादीनाम्। स्थौल्यमपि द्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं चेति। तत्रान्त्यं जगद्व्यापिनि महास्कन्धे। आपेक्षिकं बदरामलकबिल्वतालादिषु। संस्थानमाकृतिः। तद्द्विविधं इत्थंलक्षणमनित्थंलक्षणं चेति। [३७]वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रायतपरिमण्डलादीनामित्थंलक्षणम्[३८]। ततोऽन्यन्मेघादीनां संस्थानमनेकविधमित्थमिदमिति निरूपणाभावादनित्थंलक्षणम्। भेदाः षोढा, उत्करचूर्णखण्ड-चूर्णिकाप्रतराणुचटनविकल्पात्। तत्रोत्करः काष्ठादीनां [३९]करपत्रादिभिरुत्करणम्। चूर्णो यवगोधूमादीनां सक्तुकणिकादिः। खण्डो घटादीनां कपालशर्करादिः। चूर्णिका माषमुद्गादीनाम्। प्रतरोऽभ्रपटलादीनाम्। अणुचटनं सन्तप्तायः पिण्डादिषु अयोघनादिभिरभिहन्यमानेषु स्फुलिंगनिर्गमः। तमो दृष्टिप्रतिबन्धकारणं प्रकाशविरोधि। छाया प्रकाशावरणनिमित्ता। सा द्वेधा, वर्णादिविकारपरिणता प्रतिबिम्बमात्रात्मिका चेति। आतपः आदित्यादिनिमित्त उष्णप्रकाशलक्षणः। उद्योतश्चन्द्रमणिखद्योतादिप्रभवः प्रकाशः। त एते शब्दादयः पुद्गलद्रव्यविकारास्त एषां सन्तीति शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तः पुद्गला इत्यभिसम्बध्यते। चशब्देन नोदनाभिघातादयः पुद्गलपरिणामा आयामे प्रसिद्धाः समुच्चीयन्ते।

**उक्तानां पुद्गलानां भेदप्रदर्शनार्थमाह—**

## अणवः स्कन्धाश्च ॥२५॥

प्रदेशमात्रभाविस्पर्शादिपर्यायप्रसवसामर्थ्येनाण्यन्ते शब्द्यन्त [४०]इत्यणवः। सौक्ष्म्यादात्मादय आत्म-मध्या आत्मान्ताश्च। उक्तं च –अत्तादि अत्तमज्झं अत्तं णेव इंदिये गेज्झम्। जं दव्वं अविभागी तं परमाणुं विआणेहि। १। स्थूलभावेन ग्रहणनिक्षेपणादिव्यापारस्कन्धनात्स्कन्धा इति सञ्ज्ञायन्ते। रूढौ क्रिया

---

अतिशयज्ञानवता सर्वज्ञेन एकेन्द्रियाणां स्वरूपं निरूप्यते। स भगवान्परमातिशयज्ञानवान्। अन्यः पुमान्रथ्यापुरुषसदृशो नाममात्रेण सर्वज्ञो हरिहरादिकः। अत्र केचित्सर्वज्ञस्य अनक्षरात्मकं शब्दं प्रतिपादयन्ति। नष्टवर्णात्मकं शब्दं प्रतिपादयन्ति। नष्टवर्णात्मको ध्वनिरिति वचनात्। तन्नसंगच्छते। अनक्षरात्मकेन शब्देनार्थप्रतीतेरभावात्। तथा चोक्तम्—देवकृतो ध्वनिरित्य-सदेतद्देवगुणस्य तथा विहतिः स्यात्। साक्षर एव च वर्णसमूहो नैव तेन विनार्थगतिर्जगति स्यात्।

**३६.** वीणाभेदः। **३७.** दर्प–णादिसंस्थानम्। **३८.** गोलकसंस्थानम्। **३९.** क्रकचादिभिः। **४०.** अणव इति–प्रदेशमात्रभाविना स्पर्शादिपर्यायणामुत्पत्तिसामर्थ्येन परमागमे अण्यन्ते साध्यन्ते कार्यलिंगं विलोक्य सद्रूपतया प्रतिपाद्यन्ते इति अणवः। तथा चोक्तं–अणवः कार्यलिंगाः स्युर्द्विस्पर्शाः परिमंडलाः। एकवर्णरसा नित्याः स्युरनित्याश्च पर्ययैः॥

क्वचित्सती उपलक्षणत्वेनाश्रीयते इति ग्रहणादिव्यापारायोग्येष्वपि द्व्यणुकादिषु स्कन्धाख्या प्रवर्तते। अनन्तभेदा अपि पुद्गला अणुजात्या स्कन्धजात्या च द्वैविध्यमापद्यमानाः सर्वे गृह्यन्त इति तज्जात्याधारानन्तभेदसंसूचनार्थं बहुवचनं क्रियते। अणवः स्कन्धा इति भेदाभिधानंपूर्वोक्तसूत्र-द्वयभेदसम्बन्धनार्थम्। स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तोऽणवः। स्कन्धाः पुनः शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदत-मश्छायातपोद्योतवन्तश्च स्पर्शादिमन्तश्चेति।

**आह किमेषां पुद्गलानामणुस्कन्धलक्षणः परिणामोऽनादिरुत आदिमानित्युच्यते। स खलूत्पत्ति-मत्त्वादादिमान्प्रतिज्ञायते। यद्येवं तस्मादभिधीयतां कस्मान्निमित्तादुत्पद्यन्त इति। तत्र स्कन्धानां तावदुत्पत्ति-हेतुप्रतिपादनार्थमुच्यते—**

## भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥

संघातानां द्वितयनिमित्तवशाद्विदारणं भेदः। पृथग्भूतानामेकत्वापत्तिः संघातः। ननु च द्वित्वाद्द्विवचनेन भवितव्यम्। बहुवचननिर्देशस्तृतीयसंग्रहार्थः। भेदात्संघाताद्भेदसंघाताभ्यां च उत्पद्यन्त इति। तद्यथा— द्वयोः परमाण्वोः संघाताद्द्विप्रदेशः स्कन्ध उत्पद्यते। द्विप्रदेशस्याणोश्च त्रयाणां वा अणूनां संघातात्त्रिप्रदेशः। द्वयोर्द्विप्रदेशयोस्त्रिप्रदेशस्याणोश्चतुर्णां वा अणूनां संघाताच्चतुःप्रदेशः। एवं संख्येयासंख्येया-नन्तानामनन्तानन्तानां च संघातात्तावत्प्रदेशाः। एषामेव भेदात्तावद्द्विप्रदेशपर्यन्ताः स्कन्धा उत्पद्यन्ते। एवं भेदसंघाताभ्यामेकसमयिकाभ्यां द्विप्रदेशादयः स्कन्धा उत्पद्यन्ते अन्यतो भेदेनान्यस्य संघातेनेति। एवं स्कन्धानामुत्पत्तिहेतुरुक्तः।

**अणोरुत्पत्तिहेतुप्रदर्शनार्थमाह—**

## भेदादणुः ॥२७॥

सिद्धे विधिरारभ्यमाणो नियमार्थो भवति। अणोरुत्पत्तिर्भेदादेव, न संघातान्नापि भेदसंघाता-भ्यामिति।

**आह संघातादेव स्कन्धानामात्मलाभे सिद्धे भेदग्रहणमनर्थकमिति। तद्ग्रहणप्रयोजनप्रतिपादनार्थ-मिदमुच्यते—**

## भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥

अनन्तानन्तपरमाणुसमुदयनिष्पाद्योऽपि कश्चिच्चाक्षुषः कश्चिदचाक्षुषः। तत्र योऽचाक्षुषः स कथं चाक्षुषो भवतीति चेदुच्यते। भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः। न भेदादिति। का तत्रोपपत्तिरितिचेत्—ब्रूमः। सूक्ष्मपरिणामस्य स्कन्धस्य भेदे सौक्ष्म्यापरित्यागादचाक्षुषत्वमेव। सौक्ष्म्यपरिणतः पुनरपरः सत्यपि तद्भेदेऽन्यसंघातान्तर-संयोगात्सौक्ष्म्यपरिणामोपरमे स्थौल्योत्पत्तौ चाक्षुषो भवति।

आह धर्मादीनां द्रव्याणां विशेषलक्षणात्युक्तानि, सामान्यलक्षणं नोक्तं, तद्वक्तव्यम्। उच्यते—

## सत् द्रव्यलक्षणम् ॥२९॥

यत्सत्तद्द्रव्यमित्यर्थः।

**यद्येवं तदेव तावद्वक्तव्यं किं सत्? इत्यत आह—**

## उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥३०॥

चेतनस्याचेतनस्य वा द्रव्यस्य स्वां जातिमजहत [४१]उभयनिमित्तवशाद्भावान्तरावाप्तिरुत्पादनमुत्पादः। मृत्पिण्डस्य घटपर्यायवत्। तथा पूर्वभावविगमनं व्ययः। यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृतेः। अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुवः। ध्रुवस्य भावः कर्म वा ध्रौव्यम्। यथा मृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वयः। तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्युक्तं सदिति। आह भेदे सति युक्तशब्दो दृष्टः। यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति। तथा सति तेषां त्रयाणां तैर्युक्तस्य द्रव्यस्य चाभावः प्राप्नोति ? नैष दोषः। अभेदेऽपि [४२]कथञ्चिदभेदनयापेक्षया युक्तशब्दो दृष्टः। यथा सारयुक्तः स्तम्भ इति। तथा सति तेषामविनाभावात्सद्व्यपदेशो युक्तः, समाधिवचनो[४३] वा युक्तशब्दः। युक्तः समाहितस्तदात्मक इत्यर्थः। उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिति यावत्। एतदुक्तं भवति–उत्पादादीनि त्रीणि द्रव्यस्य लक्षणानि। द्रव्यं लक्ष्यम्। तत्र पर्यायार्थिकनयापेक्षया परस्परतो द्रव्याच्चार्थान्तरभावः। द्रव्यार्थिकनयापेक्षया व्यतिरेकेणानुपलब्धेरनर्थान्तरभावः। इति लक्ष्यलक्षणभावसिद्धिः।

**आह नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्युक्तं तत्र न ज्ञायते किं नित्यमित्यत आह–**

## तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥

तद्भाव इत्युच्यते। कस्तद्भावः? प्रत्यभिज्ञानहेतुता। तदेवेदमिति स्मरणं प्रत्यभिज्ञानम्। [४४]तदकस्मान्न भवतीति योऽस्य हेतुः स तद्भावः। भवनं भावस्तस्य भावस्तद्भावः येनात्मना प्राग्दृष्टं वस्तु तेनैवात्मना पुनरपि भावात्तदेवेदमिति प्रत्यभिज्ञायते। यद्यत्यन्तविरोधोऽभिनवप्रादुर्भावमात्रमेव वा स्यात्ततः स्मरणानुपपत्तिः। तदधीनो लोकसंव्यवहारो विरुद्ध्यते। ततस्तद्भावेनाव्ययं नित्यमिति निश्चीयते। तत्तु कथञ्चिद्वेदितव्यम्। सर्वथा नित्यत्वे अन्यथाभावाभावात्संसारतन्निवृत्तिकारणप्रक्रियाविरोधः[४५]स्यात्।

**ननु इदमेव विरुद्धं तदेव नित्यं तदेवानित्यमिति। यदि नित्यं व्ययोदयाभावादनित्यताव्याघातः। अथानित्यत्वमेव स्थित्यभावान्नित्यताव्याघात इति। नैतद्विरुद्धं कुत–**

## अर्पितानर्पितासिद्धेः ॥३२॥

अनेकान्तात्मकस्य वस्तुनः प्रयोजनवशाद्यस्य कस्यचिद्धर्मस्य विवक्षया प्रापितं प्राधान्य–

---

**४१.** अन्तरङ्गबहिरङ्गाभ्यां। **४२.** अभेदेऽपि कथञ्चिद्भेदापेक्षया इत्यपि पाठान्तरम्। **४३.** समाधिवचनेति–अथवा युजिर योगे सति रुधादिको धातुर्न भवति किं तर्हि युज समाधाविति दैवादिकोऽयं धातुस्तथा सति 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तंउत्पाद–व्ययध्रौव्यसमाहितं–उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकं–उत्पादव्ययध्रौव्यमयं। उत्पादव्ययध्रौव्यस्वभावं यद्वस्तु तत्सदुच्यते। तथा चोक्तं –स्थितिजनननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत्प्रतिक्षणम्। इति जिन! सकलज्ञलाञ्छनं वचनमिदं वदतांवरस्य ते॥ अस्मिन्सूत्रे उत्पादव्ययध्रौव्याणि द्रव्यस्य लक्षणान्युक्तानि। द्रव्यं तु लक्ष्यं प्रोक्तम्। पर्यायार्थिकनयेन उत्पादादीनामर्थान्तरभावो द्रव्यात्। द्रव्यार्थिकनयेन तु परस्परं व्यतिरेको नास्ति किन्तु तन्मयत्वं वर्तते। **४४.** तदिति–तत्प्रत्यभिज्ञानं अकस्मान्निर्हेतुकं न भवति। यद्यत्यंतविरोधो भवति विनाशः स्यात्तदाभिनवप्रादुर्भावमात्रमेव स्यात् मूलद्रव्यविलोपो भवति। घटांगीकारे मृत्पिंडमृत्तिकाद्रव्यवत्। तस्मात्तत्कारणात्तद्भावेन नित्यं निश्चीयते। मृत्पिंडाद्घटपर्यायस्तु उपसर्जनीभूतऽप्रधानभूतः। तद्भावस्तु प्रधानभूतस्तेन नित्यमिति। तन्नित्यं कथंचिद्वेदितव्यं केनचिन्नयप्रकारेण ज्ञातव्यं द्रव्यार्थिकनयेन ज्ञातव्यमित्यर्थः। सर्वथा नित्यत्वेऽन्यथाभावस्याभावः स्यात्। तथा सति संसारविनिवृत्तिहेतुभूतक्रियाविरोधो भवति। **४५.** आत्मनः सर्वथा नित्यत्वे नरनारकादिरूपेण संसारस्तद्विनिवृत्तिरूपमोक्षश्च न घटते। ततः संसारस्वरूपकथनं मोक्षोपायकथनं च विरुद्ध्यत इति भावः।

मर्पितमुपनीतमिति यावत्। तद्विपरीतमनर्पितम्। प्रयोजनाभावात् सतोऽप्यविवक्षा भवतीत्युपसर्जनी-भूतमनर्पितमित्युच्यते। अर्पितं चानर्पितं चार्पितानर्पिते। ताभ्यां सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोधः। [४६]तद्यथा–एकस्य देवदत्तस्य पिता, पुत्रो, भ्राता, भागिनेय इत्येवमादयः सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वा-दिनिमित्ता न विरुध्यन्ते अर्पणाभेदात्। पुत्रापेक्षया पिता, पित्रपेक्षया [४७]पुत्र इत्येवमादिः। तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्यं, विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः। तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवतः।

**अत्राह–सतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्यः सतां स्कन्धात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं किं संघातः संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति? उच्यते - सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते। यद्येवमिदमुच्यतां कुतो न खलु पुद्गलजात्यपरि-त्यागे सति भवति केषांचिद्बन्धोऽन्येषां च नेति? उच्यते–यस्मात्तेषां पुद्गलात्माविशेषेऽप्यनन्तपर्यायाणां परस्परविलक्षण-परिणामाहितसामर्थ्याद्बन्धप्रतीतः–**

## स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥३३॥

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मेति स्निग्धः। तथा रूक्षणाद्रूक्षः। स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भावः स्निग्धरूक्षत्वं। स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षणः पर्यायः। तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्वं। स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः। तत्कृतो बन्धो द्व्यणुकादिपरिणामः। द्वयोः स्निग्धरूक्षयोरण्वोः परस्परस्नेहलक्षणे बन्धे सति द्व्यणुकस्कन्धो भवति। एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशः स्कन्धो योज्यः। तत्र स्नेहगुण एकद्वित्रिचतुःसंख्येयासंख्येयानन्तविकल्पः। तथा रूक्षगुणोऽपि। तद्गुणाः परमाणवः सन्ति। यथा तोयाजागोमहिष्युष्ट्रीक्षीरघृतेषु स्नेहगुणः प्रकर्षाप्रकर्षेण प्रवर्तते। पांशुकणिकाशर्करादिषु च रूक्षगुणो दृष्टः। तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूक्षगुणयोर्वृत्तिः प्रकर्षाप्रकर्षेणानुमीयते।

**स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते बन्धेऽविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाह–**

## न जघन्यगुणानाम् ॥३४॥

[४८]जघन्यो निकृष्टो गुणो भागः। जघन्यो गुणो येषां ते जघन्यगुणाः। तेषां जघन्यगुणानां नास्ति

---

४६. तद्यथेति – यथा कश्चित्पुमान् पिता इत्युच्यते स पिता कस्यचित्पुत्रस्य विवक्षया पिता भवति। तत्रापि पितुरपि कश्चित्पिता वर्तते तद्विवक्षया स एव पिता पुत्र इत्युच्यते। तथा स एव पुत्रत्वेन विवक्षितः पिता भ्रातापि कथ्यते। कस्मात्? तस्य पुत्रत्वेन पितृत्वेन पुंसोऽन्यः कश्चिद्भ्राता वर्तते तदपेक्षया स एव पुमान्भ्रातापि कथ्यते। इत्यादयः सम्बन्धा एकस्यापि पुरुषस्य जनकत्वजन्यत्वादिकारणाद्बहवो भवन्तीति नास्ति विरोधः। तथा द्रव्यमपि सामान्यविवक्षया अर्पणया नित्यमुच्यते। विशेषविवक्षया विशेषार्पणया नित्यमपि वस्तु अनित्यमुच्यते। अनित्याकारसंदर्शनान्मृत इत्यादिवत्। तत्रापि नास्ति विरोधः। तौ च सामान्यविशेषौ केनचिन्नयप्रकारेण कथंचिद्भेदाभेदाभ्यां व्यवहारकारणं भवतः। एवमर्पितानर्पितसिद्धिवशात् नित्यत्वानित्यत्वे, नीलत्वानीलत्वे, एकत्वानेकत्वे, भिन्नाभिन्नत्वे, अपेक्षितत्वानपेक्षितत्वे, दैवत्वपुरुषत्वे, पुण्यपापत्वे इत्यादयो धर्मा एकस्मिन्पदार्थे योजितव्याः। **४७.**एते पित्रादय आपेक्षिका अपि परमार्थिका एव। धूमादेः स्वसाध्यापेक्षयाऽन्यसाध्यापेक्षया च साधनत्वासाधनत्ववत्। **४८.** जघन्येति–तथाहि जघनमेव जघन्यं शरीरावयवेषु किल निकृष्टोऽवयवस्तथान्योऽपि यो निकृष्टः स जघन्य उच्यते। यदुगवादित इत्येनन सूत्रेण यत्प्रत्यये सति जघन्यशब्दः सिद्धः। केचिच्छाखादित्वात् यं प्रत्ययं मन्यन्ते। यथा शाखायां भवः

बन्धः। तद्यथा–एकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निग्धेन च नास्ति बन्धः। तस्यैवैकगुणस्निग्धस्य एकगुणरूक्षेण द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणरूक्षेण वा नास्ति बन्धः। तथा एकगुणरूक्षस्यापि योज्यमिति।

**एतौ जघन्यगुणस्निग्धरूक्षौ वर्जयित्वान्येषां स्निग्धानां रुक्षाणां च परस्परेण बन्धो भवतीत्यविशेषेण प्रसङ्गे तत्रापि प्रतिषेधविषयख्यापनार्थमाह–**

## गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥३५॥

सदृशग्रहणं तुल्यजातीयसंप्रत्ययार्थम्। गुणसाम्यग्रहणं तुल्यभागसंप्रत्ययार्थम्। एतदुक्तं भवति – द्विगुणस्निग्धानां द्विगुणस्निग्धैः, द्विगुणरूक्षाणां द्विगुणरूक्षैः, त्रिगुणस्निग्धानां त्रिगुणरूक्षैश्चेत्येवमादिषु नास्ति बन्ध इति। यद्येवं सदृशग्रहणं किमर्थं? गुणवैषम्ये सदृशानामपि बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते।

**अतो विषमगुणानां तुल्यजातीयानामतुल्यजातीयानां चानियमेन बन्धप्रसक्तौ विशिष्टार्थसंप्रत्ययार्थ-मिदमुच्यते–**

## द्व्यधिकादिगुणानां तु[४९] ॥३६॥

द्वाभ्यां गुणाभ्यामधिको द्व्यधिकः। कः पुनरसौ? चतुर्गुणः। आदिशब्दः प्रकारार्थः। कः पुनरसौ प्रकारः? द्व्यधिकता। तेन पञ्चगुणादीनां सम्प्रत्ययो न भवति। तेन द्व्यधिकादिगुणानां तुल्यजातीयानामतुल्य-जातीयानां च बन्ध उक्तो भवति नेतरेषाम्। तद्यथा–द्विगुणस्निग्धस्य परमाणोरेकगुणस्निग्धेन, द्विगुणस्निग्धेन, त्रिगुणस्निग्धेन वा नास्ति बन्धश्चतुर्गुणस्निग्धेन पुनरस्ति बन्धः। तस्यैव पुनर्द्विगुणस्निग्धस्य पञ्चगुणस्निग्धेन षट्सप्ताष्ट–संख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निन्धेन वा बन्धो नास्ति। एवं त्रिगुणस्निग्धस्य पञ्चगुणस्निग्धेन बन्धोऽस्ति। शेषैः पूर्वोत्तरैर्न भवति। चतुर्गुणस्निग्धस्य षड्गुणस्निग्धेनास्ति बन्धः। शेषैः पूर्वोत्तरैर्नास्ति। एवं शेषेष्वपि योज्यः। तथा द्विगुणरूक्षस्य एकद्वित्रिगुणरूक्षैर्नास्ति बन्धः। चतुर्गुणरूक्षेण त्वस्ति बन्धः। तस्यैव द्विगुणरूक्षस्य पञ्चगुणरूक्षादिभिरुत्तरैर्नास्ति बन्धः। एवं त्रिगुणरूक्षादीनामपि द्विगुणाधिकैर्बन्धो योज्यः। एवं भिन्नजातीयेष्वपि योज्यः। उक्तं च–णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिएण। लुख्खस्स लुख्खेण दुराधिएण। णिद्धस्स लुख्खेण हवेज्ज बंधो। जहण्णवज्जे विसमे समे वा। १।

---

शाख्यः। तथा जघने भवो जघन्यः। गुणशब्दस्तु अनेकार्थः। क्वचिदप्रधानेऽर्थे यथा–''गुणप्रधानार्थमिदं हि वाक्यं'' अप्रधानार्थमित्यर्थः। क्वचिद्रज्जौ यथा द्विगुणा रज्जुः समावयवा इत्यर्थः। द्वे रज्जु एकत्र वुनिते इत्यर्थः। क्वचिद्द्रव्ये गुण-शब्दो वर्तते यथागुणवान्मालवो देशः गोधूमादिप्रचुरद्रव्यवानित्यर्थः। क्वचिद्रूपादिषु गुणशब्दो वर्तते यथा गुणा रूपरसादयः। क्वचिद्दोषविपरीतार्थे यथा गुणवात्साधुः ज्ञानादिमानित्यर्थः। क्वचिद्विशेषणे किंगुणोऽयम्। क्वचिद्भागे यथा द्विगुणेषु चणकेषु त्रिगुणा गोधूमाः। द्विभागेषु चणकेषु त्रिभागा गोधूमा इत्यर्थः। अत्र भागार्थो गुणशब्दो ज्ञातव्यस्तेनायं विग्रहो जघन्या निकृष्टा गुणा भागा येषां अण्वादीनां ते जघन्यगुणास्तेषां जघन्यगुणानां बधो न भवति।

**४९.** तुशब्दः पादपूरणावधारणविशेषणसमुच्चयेषु चतुर्ष्वर्थेषु यद्यपि वर्तते तथाप्यत्र सूत्रे विशेषणार्थे ज्ञातव्यः। किं तद्विशेषणं? न जघन्यगुणानां, गुणसाम्ये सदृशानां इति सूत्रद्वये यो बंधप्रतिषेध उक्तस्तं प्रतिषेधाधिकारे प्रतिषिध्य बंधं विशेषयति बंधो भवतीति कथयत्ययं तुशब्दः। विसदृशानां तु बन्धः स्निग्धरूक्षत्वादित्यनेन सिद्ध एव। अनेन सदृशग्रहणेन विसदृशानामपि योग्यत्वे सति बन्धविधिः स्थापित इत्यर्थः। न जघन्यगुणानामिति सूत्रादनुवर्तमानम्।

**तुशब्दो विशेषणार्थः प्रतिषेधं व्यावर्तयति बन्धं च विशेषयति। किमर्थमधिकगुणविषयो बन्धो व्याख्यातो न समगुणविषय इत्यत आह–**

## बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥३७॥

अधिकारात् गुणशब्दः सम्बध्यते। अधिकगुणावधिकाविति। भावान्तरापादनं पारिणामिकत्वं क्लिन्नगुडवत्। यथा क्लिन्नो गुडोऽधिकमधुररसः परीतानां रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिकः। [50]तथाऽन्योऽप्यधिकगुणोऽल्पीयसः पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादिस्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्षः पारिणामिको भवति। तत पूर्वावस्थाप्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरं प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते। इतरथा हि शुक्लकृष्णतंतुवत् संयोगे सत्यप्यपारिणामिकत्वात्सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत। उक्तेन विधिना बंधे पुनः सति ज्ञानावरणादीनां कर्मणां त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिस्थितिरुपपन्ना भवति।

**उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति द्रव्यलक्षणमुक्तं पुनरपरेण प्रकारेण द्रव्यलक्षणप्रतिपादनार्थमाह–**

## गुणपर्ययवत् द्रव्यम् ॥३८॥

गुणाश्च पर्यायाश्च गुणपर्यायास्तेऽस्य संतीति गुणपर्ययवद्द्रव्यम्। अत्र मतोरुत्पत्तावुक्त एव समाधिः। कथंचित् भेदोपपत्तेरिति। के गुणाः? के पर्यायाः? अन्वयिनो गुणा व्यतिरेकिणः पर्यायाः। उभयैरुपेतं द्रव्यमिति। उक्तं च–गुण इति दव्वविहाणं दव्ववियारो हि पज्जवो भणिदो। तेहिं अणूणं दव्वं अजुदपसिद्धं हवे णिच्चं ॥१॥ इति। एतदुक्तं भवति–द्रव्यं द्रव्यांतराद्येन विशिष्यते स गुणः[51]। तेन हि तद्द्रव्यं विधीयते। असति तस्मिन् द्रव्यसंकरप्रसंगः स्यात् तद्यथा–जीवः पुद्गलादिभ्यो ज्ञानादिभि-र्गुणैर्विशिष्यते पुद्गलादयश्च रूपादिभिः। ततश्चाविशेषे संकरः स्यात्। ततः सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणाः। पुद्गलादीनां च रूपादयः। तेषां विकारा विशेषात्मना भिद्यमानाः पर्यायाः[52]। घटज्ञानं क्रोधो मानो गंधो वर्णस्तीव्रो मंद इत्येवमादयः। तेभ्योऽन्यत्वं कथंचिदापद्यमानः समुदायो द्रव्यव्यपदेशभाक्। यदि हि सर्वथा समुदायोऽनर्थांतरभूत एव स्यात् सर्वाभावः स्यात्। तद्यथा– परस्परविलक्षणानां समुदाये सति एकानर्थांतरभावात् समुदायस्य सर्वाभावः परस्परतोऽर्थांतरभूतत्वात्। यदिदं रूपं तस्मादर्थांतरभूता रसादयः। ततः समुदयोऽनर्थांतरभूतः। यश्च रसादिभ्योऽर्थांतर-भूताद्रूपादनर्थांतरभूतः समुदायः स कथं रसादिभ्योऽर्थांतरभूतो न भवेत्। ततश्च रूपमात्रं समुदायः प्रसक्तः। न चैकं रूपं समुदायो भवितुमर्हति। ततः समुदायाभावः समुदायाभावाच्च तदर्थांतरभूतानां समुदायिनामप्यभाव इति सर्वाभावः। एवं रसादिष्वपि योज्यम्। तस्मात्समुदायमिच्छता कथंचिदर्थान्तरभाव

---

**५०.** तथेति–अत्र यथा गुडरेणुदृष्टान्तो दत्तस्तथा जलसक्तुदृष्टान्तोऽपि ज्ञातव्यः। यथा रूक्षाः सक्तवो जलकणास्तु स्निग्धा द्वाभ्यां गुणाभ्यां अधिका भवन्ति। ते जलकणाः पारिणामिकस्थानीया रूक्षगुणानां सक्तूनां पिंडत्वेन पारिणामिका विलोक्यन्ते। तथा परमाणवोऽपि। तथा चोक्तं तत्त्वार्थश्लोकवार्तिके–बंधेऽधिकौ गुणौ यस्मादन्येषां पारिणामिकौ। दृष्टौ सक्तुजलादीनां नान्यथेत्यत्र युक्तिवाक्। **५१.** गुण इति–गुण्यते विशिष्यते पृथक्क्रियते द्रव्यं द्रव्यान्तराद्यैस्ते गुणाः। **५२.** पर्ययाइति–स्वभावविभावरूपतया परि समन्तात्परिप्राप्नुवन्ति परिगच्छन्ति ये ते पर्ययाः। पर्ययणं पर्यय इति वा स्वभाव-विभावपर्यायरूपतया परिप्राप्तिरित्यर्थः।

एषितव्यः।

**उक्तानां द्रव्याणां लक्षणनिर्देशात्तद्विषय एव द्रव्याध्यवसाये प्रसक्ते अनुक्तद्रव्यसंसूचनार्थमिदमाह–**

## कालश्च ॥३९॥

किम्? [५३]द्रव्यमिति वाक्यशेषः। कुतः? तल्लक्षणोपेतत्वात्। द्विविधं लक्षणमुक्तं ''उत्पादव्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्'' ''गुणपर्यायवद्द्रव्यम्'' इति च। तदुभयं लक्षणं कालस्य विद्यते। तद्यथा–ध्रौव्यं तावत्कालस्य स्वप्रत्ययं स्वभावव्यवस्थानात्। व्ययोदयौ परप्रत्ययौ अगुरुलघुगुणवृद्धिहान्यपेक्षया स्वप्रत्ययौ च। तथा गुणा अपि कालस्य साधारणासाधारणरूपाः सन्ति। तत्रासाधारणो वर्तनाहेतुत्वं, साधारणाश्चाचेतनत्वामूर्तत्वसूक्ष्मत्वागुरुलघुत्वादयः। पर्यायाश्च व्ययोत्पादलक्षणा योज्याः। तस्माद्-द्विप्रकारलक्षणोपेतत्वादाकाशादिवत्कालस्य द्रव्यत्वं सिद्धम्। तस्यास्तित्वलिङ्गं धर्मादिवद् व्याख्यातं वर्तनालक्षणः काल इति। किमर्थमयं कालः पृथगुच्यते ? यत्रैव धर्मादय उक्तास्तत्रैवायमपि वक्तव्यः। अजीवकाया धर्माधर्माकाशकालपुद्‌गला इति। नैवं शंक्यम्। तत्रोपदेशे सति कायत्वमस्य स्यात्। नेष्यते च मुख्योपचारप्रदेशप्रचयकल्पनाभावात्। धर्मादीनां तावन्मुख्यप्रदेशप्रचय उक्तः; असंख्येयाः प्रदेशा इत्येवमादिना। अणोरप्येकप्रदेशस्य पूर्वोत्तरप्रज्ञापननयापेक्षयोपचारकल्पनया प्रदेशप्रचय उक्तः। कालस्य पुनर्द्वेधाऽपि प्रदेशप्रचयकल्पना नास्तीत्यकायत्वम्। अपि च तत्र पाठे निष्क्रियाणि चेत्यत्र धर्मादीनामाकाशान्तानां निष्क्रियत्वे प्रतिपादिते इतरेषां जीवपुद्‌गलादीनां सक्रियत्वप्राप्तिवत्कालस्यापि सक्रियत्वं स्यात्। अथाकाशात्प्राक्काल उद्दिश्येत? तन्न, आ आकाशादेकद्रव्याणीत्येकद्रव्यत्वमस्य स्यात्। तस्मात्पृथगिह कालोद्देशः क्रियते। अनेकद्रव्यत्वे सति किमस्य प्रमाणं?। लोकाकाशस्य यावन्तः प्रदेशास्तावन्तः कालाणवो निष्क्रिया एकैकाकाशप्रदेशे एकैकवृत्त्या लोकं व्याप्य व्यवस्थिताः। उक्तं च –लोगागासपदेशे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्के। रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥१॥ रूपादिगुणविरहादमूर्ताः।

**वर्तनालक्षणस्य मुख्यस्य कालस्य प्रमाणमुक्तम्। परिणामादिगम्यस्य व्यवहारकालस्य किं प्रमाणमित्यत इदमुच्यते–**

## सोऽनन्तसमयः ॥४०॥

साम्प्रतिकस्यैकसमयिकत्वेऽपि अतीता अनागताश्च समया अनन्ता इति कृत्वा अनन्तसमय इत्युच्यते। अथवा मुख्यस्यैव कालस्य प्रमाणावधारणार्थमिदमुच्यते। अनन्तपर्यायवर्तनाहेतुत्वादेकोऽपि कालाणुरनन्त इत्युपचर्यते। समयः पुनः [५४]परमनिरुद्धः कालांशस्तत्प्रचयविशेष आवलिकादिरवगन्तव्यः।

**आह गुणपर्यायवद्द्रव्यमित्युक्तं तत्र के गुणा इत्यत्रोच्यते–**

## द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥

---

**५३.** द्रव्यमिति–द्रवति गच्छति प्राप्नोति, द्रोष्यति गमिष्यति प्राप्स्यति, अदुद्रुवत अगमत् प्राप्तवत्तांस्तान्पर्यायानिति द्रव्यं। स्वराद्यः इति साधुः। अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणं। उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले। **५४.** परमेति – परमनिरुद्ध इति कोऽर्थः? बुद्ध्या अविभागभेदेन भेदितः परमाणुवद्भेत्तुं न शक्यते इत्यर्थः।

द्रव्यमाश्रयो येषां ते द्रव्याश्रयाः। निष्क्रान्ता गुणेभ्यो निर्गुणाः। एवमुभयलक्षणोपेता गुणा इति। निर्गुणा इति विशेषणं द्व्यणुकादिनिवृत्त्यर्थम्। तान्यपि हि कारणभूतपरमाणुद्रव्याश्रयाणि गुणवन्ति तु तस्मान्निर्गुणा इति विशेषणात्तानि निवर्तितानि भवंति। ननु पर्याया अपि घटसंस्थानादयो द्रव्याश्रया निर्गुणाश्च तेषामपि गुणत्वं प्राप्नोति। द्रव्याश्रया इति वचनान्नित्यं द्रव्यमाश्रित्य वर्तन्ते गुणा इति विशेषणत्वात्पर्यायाश्च निवर्तिता भवन्ति। ते हि कादाचित्का इति।

**असकृत्परिणामशब्द उक्तः। तस्य कोऽर्थ इति प्रश्ने उत्तरमाह—**

**तद्भावः परिणामः ॥४२॥**

अथवा गुणा द्रव्यादर्थान्तरभूता इति केषाञ्चिद्दर्शनं तत्किं भवतोऽभिमतं नेत्याह—यद्यपि कथञ्चिद्व्यपदेशादिभेदहेत्वपेक्षया द्रव्यादन्ये, तथापि तदव्यतिरेकात्तत्परिणामाच्च नान्ये। यद्येवं स उच्यतां कः परिणाम इति तन्निश्चयार्थमिदमुच्यते—धर्मादीनि द्रव्याणि येनात्मना भवन्ति तद्भावस्तत्त्वं परिणाम इति व्याख्यायते। स द्विविधोऽनादिरादिमांश्च। तत्रानादिर्धर्मादीनां गत्युपग्रहादिः सामान्यापेक्षया। स एवादिमांश्च भवति विशेषापेक्षया ॥५॥

**॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां पंचमोऽध्यायः॥**

# अथ षष्ठोऽध्यायः

**अथाजीवपदार्थो व्याख्यात इदानीं तदनन्तरोद्देशभागास्त्रवपदार्थो व्याख्येय इति ततस्तत्प्रसिद्ध्यर्थ-मिदमुच्यते–**

## कायवाङ्मनःकर्मयोगः ॥१॥

कायादयः शब्दा व्याख्यातार्थाः। कर्म क्रिया इत्यनर्थांतरम्। कायवाङ्मनसां कर्म कायवाङ्मनःकर्म योग इत्याख्यायते। आत्मप्रदेशपरिस्पन्दो योगः। स निमित्तभेदात्त्रिधा भिद्यते। काययोगो वाग्योगो मनोयोग इति। तद्यथा–वीर्यान्तरायक्षयोपशमसद्भावे सति औदारिकादिसप्तविधकायवर्गणान्य-तमालंबनापेक्ष आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः काययोगः। शरीरनामकर्मोदयापादितवाग्वर्गणालम्बने सति वीर्यान्तरायमत्यक्षराद्यावरणक्षयोपशमापादिताभ्यन्तरवाग्लब्धिसान्निध्ये वाक्परिणामाभिमुखस्यात्मनः प्रदेशपरिस्पन्दो वाग्योगः। अभ्यंतरवीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमात्मकमनोलब्धिसन्निधाने बाह्यनिमित्तमनोवर्गणालम्बने च सति मनःपरिणामाभिमुखस्यात्मनः प्रदेशपरिस्पन्दो मनोयोगः। क्षयेऽपि त्रिविधवर्गणापेक्षः सयोगकेवलिन आत्मप्रदेशपरिस्पन्दो योगो वेदितव्यः।

**आह अभ्युपगत आहितत्रैविध्यक्रियो योग इति। प्रकृत इदानीं निर्दिश्यतां किंलक्षण आस्त्रव इत्युच्यते। योऽयं योगशब्दाभिधेयः संसारिणः पुरुषस्य–**

## स [१]आस्त्रवः ॥२॥

यथा सरस्सलिलावाहिद्वारं तदाऽस्त्रवकारणत्वात् आस्त्रव इत्याख्यायते तथा योगप्रणालिकया आत्मनः कर्म आस्त्रवतीति योग आस्त्रव इति व्यपदेशमर्हति।

**आह कर्म द्विविधं पुण्यं पापं चेति। तस्य किमविशेषेण योग आस्त्रवणहेतुराहोस्विदस्ति कश्चित्प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते–**

## शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३॥

कः शुभयोगः को वा अशुभः? प्राणातिपातादत्तादानमैथुनादिरशुभः काययोगः। अनृतभाषणपरुषा-सभ्यवचनादिरशुभो वाग्योगः। वधचिन्तनेर्ष्यासूयादिरशुभो मनोयोगः। ततो विपरीतः शुभः। कथं योगस्य शुभाशुभत्वं। शुभपरिणामनिर्वृत्तो योगः शुभः। अशुभपरिणामनिर्वृत्तश्चाशुभः, न पुनः शुभाशुभकर्म-

१. आस्त्रव इति–स पूर्वस्त्रिविधोऽपि योग आस्त्रवः कथ्यते। आस्त्रवति आगच्छति आत्मदेशसमीपस्थोऽपि पुद्गलपरमाणुसमूहः कर्मत्वेन परिणमतीत्यास्त्रवः। दंडकपाटप्रतरलोकपूरणलक्षणो योगो वर्तते। स योगोऽनास्त्रवरूपोऽप्यस्ति। यथा आर्द्रमंशुकं समंतान्मरुदानीतं रजः समूहं गृह्णाति तथा कषायजलेनार्द्रो जीवस्त्रिविधयोगानीतं कर्म सर्वप्रदेशैरुपादत्तेऽथवान्योऽप्यस्ति दृष्टान्तो यथा तप्तलोहपिण्डः पयसि निक्षिप्तः समन्ताद्वारि गृह्णाति तथा कषायसंतप्तात्मा त्रिविधयोगानीतं परिगृह्णाति। मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतव इति वेदितव्यम्।

कारणत्वेन।[२]यद्येवमुच्यते शुभयोग एव न स्यात्। शुभयोगस्यापि ज्ञानावरणादिबन्धहेतुत्वाभ्युपगमात्। पुनात्यात्मानं, पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्। तत्सद्वेद्यादि। पाति रक्षति आत्मानं शुभादिति पापम्। असद्वेद्यादि।

**आह किमयमास्रवः सर्वसंसारिणां समानफलारम्भहेतुराहोस्वित्कश्चिदस्ति विशेष इत्यत्रोच्यते –**

**सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥४॥**

स्वामिभेदादास्रवभेदः। स्वामिनौ द्वौ सकषायोऽकषायश्चेति।[३]कषायः क्रोधादिः। कषाय इव कषायः। क उपमार्थः? यथा कषायो नैयग्रोधादिः श्लेषहेतुस्तथा क्रोधादिरप्यात्मनः कर्मश्लेषहेतुत्वात् कषाय इव कषाय इत्युच्यते। सह कषायेण वर्तत इति सकषायः। न विद्यते कषायो यस्येत्यकषायः। सकषायश्चाकषायश्च सकषायाकषायौ तयोः सकषायाकषाययोः।[४]सम्परायः संसारस्तत्प्रयोजनं कर्म साम्परायिकम्।[५]ईरणमीर्या योगो गतिरित्यर्थः। तद्द्वारकं कर्म ईर्यापथम्। साम्परायिकं च ईर्यापथं च साम्परायिकेर्यापथे। तयोः साम्परायिकेर्यापथयोः। यथासंख्यमभिसम्बन्धः। सकषायस्यात्मनो मिथ्यादृष्टेः साम्परायिकस्य कर्मण आस्रवो भवति। अकषायस्योपशान्तकषायादेरीर्यापथस्य कर्मण आस्रवो भवति।

**आदावुद्दिष्टस्यास्रवस्य भेदप्रतिपादनार्थमाह–**

**इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पंचचतुः पंचपंचविंशतिसङ्ख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥**

इंद्रियादीनां पंचादिभिर्यथासंख्यमभिसंबन्धो वेदितव्यः। इंद्रियाणि पंच। चत्वारः कषायाः। पंचाव्रतानि। पंचविंशतिः क्रिया इति। तत्र पंचेद्रियाणि स्पर्शनादीन्युक्तानि। चत्वारः कषायाः क्रोधादयः। पंचाव्रतानि प्राणव्यपरोपणादीनि वक्ष्यन्ते। पंचविंशतिक्रिया उच्यन्ते–चैत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणा सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया सम्यक्त्वक्रिया। अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुकी प्रवृत्तिर्मिथ्यात्वक्रिया। गमनागमनादिप्रवर्तनं कायादिभिः प्रयोगक्रिया। संयतस्य सतोऽविरतिं प्रत्याभिमुख्यं समादानक्रिया।

---

२. यद्येवमिति–ननु शुभयोगोऽपि ज्ञानावरणादिबंधहेतुर्वर्तते। यथा केनचिदुक्तं–भो विद्वन्! त्वमुपोषितो वर्तसे तेन त्वं पठनं मा कुरु विश्राम्यतामिति। तेन हितेऽप्युक्तेऽपि ज्ञानावरणादिः प्रयोक्तुर्भवति। तेन एक एवाशुभो योगोऽङ्गीक्रियतां शुभयोग एव नास्ति। सत्यम्। स यदा हि तेन परिणामेन पठन्तं विश्रमयति तदा तस्य चेतस्येवं मनोभिप्रायो वर्तते। यदिदानीमयं विश्राम्यति तदाग्रेऽस्य बहुतरं तपःश्रुतादिकं भविष्यति इत्यभिप्रायेण तपःश्रुतं वारयन्नपि अशुभास्रवभाग् न स्यात्। विशुद्धिभाक्परिणामहेतुत्वात्। तदुक्तं–विशुद्धिसंक्लेशांगं चेत्स्वपरस्थं सुखासुखं। पुण्यपापास्रवो युक्तो न चेद्व्यर्थस्तवार्हतः। **३. कष हिंसायां, कषति हिनस्त्यात्मानं दुर्गतिं प्रापयति इति कषायः।** अथवा कषायो न्यग्रोधत्वक् विभीतकहरीतकादिकं, वस्त्रे मंजिष्ठादिरागश्लेषहेतुर्यथा तथा क्रोधमानमायालोभलक्षणः कषायः कषाय इवात्मनः कर्मश्लेषहेतुः। ४. सम्पराय इति–सं सम्यक् पर उत्कृष्टः अयो गतिः पर्यटनं प्राणिनां यत्र स भवति संपरायः। संसार इत्यर्थः। **संसार–पर्यटनकारकं कर्म सांपरायिकमित्युच्यते।** ५. ईर गतौ कंपने च, **ईरणं ईर्या ईर्येति कोऽर्थः?** योगो गतिर्योगप्रवृत्तिः कायवाङ्मनोव्यापारः कायवाङ्मनोवर्गणालंबी आत्मप्रदेशपरिस्पंदो जीवप्रदेशचलनं ईर्येति भण्यते। तद्द्वारकं कर्म ईर्यापथमुच्यते। तदेवाकषायादिकं द्वारमास्रवमार्गो यस्य कर्मणस्तत्तद्द्वारकं। **ईर्यापथकर्मास्रवः संसारपरिभ्रमणकारणस्य आस्रवो भवति।** अकषायस्योपशांतकषायादेर्योगवशादुपात्तस्य कर्मणः कषायाभावाद्बंधाभावे सति शुष्ककुड्यपतितलोष्ठवत् अनंतरसमये निवर्तमानस्येर्यापथस्यास्रवो न बंधकारणं भवति। यस्मात् सकषायस्य त्वात्मनो मिथ्यादृष्टयादेर्योगवशादानीतस्य स्थित्यनुभाग–बंधकारकसांपरायिकस्य कर्मण आस्रवो भवकारणं भवति।

ईर्यापथनिमित्तेर्यापथक्रिया। ता एताः पंच क्रियाः। क्रोधावेशात्प्रादोषिकी क्रिया। प्रदुष्टस्य सतोऽभ्युद्यमः कायिकी क्रिया। हिंसोपकरणादानादाधिकरणिकी क्रिया। सत्त्वदुःखोत्पत्तितन्त्रत्वात्पारितापिकी क्रिया। आयुरिन्द्रियबलप्राणानां वियोगकरणात्प्राणातिपातिकी क्रिया। ता एताः पञ्चक्रियाः। रागार्द्रीकृतत्वात्प्रमादिनो[६] रमणीयरूपालोकनाभिप्रायो दर्शनक्रिया। प्रमादवशात्स्पृष्टव्यसञ्चेतनानुबन्धः स्पर्शनक्रिया। अपूर्वाधिकरणोत्पादनात्प्रात्ययिकी क्रिया। स्त्रीपुरुषपशुसम्पातिदेशेऽन्तर्मलोत्सर्गकरणं समन्तानुपातनक्रिया। अप्रमृष्टादृष्टभूमौ कायादिनिक्षेपोऽनाभोगक्रिया। ता एताः पंचक्रियाः। यां परेण निर्वर्त्यां क्रियां स्वयं करोति सा स्वहस्तक्रिया। पापादानादिप्रवृत्तिविशेषाभ्यनुज्ञानं निसर्गक्रिया। पराचरितसावद्यादिप्रकाशनंविदारणक्रिया। यथोक्तामाज्ञामावश्यकादिषु चारित्रमोहोदयात्कर्तुमशक्नुवतोऽन्यथाप्ररूपणादाज्ञाव्यापादिकी क्रियाः। शाठ्यालस्याभ्यां प्रवचनोपदिष्ट विधिकर्तव्यतानादरोऽनाकांक्षाक्रिया। ता एताः पंचक्रियाः। छेदनभेदनविशसनादिक्रियापरत्वमन्येन वा क्रियमाणे प्रहर्षः प्रारम्भक्रिया। परिग्रहाविनाशार्था पारिग्राहिकी क्रिया। ज्ञानदर्शनादिषु निकृतिर्वंचनं मायाक्रिया। अन्यं मिथ्यादर्शनक्रियाकरणकारणाविष्टं प्रशंसादिभिर्दृढयति यथा साधु करोषीति सा मिथ्यादर्शनक्रिया। संयमघातिकर्मोदयवशादनिवृत्तिरप्रत्याख्यानक्रिया। ता एताः पञ्चक्रियाः। एतानीन्द्रियादीनि कार्यकारणभेदाद्भेदमापद्यमानानि साम्परायिकस्य कर्मण आस्रवद्वाराणि भवन्ति।

**अत्राह योगत्रयस्य सर्वात्मकार्यत्वात्सर्वेषां संसारिणां साधारणस्य ततो बन्धफलानुभवनम्प्रत्यविशेष इत्यत्रोच्यते। नैतदेवम्। यस्मात् सत्यपि प्रत्यात्मसम्भवे तेषां जीवपरिणामेभ्योऽनन्तविकल्पेभ्यो विशेषोऽभ्यनुज्ञायते। कथमिति चेदुच्यते—**



## तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥६॥

[७]बाह्याभ्यन्तरहेतूदीरणवशादुद्रिक्तः परिणामस्तीव्रः। तद्विपरीतो मन्दः। अयं प्राणी हन्तव्य इति ज्ञात्वा प्रवृत्तिर्ज्ञातमित्युच्यते। मदात्प्रमादाद्वाऽनवबुध्य प्रवृत्तिरज्ञातम्। अधिक्रियन्तेऽस्मिन्नर्था इत्यधिकरणं द्रव्यमित्यर्थः। द्रव्यस्य स्वशक्तिविशेषो वीर्यम्। भावशब्दः, प्रत्येकं परिसमाप्यते–तीव्रभावः, मन्दभाव इत्यादिः। एतेभ्यस्त[८]स्यास्रवस्य विशेषो भवति, कारणभेदाद्धि कार्यभेद इति।

---

६. प्रमादेति – प्रमादपरतंत्रस्य कमनीयकामिनीस्पर्शानुबंधः स्पर्शनक्रिया। अपूर्वहिंसादिप्रत्ययविधानं प्रात्ययिको क्रिया। कर्मकरादिकरणीयक्रियायाः स्वयमेव करणं स्वहस्तक्रिया। ७. बाह्येति बहिरन्तःकारणोदीरणवशात्तीव्रते स्थूलो भवति, उद्रेकंप्राप्नोति, उत्कटो भवति यः परिणामः सः तीव्र इत्युच्यते। मंदते अल्पो भवति, अनुत्कटः संजायते यः परिणामः स मंद उच्यते। हनिष्यामि तं पुमांसमिति ज्ञात्वा प्रवर्तनं ज्ञातमित्युच्यते। द्रव्यस्य पुरुषादेर्निजशक्तिविशेषो वीर्यम्। ८. क्रोधरागद्वेषविशिष्टप्राणिसंयोगाद्देशकालाद्यनेकबाह्यकारणवशाच्च इंद्रियकषायाव्रतक्रियाणां कुत्रचिदात्मनि मंदो भावो भवति निर्बलः परिणामः स्यात्तस्य मंदास्रवो भवति। इंद्रियकषायाव्रताक्रियाप्रवृत्तस्य कस्यचिदात्मनो ज्ञातत्वं भवति तस्य महानास्रवः स्यात्। तथाधिकरणविशेषे सति आस्रवस्य विशेषः स्यात्। यथा वेश्यादीनामालिंगनेऽल्पास्रवः स्यात्, राजपत्नीलिंगिनीप्रभृत्यालिंगने महानास्रवो भवति। वीर्यविशेषे च वज्रवृषभनाराचसंहननमंडितपुरुषहृषीकादेर्व्यापारे महानास्रवो भवति। अपरसंहननसंयुक्तपुरुष पापकरणेऽल्पास्रवो भवति। अल्पादप्यल्पो भवति तत्रापि वीर्यविशेषान्तर्भावात्। एवं क्षेत्रकालादावप्यास्रवविशेषो वेदितव्यः। गृहे ब्रह्मचर्यभंगे अल्पास्रवः स्यात्। देवभवने ब्रह्मचर्यभंगे महानास्रवः स्यात्। तस्मादपि तीर्थमार्गे महानास्रवः स्यात्। तीर्थमार्गादपि तीर्थे महानास्रवो भवेत्। कालादौ देववंदना कालेऽपरकालान्महानास्रवः स्यात्। एवं पुस्तकादिद्रव्यादौ आस्रवभेदो मन्तव्यः। तस्य भेदा अनंता इति कारणभेदात्कार्यभेदः।

**अत्राह अधिकरणमित्युक्तं, तत्स्वरूपमनिर्ज्ञातमतस्तदुच्यतामिति। तत्र भेदप्रतिपादनद्वारेणाधिकरण-स्वरूपनिर्ज्ञानार्थमाह–**

## अधिकरणं[१] जीवाजीवाः ॥७॥

उक्तलक्षणा जीवाजीवाः। यद्युक्तलक्षणाः पुनर्वचनं किमर्थम्। अधिकरणविशेषज्ञापनार्थं पुनर्वचनम्। जीवाजीवा अधिकरणमित्ययं विशेषो ज्ञापयितव्य इत्यर्थः। कः पुनरसौ? हिंसाद्युपकरणभाव इति। स्यादेतन्मूलपदार्थयोर्द्वित्वाज्जीवाजीवाविति द्विर्वचनं न्यायप्राप्तमिति। तत्र–पर्यायाणामधिकरणत्वात्। येन केनचित्पर्यायेण विशिष्टं द्रव्यमधिकरणं न सामान्यमिति बहुवचनं कृतम्। जीवाजीवा अधिकरणं कस्य? तत्र जीवाधिकरणभेदप्रतिप्रत्यर्थमाह आस्रवस्येत्यर्थवशादभिसम्बन्धो भवति।

## आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषाय-विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥८॥

प्राणव्यपरोपणादिषु प्रमादवतः प्रयत्नावेशः संरम्भः। साधनसमभ्यासीकरणं समारम्भः। प्रक्रम आरम्भः। योगशब्दो व्याख्यातार्थः। कृतवचनं स्वातन्त्र्यप्रतिपत्त्यर्थम्। कारिताभिधानं परप्रयोगापेक्षम्। [१०]अनुमतशब्दः प्रयोजकस्य मानसपरिणामप्रदर्शनार्थः। अभिहितलक्षणाः कषायाः क्रोधादयः। विशिष्यतेऽर्थोऽर्थान्तरादिति विशेषः। स प्रत्येकमभिसम्बध्यते–संरम्भविशेषः, समारम्भविशेष इत्यादि। आद्यं जीवाधिकरणमेतैर्विशेषैर्भिद्यत इति वाक्यशेषः। एते चत्वारः सुजन्तास्त्र्यादिशब्दा यथाक्रमम-भिसंबध्यन्ते। संरम्भसमारम्भारम्भास्त्रयः। योगास्त्रयः। कृतकारितानुमतास्त्रयः। कषायाश्चत्वार इति। एतेषां गणनाभ्यावृत्तिः सुचा द्योत्यते। एकश इति वीप्सानिर्देशः। एकैकं त्र्यादीन् भेदान् नयेदित्यर्थः। तद्यथा–क्रोधकृतकायसंरम्भः। मानकृतकायसंरम्भः। मायाकृतकायसंरम्भः। लोभकृतकायसंरम्भः। क्रोधकारितकायसंरम्भः। मानकारितकायसंरम्भः। मायाकारितकायसंरम्भः। लोभकारितकायसंरम्भः। क्रोधानुमतकायसंरम्भः। मानानुमतकायसंरम्भः। मायानुमतकायसंरम्भः। लोभानुमतकायसंरम्भश्चेति द्वादशधा कायसंरम्भः। एवं वाग्योगे मनोयोगे च द्वादशधा संरम्भः। त एते संपिण्डिताः षट्त्रिंशत्, तथा समारम्भा अपि षट्त्रिंशत्। आरम्भा अपि षट्त्रिंशत्। एते संपिण्डिता जीवाधिकरणास्रवभेदा अष्टोत्तर-शतसंख्याः सम्भवन्ति। चशब्दोऽनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसञ्ज्वलनकषायभेदकृतान्त-र्भेदसमुच्चयार्थः।

**परस्याजीवस्याधिकरणस्य भेदप्रतिपत्यर्थमाह–**

## निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥९॥

निर्वर्त्यत इति निर्वर्तना निष्पादना। निक्षिप्यत इति निक्षेपः स्थापना। संयुज्यते इति संयोगो

---

१. अधिकरणमिति यद्द्रव्यमाश्रित्यास्रव उत्पद्यते तद्द्रव्यमधिकरणमुच्यते। सर्वोऽपि शुभाशुभलक्षण आस्रवो यद्यप्यात्मनो भवति जीवस्य संजायते तथापि य आस्रवो मुख्यभूतेन जीवेन उत्पाद्यते तस्यास्रवस्याधिकरणं जीवद्रव्यमाश्रयो भवति। यस्तु आस्रवोऽजीवद्रव्यमाश्रित्य जीवस्योत्पद्यते तस्यास्रवस्याधिकरणमाश्रयोऽजीवद्रव्यमुच्यते। १०. केनचित् क्रियमाणे प्राणव्यपरोपणादावनुमोदनं।

मिश्रीकृतं। निसृज्यत इति निसर्गः प्रवर्तनम्। एते द्व्यादिभिर्यथाक्रममभिसम्बध्यन्ते-निर्वर्तना द्विभेदा। निक्षेपश्चतुर्भेदः। संयोगो द्विभेदः। निसर्गस्त्रिभेद इति। त एते भेदा अजीवाधिकरणस्य वेदितव्याः। परवचनमनर्थकम्, पूर्वसूत्रे आद्यमिति वचनादिदमवशिष्टार्थं भवतीति। नानर्थकम्। अन्यार्थः परशब्दः। संरम्भादिभ्योऽन्यानि निर्वर्तनादीनि। इतरथा हि निर्वर्तनादीनामात्मपरिणामसद्भावाज्जीवाधिकरणविकल्पा एवेति विज्ञायन्ते। निर्वर्तनाधिकरणं द्विविधम्, मूलगुणनिर्वर्तनाधिकरणमुत्तरगुणनिर्वर्तनाधिकरणञ्चेति। तत्र मूलगुणनिर्वर्तनं पञ्चविधम्। शरीरवाङ्मनःप्राणापानाश्च। [११]उत्तरगुणनिर्वर्तनं काष्ठ-पुस्तचित्रकर्मादि। निक्षेपश्चतुर्विधः। अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरणं। दुष्प्रमृष्टनिक्षेपाधिकरणं, सहसानिक्षेपाधिकरणमनाभोग-निक्षेपाधिकरणं[१२] चेति। संयोगो द्विविधः भक्तपानसंयोगाधिकरणमुपकरणसंयोगाधिकरणं चेति। निसर्गस्त्रिविधः। कायनिसर्गाधिकरणं, वाग्निसर्गाधिकरणं, मनोनिसर्गाधिकरणञ्चेति। उक्तः सामान्येन कर्मास्त्रवभेदः।

**इदानीं कर्मविशेषास्त्रवभेदो वक्तव्यः। तस्मिन् वक्तव्ये आद्ययोर्ज्ञानदर्शनावरणयोरास्त्रव-भेदप्रतिपत्यर्थमाह—**

**तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥१०॥**

तत्त्वज्ञानस्य मोक्षसाधनस्य कीर्तने कृते कस्यचिदनभिव्याहरतोऽन्तःपैशुन्यपरिणामः प्रदोषः। कुतश्चित्कारणान्नास्ति, न वेद्मीत्यादि ज्ञानस्य व्यपलपनं निह्नवः। कुतश्चित्कारणाद्भावितमपि विज्ञानं दानार्हमपि यतो न दीयते तन्मात्सर्यम्। ज्ञानव्यवच्छेदकरणमन्तरायः। कायेन वाचा च परप्रकाश्यज्ञानस्य वर्जनमासादनम्। प्रशस्तज्ञानदूषणमुपघातः। आसादनमेवेति चेत्-सतो ज्ञानस्य विनयप्रदानादिगुण-कीर्तनाननुष्ठानमासादनम्। उपघातस्तु ज्ञानमज्ञानमेवेति ज्ञाननाशाभिप्राय इत्यनयोरयं भेदः। तच्छब्देन ज्ञानदर्शनयोः प्रतिनिर्देशः क्रियते। [१३]कथं पुनरप्रकृतयोरनिर्दिष्टयोस्तच्छब्देन परामर्शः कर्तुं शक्यः? प्रश्नापेक्षया। ज्ञानदर्शनावरणयोः क आस्त्रव इति प्रश्ने कृते तदपेक्षया तच्छब्दो ज्ञानदर्शने प्रतिनिर्दिशति। एतेन ज्ञानदर्शनवत्सु तत्साधनेषु च प्रदोषादयो योज्यास्तन्निमित्तत्त्वात्। त एते ज्ञानदर्शनावरणयोरा-स्त्रवहेतवः। एककारणसाध्यस्य कार्यस्यानेकस्य दर्शनात् तुल्येऽपि प्रदोषादौ ज्ञानदर्शनावरणास्त्रवसिद्धिः। अथवा विषयभेदादास्त्रवभेदः। ज्ञानविषयाः प्रदोषादयो ज्ञानावरणस्य। दर्शनविषयाः प्रदोषादयो दर्शनावरणस्येति।

**यथाऽनयोःकर्मप्रकृत्योरास्त्रवभेदास्तथा—**

**दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥**

पीडालक्षणः परिणामो दुःखम्। अनुग्राहकसम्बन्धविच्छेदे वैक्लव्यविशेषः शोकः। परिवादा-

---

**११.** काष्ठपाषाणपुस्तचित्रकर्मादिनिष्पादनं जीवरूपादिनिष्पादनं लेखनं चेत्यनेकविधम्। **१२.** अनाभोग इति कोऽर्थः? अनालोकितरूपतया उपकरणादि स्थापितमनाभोग इत्यर्थः। **१३.** कथमिति-ननु तच्छब्देन कथं ज्ञानदर्शने लभ्येते। पूर्वं ज्ञानदर्शनयोरनिर्देशात्। सत्यं श्रौतानुमितयोः श्रौतसंबधो विधिर्बलवान्। इति परिभाषासूत्रबलात् तच्छब्देन ज्ञानं दर्शनं च लभ्यते। ज्ञानदर्शनावरणयोरिति सूत्रे शब्दश्रवणात् तेन पूर्वसूत्रोक्तनिर्वर्तनादिकं न शंकनीयम्।

दिनिमित्तादाविलान्तःकरणस्य तीव्रानुशयस्तापः[१४]। परितापजाताश्रुपातप्रचुरविलापादिभिर्व्यक्तक्रन्दन-माक्रन्दनम्। आयुरिन्द्रियबलप्राणवियोगकरणं वधः। संक्लेशपरिणामावलम्बनं गुणस्मरणानुकीर्तनपूर्वकं स्वपरानुग्रहाभिलाषविषयमनुकम्पाप्रचुरं रोदनं परिदेवनम्। ननु च–शोकादीनां दुखःविशेषत्वात् दुःखग्रहणमेवास्तु। सत्यमेवम्। तथापि कतिपयविशेषप्रतिपादनेन दुःखजात्यन्तरविधानं[१५] क्रियते। यथा गौरित्युक्ते अनिर्ज्ञाते विशेषे तत्प्रतिपादनार्थं खण्डमुण्डकृष्णशुक्लाद्युपादानं क्रियते, तथा दुःखविषयास्त्रवासंख्येयलोकभेदसम्भवात् दुःखमित्युक्ते विशेषानिर्ज्ञानात्कतिपयविशेषनिर्देशेन तद्विशेषप्रतिपत्तिः क्रियते। तान्येतानि दुःखादीनि क्रोधावेशादात्मस्थानि भवन्ति परस्थान्युभयस्थानि च। एतानि सर्वाण्यसद्वेद्यास्रवकारणानि वेदितव्यानि। अत्र चोद्यते–यदि दुःखादीन्यात्मपरोभयस्थान्य-सद्वेद्यास्रवनिमित्तानि, किमर्थमार्हतैः केशलुञ्चनानशनातपस्थानादीनि दुःखनिमित्तान्यास्थीयन्ते परेषु च प्रतिपाद्यन्ते इति ? नैष दोषः–अन्तरङ्गक्रोधाद्यावेशपूर्वकाणि दुःखादीन्यसद्वेद्यास्रवनिमित्तानीति विशेष्योक्तत्वात्। यथा कस्यचिद्भिषजः परमकरुणाशयस्य निःशल्यस्य संयतस्योपरि गण्डं पाटयतो दुःखहेतुत्वे सत्यपि न पापबन्धो बाह्यनिमित्तमात्रादेव भवति। एवं संसारविषयमहादुःखादुद्विग्नस्य भिक्षोस्तन्निवृत्युपायं प्रति समाहितमनस्कस्य शास्त्रविहिते कर्मणि प्रवर्तमानस्य संक्लेशपरिणामाभावात् दुःखनिमित्तत्वे सत्यपि न पापबन्धः। उक्तञ्च– न[१६] दुखं न सुखं यद्वद्धेतुर्दृष्टश्चिकित्सिते। चिकित्सायां तु युक्तस्य स्यात् दुःखमथवा सुखम् ॥१॥ न दुःखं न सुखं तद्वद्धेतुर्मोक्षस्य साधने। मोक्षोपाये तु युक्तस्य स्यात् दुःखमथवा सुखम् ॥२॥

**उक्ता असद्वेद्यास्रवहेतवः सद्वेद्यस्य पुनः क इत्यत्रोच्यते–**

**भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥**

तासु तासु गतिषु कर्मोदयावशाद्भवन्तीति भूतानि प्राणिन इत्यर्थः। व्रतान्यहिंसादीनि वक्ष्यन्ते, तद्वन्तो व्रतिनः। ते द्विविधाः। अगारम्प्रतिनिवृत्तौत्सुक्याः संयताः गृहिणश्च संयतासंयताः। अनुग्रहार्दीकृत-चेतसः परपीडामात्मस्थामिव कुर्वतोऽनुकम्पनमनुकम्पा। भूतेषु व्रतिषु चानुकम्पा भूतव्रत्यनुकम्पा।

---

**१४.** तापनं तापो निंदाकारणात् मानभंगविधानाच्च कर्कशवचनादेश्च संजात आविलान्तःकरणस्य कलुषितचित्तस्य तीव्रानुशयोऽतिशयेन पश्चात्तापः खेद इत्यर्थः। **१५.** अत्र दुःखजात्यनुविधानमिति पाठान्तरम्। **१६.** न दुःखमिति श्लोकद्वयं व्याख्याति – यथा चिकित्सिते चिकित्साकरणे हेतुः शस्त्रादिकं स्वयं दुःखं न भवति सुखं च न भवति। कस्मादचेतनत्वादित्यर्थः। चिकित्सायां तु प्रतीकारे प्रवृत्तस्य वैद्यस्य दुःखमथवा सुखं स्यादेव भवत्येव। कथं? यदि वैद्यः क्रोधादिना शस्त्रेण स्फोटं पाटयति तदाऽधर्मकर्मोपार्जनाद्भिषजो दुःखं भवति। यदा तु कारुण्यं कृत्वा तद्व्याधिविनाशार्थं मुनेः सुखजननार्थं विस्फोटं पाटयति तदा क्रोधाद्यभावाद्धर्मकर्मोपार्जनाद्वैद्यस्य सुखमेव भवति। दृष्टान्तश्लोको गतः। इदानीं दार्ष्टान्तश्लोको व्याख्यायते। एवं मोहक्षयसाधनहेतुरुपवासलोचादिको न स्वयमेव सुखदुःखरूपो भवति। किंतु य उपवासादिकं करोति कारयति वा शिष्यं गुर्वादिकः, तस्य दुःखं सुखं वा भवति, यदि वा गुरुः क्रोधादिनोपवासादिकं करोति कारयति वा तदाऽधर्म-कर्मोपार्जनादसुखमेव प्राप्नोति। यदा तु कारुण्येन सुखदुःखविनाशार्थं उपवासादिकं कारयति करोति वा धर्मकर्मोपार्जनात्सुखमेव प्राप्नोति।

परानुग्रहबुद्ध्या स्वस्यातिसर्जनं दानम्। संसारकारणनिवृत्तिम्प्रत्यागूर्णोऽक्षीणाशयः सराग इत्युच्यते। [१७]प्राणीन्द्रियेष्वशुभप्रवृत्तेर्विरतिः संयमः। सरागस्य संयमः सरागो वा संयमः सरागसंयमः। आदिशब्देन संयमासंयमाकामनिर्जराबालतपोऽनुरोधः। योगः समाधिः सम्यक्प्रणिधानमित्यर्थः। भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादीनां योगो भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः। क्रोधादिनिवृत्तिः क्षान्तिः। लोभप्रकाराणामुपरमः शौचम्। इतिशब्दः प्रकारार्थः। के पुनस्ते प्रकाराः?। अर्हत्पूजाकरणपरताबालवृद्धतपस्विवैयावृत्त्यादयः। भूतग्रहणात्[१८] सिद्धे व्रतिग्रहणं तद्विषयानुकम्पाप्राधान्यख्यापनार्थम्। त एते सद्वेद्यस्यास्रवा ज्ञेयाः।

**अथ तदनन्तरोद्देशभाजो मोहस्यास्रवहेतौ वक्तव्ये तद्भेदस्य दर्शनमोहस्यास्रव-हेतुप्रदर्शनार्थमिद मुच्यते—**

## केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥

निरावरणज्ञानाः केवलिनः। तदुपदिष्टं बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तगणधरानुस्मृतं ग्रन्थरचनं श्रुतं भवति। रत्नत्रयोपेतश्रमणगणः संघः। अहिंसालक्षणस्तदागमदेशितो धर्मः। देवाश्चतुर्णिकाया उक्ताः। गुणवत्सु महत्सु असद्भूतदोषोद्भावनमवर्णवादः। एतेष्ववर्णवादो दर्शनमोहस्यास्रवहेतुः। [१९]कवलाभ्यवहारजीविनः केवलिन इत्येवमादिवचनं केवलिनामवर्णवादः। मांसभक्षणाद्यभिधानं श्रुतावर्णवादः। शूद्रत्वाशुचित्वाद्याविर्भावना सङ्घावर्णवादः। जिनोपदिष्टो धर्मो निर्गुणस्तदुपसेविनो ये ते चासुरा भविष्यन्तीत्येवमभिधानं धर्मावर्णवादः। सुरामांसोपसेवाद्याघोषणं देवावर्णवादः।

**द्वितीयस्य मोहस्यास्रवभेदप्रतिपादनार्थमाह—**

## कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥

कषाया उक्ताः। उदयो विपाकः। कषायाणामुदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्यास्रवो वेदितव्यः। तत्र स्वपरकषायोत्पादनं तपस्विजनवृत्तदूषणं संक्लिष्टलिङ्गव्रतधारणादिः कषायवेदनीयस्यास्रवः। सद्धर्मोपहसनदीनातिहासबहुविप्रलापोपहासशीलतादिर्हास्यवेदनीयस्य। विचित्रक्रीडनपरताव्रतशीलारुच्यादिः रतिवेदनीयस्य। परारतिप्रादुर्भावनारतिविनाशनपापशीलसंसर्गादिररतिवेदनीयस्य। स्वशोकोत्पादनापरशोकप्लुताभिनन्दनादिः शोकवेदनीयस्य। स्वभयपरिणामः परभयोत्पादनादिर्भयवेदनीयस्य। कुशलक्रियाचारजुगुप्सादिर्जुगुप्सावेदनीयस्य। अलीकाभिधायितातिसन्धानपरत्वं पररन्ध्रापेक्षित्वप्रवृद्धरागादिः स्त्रीवेदनीयस्य। स्तोकक्रोधानुत्सुकत्वस्वदारसन्तोषदिः पुंवेदनीयस्य। प्रचुरकषायगुह्येन्द्रियव्यपरोपण-

---

१७. प्राणीति—षड्जीवनिकायेषु षडिन्द्रियेषु च पापवृत्तेर्निवृत्तिः संयमः योगः सम्यक् चिन्तनादिकं। क्रोधमानमायानां निवृत्तिः क्षान्तिः। १८. ननु व्रतिनः किं भूतानि न भवंति यत्पृथक् गृह्यन्ते? युक्तमुक्तं भवता। भूतग्रहणात्सिद्धे सति यद्व्रतिशब्दग्रहणं तद्व्रतिनामनुकम्पा प्रधानतया कर्तव्येति सूचनार्थम्। १९. कवलेति—केवलिनः किल केवलज्ञानिनः कवलाहारजीविनः। तेषां च रोगो भवति, उपसर्गश्च जायते। नग्ना भवन्त्येव परं वस्त्राभरणमंडिता दृश्यन्ते इत्यादिकं केवलिनामवर्णवादः। मांसभक्षणं, मद्यपानं, मातृस्वसादिमैथुनं, रात्रिभोजनं, जलगालनं, कंदमूलभक्षणं महापापमित्यादिकमाचरणं किल शास्त्रोक्तमिति श्रुतस्यावर्णवादः। एते दिगंबराः खलु उत्सूत्रा अशुचयोऽस्नातास्त्रयीबहिर्भूताः कलिकालोद्भूता इत्यादि गुणवतां महतां दिगम्बरणां असद्भूतदोषोद्भावनं संघस्यावर्णवादः।

पराङ्गनास्कन्दादिर्नपुंसकवेदनीयस्य।

**निर्दिष्टो मोहनीयस्यास्रवभेदः। इदानीं तदनन्तरनिर्दिष्टस्यायुषः कारणप्रदर्शनार्थमिदमुच्यते—**

**बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥**

आरम्भः प्राणिपीडाहेतुव्यापारः। ममेदंबुद्धिलक्षणः परिग्रहः। आरम्भाश्च परिग्रहाश्च आरम्भ-परिग्रहाः। बहव आरम्भपरिग्रहा यस्य स बह्वारम्भपरिग्रहः। तस्य भावो बह्वारम्भपरिग्रहत्वम्। हिंसादिक्रूरकर्माजस्रप्रवर्तनपरस्वहरणविषयातिगृद्धिकृष्णलेश्याभिजातरौद्रध्यानमरणकालतादिलक्षणो नारकस्यायुष आस्रवो भवति।

**आह उक्तो नारकस्यायुष आस्रवः। तैर्यग्योनस्येदानीं वक्तव्य इत्यत्रोच्यते—**

**माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥**

चारित्रमोहकर्मविशेषस्योदयादाविर्भूत आत्मनः कुटिलभावो माया[२०] निकृतिस्तैर्यग्योनस्यायुष आस्रवो वेदितव्यः। तत्प्रपञ्चो मिथ्यात्वोपेतधर्मदेशना, निःशीलता, सन्धानप्रियता, नीलकपोत-लेश्यार्त्तध्यानमरणकालतादिः।

**आह व्याख्यातस्तैर्यग्योनस्यायुष आस्रवः। इदानीं मानुषस्यायुषः को हेतुरित्यत्रोच्यते—**

**अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥**

नारकायुरास्रवो व्याख्यातः। तद्विपरीतो मानुषस्यायुष इति संक्षेपः। तद्व्यासः—विनीतस्वभाव-प्रकृतिभद्रताप्रगुणव्यवहारतातनुकषायत्वमरणकालासंक्लेशतादिः।

**किमेतावानेव मानुषस्यायुष आस्रव इत्यत्रोच्यते—**

**स्वभावमार्दवञ्च ॥१८॥**

मृदोर्भावो मार्दवम्। स्वभावेन मार्दवं स्वभावमार्दवम्। उपदेशानपेक्षमित्यर्थः। एतदपि मानुषस्यायुष आस्रवः। पृथग्योगकरणं किमर्थं? उत्तरार्थम्। देवायुष आस्रवोऽयमपि यथा स्यादिति।

**किमेतदेव द्वितीयं मानुषस्यास्रवो? नेत्युच्यते—**

**निश्शीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥**

चशब्दोऽधिकृतसमुच्चयार्थः। अल्पारम्भपरिग्रहत्वञ्च निःशीलव्रतत्वञ्च। शीलानि च व्रतानि च शीलव्रतानि वक्ष्यन्ते। निष्क्रान्तः शीलव्रतेभ्यो निःशीलव्रतः। तस्य भावो निःशीलव्रतत्वम्। सर्वेषां ग्रहणं सकलायुरास्रवप्रतिपत्त्यर्थम्। किं देवायुषोऽपि[२१] भवति? सत्यम्, भवति भोगभूमिजापेक्षया।

**अथ चतुर्थस्यायुषः क आस्रव इत्यत्रोच्यते—**

**सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥२०॥**

---

२०. मिनोति प्रक्षिपति चतुर्गतिगर्तमध्ये प्राणिनं या सा माया। २१. किं देवायुष इति—ये शीलव्रतरहितास्तेषां देवायुरास्रवः कथं संगच्छते? युक्तमुक्तं भवता। भोगभूमिजाः शीलव्रतरहिता अपि ईशानस्वर्गपर्यन्तं गच्छन्ति। तदपेक्षया सर्वेषामिति ग्रहणम्। केचिदल्पारंभपरिग्रहा अपि अन्यदुराचारसहिता नारकादिगतिं प्राप्नुवन्ति तदर्थं च सर्वेषामिति गृहीतम्।

सरागसंयमः संयमासंयमश्च व्याख्यातौ। [२२]अकामनिर्जरा–अकामश्चारकनिरोधबन्धनबद्धेषु स्वाभिलाषमन्तरेणापरनिरोधाद्बंधनक्षुत्तृष्णानिरोधब्रह्मचर्यभूशय्यामलधारणपरितापादिसहनं। अकामेन निर्जरा अकामनिर्जरा। [२३]बालतपो मिथ्यादर्शनोपेतमनुपायकायक्लेशप्रचुरं निकृतिबहुलव्रतधारणम्। तान्येतानि दैवस्यायुष आस्रवहेतवो वेदितव्याः।

**किमेतावानेव दैवस्यायुष आस्रवो? नेत्याह–**

## सम्यक्त्वं च ॥२१॥

किं? दैवस्यायुष आस्रव इत्यनुवर्तते। [२४]अविशेषाभिधानेऽपि सौधर्मादिविशेषगतिः। कुतः? पृथक्करणात्। यद्येवं, पूर्वसूत्रे उक्त आस्रवविधिरविशेषेण प्रसक्तः; तेन सरागसंयमसंयमासंयमावपि भवनवास्याद्यायुष आस्रवौ प्राप्नुतः? नैष दोषः–सम्यक्त्वाभावे तद्व्यपदेशाभावात्तदुभयमप्यत्रान्तर्भवति।

**आयुषोऽनन्तरमुद्दिष्टस्य नाम आस्रवविधौ वक्तव्ये, तत्राऽशुभनाम्न आस्रवप्रतिपत्त्यर्थमाह–**

## योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥

योगस्त्रिप्रकारो व्याख्यातस्तस्य [२५]वक्रता कौटिल्यम्। विसंवादनमन्यथाप्रवर्तनम्। ननु च नार्थभेदो योगवक्रतैवान्यथाप्रवर्तनम्। सत्यमेवमेतत्–स्वगता योगवक्रतेत्युच्यते परगतं विसंवादनं। सम्यगभ्युदय-निःश्रेयसार्थासु क्रियासु प्रवर्तमानमन्यं तद्विपरीतकायवाङ्मनोभिर्विसंवादयति मैवं कार्षीरेवं कुर्विति। एतदुभयमशुभनामकर्मास्रवकारणं वेदितव्यम्। चशब्देन मिथ्यादर्शनपैशुन्यास्थिरचित्तताकूटमान-तुलाकरणपरनिन्दाऽऽत्मप्रशंसादिः समुच्चीयते।

**अथ शुभनामकर्मणः क आस्रव इत्यत्रोच्यते–**

## तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥

कायवाङ्मनसामृजुत्वमविसंवादनं च तद्विपरीतम्। चशब्देन समुच्चितस्य च विपरीतं ग्राह्यम्। [२६]धार्मिकदर्शनसंभ्रमसद्भावोपनयनसंसरणभीरुताप्रमादवर्जनादि। तदेतच्छुभनामकर्मास्रवकारणं वेदितव्यम्।

आह किमेतावानेव शुभनाम आस्रवविधिरुत कश्चिदस्ति प्रतिविशेषः? इत्यत्रोच्यते–यदिदं तीर्थकर-नामकर्मानन्तानुपमप्रभावमचिन्त्यविभूतिविशेषकारणं त्रैलोक्यविजयकरं तस्यास्रवविधिविशेषोऽस्तीति।

---

**२२.** अकामनिर्जरेति – अकामेन निर्जरा यः पुमान् चारकनिरोधबंधनबद्धः कोर्थः? चारकेण बंधविशेषेण निरोधबंधनबद्धो गाढ़बंधनबद्धश्चारकनिरोधबंधनबद्धस्तादृशः पुमान् पराधीनपराक्रमः सन् बुभुक्षानिरोधं तृष्णादुःखं ब्रह्मचर्यकृच्छं भूशयनकष्टं मलधारणं परितापादिकं च सहमानः सहनेच्छारहितः सन् यदीषत्कर्म निर्जरयति सा अकामनिर्जरा इत्युच्यते। **२३.** बालानां मिथ्यादृष्टितापससांन्यासिकपाशुपतपरिव्राजकैकदंडत्रिदंडपरमहंसादीनां तपः कायक्लेशादिलक्षणं निकृतिबहुलव्रतधारणं च बालतप उच्यते। **२४.** अविशेषेति–यद्यपि 'सम्यक्त्व' मितिदेवायुरास्रवकारणमिति अविशेषेणोक्तं तथापि सम्यक्त्ववान्पुमान् सौधर्मादिविशेषस्वर्गदेवेषूत्पद्यते। न तु भवनादिष्वन्यत्र पूर्वबद्धायुष्कात्। तदपि कस्मात्पृथग्योगात्। अन्यथा सम्यक्त्व-सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्येति सूत्रं कुर्यात्। यदा तु सम्यक्त्वहीनः पुमान्भवति तदा सरागसंयमादि-मंडितोऽपि भवनवासित्रयं सौधर्मादिकं च यथागममुभयमपि प्राप्नोति। **२५.** कायेनान्यत्करोति वचसान्यद्ब्रवीति मनसान्यच्चिन्तयति। एवंविधा योगवक्रता। **२६.** संभ्रम आदरः। सद्भावेन अमायया उपनयनं समीपगमनं।

यद्येवमुच्यतां के तस्यास्रवः।

**इत्यत इदमारभ्यते—**

**[२७]दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥२४॥**

जिनेन भगवताऽर्हत्परमेष्ठिनोपदिष्टे निर्ग्रन्थलक्षणे मोक्षवर्त्मनि रुचिर्दर्शनविशुद्धिः प्रागुक्त-लक्षणा। तस्या अष्टावङ्गानि निश्शङ्कितत्वं, निष्काङ्क्षिता, विचिकित्साविरहता, अमूढदृष्टिता, उपबृहणं, स्थितीकरणं, वात्सल्यं, प्रभावनं चेति। सम्यग्ज्ञानादिषु मोक्षसाधनेषु तत्साधनेषु च गुर्वादिषु स्वयोग्यवृत्त्या सत्कार आदरो विनयस्तेन सम्पन्नता विनयसम्पन्नता। अहिंसादिषु व्रतेषु तत्प्रतिपालनार्थेषु च क्रोधवर्जनादिषु शीलेषु निरवद्या वृत्तिः शीलव्रतेष्वनतीचारः। जीवादिपदार्थस्वतत्त्वविषये सम्यग्ज्ञाने नित्यं युक्तता अभीक्ष्णज्ञानोपयोगः। संसारदुःखान्नित्यभीरुता संवेगः। त्यागो दानं, तत्त्रिविधमाहारदानमभयदानं ज्ञानदानं चेति। तच्छक्तितो यथाविधि प्रयुज्यमानं त्याग इत्युच्यते। [२८]अनिगूहितवीर्यस्य मार्गाविरोधि कायक्लेशस्तपः। यथा भाण्डागारे दहने समुत्थिते तत्प्रशमनमनुष्ठीयते बहूपकारत्वात्तथाऽनेक-व्रतशीलसमृद्धस्य मुनेस्तपसः कुतश्चित्प्रत्यूहे[२९] समुपस्थिते तत्सन्धारणं समाधिः। गुणवद्दुःखोपनिपाते निरवद्येन विधिना तदपहरणं वैयावृत्त्यम्। अर्हदाचार्यबहुश्रुतेषु प्रवचने च भावविशुद्धियुक्तोऽनुरागो भक्तिः। षण्णामावश्यकक्रियाणां यथाकालं प्रवर्तनमावश्यकापरिहाणिः। ज्ञानतपोजिनपूजाविधिना धर्मप्रकाशनं मार्गप्रभावना। वत्से धेनुवत्सधर्मणि स्नेहः प्रवचनवत्सलत्वम्। तान्येतानि षोडशकारणानि सम्यग्भाव्यमानानि व्यस्तानि समस्तानि च तीर्थकरनामकर्मास्रवकारणानि प्रत्येतव्यानि।

**इदानीं नामास्रवाभिधानानन्तरं गोत्रास्रवे वक्तव्ये सति नीचैर्गोत्रस्यास्रवविधानार्थमिदमाह—**

**परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥**

तथ्यस्य वा अतथ्यस्य वा दोषस्योद्भावनं प्रति इच्छा निन्दा। गुणोद्भवनाभिप्रायः प्रशंसाः। यथासंख्यमभिसम्बन्धः—परनिन्दा, आत्मप्रशंसेति। प्रतिबन्धकहेतुसन्निधाने सति अनुद्भूतवृत्तिता अनाविर्भाव उच्छादनम्। प्रतिबन्धकाभावेन प्रकाशवृत्तिता उद्भावनम्। अत्रापि च यथाक्रममभिसम्बन्धः सद्गुणाच्छादनमसद्गुणोद्भावनमिति तान्येतानि नीचैर्गोत्रस्यास्रवकारणानि वेदितव्यानि।

---

२७. दर्शनस्य सम्यक्त्वस्य विशुद्धिर्निर्मलता दर्शनविशुद्धिस्तथा मूढत्रयरहितत्वं, षडनायतनवर्जनमष्टमदरहितत्वम-जिनजलस्यानास्वादनं मूलकपद्मिनी, कंदपलांडुतुंबकलिंगसूरणकंदसर्वपुष्पसंधानकभक्षणनिराकरणं चेत्यादिकं दर्शनविशुद्धिरुच्यते। पृथक् निर्देशः किमर्थम्? सम्यक्त्वं किल जिनभक्तिरूपं तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं वा केवलमपि तीर्थकरत्वनामकर्मास्रवकारणं भवति। तदुक्तम्—एकापि समर्थेयं जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुं। पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः। इतिकारणाद्दर्शनविशुद्धेरद्वितीयतासूचनार्थं पृथङ्निर्देशः कृतः। यतस्तत्पूर्वा अन्याः पंचदश भावना व्यस्ताः समस्ता वा तीर्थकरत्वनामकारणं भवंति तेन रहिता तु एकापि भावना कारणं न भवति। २८. प्रकटीकृतसामर्थ्यस्य। २९. प्रत्यूहे विघ्ने।

**अथोच्चैर्गोत्रस्य क आस्रवविधिरत्रोच्यते—**

**तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥**

तदित्यनेन प्रत्यासत्तेर्नीचैर्गोत्रस्यास्रवः प्रतिनिर्दिश्यते। अन्येन प्रकारेण वृत्तिर्विपर्ययः तस्य विपर्ययस्तद्विपर्ययः। कः पुनरसौ विपर्ययः?। आत्मनिन्दा, परप्रशंसा, सद्‌गुणोद्भावनमसद्‌गुणोच्छादनं च। गुणोत्कृष्टेषु विनयेनावनतिर्नीचैर्वृत्तिः। विज्ञानादिभिरुत्कृष्टस्यापि सतस्तत्कृतमदविरहोऽनहङ्कार-ताऽनुत्सेकः। तान्येतान्युत्तरस्योच्चैर्गोत्रस्यास्रवकारणानि भवन्ति।

**अथ गोत्रानन्तरमुद्दिष्टस्यान्तरायस्य क आस्रव इत्युच्यते—**

**विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥२७॥**

दानादीन्युक्तानि दानलाभभोगोपभोगवीर्याणि चेत्यत्र। तेषां विहननं विघ्नः। विघ्नस्य करणं विघ्नकरणमन्तरायस्यास्रवविधिर्वेदितव्यः। अत्र चोद्यते—तत्प्रदोषनिह्नवादयो ज्ञानदर्शनावरणादीनां प्रतिनियता आस्रवहेतवो वर्णिताः; किं ते प्रतिनियतज्ञानावरणाद्यास्रवहेतव एव उताविशेषेणेति। यदि प्रतिनियतज्ञानावरणाद्यास्रवहेतव एव, आगमविरोधः प्रसज्यते। आगमे हि सप्तकर्माणि आयुर्वर्ज्याणि प्रतिक्षणं युगपदास्रवन्तीत्युक्तम्। तद्विरोधः स्यात्। अथाविशेषेणास्रवहेतवो विशेषनिर्देशो न युक्त इति। अत्रोच्यते—यद्यपि तत्प्रदोषादिभिर्ज्ञानावरणादीनां सर्वासां कर्मप्रकृतीनां प्रदेशबन्धनियमो नास्ति। तथाप्यनुभागनियमहेतुत्वेन तत्प्रदोषनिह्नवादयो विभज्यन्ते।



**॥इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां षष्ठोऽध्यायः॥**

# अथ सप्तमोऽध्यायः

**आस्त्रवपदार्थो व्याख्यातस्तत्प्रारम्भकाल: एवोक्तं ''शुभः पुण्यस्येति'' तत्सामान्येनोक्तम्। तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थं कः पुनः शुभ इत्युक्ते इदमुच्यते—**

## हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसेत्येवमादिभिः सूत्रैर्हिंसादयो निर्देक्ष्यन्ते। तेभ्यो विरमणं विरतिर्व्रत-मित्युच्यते। व्रतमभिसन्धिकृतो नियमः। इदं कर्तव्यमिदं न कर्तव्यमिति वा। ननु च-हिंसादय परिणाम-विशेषाः अध्रुवाः कथं [1]तेषामपादानत्वमुच्यते? बुद्ध्यपाये ध्रुवत्वविवक्षोपपत्तेः। यथा धर्माद्विरमतीत्यत्र य एष मनुष्यः [2]सम्भिन्नबुद्धिः स [3]पश्यति-दुष्करो धर्मः फलं चास्य श्रद्धामात्रगम्यमिति स्वबुद्ध्या सम्प्राप्य निवर्तते। एवमिहापि य एष मनुष्यः प्रेक्षापूर्वकारी स पश्यति-य एते हिंसादयः परिणामास्ते पापहेतवः पापकर्मणि प्रवर्तमानानिहैव राजानो दण्डयन्ति परत्र च दुःखमाप्नुवन्तीतिस्वबुद्ध्या सम्प्राप्य निवर्तते। ततो बुद्ध्या ध्रुवत्वविवक्षोपपत्तेरपादानत्वं युक्तम्। विरतिशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते हिंसाया विरतिः अनृताद्विरतिरित्येवमादि। तत्र-अहिंसाव्रतमादौ क्रियते प्रधानत्वात्। सत्यादीनि हि तत्परिपालनार्थानि सस्यस्य वृतिपरिक्षेपवत्। सर्वसावद्यनिवृत्तिलक्षणसामायिकापेक्षया एकं व्रतं, तदेव छेदोपस्थापनापेक्षया पञ्चविधमिहोच्यते। ननु च अस्य व्रतस्यास्त्रवहेतुत्वमनुपपन्नं संवरहेतुष्वन्तर्भावात्। संवरहेतवो वक्ष्यन्ते गुप्तिसमित्यादयः। तत्र दशविधे धर्मे संयमे[4] वा व्रतानामन्तर्भाव इति? नैष दोषः तत्र संवरो निवृत्तिलक्षणो वक्ष्यते। प्रवृत्तिश्चात्र दृश्यते हिंसानृतादत्तादानादिपरित्यागेऽहिंसासत्यवचन-दत्तादानादिक्रियाप्रतीतेः, गुप्त्यादिसंवरपरिकर्मत्वाच्च। व्रतेषु हि कृतपरिकर्मा साधुः सुखेन संवरं करोतीति ततः पृथक्त्वेनोपदेशः क्रियते। ननु च-षष्ठमणुव्रतमस्ति रात्रिभोजनविरमणं तदिहोपसंख्यातव्यम् ? नः अहिंसाव्रतभावना-स्वन्तर्भावात्। अहिंसाव्रतभावना हि वक्ष्यन्ते तत्र आलोकितपानभोजनभावना कार्येति।

**तस्य पञ्चतयस्य व्रतस्य भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## [5]देशसर्वतोऽणुमहती ॥२॥

देश एकदेशः। सर्वः सकलः। देशश्च सर्वश्च देशसर्वौ ताभ्यां देशसर्वतः। विरतिरित्यनुवर्तते। अणु च महच्चाणुमहती। व्रताभिसम्बन्धान्नपुंसकलिङ्गनिर्देशः। यथासंख्यमभिसम्बध्यते। देशतो विरतिरणुव्रतं सर्वतो विरतिर्महाव्रतमिति द्विधा भिद्यते प्रत्येकं व्रतम्।

एतानि व्रतानि भावितानि वरौषधवद्यत्नवते दुःखनिवृत्तिनिमित्तानि भवन्ति।

---

१. बुद्धेरभावे सति विरमणलक्षणे विश्लेषे सति हिंसादीनामाचार्येण ध्रुवत्वं विवक्षितम्। वक्तुर्विवक्षितपूर्विका शब्दार्थप्रतिपत्तिरिति परिभाषणादत्र पंचमी विभक्तिर्घटते। २. विपरीतमतिरित्यभिप्रायः। ३. आलोचयति। ४. अत्र तु अहिंसासत्यदत्तादानब्रह्मचर्यस्वीकारापरिग्रहत्वाङ्गीकारतयाप्रवृत्तिवर्तते तेनास्त्रवहेतवो घटन्ते व्रतानि। व्रतेषु कृतपरिकर्मा साधुः विहितानुष्ठानः सुखेन संवरं करोति। ५. इति सूत्रेण श्रावकाचारो यत्याचारश्च क्रमेण सूत्रितो भवति।

**किमर्थं कथं वा भावनं तेषामित्यत्रोच्यते—**

**तत्स्थैर्यार्थं [६]भावनाः पञ्च पञ्च ॥३॥**

तेषां व्रतानां स्थिरीकरणायैकैकस्य व्रतस्य पंच पंच भावना वेदितव्याः।

**यद्येवमाद्यस्याहिंसाव्रतस्य भावनाः का इत्यत्रोच्यते—**

**वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥४॥**

वाग्गुप्तिः। मनोगुप्तिः। ईर्यासमितिः। आदाननिक्षेपणसमितिः। [७]आलोकितपानभोजनमित्येताः पञ्चाहिंसाव्रतस्य भावनाः।

**अथ द्वितीयस्य व्रतस्य का इत्यत्रोच्यते—**

**क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ॥५॥**

क्रोधप्रत्याख्यानम्। लोभप्रत्याख्यानम्। भीरुत्वप्रत्याख्यानम्। हास्यप्रत्याख्यानम्। अनुवीचिभाषणं चेत्येताः पञ्चभावनाः सत्यव्रतस्य ज्ञेयाः। [८]अनुवीचिभाषणं निरवद्यानुभाषणमित्यर्थः।

**इदानीं तृतीयस्य व्रतस्य का भावना इत्यत्राह -**

**[९]शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्षशुद्धिसधर्माविसंवादाः[१०] पञ्च ॥६॥**

शून्यागारेषुगिरिगुहातरुकोटरादिष्वावासः। परकीयेषु च विमोचितेष्वावासः। परेषामुपरोधाकरणम्। आचारशास्त्रमार्गेण भैक्षशुद्धिः। ममेदं तवेदमिति सधर्मभिरविसंवादः। इत्येताः पञ्चादत्तादानविरमणव्रतस्य भावनाः।



**अथेदानीं ब्रह्मचर्यव्रतस्य भावना वक्तव्या इत्यत्राह—**

**स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीर-संस्कारत्यागाः पंच ॥७॥**

त्यागशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते। स्त्रीरागकथाश्रवणत्यागः। तन्मनोहराङ्गनिरीक्षणत्यागः। पूर्वरतानु-स्मरणत्यागः। [११]वृष्येष्टरसत्यागः। शरीरसंस्कारत्यागश्चेति चतुर्थव्रतस्य भावनाः पञ्च विज्ञेयाः।

**अथ पञ्चमव्रतस्य भावनाः का इत्यत्रोच्यते—**

---

**६.** यथोत्तममौषधं लिकुचफलरसादिभिर्भावितं रुग्दुःखविनाशकं भवति तथा व्रतमपि भावनाभिर्भावितं सत् कर्मभोगदुःखविनाशकं भवति। भावनाभिर्व्रतानां स्थैर्यं जायते। **७.** आलोकिते सूर्यप्रकाशेन पुनःपुनर्निरीक्षिते ये पानभोजने। **८.** विचार्य भाषणं अनवद्यभाषणं वा। क्रोधप्रत्याख्यानादीनि चत्वारि निषेधरूपाणि पंचमं विधिरूपं कर्तव्यतयानुष्ठानं। **९.** पर्वतगुहावृक्षकोटरनदीतटप्रभृतीनि अस्वामिकानि स्थानानि शून्यागाराणि। विमोचितेति—उद्वसग्रामनगरपत्तनानि शत्रुभिरुद्वासितानि स्थानानि विमोचितान्युच्यन्ते। परेति—परेषां उपरोधस्य हठस्य अकरणं परोपरोधाकरणं। भैक्षेति—उत्पादनादिदोषरहितता आहारस्य भैक्षशुद्धिरुच्यते। अंतरायादिपरिपालनेन मनसा सह चौर्यं न भवति। **१०.** विरूपकं संमुखीभूय वदनं तवेदं ममेदं इति भाषणं विसंवादः। सधर्मभिः सह विसंवादे जिनवचनस्तैन्यं भवति तदभावे तत्स्थिरं भवति। शून्यागारविमोचितावासेषु वसतो मनःस्थैर्यं भवति ततश्च तस्यादत्तादानविरमणव्रतं स्थिरं भवति तथा परोपरोधाकरणेनापि। **११.** वृषे वृषभे साधवो वृष्या येषु रसेषु भुक्तेषु पुमान् वृषभवदुन्मत्तकामो भवति ते रसा वृष्या उच्यन्ते। उपलक्षणत्वात् येषु रसेषु भुक्तेषु वा जीवोऽश्ववदुन्मत्तकामो भवति ते वाजीकरणरसा वृषशब्देन उपलक्षणकेणोपलक्ष्यन्ते। इष्टा मनोरसनानुरंजका वृष्याश्च ते इष्टाश्च ते रसा इन्द्रियाणामुत्कटत्वसंपादका उत्कटरसा इत्यर्थः। स्वेति—दंतनखकेशादिशृंगारः स्वशरीरसंस्कारः।

## मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥८॥

पञ्चानामिन्द्रियाणां स्पर्शनादीनामिष्टानिष्टेषु विषयेषूपनिपतितेषु स्पर्शादिषु रागद्वेषवर्जनानि पञ्च आकिंचन्यस्य व्रतस्य भावनाः प्रत्येतव्याः।

**किञ्चान्यद्यथाऽमीषां व्रतानां द्रढिमार्थं भावनाः प्रतीयन्ते तद्विपश्चिद्भिरिति भावनोपदेशस्तथा तदर्थं तद्विरोधिष्वपीत्याह—**

## हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥९॥

अभ्युदयनिःश्रेयसार्थानां क्रियाणां विनाशकः प्रयोगोऽपायः। [१२]अवद्यं गर्ह्यम्। अपायश्चावद्यं चापायावद्ये तयोर्दर्शनमपायावद्यदर्शनं भावयितव्यम्। क्व? इहामुत्र च। केषु? हिंसादिषु। कथमिति चेदुच्यते—हिंसायां तावत्, हिंस्रो हि नित्योद्वेजनीयः सततानुबद्धवैरश्च इह च वधबन्धपरिक्लेशादीन् प्रतिलभते। प्रेत्य चाशुभां गतिम्। गर्हितश्च भवतीति हिंसाया व्युपरमः श्रेयान्। तथा अनृतवादी अश्रद्धेयो भवति इहैव च जिह्वाच्छेदादीन् प्रतिलभते। [१३]मिथ्याख्यानदुःखितेभ्यश्च बद्धवैरेभ्यो बहूनि व्यसनान्यवाप्नोति प्रेत्य चाशुभां गतिं, गर्हितश्च भवतीति अनृतवचनात् व्युपरमः श्रेयान्। तथा स्तेनः परद्रव्यापहरणासक्तः सर्वस्योद्वेजनीयो भवति। इहैव चाभिघातवधबन्धहस्तपादकर्णनासोत्तरौष्ठच्छेदन-भेदनसर्वस्वहरणादीन् प्रतिलभते प्रेत्य चाशुभां गतिं, गर्हितश्च भवतीति स्तेयात् व्युपरतिः श्रेयसी। तथा अब्रह्मचारी मदविभ्रमोद्भ्रान्तचित्तो वनगज इव [१४]वासितावञ्चितो विवशो वधबन्धनपरिक्लेशाननुभवति। मोहाभिभूतत्वाच्च कार्याकार्यानभिज्ञो न किञ्चित्कुशलमाचरति। पराङ्गनालिङ्गनसङ्गततिश्चेहैव वैरानु-बन्धिनो लिङ्गच्छेदनवधबन्धसर्वस्वहरणादीनपायान् प्राप्नोति। प्रेत्य चाशुभां गतिमश्नुते, गर्हितश्च भवति, अतो विरतिरात्महिता। तथा परिग्रहवान् शकुनिरिव गृहीतमांसखण्डोऽन्येषां तदर्थिनां पतत्रिणामिहैव तस्करादीनामभिभवनीयो भवति। तदर्जनरक्षणप्रयलकृतांश्च दोषान् बहूनवाप्नोति न चास्य तृप्तिर्भवति इन्धनैरिवाग्नेः। लोभाभिभूतत्वाच्च कार्याकार्यानपेक्षो भवति प्रेत्य चाशुभां गतिमास्कन्दति। लुब्धोऽयमिति गर्हितश्च भवतीति तद्विरमणं श्रेयः। एवं हिंसादिष्वपायावद्यदर्शनं भावनीयम्।

**हिंसादिषु भावनान्तरप्रतिपादनार्थमाह—**

## दुःखमेव वा ॥१०॥

हिंसादयो दुःखमेवेति भावयितव्याः। कथं हिंसादयो दुःखम् ? दुःखकारणत्वात्। यथा अन्नं वै प्राणा इति। कारणस्य कारणत्वाद्वा यथा धनं प्राणा इति। धनकारणमन्नपानं अन्नपानकारणाः प्राणा इति। तथा हिंसादयोऽसद्वेद्यकर्मकारणम्। असद्वेद्यकर्म च दुःखकारणमिति दुःखकारणकारणे वा दुःखोपचारः। तदेतदुःखमेवेति भावनं [१५]परात्मसाक्षिकमवगन्तव्यम्। ननु च तत्सर्वं न दुःखमेव विषयरतिसुख-सद्भावात्। न तत्सुखं वेदनाप्रतिकारत्वात्कच्छूकण्डूयनवत्।

---

१२. अवद्यं न वदितुं योग्यं अवद्यं निंदनमित्यर्थः। १३. मिथ्याख्यानं मिथ्यावचनम्। १४. वासितावञ्चितो हस्तिनीवंचितः। १५. अत्र परत्रात्रसाक्षिकमिति पाठस्तालपत्रपुस्तके वर्तते। परत्रात्मसाक्षिकमित्यन्यः पाठस्तृतीयपुस्तके वर्तते।

**पुनरपि भावनान्तरार्थमाह–**

## मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनेयेषु॥११॥

परेषां दुःखानुत्पत्त्यभिलाषो मैत्री। वदनप्रसादादिभिरभिव्यज्यमानान्तर्भक्तिरागः प्रमोदः। दीनानुग्रह-भावः कारुण्यम्। रागद्वेषपूर्वकपक्षपाताभावो माध्यस्थ्यम्। दुष्कर्मविपाकवशान्नानायोनिषु सीदन्तीति सत्त्वा जीवाः। सम्यग्ज्ञानादिभिः प्रकृष्टा गुणाधिकाः। असद्वेद्योदयापादितक्लेशाः क्लिश्यमानाः। तत्त्वार्थ-श्रवणग्रहणाभ्यामसम्पादितगुणा [१६]अविनेयाः। एतेषु सत्त्वादिषु यथासंख्यं मैत्र्यादीनि भावयितव्यानि। सर्वसत्त्वेषु मैत्री, गुणाधिकेषु प्रमोदः, क्लिश्यमानेषु कारुण्यं, अविनेयेषु माध्यस्थ्यमित्येवं भावयतः पूर्णान्यहिंसादीनि व्रतानि भवन्ति।

**पुनरपि भावनान्तरमाह–**

## जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥१२॥

जगत्स्वभावस्तावदनादिरनिधनो [१७]वेत्रासनझल्लरीमृदङ्गनिभः। अत्र जीवा अनादिसंसारेऽनन्तकालं नानायोनिषु दुःखं भोजं[१८] भोजं पर्यटन्ति। न चात्र किञ्चिन्नियतमस्ति। जलबुद्‌बुदोपमं जीवितं, विद्युन्मेघादि-विकारचपला भोगसम्पद इत्येवमादिजगत्स्वभावचिन्तनात्संसारात्संवेगो भवति। कायस्वभावश्च-अनित्यता, दुःखहेतुत्वं, निःसारता, अशुचित्वमित्येवमादि। कायस्वभावचिन्तनाद्विषयरागनिवृत्ते-र्वैराग्यमुपजायते इति जगत्काय-स्वभावौ भावयितव्यौ।

**अत्राह उक्तं भगवता हिंसादिनिवृत्तिर्व्रतमिति, तत्र न जानीमः के हिंसादयः क्रियाविशेषा इत्यत्रोच्यते। युगपद्वक्तुमशक्यत्वात्तल्लक्षणनिर्देशस्य क्रमप्रसङ्गे याऽसावादौ चोदिता सैव तावदुच्यते–**

## प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥

[१९]प्रमादः सकषायत्वं, तद्वानात्मपरिणामः प्रमत्तः, प्रमत्तस्य योगः प्रमत्तयोगः तस्मात्प्रमत्त-योगात्। इंद्रियादयोदशप्राणास्तेषां [२०]यथासंभवं व्यपरोपणं वियोगकरणं हिंसेत्यभिधीयते। सा प्राणिनो दुःखहेतुत्वादधर्महेतुः। प्रमत्तयोगादिति विशेषणं केवलं प्राणव्यपरोपणं नाधर्मायेति ज्ञापनार्थम्। उक्तं च -वियोजयति चासुभिर्न च वधेन संयुज्यते इति। उक्तं च–[२१]**उच्चालियम्हि पाए इरियासमिदस्स**

---

१६. तत्त्वार्थाकर्णनास्वीकरणभ्यामेतेऽनुत्पन्नसम्यक्त्वादिगुणा न विनेतुं शक्यन्ते ये ते अविनेया मिथ्यादृष्टयो जिनधर्मबाह्याः। १७. अधोजगद्वेत्रासनाकारं, मध्यं जगत्झल्लरीसदृशं, ऊर्ध्वं जगन्मृदंगाकारम्। १८. दुःखं भोजं भोजं दुःखं भुक्त्वा भुक्त्वा। १९. प्रमाद्यतीति प्रमत्तः प्रमादयुक्तः पुमान् कषायसंयुक्तात्मपरिणाम इत्यर्थः। अथवा इंद्रियाणां प्रचारमनवधार्य अविचार्य यः पुमान्प्रवर्तते स प्रमत्तः। अथवा प्रवृद्धकषायोदयप्रतिष्ठः प्राणातिपातहेतुषु स्थितोऽहिंसायां शाठ्येन यतते कपटेन यत्नं करोति न परमार्थेन स प्रमत्त उच्यते। अथवा पंचदशप्रमादोपेतः प्रमत्तः। के ते पंचदशप्रमादाः–चतस्रो विकथाः, चत्वारः कषायाः, पंचेन्द्रियाणि, निद्रा प्रमादश्च। प्रमत्तस्य योगः कायवाङ्मनःकर्मरूपः प्रमत्तयोगस्तस्मात्। २०. एकेन्द्रियादिषु यावतां सम्भवस्तावतां व्यपरोपणम्। २१. उच्चालिदम्मि इति णहि तस्स इति गाथयोरर्थसूचनं यथा–पादे चरणे। उच्चालिदम्मि गमने प्रवृत्ते सति। इरियासमिदस्स ईर्यासमितियुक्तस्य। णिग्गमणठाणे निर्गमनस्थाने पादयोरारोपणस्थाने। आवादेज्ज यदि आपतेदागच्छेत्पादेन चंपिते। कुलिंगो सूक्ष्मजीवः। मरेज्ज म्रियेत वा। तज्जोगमासेज्ज पादसंयोगमाश्रित्य। ण हि तस्स तण्णिमित्तो नहि नैव भवति, तस्य जंतुचंपकस्य मुनेः मरणादिकारणमात्रेऽपि सति। किं न भवति? बंधो कर्मबधः। कियान्?

**णिग्गमत्थाए। आबाधेज्ज कुलिंगं मरिज्ज**[२२] [२३]**तं जोगमासेज्ज**[२४]**।१।णहि तस्स तण्णिमित्तो बन्धो सुहमो य देसिदो समये। मुच्छा परिग्गहो च्चिय** [२५]**अज्झप्पपमाणदो दिट्ठो।२। ननु च प्राणव्यपरोपणा-भावेऽपि प्रमत्तयोगमात्रादेव हिंसेष्यते।** उक्तं च–**मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा। पयदस्स णत्थि बन्धो हिंसामित्तेण समिदस्स।१।** इति। नैष दोषः। अत्रापि प्राणव्यपरोपणमस्ति भावलक्षणम्। तथा चोक्तम्–**स्वयमेवात्मनाऽऽत्मानं हिनस्त्यात्मा प्रमादवान्। पूर्वं प्राण्यन्तराणान्तु पश्चात्स्याद्वा न वा वधः ॥१॥** इति।

**आह अभिहितलक्षणा हिंसा; तदनन्तरोद्दिष्टमनृतं किं लक्षणमित्यत्रोच्यते–**

## असदभिधानमनृतम् ॥१४॥

सच्छब्दः प्रशंसावाची न सदसदप्रशस्तमिति यावत्। असतोऽर्थस्याभिधानमसदभिधानमनृतम्। ऋतं सत्यं न ऋतमनृतम्। किं पुनरप्रशस्तं? प्राणिपीडाकरं यत्तदप्रशस्तं। विद्यमानार्थविषयं वा अविद्यमानार्थविषयं वा। उक्तं च प्रागेवाहिंसाप्रतिपालनार्थमितरद्व्रतमिति। तस्माद्धिंसाकरं वचोऽनृत-मिति[२६] निश्चेयम्।

**अथानृतानन्तरमुद्दिष्टं यत्स्तेयं तस्य किं लक्षणमित्यत आह–**

## अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५॥

आदानं ग्रहणमदत्तस्यादानमदत्तादानं स्तेयमित्युच्यते। यद्येवं कर्मनोकर्मग्रहणमपि स्तेयं प्राप्नोति अन्येनादत्तत्त्वात्? नैष दोषः। दानादाने यत्र सम्भवतस्तत्रैव स्तेयव्यवहारः। कुतः? अदत्तग्रहणसामर्थ्यात्। एवमपि भिक्षोर्ग्रामनगरादिषु भ्रमणकाले रथ्याद्वारादिप्रवेशाददत्तादानं प्राप्नोति ? नैष दोषः। सामान्येन मुक्तत्वात्। तथाहि–अयं भिक्षुः पिहितद्वारादिषु न प्रविशति अमुक्तत्वात्।। अथवा प्रमत्तयोगादित्यनुवर्तते

---

सुहुमोवि स्तोकोऽपि। समये जिनसूत्रे। ण हि देसिदो नैवेह कथितः। अमुमेवार्थं दृष्टान्तेन दृढयति। मुच्छापरिग्गहोत्ति य कांक्षापरिग्रहश्चैव किल परिग्रहणकांक्षापरिग्रह उच्यते। कुतः? अज्झप्पपमाणदो अध्यात्मप्रमाणतः। अंतःसंकल्पानतिक्रमेणेत्यर्थः। तथा हिंसापीति। भणिदो परिग्रहः कथितः। एतेन किमुक्तं भवति। प्राणातिपाताभावेऽपि प्रमत्तयोगमात्राद्धिंसा भवत्येव। मरदु व इत्यस्यायमर्थः म्रियतां जीवतु वा जीवः। अयदाचारस्स अयत्नपरस्य जीवस्य। णिच्छिदा निश्चिता हिंसा भवति। हिंसायामकृतायामपि अयत्नवतः पुरुषस्य पापं लगत्येव। पयदस्य प्रयत्नपरस्य पुंसो बंधो न भवत्येव। केन हिंसामित्तेण हिंसामात्रेण समिदरस्स समितिपरस्य। अत्र परिणामस्य प्राधान्यमुक्तं। तथा चोक्तम्–अघ्नन्नपि भवेत्पापी निघ्नन्नपि न पापभाक्। परिणामविशेषेण यथा धीवरकर्षकौ।

**२२.** म्रियेत। **२३.** पादयोगम्। **२४.** आसाद्य। **२५.** अध्यात्मप्रमाणतः। **२६.** विद्यमानार्थस्याविद्यमानार्थस्य वा प्राणिपीडाकरस्य वचनस्य यत्कथनं तत् अनृतं भवति यत्प्रमत्तयोगादुच्यते तदनृतमित्यर्थः। यद्धिंसात्मकं वचनं तदनृतमिति निश्चितं। अत्र दृष्टान्तो वसुनृपो धनश्रीश्च। तथा यद्वचनं कर्णकर्कशं कर्णशूलप्रायं, हृदयनिष्ठुरं मनःपीडाकरं, विप्रलापप्रायं विरुद्धप्रलापप्रायं, विरुद्धवचनमिति यावत्। प्राणिवधबंधनादिकरं, वैरकरं, कलहादिकरं, उत्त्रासकरं, गुर्वाद्यवज्ञाकरं तत्सर्वमनृतमित्युच्यते। अनृतस्य विवक्षापि अनृतवचनोपायचिन्तनमपिप्रमत्तयोगादनृतमुच्यते। त्याज्यानुष्ठानाद्यनुवदनमपि नानृतं प्रमत्तयोगाभावात्। प्रमत्तयोगादित्युत्तरत्रापि योज्यम्।

प्रमत्तयोगाददत्तादानं यत् तत्स्तेयमित्युच्यते। न च रथ्यादि प्रविशतः प्रमत्तयोगोऽस्ति। तेनैतदुक्तं भवति यत्र संक्लेशपरिणामेन प्रवृत्तिस्तत्र [२७]स्तेयं भवति बाह्यवस्तुनो ग्रहणे चाऽग्रहणे च।

**अथचतुर्थमब्रह्म किंलक्षणमित्यत्रोच्यते—**

## मैथुनमब्रह्म ॥१६॥

स्त्रीपुंसयोश्चारित्रमोहोदये सति रागपरिणामाविष्टयोः परस्परस्पर्शनं प्रति इच्छा मिथुनम्। मिथुनस्य कर्म मैथुनमित्युच्यते। न सर्वं कर्म। कुतः—लोके शास्त्रे च तथा प्रसिद्धेः। लोके तावदागोपालांगनादिप्रसिद्धं स्त्रीपुंसरागपरिणामनिमितं चेष्टितं मैथुनमिति। शास्त्रेऽपि अश्ववृषभयोमैथुनेच्छायामित्येवमादिषु तदेव गृह्यते। अपि च प्रमत्तयोगादित्यनुवर्तते तेन स्त्रीपुंसमिथुनविषयं रतिसुखार्थं चेष्टितं मैथुनमिति गृह्यते न सर्वम्। अहिंसादयो धर्मा यस्मिन् परिपाल्यमाने बृंहन्ति वृद्धिमुपयान्ति तद्ब्रह्म। न ब्रह्म अब्रह्म। किं तत्? मैथुनम्। तत्र हिंसादयो दोषाः पुष्यन्ति। [२८]यस्मान्मैथुनसेवनप्रवणः स्थास्नूंश्चरिष्णून् प्राणिनो हिनस्ति। मृषावादमाचष्टे। अदत्तमादत्ते। सचेतनमितरच्च परिग्रहं गृह्णाति।

**अथ पञ्चमस्य परिग्रहस्य किं लक्षणमित्यत आह—**

## मूर्च्छा परिग्रहः ॥१७॥

मूर्च्छेत्युच्यते। का मूर्च्छा? बाह्यानां गोमहिषमणिमुक्तादीनां चेतनाचेतनानां रागादीनामुपधीनां च संरक्षणार्जनसंस्कारादिलक्षणा व्यावृत्तिर्मूर्च्छा। ननु च—लोके वातादिप्रकोपविशेषस्य मूर्च्छेति प्रसिद्धिरस्ति तद्ग्रहणं कस्मान्न भवति सत्यमेवैतत्। मूर्च्छिरयं मोहसामान्ये वर्तते। ''सामान्यचोदनाश्च विशेषेष्ववतिष्ठन्त'' इत्युक्ते विशेषे व्यवस्थितः परिगृह्यते परिग्रहप्रकरणात्। एवमपि बाह्यस्य परिग्रहत्वं न प्राप्नोति। आध्यात्मिकस्य संग्रहणात्। सत्यमेवैतत्—प्रधानत्वादभ्यन्तर एव संगृह्यते। असत्यपि बाह्ये [२९]ममेदमिति सङ्कल्पवान् सपरिग्रहो भवति। अथ बाह्यः परिग्रहो न भवत्येव? भवति च मूर्च्छाकारणत्वात्। यदि ममेदमिति, सङ्कल्पः परिग्रहः संज्ञानाद्यपि परिग्रहः प्राप्नोति; तदपि हि ममेदमिति सङ्कल्प्यते रागादिपरिणामवत् ? नैष दोषः—प्रमत्तयोगादित्यनुवर्तते। ततो ज्ञानदर्शनचारित्रवतोऽप्रमत्तस्य मोहाभावान्नमूर्च्छाऽस्तीति निःपरिग्रहत्वं सिद्धम्। किञ्च तेषां ज्ञानादीनामहेयत्वादात्म-स्वभावत्वाद-परिग्रहत्वम्। रागादयः पुनः कर्मोदयतन्त्रा इति अनात्मस्वभावत्वाद्धेयाः। ततस्तेषु सङ्कल्पः परिग्रह इति युज्यते। तन्मूलाः सर्वे दोषाः। ममेदमिति हि सति संकल्पे संरक्षणादयः सञ्जायन्ते। तत्र च हिंसाऽवश्यम्भाविनी। तदर्थमनृतं जल्पति। चौर्यं चाचरति। मैथुने च कर्मणि प्रयतते। तत्प्रभवा नरकादिषु

---

२७. स्तेयमिति – यल्लोकैःस्वीकृतं सर्वलोकप्रवृत्तिगोचरं यद्वस्तु अदत्तं तस्य ग्रहणं जिघृक्षा वा ग्रहणोपायचितनं वा तत्स्तेयमुच्यते। कर्मनोकर्मग्रहणे दायको नास्ति कोऽपि अन्यत्रात्मपरिणामात्। त्रिभुवनभृततद्योग्याणुवर्गणानामस्वामिकत्वात् नात्र स्तेयव्यवहारः। २८. मैथुने प्रवर्तमानो जीवो हिंसादिकं करोति। तथा चोक्तम्—मैथुनाचरणे मूढ! म्रियन्ते जन्तुकोटयः। योनिरन्ध्रसमुत्पन्ना लिंगसंघट्टपीडनात्। घाते घातेऽसंख्येयाः कोट्यो जन्तवो म्रियन्ते इत्यर्थः। तथा कक्षद्वये स्तनान्तरे, नाभौ, स्मरमंदिरे च स्त्रीणां प्राणिन उत्पद्यन्ते तत्र करादिव्यापारे म्रियन्ते च। २९. ममेदमिति रागादिमनोभिलाषः परिग्रहस्तथा चोक्तम्—बाह्यग्रंथविहीना दरिद्रमनुजाः स्वपापतः सन्ति। पुनरभ्यन्तरसंगत्यागी लोकेषु दुर्लभो जीवः।

दु:खप्रकारा:।

**एवमुक्तेन प्रकारेण हिंसादिदोषदर्शिनोऽहिंसादिगुणाहितचेतसः परमप्रयत्नस्याहिंसादीनि व्रतानि यस्य सन्ति सः—**

## निश्शल्यो व्रती ॥१८॥

शृणाति हिनस्तीति शल्यम्। शरीरानुप्रवेशिकाण्डादिप्रहरणं तच्छल्यमिव शल्यं; यथा तत् प्राणिनो बाधाकरं तथा शारीरमानसबाधाहेतुत्वात्कर्मोदयविकारः शल्यमित्युपचर्यते। तत्त्रिविधम् —मायाशल्यम्, निदानशल्यम्, मिथ्यादर्शनशल्यमिति। माया निकृतिर्वञ्चना। निदानं विषयभोगाकांक्षा। मिथ्यादर्शनम-तत्त्वश्रद्धानम्। एतस्मात्त्रिविधाच्छल्यान्निष्क्रान्तो निश्शल्यो व्रती इत्युच्यते। अत्र चोद्यते-शल्याभावान्निःशल्यो, व्रताभिसम्बन्धाद् व्रती, न निश्शल्यत्वाद्व्रती भवितुमर्हति। नहि देवदत्तो दण्ड-सम्बन्धाच्छत्री भवति इत्यत्रोच्यते—उभयविशेषणविशिष्टस्येष्टत्वात्। न हिंसाद्युपरतिमात्रसम्बन्धात् व्रती भवत्यन्तरेण शल्याभावम्। सति शल्यापगमे व्रतसम्बन्धात् व्रती विवक्षितो यथा बहुक्षीरघृतो गोमानिति व्यपदिश्यते। बहुक्षीरघृताभावात्सतीष्वपि गोषु न गोमांस्तथा [३०]सशल्यत्वात्सत्स्वपि व्रतेषु न व्रती।

**यस्तु निःशल्यः स व्रती। तस्य भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## अगार्यनगारश्च ॥१९॥

[३१]प्रतिश्रयार्थिभिरङ्ग्यते इति अगारं वेश्म, तद्वानगारी। न विद्यते अगारमस्येत्यनगारः। द्विविधो व्रती अगारी अनगारश्चेति। ननु चात्र विपर्ययोऽपि प्राप्नोति—शून्यागारदेवकुलाद्यावासस्य मुनेरगारित्वं, अनिवृत्तविषयतृष्णस्य कुतश्चित्कारणाद् गृहं विमुच्य वने वसतोऽनगारत्वञ्च प्राप्नोतीति ? नैष दोषः। भावागारस्य विवक्षितत्वात्। चारित्रमोहोदये सत्यगारसम्बन्धं प्रत्यनिवृत्तः परिणामो भावागार-मित्युच्यते स यस्यास्त्यसावगारी वने वसन्नपि गृहे वसन्नपि तदभावादनगार इति च भवति। ननु चागारिणो व्रतित्वं न प्राप्नोति असकलव्रतत्वात्। नैष दोषः। नैगमादिनयापेक्षया अगारिणोऽपि व्रतित्वमुपपद्यते नगरावासवत्। यथा गृहे अपवरके वा वसन्नपि नगरावास इत्युच्यते। तथा असकल-व्रतोऽपि नैगमसंग्रहव्यवहारनयापेक्षया व्रतीति व्यपदिश्यते।

**अत्राह किं हिंसादीनामन्यतमस्माद् यः प्रतिनिवृत्तः स खल्वगारी व्रती? नैवम्। किं तर्हि? पञ्चतय्या अपि विरतेर्वैकल्येन विवक्षित इत्युच्यते—**

## अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥

अणुशब्दोऽल्पवचनः। अणूनि व्रतान्यस्य अणुव्रतोऽगारीत्युच्यते। कथमस्य व्रतानामणुत्वं? सर्वसावद्यनिवृत्त्यसम्भवात्। कुतस्तर्ह्यसौ निवृत्तः? त्रसप्राणिव्यपरोपणान्निवृत्तोऽगारीत्याद्यमणुव्रतम्। स्नेहमोहादिवशाद् गृहविनाशे ग्रामविनाशे वा कारणमित्यभिमतादसत्यवचनान्निवृत्तो गृहीति द्वितीयमणुव्रतम्।

---

**३०.** निःशल्यस्तु व्रती सन्नहिंसादिव्रतानां विशिष्टं फलं लभते। अहिंसादिव्रतानां विशिष्टं फलं शल्यवान्न विंदति। **३१.** अंग्यते प्रतिश्रयार्थिभिः पुरुषैर्गृहप्रयोजनवद्भिरित्यगारं। अगारं, गृहं, वस्त्यमावासो विद्यते यस्य सोऽगारी, न अगारी अनगारी।

अन्यपीडाकरं पार्थिवभयादिवशादवश्यं परित्यक्तमपि यददत्तं ततः प्रतिनिवृत्तादरः श्रावक[३२] इति तृतीयमणुव्रतम्। उपात्ताया अनुपात्तायाश्च पराङ्गनायाः सङ्गान्निवृत्तरतिर्गृहीति चतुर्थमणुव्रतम्। धनधान्य-क्षेत्रादीनामिच्छावशात् कृतपरिच्छेदो गृहीति पञ्चममणुव्रतम्।

**आह अपरित्यक्तागारस्य किमेतावानेव विशेष आहोस्विदस्ति कश्चिदन्योऽपीत्यत आह—**

## दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभाग-व्रतसम्पन्नश्च ॥२१॥

विरतिशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते। दिग्विरतिः देशविरतिः अनर्थदण्डविरतिरिति। एतानि त्रीणि गुणव्रतानि। व्रतशब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धात्। तथा सामायिकव्रतम्। प्रोषधोपवासव्रतम्। उपभोगपरि-भोगपरिमाणव्रतम्। अतिथिसंविभागव्रतमिति। एतैर्व्रतैः सम्पन्नो गृही विरताविरत इत्युच्यते। तद्यथा—दिक्प्राच्यादिस्तत्र प्रसिद्धैरभिज्ञानैरवधिं कृत्वा नियमनं दिग्विरतिव्रतम्। ततो बहिस्त्रसस्थावर-व्यपरोपणनिवृत्तेर्महाव्रतत्वमवसेयम्। तत्र लाभे सत्यपि परिणामस्य निवृत्तेर्लोभनिरासश्च कृतो भवति। ग्रामादीनामवधृतपरिमाणप्रदेशो देशः। ततो बहिर्निवृत्तिर्देशविरतिव्रतम्[३३]। पूर्ववद्बहिर्महाव्रतं व्यवस्थाप्यम्। असत्युपकारे पापादानहेतुरनर्थदण्डः। ततो विरतिरनर्थदण्डविरतिः। अनर्थदण्डः पंचविधः। अपध्यानम्। पापोपदेशः। प्रमादाचरितम्। हिंसाप्रदानं। अशुभश्रुतिरति। तत्र परेषां जयपराजयवध-बन्धनांगच्छेदपरस्वहरणादि कथं स्यादिति मनसा चिन्तनमपध्यानम्। तिर्यक्क्लेशवाणिज्य-प्राणिवध-कारम्भादिषु पापसंयुक्तं वचनं पापोपदेशः। प्रयोजनमन्तरेण वृक्षादिच्छेदनभूमिकुट्टनसलिलसेचनाद्यवद्य-कार्यं प्रमादाचरितम्। विषकण्टकशस्त्राग्निरज्जुकशादण्डादिहिंसोपकरणप्रदानं हिंसाप्रदानं। हिंसारागादि-प्रवर्धनदुष्टकथाश्रवणशिक्षणव्यापृतिरशुभश्रुतिः। समेकीभावे वर्तते। तद्यथा संगतं घृतं संगतं तैलमित्युच्यते एकीभूतमिति गम्यते। एकत्वेन अयनं गमनं समयः, समय एव सामायिकं, समयः प्रयोजनमस्येति वा विगृह्य सामायिकं। इयति देशे एतावति काले इत्यवधारिते सामायिके स्थितस्य महाव्रतत्वं पूर्ववद्वेदितव्यम्। अणुस्थूलकृत-हिंसादिनिवृत्तेः संयमप्रसंग इति चेन्न। तद्धातिकर्मोदयसद्भावात्। महाव्रतत्वाभाव इति चेदुपचाराद्राजकुले सर्वगतचैत्राभिधानवत्। प्रोषधशब्दः पर्वपर्यायवाची[३४]। शब्दादि-ग्रहणं प्रति निवृत्तौत्सुक्यानि पञ्चापीन्द्रियाण्युपेत्य तस्मिन् वसन्तीत्युपवासः। चतुर्विधाहारपरित्याग इत्यर्थः। प्रोषधे उपवासः प्रोषधोपवासः। स्वशरीरसंस्कारकारणस्नानगन्धमाल्याभरणादिविरहितः शुभावकाशे, साधुनिवासे,

---

३२. श्रावक इत्युक्ते श्राविकापि लभ्यते। तस्या अपि तृतीयमणुव्रतं भवति। एवं यथासंभवं श्रावकशब्दस्यार्थो वेदितव्यः। ३३. इदं हि व्रतं दिग्विरतिव्रतमध्येऽन्तर्व्रतमुत्पन्नं विशेषेण तु सपापस्थाने, व्रतभंगसद्भावस्थाने, सुरापानस्थाने, मखस्थानादौ गमनवर्जनं देशविरतिर्व्रतमुच्यते। दिग्व्रतादीनि त्रीणि पंचानामणुव्रतानां गुणस्य कारकत्वादनुवर्द्धनत्वाद्गुणव्रतानीति कथ्यन्ते। ३४. अष्टमी चतुर्दशी च पर्वद्वयं प्रोषध उच्यते। केतकीति-केतकी निंबकुसुमार्द्रमूलकसर्वपुष्पानंतकायिक-छिद्रशाकनालीनलादिकं बहुजन्तुयोनिस्थानं तदपि यावज्जीवं परिहर्तव्यं बहुघाताल्पफलत्वात्।

चैत्यालये, स्वप्रोषधोपवासगृहे वा धर्मकथाश्रवणश्रावणचिन्तनावहितान्तरंगः सन्नुपवसेत् निरारम्भश्रावकः। उपभोगोऽशनपानगन्धमाल्यादिः। परिभोग आच्छादनप्रावरणालङ्कार–शयनासनगृहयानवाहनादिः। तयोः परिमाणमुपभोगपरिभोगपरिमाणम्। मधु, मांसं, मद्यञ्च सदा परिहर्त्तव्यं त्रसघातान्निवृत्तचेतसा। केतक्यर्जुनपुष्पादीनि शृंगवेरमूलकादीनि बहुजन्तुयोनिस्थानान्यनन्तकायव्यप देशार्हाणि परिहर्तव्यानि बहुघाताल्पफलत्वात्। यानवाहनाभरणादिष्वेतावदेवेष्टमतोऽन्यदनिष्टमित्यनिष्टान्निवर्तनं कर्तव्यं कालनियमेन यावज्जीवं वा यथाशक्ति। संयममविनाशयन्नततीत्यतिथिः। अथवा नास्य [३५]तिथिरस्तीत्य–तिथिरनियतकालागमन[३६] इत्यर्थः। अतिथये संविभागोऽतिथिसंविभागः। स चतुर्विधः–भिक्षोपकरणौषध–प्रतिश्रयभेदात्। मोक्षार्थमभ्युद्यतायातिथये संयमपरायणाय शुद्धाय शुद्धचेतसा निरवद्या भिक्षा देया। धर्मोपकरणानि च सम्यग्दर्शनाद्युपबृंहणानि दातव्यानि। औषधमपि योग्यमुपयोजनीयम्। प्रतिश्रयश्च परमधर्मश्रद्धया प्रतिपादयितव्य इति। च शब्दो वक्ष्यमाणगृहस्थधर्मसमुच्चयार्थः।

**कः पुनरसौ?–**

## मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥२२॥

स्वपरिणामोपात्तस्यायुष इन्द्रियाणां बलानां च कारणवशात्संक्षयो मरणम्। अन्तग्रहणं तद्भवमरणप्रतिपत्त्यर्थम्। मरणमन्तः मरणान्तः। स प्रयोजनमस्य इति मारणान्तिकी। सम्यक्काय–कषायलेखना सल्लेखना। कायस्य[३७] बाह्यस्याभ्यन्तराणां च कषायाणां तत्कारणहापनक्रमेण सम्यग्लेखना सल्लेखना। तां मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता सेविता गृहीत्यभिसम्बध्यते। ननु च विस्पष्टार्थं सेवितेत्येवं वक्तव्यम्? न, अर्थविशेषोपपत्तेः। न केवलं सेवनमिह परिगृह्यते? किं तर्हि? प्रीत्यर्थोऽपि–यस्मादसत्यां प्रीतौ बलान्न सल्लेखना कार्यते। सत्यां हि प्रीतौ स्वयमेव करोति। स्यान्मतमात्मवधं प्राप्नोति स्वाभिसन्धिपूर्वकायुरादिनिवृत्तेः? नैष दोषः, अप्रमत्तत्वात्। प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसेत्युक्तम्। न चास्य प्रमादयोगोऽस्ति? कुतः? रागाद्यभावात्। रागद्वेषमोहाविष्टस्य[३८] हि विषशस्त्राद्युप–करणप्रयोगवशादात्मानं घ्नतः स्वघातो भवति, न सल्लेखनां प्रतिपन्नस्य रागादयः सन्ति ततो नात्मवधदोषः। उक्तं च–रागादीणमणुप्पा[३९] अहिंसगत्तंति[४०] भासिदं समये। तेसिं चेदुप्पत्ती हिंसेत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठा। १।

**३५.** अथवा न विद्यते तिथिः प्रतिपद्द्वितीयातृतीयादिका यस्य स अतिथिः। अनियतकालभिक्षशमनः। अतिथये समीचीनो विभागो निजभोजनाद्विशिष्ट–भोजनप्रदानमतिथिसंविभागः। अस्मिन्नेव व्रते जिनस्नपनपूजादिकं चान्तर्भवति। मातापित्रादिवचनवदपत्यानामणुव्रतानां शिक्षाप्रदायकानि अविनाशकानीत्यर्थः। **३६.** तिथिपर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना। अतिथिं तं विजानीयाच्छेषमभ्यागतं विदुः ॥१॥ **३७.** कायस्य सल्लेखना बाह्यसल्लेखना, कषायाणां च सल्लेखनाभ्यन्तरसल्लेखना। सम्यक्लेखना कायस्य कषायाणां च कृशीकरणं तनूकरणं सल्लेखना। तां सल्लेखनां जोषिता प्रीत्या सेविता पुमान् अगारी गृही भवति। पूर्वोक्तचकारात् मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता यतिश्च भवति। **३८.** यस्तु पुमान्रागद्वेषमोहादिभिराविष्टः सन्विषेण, शस्त्रेण, गलपाशकेन, दहनप्रवेशेन, कूपादौ निमज्जनेन, भृगुपातेन, रसनाखंडनादिप्रयोगेणात्मानमाहन्ति स आत्मघातकी भवत्येव। तथा च श्रुतिः–असूर्यानाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः। तेन सल्लेखनां प्रतिपन्नस्य पुंसः आत्मघातपापं नास्ति। कदलीघातवद्युगपत्कायविनाशे समुपस्थिते सति यथा व्रतशीलादिगुणानां विनाशो न स्यात्तथा प्रयततेऽतः कथमात्मवधः स्यात्। **३९.** अनुत्पाद इत्यर्थः। **४०.** अहिंसकत्वमिति।

किञ्च मरणस्यानिष्टत्वाद्यथा वणिजो विविधपण्यदानादानसञ्चयपरस्य स्वगृहविनाशोऽनिष्टः, तद्विनाशकारणे च कुतश्चिदुपस्थिते यथाशक्ति परिहरति, दुःपरिहारे च पण्यविनाशो यथा न भवति तथा यतते एवं गृहस्थोऽपि व्रतशीलपण्यसञ्चये प्रवर्तमानस्तदाश्रयस्य न पातमभिवाञ्छति। तदुपप्लवकारणे चोपस्थिते स्वगुणाविरोधेन परिहरति। दुःपरिहारे च यथा स्वगुणविनाशो न भवति तथा प्रयतत इति कथमात्मवधो भवेत्?

**अत्राह निःशल्यो व्रतीत्युक्तं तत्र च तृतीयं शल्यं मिथ्यादर्शनम्। ततः सम्यग्दृष्टिना व्रतिना निःशल्येन भवितव्यमित्युक्तम्। तत्सम्यग्दर्शनं किं सापवादं निरपवादमिति? उच्यते—कस्य-चिन्मोहनीयावस्था-विशेषात्कदाचिदिमे भवन्त्यपवादाः—**

## शंकाकांक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥२३॥

निःशङ्कितत्वादयो व्याख्याता दर्शनविशुद्धिरित्यत्र। तत्प्रतिपक्षभूताः शङ्कादयो वेदितव्याः। अथ प्रशंसासंस्तवयोः को विशेषः? मनसा मिथ्यादृष्टेर्ज्ञानचारित्रगुणोद्भावनं प्रशंसा, भूताभूतगुणोद्भावन-वचनं संस्तव इत्ययमनयोर्भेदः। ननु च सम्यग्दर्शनमष्टाङ्गमुक्तं तस्यातिचारैरप्यष्टभिर्भवितव्यम्। नैष दोषः। व्रतशीलेषु पञ्चपञ्चातिचारा इत्युत्तरत्र विवक्षुणाऽऽचार्येण [४१]प्रशंसासंस्तवयोरितरानति-चारानन्तर्भाव्य पञ्चैवातिचारा उक्ताः।

**आह सम्यग्दृष्टेरतीचारा उक्ताः किमेवं व्रतशीलेष्वपि भवन्तीति ? [४२]ओमित्युक्त्वा तदतिचारसंख्या-निर्देशार्थमाह—**

## व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥२४॥

व्रतानि च शीलानि च व्रतशीलानि तेषु व्रतशीलेषु। शीलग्रहणमनर्थकम्, व्रतग्रहणेनैव सिद्धेः। नानर्थकम्-विशेषज्ञापनार्थं व्रतपरिरक्षणार्थं शीलमिति दिग्विरत्यादीनीह शीलग्रहणेन गृह्यन्ते। अगार्यधिकारात् अगारिणो व्रतशीलेषु पंच पंचातिचारा वक्ष्यमाणा यथाक्रमं वेदितव्याः।

**तद्यथा—आद्यस्य तावदहिंसाव्रतस्य—**

## बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥२५॥

अभिमतदेशगतिनिरोधहेतुर्बंधः। दण्डकशावेत्रादिभिरभिघातः प्राणिनां वधः, न प्राणव्यपरोपणम्। ततः प्रागेवास्य विनिवृत्तत्त्वात्। कर्णनासिकादीनामवयवानामपनयनं छेदः। न्याय्यभारादतिरिक्त-वाहनमतिभारारोपणम्। गवादीनां क्षुत्पिपासाबाधाकरणमन्नपाननिरोधः।

**एते पंचाहिंसाणुव्रत-स्यातिचाराः।**

## मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥२६॥

---

४१. प्रशंसासंस्तवयोरितरेषां त्रयाणामतिचाराणामन्तर्भावितत्वादष्टावतिचारा वेदितव्याः। कथमिति चेदुच्यते यः पुमान्मिथ्यादृष्टीनां मनसा प्रशंसां करोति स तावन्मूढमतिः प्रमादाज्ञानकारणोद्भवं रत्नत्रयमंडितानां दोषं नोपगूहति। तेषां स्थितीकरणं च न करोति। वात्सल्यं तु दूरे तिष्ठतु, शासनप्रभावनां तु कथं कुरुते? तेन अन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवनयोर्मध्येऽनुपगूहना-दयो दोषा अन्तर्गर्भिता भवन्तीति वेदितव्यम्। ४२. ओमिति कोऽर्थः ओमित्यंगीकारे।

[४३]अभ्युदयनिःश्रेयसार्थेषु क्रियाविशेषेषु अन्यस्यान्यथा प्रवर्त्तनमतिसन्धापनं वा मिथ्योपदेशः। यत्स्त्रीपुंसाभ्यामेकांतेऽनुष्ठितस्य क्रियाविशेषस्य प्रकाशनं तद्रहोभ्याख्यानं वेदितव्यम्। अन्येनानुक्तं यत्किंचित्परप्रयोगवशादेवं तेनोक्तमनुष्ठितमिति वंचनानिमित्तं लेखनं कूटलेखक्रिया। हिरण्यादेर्द्रव्यस्य निक्षेप्तुर्विस्मृतसंख्यस्याल्पसंख्येयमाददानस्यैवमित्यनुज्ञानवचनं न्यासापहारः। अर्थप्रकरणाङ्ग-विकारभ्रूनिक्षेपणादिभिः पराकूतमुपलभ्य तदाविष्करणमसूयादिनिमित्तं यत्तत्साकारमन्त्रभेद इति कथ्यते। त एते सत्याणुव्रतस्य पंचातिचारा बोद्धव्याः।

**स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥२७॥**

मुष्णन्तं स्वयमेव वा प्रयुंक्तेऽन्येन वा प्रयोजयति प्रयुक्तमनुमन्यते वा यतः स स्तेनप्रयोगः[४४]। अप्रयुक्तेनाननुमतेन च चौरेणानीतस्य ग्रहणं तदाहृतादानम्। उचितन्यायादन्येन प्रकारेण दानग्रहण-मतिक्रमः। विरुद्धं राज्यं विरुद्धराज्यं विरुद्धराज्येऽतिक्रमः [४५]विरुद्धराज्यातिक्रमः। तत्र ह्यल्पमूल्यलभ्यानि महार्घ्याणि द्रव्याणीति प्रयत्नः। [४६]प्रस्थादि मानं, तुलाद्युन्मानमेतेन न्यूनेनान्यस्मै देयमधिकेनात्मनो ग्राह्यमित्येवमादिकूटप्रयोगो हीनाधिकमानोन्मानम्। [४७]कृत्रिमैर्हिरण्यादिभिर्वंचनापूर्वको व्यवहारः प्रतिरूपकव्यवहारः।

**त एते पंचादत्तादानाणुव्रतस्यातिचाराः।**

**परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमन[४८]-नानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥**

---

४३. इन्द्रपदं तीर्थकरगर्भावतारजन्माभिषेकसाम्राज्यचक्रवर्तिपदनिःक्रमणकल्याणमहामंडलेश्वरादिकं सर्वार्थसिद्धिपद-पर्यन्तमहमिन्द्रपदं सर्वं सांसारिकं विशिष्टमविशिष्टं सुखमभ्युदयमित्युच्यते। केवलज्ञानकल्याणं निर्वाणकल्याणमनन्तचतुष्टयं परमनिर्वाणपदं च निःश्रेयसमुच्यते। ततोऽभ्युदयनिःश्रेयसयोर्निमित्तं या क्रिया सत्यरूपा वर्तते तस्याः क्रियाया मुग्धलोकस्य अन्यथाकथनं अन्यथा प्रवर्तनं धनादिनिमित्तं परवंचनं च मिथ्योपदेश उच्यते। ४४. कश्चित्पुमांश्चौरीं करोति अन्यस्तु कश्चित्तं चोरयन्तं स्वयं प्रेरयति मनसा वाचा कायेन, अन्येन वा केनचित्पुंसा तं प्रेरयति मनसा वाचा कायेन, स्वयमन्येन वा प्रेर्यमाणं चौरीं कुर्वन्तमनुमन्यते मनसा वाचा कायेन, एवंविधाः सर्वेऽपि प्रकाराः स्तेयशब्देन लभ्यन्ते। ४५. राज्ञ आज्ञादिकरणं यदविरुद्धं कर्म तद्राज्यमुच्यते। उचितमूल्येन अनुचितदानं ग्रहणं च अतिक्रम उच्यते। विरुद्धराज्ये अतिक्रमो विरुद्धराज्यातिक्रमः। यस्मात्कारणात् राज्ञा घोषणा अन्यथा दापिता दानमानं च अन्यथा करोति स विरुद्धराज्यातिक्रमः। अथवा राजघोषणं विनापि यद्वणिजो व्यवहरंति तं व्यवहारं यदि राजा तथैव मन्यते तदा तु स विरुद्धराज्यातिक्रमो न भवति। ४६. प्रस्थं चतुःशेरप्रमाणं तत्काष्ठादिना घटितं मानमुच्यते। उन्मानं तु तुला। ४७. ताम्रेण घटिता, रूप्येण सुवर्णेन च घटितास्ताम्ररूप्याभ्यां च घटिता ये द्रम्मास्तद्धिरण्यमुच्यते। तत्सदृशाः केनचिल्लोकवंचनार्थं घटिता द्रम्माः प्रतिरूपका उच्यन्ते तैर्व्यवहारः क्रयविक्रयः प्रतिरूपकव्यवहारः कथ्यते। ४८. या एकपुरुषभर्तृका सधवा विधवा वा सा परिगृहीता संबद्धा कथ्यते। या वारांगनात्वेन पुंश्चलीभावेन परपुरुषानुभवनशीला निःस्वामिका सा अपरिगृहीता असंबद्धा कथ्यते। तयोर्गमनं प्रवृत्तिः। गमनमिति कोऽर्थः जघनस्तनवदनादिनिरीक्षणसंभाषणपाणिभ्रूचक्षुरन्तादिसंज्ञाविधानमित्येवमादिकं निखिलं रागित्वेन दुश्चेष्टितं गमनमित्युच्यते।

कन्यादानं विवाहः परस्य विवाहः परविवाहः परविवाहस्य करणं परविवाहकरणम्। परपुरुषानेति गच्छतीत्येवंशीला इत्वरी, कुत्सायां क इत्वरिका। या एकपुरुषभर्तृका सा परिगृहीता। या गणिकात्वेन पुंश्चलित्वेन वा परपुरुषगमनशीला अस्वामिका सा अपरिगृहीता। परिगृहीता चापरिगृहीता च परिगृहीतापरिगृहीते। इत्वरिके च ते परिगृहीतापरिगृहीते च इत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीते, तयोर्गमने इत्वरिका-परिगृहीतापरिगृहीतागमने। अङ्गं प्रजननं योनिश्च ततोऽन्यत्र क्रीडा अनङ्गक्रीडा। कामस्य प्रवृद्धः परिणामः [४९]कामतीव्राभिनिवेशः। त एते पञ्च स्वदारसन्तोषव्रतस्यातिचाराः।

**क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः॥२९॥**

क्षेत्रं सस्याधिकरणम्। वास्तु अगारम्। हिरण्यं रूप्यादिव्यवहारतन्त्रम्। सुवर्णं प्रतीतम्। धनं गवादि। धान्यं व्रीह्यादि[५०]। दासीदासं भृत्यस्त्रीपुंसवर्गः। कुप्यं क्षौमकार्पासकौशेयचन्दनादि। क्षेत्रं च वास्तु च क्षेत्रवास्तु, हिरण्यं च सुवर्णं च हिरण्यसुवर्णं धनं च धान्यं च धनधान्यं, दासी च दासश्च दासीदासं, क्षेत्रवास्तु च हिरण्यसुवर्णं च धनधान्यं च दासीदासं च कुप्यं च क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्ण-धनधान्यदासीदासकुप्यानि। एतावानेव परिग्रहो मम नान्य इति परिच्छिन्नात्प्रमाणात्क्षेत्रवास्त्वादि-विषयादतिरेका अतिलोभवशात्प्रमाणातिक्रमा इति प्रत्याख्यायन्ते। त एते पंचपरिग्रहपरिमाणव्रतस्या-तिचाराः।

**उक्ता व्रतानामतिचाराः शीलानामतिचारा वक्ष्यन्ते, तद्यथा-**

**[५१]ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि[५२]॥३०॥**

परिमितस्य दिगवधेरतिलङ्घनमतिक्रमः। स समासतस्त्रिविधः-ऊर्ध्वातिक्रमः। अधोऽतिक्रमः। तिर्यगतिक्रमश्च। तत्र पर्वताद्यारोहणादूर्ध्वातिक्रमः। कूपावतरणादेरधोऽतिक्रमः। बिलप्रदेशादेस्तिर्य-गतिक्रमः। परिगृहीताया दिशो लोभावेशादाधिक्याभिसन्धिः क्षेत्रवृद्धिः। स एषोऽतिक्रमः प्रमादान्मोहा-द्व्यासङ्गाद्वा भवतीत्यवसेयः। अननुस्मरणं स्मृत्यन्तराधानम्। त एते दिग्विरमणस्यातिचाराः।

**[५३]आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः[५४] ॥३१॥**

---

**४९.** कामस्य मदनस्य तीव्रः प्रवृद्धोऽभिनिवेशोऽनुपरतप्रवृत्तिपरिणामः कामतीव्राभिनिवेश इत्यर्थः। यस्मिन्काले स्त्रियाम-प्रवृत्तिरुक्ता तस्मिन्नपि काले प्रवृत्तिः कामतीव्राभिनिवेशः। दीक्षितातिबालातिर्यग्योन्यादिगमनमपि कामतीव्राभिनिवेशः। **५०.** धान्यं च व्रीह्याद्यष्टादशभेदं। तदुक्तं - गोधूमशालियवसर्षपमाषमुद्राः श्यामाककङ्गुतिलकोद्रवराजमाषाः। कीनाशनालमरुवैणवमाढकी च सिंबाकुलत्त्य चणकादिषु बीजधान्यम्। कीनाशो लांगलास्त्रिपुट इति यावत्, नालं मकुष्टा मठवेणवं च्छारि आढकी तुवरी। तुवर्यश्चणकामाषमुद्गगोधूमशालयः। यवाश्च मिश्रिताः सप्तधान्यमाहुर्मनीषिणः। तिलशालियत्रास्त्रिधान्यं। **५१.** व्यतिक्रमः विशेषण अतिलंघनं व्यतिपात इति यावत्। **५२.** क्षेत्रवृद्धिः-मान्यखेटावस्थितेन केनचिच्छ्रावकेण परिमाणं कृतं यद्धारापुरीलंघनं मया न कर्तव्यमिति पश्चादुज्जयिन्यामन्येन भांडेन महान्लाभो भवतीति तत्र गमनाकांक्षा गमनं च क्षेत्रवृद्धिः। **५३.** आनयनप्रेष्यप्रयोगाविति-आत्मसंकल्पिते देशे स्थितोऽपि प्रतिषिद्धदेशस्थितानि वस्तूनि कार्यवशात्तद्वस्तुस्वामिनं कथयित्वा निजदेशमध्ये आनाय्य क्रयविक्रयादिकं यत्करोति तदानयनमुच्यते। **५४.** प्रतिषिद्धदेशे प्रेष्यप्रयोगेणैव अभिप्रेतव्यापारसाधनं एवं विधेहीति प्रयोगः प्रेष्यप्रयोगः।

आत्मना सङ्कल्पिते देशे स्थितस्य प्रयोजनवशाद्यत्किञ्चिदानयेत्याज्ञापनमानयनम्। एवं कुर्विति नियोगः प्रेष्यप्रयोगः। व्यापारकरान्पुरुषान्प्रत्यभ्युत्कासिकादिकरणं शब्दानुपातः। स्वविग्रहदर्शनं रूपानुपातः। लोष्ठादिनिपातः पुद्गलक्षेपः। त एते देशविरमणस्य पञ्चातिचाराः।

**कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥३२॥**

रागोद्रेकात्प्रहासमिश्रोऽशिष्टवाक्प्रयोगः कन्दर्पः। तदेवोभयं परत्र दुष्टकायकर्मप्रयुक्तं कौत्कुच्यम्। धार्ष्ट्यप्रायं यत्किञ्चनानर्थकं बहुप्रलपितं मौखर्यम्। असमीक्ष्य प्रयोजनमाधिक्येन करणमसमीक्ष्याधि-करणम्[55]। यावताऽर्थेनोपभोगपरिभोगौ सोऽर्थस्ततोऽन्यस्याधिक्यमानर्थक्यम्। त एते पञ्चानर्थदण्ड-विरतेरतिचाराः।

**योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि[56] ॥३३॥**

योगो व्याख्यातस्त्रिविधः। तस्य दुष्टं प्रणिधानं योगदुष्प्रणिधानम् कायदुष्प्रणिधानम्। वाग्दुष्प्रणि-धानम्। मनोदुष्प्रणिधानमिति अनादरोऽनुत्साहः। अनैकाग्र्यं स्मृत्यनुपस्थानम्। त एते पंच सामायिक-स्यातिक्रमाः।

**अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥**

जन्तवः सन्ति न सन्ति वेति प्रत्यवेक्षणं चक्षुर्व्यापारः। मृदुनोपकरणेन यत्क्रियते प्रयोजनं तत्प्रमार्जितम्। तदुभयं प्रतिषेधविशिष्टमुत्सर्गादिभिरभिसम्बध्यते - अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग इत्येवमादि। तत्र अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितायां भूमौ मूत्रपुरीषोत्सर्गः अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गः, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित-स्यार्हदाचार्यपूजोपकरणस्य गन्धमाल्यधूपादेरात्मपरिधानाद्यर्थस्य च वस्त्रादेरादानमप्रत्यवेक्षिता-प्रमार्जितादानम्। अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितस्य प्रावरणादेः संस्तरस्योपक्रमणं अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित-संस्तरोपक्रमणम्। क्षुदभ्यर्दितत्वादावश्यकेष्वनादरोऽनुत्साहः। स्मृत्यनुपस्थानं व्याख्यातम्। त एते पञ्च प्रोषधोपवासस्यातिचाराः।

**सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥३५॥**

सह चित्तेन वर्तते इति सचित्तं चेतनावद्द्रव्यम्। तदुपश्लिष्टः सम्बन्धः। तद्व्यतिकीर्णः सम्मिश्रः। [57]कथं पुनरस्य सचित्तादिषु प्रवृत्तिः स्यात्? प्रमादसम्मोहाभ्याम्। [58]द्रवो [59]वृष्यो वाऽभिषवः।

---

**५५.** असमीक्ष्याविचार्य अधिकस्य करणं तत्त्रिधा भवति मनोगतं मिथ्यादृष्टीनामनर्थकं काव्यादिचिन्तनं। वाग्गतं-निःप्रयोजनकथनं परपीडावचनं यत्किञ्चित्कृत्यादिकम्। कायगतं-निष्प्रयोजनं सचित्ताचित्तदलफलपुष्पादिच्छेदनादिकं अग्निविषशस्त्रादिप्रदानादिकम्। **५६.** योगेति स्मृतीति च सामायिकावसरे क्रोधमानमायालोभसहिताः कायवाङ्मनसां दुष्टप्रवृत्तयः, शरीरावयवानां अनिभृतत्वं कायस्यान्यथा प्रवृत्तिः। संस्काररहितार्था-गमकवर्णपदप्रयोगो वचोऽन्यथा प्रवृत्तिः। उदासीनत्वं मनोऽन्यथा प्रवृत्तिः। एवं त्रिप्रकारं योगदुष्प्रणिधानम्। न ज्ञायते किं मया पठितं किंवा न पठितं एकाग्रतारहितत्वमित्यर्थः स्मृत्यनुपस्थापनम्। **५७.** कथं शीलवतः सचित्तादिषु प्रवृत्तिरिति चेदुच्यते। मोहेन प्रमादेन वा बुभुक्षापिपासातुरः पुमानन्नपानलेपनाच्छादनादिषु सचित्तादिविशिष्टेषु द्रव्येषु वर्तते। **५८.** रात्रिचतुःप्रहरैः प्रक्लिन्न ओदनो द्रव उच्यते। **५९.** इंद्रियबलवर्धनोमाषविकारादिर्वृष्यः कथ्यते। वृषवत्कामी भवति येनाहारेण स वृष्यः। द्रवोवृष्यश्च उभयोऽभिषवः कथ्यते।

असम्यक्पक्वो दुष्पक्व :। एतैराहारो विशेष्यते–सचित्ताहारः, सम्बन्धाहारः, संमिश्राहारोऽभिषवाहारो, [६०]दु:पक्वाहार इति। त एते पञ्च भोगोपभोगपरिसंख्यानस्यातिचाराः।

**[६१]सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः[६२] ॥३६॥**

सचित्ते पद्मपत्रादौ निक्षेपः सचित्तनिक्षेपः। अपिधानमावरणं सचित्तेनैव सम्बध्यते सचित्तापिधानमिति। अन्यदातृदेयार्पणं परव्यपदेशः। प्रयच्छतोऽप्यादराभावोऽन्यदातृगुणासहनं वा मात्सर्यम्। अकाले भोजनं कालातिक्रमः। त एते पंचातिथिसंविभागशीलातिचाराः।

**जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥३७॥**

आशंसनमाशंसा आकांक्षणमित्यर्थः। जीवितं च मरणं च जीवितमरणं, जीवितमरणस्याशंसे जीवितमरणाशंसे। पूर्वसुहृत्सहपांसुक्रीडनाद्यनुस्मरणं मित्रानुरागः। अनुभूतप्रीतिविशेषस्मृतिसमन्वाहारः सुखानुबन्धः। भोगाकांक्षया नियतं दीयते चित्तं तस्मिंस्तेनेति वा निदानम्। त एते पंच सल्लेखनाया अतिचाराः।

**अत्राह–उक्तं भगवता तीर्थंकरत्वकारणकर्मास्रवनिर्देशे शक्तितस्त्यागतपसीति, पुनश्चोक्तं शीलविधानेऽतिथिसंविभाग इति। तस्य दानस्य लक्षणमनिर्ज्ञातं तदुच्यतामित्यत आह–**

**अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥**

स्वपरोपकारोऽनुग्रहः। स्वोपकारः पुण्यसंचयः, [६३]परोपकारः सम्यग्ज्ञानादिवृद्धिः स्वशब्दोः धनपर्यायवचनः। अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गस्त्यागो दानं वेदितव्यम्।

---

**६०.** असम्यक्पक्वोऽतिपक्वो वा दुष्पक्वः। अस्विन्नोऽतिक्लेदनेन दुष्टो वा पक्वो दग्धपक्वस्तस्याहारो दुष्पक्वाहारः। वृषदुःपक्वयोः सेवने सति इन्द्रियमदवृद्धिः, सचित्तोपयोगो, वातादिप्रकोपोदरपीडादिप्रतीकारेऽग्न्यादिप्रज्वालने महानसंयमः स्यादिति तत्परिहार एव श्रेयान्। **६१.** अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम इति परिभाषणात्सच्चित्तशब्दात्सप्तमीतृतीये निक्षेपापिधानविग्रहेण भवतः। **६२.** परेति– अपरदातुर्देयस्यार्पणं मम कार्यं वर्तते त्वं देहीति परव्यपदेशः। अथवा परेऽत्र दातारो वर्तन्ते नाहमत्र दायको वर्ते इति व्यपदेशः परव्यपदेशः। अथवा परस्येदं भक्तादिदेयं न मया इदमीदृशं वा देयमिति परव्यपदेशः। ननु परव्यपदेशः कथमतीचार इति चेदुच्यते–धनादिलाभाकांक्षया अतिथिवेलायामपि द्रव्याद्युपार्जनं परिहर्तुमशक्नुवन्परदातृहस्तेन योग्योऽपि सन् दानं दापयतीति महानतिचारः स्यात्। तदुक्तम्–आत्मवित्तपरित्यागात्परैर्धर्मविधायिनः। अवश्यमेव प्राप्नोति परभोगाय तत्फलम्। भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरस्त्रियः। विभवो दानशक्तिश्च स्वयं धर्मकृतेः फलम्। कालातिक्रमेति– अकाले भोजनं अनगारायोग्यकाले दानं क्षुधितेऽनगारे विमर्दकरणं च। **६३.** कथं सम्यग्दर्शनादिवृद्धिराहारादिना पात्रस्य भवतीति चेत्सरसाहारेण यतेर्वपुषि शक्तिर्भवति आरोग्यादिकं च स्यात्। तेन ज्ञानाभ्यासोपवासतीर्थयात्राधर्मोपदेशादिकं सुखेन प्रवर्तते। तथा पुस्तकपस्त्यजायुसंयमशौचोपकरणादिदाने परोपकारः स्यात्। तच्च दानं योग्येन दात्रा स्वहस्तेन विज्ञानवता दातव्यं। तदुक्तं–धर्मेषु स्वामिसेवायां सुतोत्पत्तौ च कः सुधीः। अन्यत्र कार्यदैवाभ्यां प्रतिहस्तं समादिशेत्। विज्ञानवतो लक्षणं–विवर्णं विरसं विद्धं असात्म्यप्रभृतं च यत्। मुनिभ्योऽन्नं न तद्देयं यच्च भुक्तं गदावहम्। उच्छिष्टं नीचलोकार्हमन्योद्दिष्टं विगर्हितम्। न देयं दुर्जनस्पृष्टं देवयक्षादिकल्पितम्। ग्रामान्तरात्समानीतं मन्त्रानीतमुपायनम्। न देयमापणक्रीतं विरुद्धं वायथर्तुकम्। दधिसर्पिःपयोभक्ष्यप्रायं पर्युषितं मतं। गंधवर्णरसभ्रष्टमन्यत्सर्वं च निंदितम्।

**अत्राह उक्तं दानं तत्किमविशिष्टफलमाहोस्विदस्ति कश्चित्प्रतिविशेष इत्यत आह–**

**विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥**

प्रतिग्रहादिक्रमो विधिः। विशेषो गुणकृतः। तस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धः क्रियते – विधिविशेषो, द्रव्यविशेषो, दातृविशेषः, पात्रविशेष इति। तत्र विधिविशेषः प्रतिग्रहादिष्वादरानादरकृतो भेदः। तपःस्वाध्यायपरिवृद्धिहेतुत्वादिर्द्रव्यविशेषः[६४]। अनसूयाऽविषादादिर्दातृविशेषः। मोक्षकारणगुणसंयोगः पात्रविशेषः। ततश्च पुण्यफलविशेषः क्षेत्रादिविशेषाद्बीजफलविशेषवत्।

**॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां सप्तमोऽध्यायः॥**

---

**६४.** द्रव्यं मकारत्रयरहितं तंदुलगोधूमविकृतिघृतादिकं शुद्ध चर्मपात्रास्पृष्टं तस्य विशेषो ग्रहीतुस्तपः-स्वाध्याय-शुद्धिपरिणामादिवृद्धिहेतुर्विशिष्टपुण्यकारणं अन्यथान्यादृशकारणं। दाता-द्विजनृपवणिग्वर्णवर्णनीयस्तस्य विशेषः पात्रेऽनसूयस्त्यागे विषादरहितः, दित्सद्दददत्तवत्प्रीतियोगः शुभपरिणामः दृष्टफलानपेक्षकस्तथा चोक्तम् श्रद्धा तुष्टिर्भक्तिर्विज्ञानमलुब्धता क्षमा सत्त्वं। यस्यैते सप्तगुणास्तं दातारं प्रशंसन्ति। पात्रमुत्तममध्यमजघन्यभेदं। महाव्रतविराजितमुत्तमं पात्रं। श्रावकव्रतपवित्रं मध्यमं पात्रम्। सम्यक्त्वेन निर्मलीकृतं जघन्यपात्रं। तस्य विशेषः सम्यग्दर्शनादिशुद्ध्यशुद्धी। विध्यादिविशेषाद्दानपुण्यफलविशेषः। तथा चोक्तम्-क्षितिगतमिव वटबीजे पात्रगतं दानमल्पमपि काले। फलति च्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम्।

# अथाष्टमोऽध्यायः

**व्याख्यात आस्त्रवपदार्थस्तदनन्तरोद्देशभाग्बन्धपदार्थ इदानीं व्याख्येयस्तस्मिन्व्याख्येये सति पूर्वं बन्धनहेतूपन्यासः क्रियते तत्पूर्वकत्वाद्बन्धस्येति।**

**मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥१॥**

मिथ्यादर्शनादय उक्ताः। क्व मिथ्यादर्शनं तावदुक्तं? ''तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'' मित्यत्र, तत्प्रतिपक्षभूतमास्त्रवविधाने च क्रियासु व्याख्यातं मिथ्यादर्शनक्रियेति। विरतिरुक्ता। तत्प्रतिपक्षभूता अविरतिर्ग्राह्या। आज्ञाव्यापादनक्रिया अनाकांक्षाक्रियेत्यनयोः प्रमादस्यान्तर्भावः। स च [१]**प्रमादः कुशलेष्वनादरः।** कषायाः क्रोधादयोऽनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसञ्ज्वलनविकल्पाः प्रोक्ताः। क्व? ''इंद्रियकषाया'' इत्यत्रैव। योगाः कायादिविकल्पाः प्रोक्ताः। क्व? ''कायवाङ्मनः'' इत्यत्र। मिथ्यादर्शनं द्विविधम्। नैसर्गिकं परोपदेशपूर्वकं च। तत्र परोपदेशमन्तरेण मिथ्यात्वकर्मोदयवशाद्यदाविर्भवति तत्त्वार्थाश्रद्धानलक्षणं तन्नैसर्गिकम्। परोपदेशनिमित्तं चतुर्विधम्। क्रियाक्रियावाद्यज्ञानिवैनयिकविकल्पात्। अथवा पञ्चविधं मिथ्यादर्शनम्- एकान्तमिथ्यादर्शनम्। विपरीतमिथ्यादर्शनम्। संशयमिथ्यादर्शनम्। वैनयिकमिथ्यादर्शनम्। अज्ञानमिथ्यादर्शनं चेति। तत्र इदमेव इत्थमेवेति धर्मिधर्मयोरभिनिवेश एकान्तः। पुरुष एवेदं सर्वमिति वाऽनित्यमेव नित्यमेवेति वा। सग्रन्थो निर्ग्रन्थः, केवली कवलाहारी, स्त्री सिध्यतीत्येवमादिर्विपर्ययः[३]। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि किं मोक्षमार्गः स्याद्वा न वेत्यन्यतरपक्षापरिग्रहः संशयः। सर्वदेवतानां सर्वसमयानां च समदर्शनं वैनयिकम्। हिताहितपरीक्षाविरहोऽज्ञानिकत्वं। उक्तञ्च-**असिदिसदं किरियाणं अक्किरियाणं च होइ चुलसीदी। सत्तच्छण्णाणीणं वेणइयाणं तु बत्तीसं ॥१॥** अविरतिर्द्वादशविधा षट्काय- षट्करणविषयभेदात्। षोडश कषाया नव नोकषायास्तेषामीषद्भेदो न भेद इति पञ्चविंशतिकषायाः। [४]चत्वारो मनोयोगाश्चत्वारो वाग्योगाः पंच काययोगा इति त्रयोदशविकल्पो योगः। आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगयोः प्रमत्तसंयते सम्भवात्पञ्चदशापि भवन्ति। प्रमादोऽनेकविधः -पञ्चसमितित्रिगुप्तिशुध्यष्टकोत्तमक्षमादि-विषयभेदात्। शुध्यष्टकस्यार्थः-भावकायविनयेर्यापथभिक्षाप्रतिष्ठापनशयनासनवाक्यशुद्धयोऽष्टौ, दशलक्षणो धर्मश्च। त एते पञ्च बन्धहेतवः समस्ता व्यस्ताश्च भवन्ति। तद्यथा-मिथ्यादृष्टेः पञ्चापि समुदिता बन्धहेतवो भवंति। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टीनामविरत्यादयश्चत्वारः। [५]संयतासंयतस्याविरतिर्विरतिमिश्रा प्रमादकषाययोगाश्च। प्रमत्तसंयतस्य प्रमादकषाययोगाः। अप्रमत्तादीनां

---

१. स इति-पुण्यकर्मस्वनादरः प्रमादः। २. नैसर्गिकमिथ्यादर्शने मरीचिर्भरतपुत्रो दृष्टान्ततया वेदितव्यः। ३. विपरीतमिथ्यादर्शने गाथा - सेयंबरो य आसंबरे य बुद्धो य तह य अण्णो य। समभावभावियप्पा लहेह मोक्खं ण संदेहो। ४. सत्यासत्योभयानुभयमनोलक्षणो मनोयोगश्चतुःप्रकारः। सत्यासत्योभयानुभयलक्षणो वाग्योगश्चतुःप्रकारः। औदारिकौदारिकमिश्रवैक्रियिकवैक्रियिकमिश्राहारकाहारकमिश्रकार्मणकाययोगलक्षणः काययोगः सप्तप्रकारः। आहारककाययोगद्वयस्य प्रमत्तसंयत एव सद्भावो भवति। ५. संयतासंयतस्यार्याश्रावकश्राविकालक्षणस्य विरति-मिश्रोह्यविरतिरास्त्रवो भवति।

चतुर्णां योगकषायौ। उपशान्तकषायक्षीणकषायसयोगकेवलिनामेक एव योगः। अयोगकेवलिनो न बन्धहेतुः। उक्ता बन्धहेतवः।

**इदानीं बन्धो वक्तव्य इत्यत आह—**

### [६]सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥२॥

सह कषायेण वर्तत इति सकषायः। सकषायस्य भावः सकषायत्वम्। तस्मात्सकषायत्वादिति। पुनर्हेतुनिर्देशः किमर्थम्? जठराग्न्याशयानुरूपाहारग्रहणवत्तीव्रमन्दमध्यमकषायाशयानुरूप-स्थित्यनुभवविशेषप्रतिपत्त्यर्थम्। अमूर्तिरहस्त आत्मा कथं कर्मादत्ते? इति चोदितः सन् 'जीवः' इत्याह। जीवनाज्जीवः प्राणधारणादायुःसम्बन्धान्नायुर्विरहादिति। कर्मयोग्यानिति लघुनिर्देशात्सिद्धेः कर्मणो योग्यानिति पृथग्विभक्त्युच्चारणं वाक्यान्तरज्ञापनार्थम्। किं पुनस्तद्वाक्यान्तरम्? कर्मणो जीवः सकषायो भवतीत्येकं वाक्यम्। एतदुक्तं भवति— '**कर्मणः**' इति हेतुनिर्देशः कर्मणो हेतोर्जीवः [७]सकषायो भवति, नाकर्मकस्य कषायलेपोऽस्ति, ततो जीवकर्मणोरनादिसम्बन्ध इत्युक्तं भवति। तेनामूर्तो जीवो मूर्तेन कर्मणा कथं बध्यते इति चोद्यमपाकृतं भवति। इतरथा हि बन्धस्यादिमत्त्वे आत्यन्तिकीं शुद्धिं दधतः सिद्धस्येव बन्धाभावः प्रसज्येत। द्वितीयं वाक्यं कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्त इति। अर्थवशाद्वि-भक्तिपरिणाम इति पूर्वं हेतुसम्बन्धं त्यक्त्वा षष्ठीसम्बन्धमुपैति 'कर्मणो योग्यानिति।' पुद्गलवचनं कर्मणस्तादात्म्यख्यापनार्थम्। तेनात्मगुणोऽदृष्टो निराकृतो भवति तस्य संसारहेतुत्वानुपपत्तेः। आदत्त इति हेतुहेतुमद्भावख्यापनार्थम्। अतो मिथ्यादर्शनाद्यावेशादार्द्रीकृतस्यात्मनः सर्वतो योगविशेषात्तेषां सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहिनामनन्तानन्तप्रदेशानां पुद्गलानां कर्मभावयोग्यानामविभागेनोपश्लेषो बन्ध इत्याख्यायते। यथा भाजनविशेषे क्षिप्तानां विविधरसबीजपुष्पफलानां मदिराभावेन परिणामस्तथा पुद्गलानामप्यात्मनि स्थितानां योगकषायवशात्कर्मभावेन परिणामो वेदितव्यः। 'सः' वचनमन्यनिवृत्त्यर्थम्। स एष बन्धो नान्योऽस्तीति। तेन गुणगुणिबन्धो निवर्तितो भवति। कर्मादिसाधनो बन्धशब्दो व्याख्येयः।

**आह किमयं बन्ध एकरूप एव, आहोस्वित्प्रकारा अप्यस्य सन्तीत्यत इदमुच्यते—**

### प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥

[८]**प्रकृतिः स्वभावः।** निम्बस्य का प्रकृतिः? तिक्तता। गुडस्य का प्रकृतिः? मधुरता। तथा ज्ञानावरणस्य का प्रकृतिः। अर्थानवगमः। दर्शनावरणस्य का प्रकृतिः? अर्थानालोकनम्। वेद्यस्य सदसल्लक्षणस्य सुखदुःखसंवेदनम्। दर्शनमोहस्य तत्त्वार्थाश्रद्धानम्। चारित्रमोहस्यासंयमः। आयुषो भवधारणम्। नाम्नो नारकादिनामकरणम्। गोत्रस्योच्चैर्नीचैः स्थानसंशब्दनम्। अन्तरायस्य दानादिविघ्नकरणम्। तदेवं लक्षणं कार्यम्—प्रक्रियते प्रभवत्यस्या इति प्रकृतिः। तत्स्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः। यथा—अजागोमहिष्यादिक्षीराणां माधुर्यस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिस्तथा ज्ञानावरणादी-

६. सकषायत्वादिति—कषन्तीति कषायाः दुर्गतिपातलक्षणस्वभावाः कषाया इत्यर्थः। कषायैः सह वर्तते इति सकषायः। राजदन्तादिवत् कृते समासे सह शब्दस्य पूर्वनिपातः। ७. सकषायस्य भावः सकषायत्वं तस्मात्। ८. प्रकृतिरिति—प्रकृतिः परिणामः स्यात्स्थितिः कालावधारणम्। अनुभागो रसो ज्ञेयः प्रदेशः प्रचयात्मकः।

नामर्थानवगमादिस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः। तद्रसविशेषोऽनुभवः। यथा – अजागोमहिष्यादिक्षीराणां तीव्रमन्दादिभावेन रसविशेषस्तथा कर्मपुद्‌गलानां स्वगतसामर्थ्य-विशेषोऽनुभवः। इयत्तावधारणं प्रदेशः। कर्मभावपरिणतपुद्‌गलस्कन्धानां परमाणुपरिच्छेदेनावधारणं प्रदेशः। विधिशब्दः प्रकारवचनः। त एते प्रकृत्यादयश्चत्वारस्तस्य बन्धस्य प्रकाराः। तत्र योगनिमित्तौ प्रकृतिप्रदेशौ, कषायनिमित्तौ स्थित्यनुभवौ। तत्प्रकर्षाप्रकर्षभेदात्तद्‌बन्धविचित्रभावः तथा चोक्तं–जोगा [९]पयडिपएसा ठिदिअणुभागा कसायदो कुणदि। अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधट्ठिदिकारणं णत्थि ॥१॥

**तत्राद्यस्य प्रकृतिबन्धस्य भेदप्रदर्शनार्थमाह–**

**आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥४॥**

आद्यः प्रकृतिबन्धो ज्ञानावरणाद्यष्टविकल्पो वेदितव्यः। आवृणोत्याव्रियतेऽनेनेति वा आवरणम्। तत्प्रत्येकमभिसम्बध्यते–ज्ञानावरणं, दर्शनावरणमिति। वेदयति वेद्यत इति वा वेदनीयम्। मोहयति मुह्यतेऽनेनेति वा मोहनीयम्। एत्यनेन नारकादिभवमित्यायुः। [१०]नमयत्यात्मानं नम्यतेऽनेनेति वा नाम। उच्चैर्नीचैश्च गूयते शब्द्यत इति वा गोत्रम्। [११]दातृदेयादीनामन्तरं मध्यमेतीत्यन्तरायः। एकेनात्मपरिणामेनादीयमानाः पुद्‌गला ज्ञानावरणाद्यनेकभेदं प्रतिपद्यन्ते, सकृदुपभुक्तान्नपरिणामरसरुधिरादिवत्।

**आहोक्तो मूलप्रकृतिबन्धोऽष्टविधः। इदानीमुत्तरप्रकृतिबन्धो वक्तव्य इत्यत आह–**

**पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥५॥**

द्वितीयग्रहणमिह कर्तव्यं द्वितीय उत्तरप्रकृतिबन्ध एवं विकल्प इति ? न कर्तव्यं, पारिशेष्यात्सिद्धेः। आद्यो मूलप्रकृतिबन्धोऽष्टविकल्पः उक्तः। ततः पारिशेष्यादयमुत्तरप्रकृतिविकल्पविधिर्भवति। भेदशब्दः पञ्चादिभिर्यथाक्रममभिसम्बध्यते–पञ्चभेदं ज्ञानवरणीयं, नवभेदं दर्शनावरणीयं, द्विभेदं वेदनीयं, अष्टाविंशतिभेदं मोहनीयं, चतुर्भेदमायुः द्विचत्वारिंशद्भेदं नाम, द्विभेदं गोत्रं, पंचभेदोऽन्तराय इति।

**यदि ज्ञानावरणं पंचभेदं तत्प्रतिपत्तिरुच्यतामित्यत आह–**

**मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥६॥**

मत्यादीनि ज्ञानानि व्याख्यातानि। तेषामावृतेरावरणभेदो भवतीति पञ्चोत्तरप्रकृतयो वेदितव्याः। अत्र चोद्यते–अभव्यस्य मनःपर्ययज्ञानशक्तिः केवलज्ञानशक्तिश्च स्याद्वा न वा?। यदि स्यात्–तस्याभव्यत्वाभावः। अथ नास्ति–तत्रावरणद्वयकल्पना व्यर्थेति। उच्यते–आदेशवचनान्न दोषः–द्रव्यार्थादेशान्मनःपर्ययकेवलज्ञानशक्तिसम्भवः। पर्यायार्थादेशात्तच्छक्त्यभावः। यद्येवं भव्याभव्यविकल्पो नोपपद्यते। उभयत्र तच्छक्तिसद्भावात् ? न शक्तिभावाभावापेक्षया भव्याभव्यविकल्प इत्युच्यते। कुतस्तर्हि?

---

९. जोगा पयडि इति – योगात्प्रकृतिप्रदेशसंज्ञिनौ बंधौ जीवः कुणदि करोति। ठिदिअणुभागं स्थितिश्च अनुभागश्च स्थित्यनुभाग समाहारद्वन्द्वः। एतद्बन्धद्वयं कसायदो कषायतो जीवः कुणदि करोति। अपरिणदुच्छिण्णेसु अपरिणतश्च उच्छिन्नश्च अपरिणतोच्छिन्नौ तयोरपरिणतोच्छिन्नयोः प्रकृते द्विवचनाभावात् बहुवचनं मतं। अपरिणत उपशान्तकषायो नित्यैकान्तवादसहितो वा। उच्छिन्नः क्षीणकषायादिकः क्षणिकैकान्तवादी वा। एतयोर्द्वयोर्बंधीट्ठिदिकारणं णत्थि। स्थितिबंधहेतुर्न भवतीत्यर्थः। **१०.** नानायोनिषु नारकादिपर्यायैर्नमयति शब्दयत्यात्मानमिति नाम। णमु प्रह्वत्वे शब्दे। **११.** आदिशब्देन पात्रम्।

व्यक्तिसद्भावासद्भावापेक्षया। सम्यग्दर्शनादिभिर्व्यक्तिर्यस्य भविष्यति स भव्यः। यस्य तु न भविष्यति सोऽभव्यः। कनकेतरपाषाणवत्।

**आह, उक्तो ज्ञानावरणोत्तरप्रकृतिविकल्पः। इदानीं दर्शनावरणस्य वक्तव्य इत्यत आह—**

**चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां [१२]निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥**

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानामिति दर्शनावरणापेक्षया भेदनिर्देशः—चक्षुर्दर्शनावरणमचक्षुर्दर्शनावरण-मवधिदर्शनावरणं केवलदर्शनावरणमिति। मदखेदक्लमविनोदार्थः स्वापो निद्रा। तस्या उपर्युपरि वृत्तिर्निद्रानिद्रा। या क्रियाऽऽत्मानं प्रचलयति सा प्रचला शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका। सैव पुनः पुनरावर्तमाना प्रचलाप्रचला। स्वप्नेऽपि यया वीर्यविशेषाविर्भावः सा स्त्यानगृद्धिः। स्त्यायतेरनेकार्थत्वात्स्वप्नार्थ इह गृह्यते। गृद्धिरपि दीप्तिः। स्त्याने स्वप्ने गद्ध्यति दीप्यते यदुदयादात्मा रौद्रं बहुकर्म करोति सा स्त्यानगृद्धिः। इह निद्रादिभिर्दर्शनावरणं सामानाधिकरण्येनाभि-सम्बध्यते निद्रादर्शनावरणं निद्रानिद्रादर्शनावरणमित्यादि।

**तृतीयस्याः प्रकृतेरुत्तरप्रकृतिप्रतिपादनार्थमाह—**

**सदसद्वेद्ये ॥८॥**

यदुदयाद्देवादिगतिषु शारीरमानससुखप्राप्तिस्तत्सद्वेद्यं प्रशस्तं वेद्यं सद्वेद्यमिति। यत्फलं दुःखमनेकविधं तदसद्वेद्यमप्रशस्तं वेद्यमसद्वेद्यमिति।

**चतुर्थ्याः प्रकृतेरुत्तरप्रकृतिविकल्पनिदर्शनार्थमाह—**

**दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडश-भेदाःसम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौहास्यरत्यरति-शोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदाअनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान-संज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥९॥**

दर्शनादयश्चत्वारः। त्र्यादयोऽपि चत्वारः। तत्र यथासंख्येन सम्बन्धो भवति—दर्शनमोहनीयं त्रिभेदं, चारित्रमोहनीयं द्विभेदं, अकषायवेदनीयं नवविधं, कषायवेदनीयं षोडशविधमिति। तत्र दर्शनमोहनीयं त्रिभेदं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं, तदुभयमिति। तद्बन्धं [१३]प्रत्येकं भूत्वा सत्कर्मापेक्षया त्रिधा व्यवतिष्ठते। तत्र यस्योदयात्सर्वज्ञप्रणीतमार्गपराङ्मुखस्तत्त्वार्थश्रद्धाननिरुत्सुको हिताहितविचारासमर्थो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वम्। तदेव सम्यक्त्वं शुभपरिणामनिरुद्धस्वरसं यदौदासीन्येनावस्थितमात्मनः श्रद्धानं न निरुणद्धि

---

**१२.** निद्रेति—निद्रावान्पुमान्सुखेनैव जागर्ति। निद्रानिद्रावान्पुमान्दुःखेन प्रतिबोध्यते। प्रचलावान्पुमानुपविष्टोऽपि स्वपिति। प्रचलैव पुनः पुनरागच्छन्ती प्रचलाप्रचलोच्यते। निद्रादीनां कारणानि आवरणरूपाणि कर्माणि वेदितव्यानि। उक्तं च—थीणुदयेणुट्ठविदे सोवदि कम्मं करेदि जप्पदि च। णिद्दाणिद्दुदयेण य ण दिट्ठिमुग्घाडिदुं सक्को। पयलापयलुदयेण य वहेदि लाला चलंति अंगाइं। णिद्दुदये गच्छन्तो ठाइ पुणो बइसह पडेह। पयलुदयेण य जीवो ईसुस्मीलिय सुवेदि सुत्तोवि। ईसं ईसं जाणदि मुहुं मुहुं सोवदे मंदं। **१३.** बंधं पडि एयत्तं उदयं सतं पडुच्च तिविहं खु। दंसणमोहं मिच्छं मिस्सं सम्मत्तमिदि जाणे ॥१॥

तद्वेदयमानः पुरुषः [१४]सम्यग्दृष्टिरित्यभिधीयते। तदेव मिथ्यात्वं प्रक्षालनविशेषात्क्षीणाक्षीणमद-शक्तिकोद्रववत्सामिशुद्धस्वरसं तदुभयमित्याख्यायते सम्यङ्‌मिथ्यात्वमिति यावत्। यस्योदया-दात्मनोऽर्ध-शुद्धमदकोद्रवोपयोगापादितमिश्रपरिणामवदुभयात्मको भवति परिणामः। चारित्रमोहनीयं द्विधा-अकषायकषायभेदात्। ईषदर्थे नञः प्रयोगादीषत्कषायोऽकषाय इति। अकषायवेदनीयं नवविधम्। कुतः?। हास्यादिभेदात्। यस्योदयाद्धास्याविर्भावस्तद्धास्यम्। [१५]यदुदयाद्विषयादिष्वौत्सुक्यं सा रतिः। अरतिस्तद्विपरीता। यद्विपाकाच्छोचनं स शोकः। यदुदयादुद्वेगस्तद्भयम्[१६]। यदुदयादात्मदोषसंवरणमन्य-दोषस्याधारणं सा जुगुप्सा[१७]। [१८]यदुदयात्स्त्रैणान्भावान्प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः। यस्योदयात्पौंस्नान्भावानास्कन्दति स पुंवेदः। यदुदयान्नापुंसकान्भावानुपव्रजति स नपुंसकवेदः। कषायवेदनीयं षोडशविधम्। कुतः? अनन्तानुबन्ध्यादिविकल्पात्[१९]। तद्यथा-कषायाः क्रोधमानमाया-लोभाः। तेषां चतस्रोऽवस्था अनन्तानुबन्धिनोऽप्रत्याख्यानावरणाः, प्रत्याख्यानावरणाः, संज्वलनाश्चेति। अनन्तसंसारकारणत्वान्मिथ्यादर्शनमनन्तं तदनुबन्धिनोऽनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः। यदुदयाद्देशविरतिं संयमासंयमाख्यामल्पामपि कर्तुं न शक्नोति, ते देशप्रत्याख्यान-मावृण्वन्तोऽप्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः। यदुदयाद्विरतिं कृत्स्नां संयमाख्यां न शक्नोति कर्तुं, ते कृत्स्नं प्रत्याख्यानमावृण्वन्तः प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः। समेकीभावे वर्तते। संयमेन सहावस्थानादेकीभूय ज्वलन्ति संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभः। त एते समुदिताः सन्तः षोडश कषाया भवन्ति।

**मोहनीयानन्तरोद्देशभाज आयुष उत्तरप्रकृतिनिर्ज्ञापनार्थमाह—**

## नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥१०॥

नारकादिषु भवसम्बन्धेनायुषो व्यपदेशः क्रियते। नरकेषु भवं नारकमायुः। तिर्यग्योनिषु भवं तैर्यग्योनम्। मानुषेषु भवं मानुषं। देवेषु भवं दैवमिति। नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेषु यन्निमित्तं दीर्घजीवनं तन्नारकम्। एवं शेषेष्वपि।

**आयुश्चतुर्विधं व्याख्यातं तदनन्तरमुद्दिष्टं यन्नामकर्म तदुत्तरप्रकृतिनिर्णयार्थमाह—**

---

**१४.** वेदकसम्यग्दृष्टिः। **१५.** यदुदयाद्देशादिष्वौत्सुक्यं सा रतिरिति पाठान्तरम्। **१६.** यदुदयात्त्रासलक्षणमुपपद्यते तद्भयमित्यन्यः पाठः। **१७.** यदुदयात्परदोषानाविष्करोत्यात्मदोषान्संवृणोति सा जुगुप्सा इत्यन्यः पाठः। यदुदयात्स्वदोषसंवरणं परदोषाविष्करणं सा जुगुप्सा इत्यप्यन्यः पाठः। **१८.** यदुदयादिति-उक्तं च त्रिवेदानां लक्षणम्-श्रोणिमार्दवभीतत्व-मुग्धत्वक्लीबतास्तनाः पुंस्कामेन समं सप्त लिंगानि स्त्रैणसूचने। खरसंमोहनस्ताब्ध्यं शौडीर्यं श्मश्रुधृष्टताः। स्त्रीकामेन समं सप्त लिंगानि नरवेदने। यानि स्त्रीपुंसलिंगानि पूर्वाणीति चतुर्दश। उक्तानि तानि मिश्राणि षंडभावनिवेदने। **१९.** अनंतानुबंध्यादीनां स्वभावप्रकटनार्थं एतद्दृष्टान्तगाथाः-सिलपुढवि भेदधूली जलराइसमाणवो हवे कोहो। णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो। सिलअट्ठिकट्ठवेत्ते णियभेएणणुहरन्तओ माणो। णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो। वेणुवमूलोरब्भयसिंगे गोमुत्तए य खोरप्पे। सरिसी माया णारयतिरियणरामरगईसु खिवदि जीवं। किमिरायचक्कतणुमलहरिद्दराएणसरिसिओ लोहो। णारयतिरियमाणुसदेवेसुप्पायगो कमसो।

## गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगन्ध-वर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्‌वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभ-सूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥११॥

यदुदयादात्मा भवान्तरं गच्छति सा गतिः। सा चतुर्विधा-नरकगतिस्तिर्यग्गतिर्देवगतिर्मनुष्य-गतिश्चेति। यन्निमित्त आत्मनो नारको भावस्तन्नरकगतिनाम। एवं शेषेष्वपि योज्यम्। तासु नरकादिगतिष्व-व्यभिचारिणा सादृश्येनैकीकृतोऽर्थात्मा जातिः। तन्निमित्तं जातिनाम। तत्पञ्चविधम्-एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम, पञ्चेन्द्रियजातिनाम चेति। यदुदयादात्मा एकेन्द्रिय इति शब्द्यते तदेकेन्द्रियजातिनाम। एवं शेषेष्वपि योज्यम्। यदुदयादात्मनः शरीर-निर्वृत्तिस्तच्छरीरनाम। तत्पञ्चविधम्-औदारिकशरीरनाम, वैक्रियिकशरीरनाम, आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम चेति। तेषां विशेषो व्याख्यातार्थः। [20]यदुदयादङ्गोपाङ्गविवेकस्तदङ्गो-पाङ्गनाम। तद्‌त्रिविधम्-औदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम, वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम, आहारकशरीराङ्गो-पाङ्गनाम चेति। यन्निमित्तात्परिनिष्पत्तिस्तन्निर्माणम्। तद्द्विविधम्-स्थाननिर्माणं प्रमाणनिर्माणं चेति। तज्जातिनामोदयापेक्षं चक्षुरादीनां स्थानं प्रमाणं च निर्वर्तयति। निर्मीयतेऽनेनेति निर्माणम्। शरीरनाम-कर्मोदयवशादुपात्तानां पुद्‌गलानामन्योन्यप्रदेशसंश्लेषणं यतो भवति तद्‌बन्धननाम। यदुदयादौदारिकादि-शरीराणां विवरविरहितान्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वापादनं भवति सत्संघातनाम्। यदुदयादौदारिकादि-शरीराकृतिनिर्वृत्तिर्भवति तत्संस्थाननाम्; तत् षोढा विभज्यते-[21]समचतुरस्रसंस्थाननाम। न्यग्रोध-परिमण्डलसंस्थाननाम। स्वातिसंस्थाननाम। कुब्जसंस्थाननाम। वामनसंस्थाननाम। हुण्डसंस्थाननाम चेति। यस्योदयादस्थिबन्धनविशेषो भवति तत्संहनननाम[22]। तत्षड्‌विधम्-वज्रवृषभनाराचसंहनननाम। वज्रनाराचसंहनननाम। नाराचसंहनननाम। अर्धनाराचसंहनननाम कीलितसंहनननाम। असम्प्राप्ता-सृपाटिकासंहनननाम चेति। यस्योदयात्स्पर्शप्रादुर्भावस्तत्स्पर्शननाम। तदष्टविधम्-कर्कशनाम। मृदुनाम।

---

**२०.** अंगोपांगेति-णलया बाहू य तहा णियंबपुठ्ठी उरो य सीसो य। अठ्ठेव दु अंगाइं देहे सेसा उवंगाइं। ललाटकर्णनासिकानेत्रोत्तराधरोष्ठांगुलिनखादीन्युपांगान्युच्यन्ते। **२१.** समेति-समशरीरावयवसन्निवेशव्यवस्थाविधायकं समचतुरस्रसंस्थानं नाम। नाभेरूर्ध्वं प्रचुरशरीरसन्निवेशोऽधस्तु अल्पशरीरसन्निवेशो न्यग्रोधपरिमंडल संस्थानं नाम। तस्माद्विपरीतसंस्थानविधायकं स्वातिकसंस्थानं नाम वल्मीकापरनामधेयं। पृष्ठप्रदेशे बहुपुद्‌गलप्रचयनिर्मापकं कुब्जकसंस्थानं नाम। विश्वांगोपांगाल्पत्वव्जनकं ह्रस्वत्वकारकं वामनसंस्थानं नाम। अनवच्छिन्नावयवं हुडकसंस्थानं नाम। विषमपाषाणभृताद्रिरिव विषमं हुंडं यस्य शरीरं तस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य तद्‌धुंडकशरीरं संस्थानं यस्योदयेन पूर्वोक्तपंचसंस्थानेभ्योऽन्यद्वीभत्स-संस्थानं भवति। **२२.** यदुदयादस्थिनां बंधविशेषो भवति तत्संहननं षट्प्रकारम्। १.वज्राकारोभयास्थिसंधिमध्ये सवलयं बंधनं सनाराचं वज्रर्षभनाराचसंहनननाम। २. तद्वलयरहितं वज्रनाराचसंहननंनाम। ३. वज्राकारेण च वलयेन च रहितं सनाराचं नाराचसंहनननाम। ४. एकास्थि सनाराचं अन्यत्रनाराचं अर्धनाराचसंहनननाम। ५. उभयास्थिपर्यन्ते कीलकसहितं कीलकसंहनननाम। ६. अन्तरमवाप्तान्योन्यास्थिसंधिकं बाह्ये शिरास्नायुमांसवेष्टितं असंप्राप्तासृपाटिकासंहनननाम। असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन आदितश्चतुःस्वर्गयुगलान्तं गच्छति। कीलिकार्द्धनाराचसंहननः शेषचतुर्युगलपर्यन्तं गच्छति।

गुरुनाम। लघुनाम। स्निग्धनाम। रूक्षनाम। शीतनाम। उष्णनाम चेति। यन्निमित्तो रसविकल्पस्तद्रसनाम। तत्पञ्चविधम्–तिक्तनाम। कटुनाम। कषायनाम। आम्लनाम। मधुरनाम चेति। यदुदयप्रभवो गन्धस्तद्‌गन्धनाम। तद् द्विविधं–सुरभिगन्धनाम असुरभिगन्धनाम चेति। यद्धेतुको वर्णविभाग स्तद्वर्णनाम। तत्पञ्चविधम्–शुक्लवर्णनाम, कृष्णवर्णनाम, नीलवर्णनाम, रक्तवर्णनाम, हरिद्वर्णनाम चेति। पूर्वशरीराकाराविनाशो यस्योदयाद्भवति तदानुपूर्व्यनाम। तच्चतुर्विधम्–नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम। मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम। देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम चेति। यस्योदयादयस्पिण्डवद्‌गुरुत्वान्नाधः पतति न चार्कतूलवल्लघुत्वादूर्ध्वं गच्छति तदगुरुलघुनाम। [२३]यस्योदयात्स्वयं कृतोद्बन्धनमरुत्प्रपतनादिनिमित्त उपघातो भवति तदुपघातनाम। यन्निमित्तः परशस्त्राद्याघातस्तत्परघातनाम। यदुदयान्निर्वृत्तमातपनं तदातपनाम। तदादित्ये वर्तते। यन्निमित्तमुद्योतनं तदुद्योतनाम। तच्चन्द्रखद्योतादिषु वर्तते। यद्धेतुरुच्छ्‌वासस्तदुच्छ्‌वासनाम। विहाय आकाशम् तत्र गतिनिर्वर्तकं तद्विहायोगतिनाम। तद् द्विविधम्–प्रशस्ताप्रशसाभेदात्। शरीरमेकात्मोपभोगकारणं यतो भवति तत्प्रत्येकशरीरनाम। [२४]बहूनामात्मनामुपभोगहेतुत्वेन साधारणं शरीरं यतो भवति तत्साधारण–शरीरनाम। यदुदयाद्‌द्वीन्द्रियादिषु जन्म तत्त्रसनाम। यन्निमित्त एकेन्द्रियेषु प्रादुर्भावस्तत्स्थावरनाम। यदुदयादन्यप्रीतिप्रभवस्तत्सुभगनाम। यदुदयाद्रूपादिगुणोपेतोऽप्यप्रीतिकरस्तत् दुर्भगनाम। यन्निमित्तं मनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं तत्सुस्वरनाम। तद्विपरीतं दुःस्वरनाम। यदुदयाद्रमणीयत्वं तच्छुभनाम। तद्विपरीत–मशुभनाम। सूक्ष्मशरीरनिर्वर्तकं सूक्ष्मनाम। अन्यबाधाकरशरीरकारणं बादरनाम। यदुदयादाहारादि–

---

नाराचसंहननो नवग्रैवेयकपर्यंतं गच्छति। वज्रनाराचसंहननो नवानुदिशपर्यन्तं गच्छति। वज्रवृषभनाराचसंहननः पंचानुत्तरं मोक्षं च गच्छति। धम्मा, वंसा, मेघा, अंजणा, अरिट्ठा, मघवी, माघवी इति सप्त नरकनामानि। तत्र मेघायाः शिला इति अपरं नाम। तत्र षट्संहननः संज्ञी जीवो मेघान्तं व्रजति। सप्तमं नरकं वज्रवृषभ–नाराचसंहननो गच्छति। षष्ठनरकपर्यन्तं अर्द्धनाराचसंहननो गच्छति। कीलकान्तसंहननः पंचमं चतुर्थं च नरकं गच्छति। एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियेषु असंप्राप्तासृपाटिकासंहननं भवति। वज्रवृषभनाराचसंहननं तु असंख्येयवर्षायुष्केषु भोगभूमिजेषु कुभोगभूमिजेषु स्त्रीपुरुषपशुषु भवति। चतुर्थकाले षट्संहनानि भवन्ति। पंचमकाले त्रीणि। षष्ठकाले एकं असंप्राप्तासृपाटिकासंहननं भवति। विदेहेषु विद्याधरक्षेत्रेषु म्लेच्छखंडेषु च मनुष्याणां तिरश्चां च षट्संहननानि भवन्ति। नागेन्द्रपर्वतात्परतस्तिरश्चां षट्संहननानि भवन्ति। कर्मभूमिजानां स्त्रीणां अर्द्धनाराचकीलिकासंप्राप्तासृपाटिका–संहननत्रयं भवति। आदिसंहननत्रयं न भवतीति निश्चयः। आदिसप्तगुणस्थानेषु षट्संहननानि भवन्ति। अपूर्वकरणानिवृत्तिकरण–सूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायलक्षणेषु चतुर्षूपशमश्रेणि–संबधिगुणस्थानेषु आद्यं संहननत्रयं भवति। क्षपकश्रेणौ अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायक्षीणकषायसयोगकेवलिलक्षणेषु पंचसु गुणस्थानेषु संहननमाद्यमेव भवति। **२३.** यस्योदयात्स्वयमिति–यदुदयेन स्वयमेव गले पाशं बद्‌ध्वा वृक्षादाववलम्ब्य उद्वेगेन मरणं करोति। प्राणापानविनिरोधं कृत्वा म्रियते। इत्येवमादिभिरनेकप्रकारैः शस्त्रघातभृगुपाताग्निझंपापातजलनिमज्जन–विषभक्षणादिभिरात्मघातं करोति तदुपघातं नाम। **२४.** बहूनामिति–यदुदयेन बहूनां जीवानां उपभोगहेतुत्वेन शरीरं भवति तत्साधारणशरीरं नाम। उक्तं च–साहारणमाहारो साहारणमाणपाणगहणं च। साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणिदं। गूढसिरसंधिपव्वं समभंगमहीरुहं च छिण्णरुहं साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं। मूले कंदे छल्लीपवालसाल–दलकुसुमफलबीजे। समभंगे सदि णंता असमे सदि होंति पत्तेया। इति।

पर्याप्तिनिर्वृत्तिस्तत्पर्याप्तिनाम। तत् षड्विधम्–आहारपर्याप्तिनाम। शरीरपर्याप्तिनाम। इन्द्रियपर्याप्ति-नाम। प्राणापानपर्याप्तिनाम। भाषापर्याप्तिनाम। मनःपर्याप्तिनाम चेति। षड्विधपर्याप्त्यभावहेतुर-पर्याप्तिनाम। स्थिरभावस्य निर्वर्तकं स्थिरनाम। तद्विपरीतमस्थिरनाम। प्रभोपेतशरीरकारणमादेयनाम। निष्प्रभशरीरकारणमनादेयनाम। पुण्यगुणख्यापनकारणं यशःकीर्तिनाम। तत्प्रत्यनीकफलमयशःकीर्तिनाम। आर्हन्त्यकारणं तीर्थकरत्वनाम।

**उक्तो नामकर्मण उत्तरप्रकृतिभेदः। तदनन्तरोद्देशभाजो गोत्रस्य प्रकृतिभेदो व्याख्यायते–**

**[२५]उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥**

गोत्रं द्विविधम्। उच्चैर्गोत्रं नीचैर्गोत्रमिति। यस्योदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रम्। यदुदयाद्गर्हितेषु कुलेषु जन्म तन्नीचैर्गोत्रम्।

**अष्टम्याः कर्मप्रकृतेरुत्तरप्रकृतिनिर्देशार्थमाह–**

**दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥१३॥**

अन्तरायापेक्षया भेदनिर्देशः क्रियते–दानस्यान्तरायो लाभस्यान्तराय इत्यादि दानादिपरिणाम-व्याघातहेतुत्वाद्व्यपदेशः। यदुदयाद्दातुकामोऽपि न प्रयच्छति, लब्धुकामोऽपि न लभते, भोक्तुमिच्छन्नपि न भुंक्ते, उपभोक्तुमभिवाञ्छन्नपि नोपभुंक्ते, उत्साहितुकामोऽपि नोत्सहते। त एते पञ्चान्तरायस्य भेदाः।

व्याख्याताः प्रकृतिबन्धविकल्पाः। इदानीं स्थितिबन्धविकल्पो वक्तव्यः। सा स्थितिर्द्विविधा, उत्कृष्टा जघन्या च।

**तत्र यासां कर्मप्रकृतीनामुत्कृष्टा स्थितिः समाना, तन्निर्देशार्थमुच्यते–**

**आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥१४॥**

मध्येऽन्ते वा तिसृणां ग्रहणं माभूदिति आदित इत्युच्यते। अन्तरायस्येति वचनं व्यवहितग्रहणार्थम्। सागरोपममुक्तपरिमाणम्। कोटीनां कोट्यः कोटीकोट्यः। परा उत्कृष्टेत्यर्थः। एतदुक्तं भवति–ज्ञानावरण-दर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणामुत्कृष्टा स्थितिस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्य इति। सा कस्य भवति?। मिथ्यादृष्टेः सञ्ज्ञिनः पञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य। [२६]अन्येषामागमात्सम्प्रत्ययः कर्तव्यः।

**मोहनीयस्योत्कृष्टस्थितिप्रतिपत्त्यर्थमाह–**

---

**२५.** उच्चैर्गोत्रं नीचैर्गोत्रमिति–यदुदयेन सर्वलोकपूजित इक्ष्वाकुवंशे, सूर्यवंशे, सोमवंशे, नाथवंशे, कुरुवंशे, हरिवंशे, उग्रवंशे इत्यादि वंशे जीवस्य जन्म भवति तदुच्चैर्गोत्रमिति। यदुदयेन निंदिते दरिद्रे भ्रष्टे इत्यादिकुले जीवस्य जन्म भवति तच्च नीचैर्गोत्रमिति। **२६.** अन्येषामिति–चतुर्णां कर्मणां कीदृशी स्थितिरित्युच्यते। एकेन्द्रियपर्याप्तकस्य एकसागरोपमस्य सप्तभागीकृतस्य त्रयो भागा भवन्ति। द्वीन्द्रियपर्याप्तकस्य पंचविंशतिसागरोपमानां सप्तभागीकृतानां त्रयो भागा भवन्ति। त्रीन्द्रियपर्याप्तकस्य पंचाशत्सागरोपमानां सप्तभागीकृतानां त्रयो भागा भवन्ति। चतुरिन्द्रियपर्याप्तकस्य सागरोपम-शतस्यसप्तभागीकृतस्य त्रयो भागा भवन्ति। असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तकस्य सागरोपमसहस्रस्य सप्तभागीकृतस्य त्रयो भागा भवन्ति। संज्ञिपंचेन्द्रियापर्याप्तकस्य अन्तःसागरोपमकोटीकोट्यो भवन्ति। अपर्याप्तैकेन्द्रियद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया-संज्ञिपंचेन्द्रियाणां पर्याप्तैकेन्द्रियादिदत्ता एव भागा भवन्ति। परंतु पल्योपमासंख्येयभागोना वेदितव्या इति परमागमात्संप्रत्ययः। उक्तं च–एइंदिय वियलिंदिय सण्णिअप्पज्जत्तयाण बोधव्वा। एकं तह पणवीसं पंचासं तह सयं सहस्सं च। तिहयं सत्तविहत्तं सायरसंखा ठिदी एसा।

## [२७]सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥

सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिरित्यनुवर्तते इयमपि परा स्थितिर्मिथ्यादृष्टेः सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्यावसेया। इतरेषां यथागममवगमः कर्तव्यः।

**नामगोत्रयोरुत्कृष्टस्थितिप्रतिपत्त्यर्थमाह–**

## विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥१६॥

सागरोपमकोटीकोट्यः परास्थितिरित्यनुवर्तते। इयमप्युत्कृष्टास्थितिर्मिथ्यादृष्टेः सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रिय–पर्याप्तकस्य। [२८]इतरेषां यथागममवबोद्धव्या।

**अथायुषः कोत्कृष्टा स्थितिरित्युच्यते–**

## त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥१७॥

पुनः सागरोपमग्रहणं कोटीकोटीनिवृत्त्यर्थम्। परा स्थितिरित्यनुवर्तते। इयमपि पूर्वोक्तस्यैव [२९]शेषाणा–मागमतोऽवसेया।

**उक्तोत्कृष्टा स्थितिः। इदानीं जघन्या स्थितिर्वक्तव्या। तत्र समानजघन्यस्थितीः पञ्च प्रकृतीरवस्थाप्य तिसृणां जघन्यस्थितिप्रतिपत्त्यर्थं सूत्रद्वयमुपन्यस्यते लघ्वर्थम् –**

## अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥

अपरा जघन्या, वेदनीयस्य [३०]द्वादशमुहूर्ता।

---

**२७.** मोहनीयस्य दर्शनमोहनीयापेक्षया सप्ततिसागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थिति र्भवति। चारित्र–मोहनीयापेक्षया तु चत्वारिंशत्सागरोपम–कोटीकोट्यो वेदितव्याः। पर्याप्तैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणमेकं, पंचविंशतिः, पंचाशत्, शतं सागरोपमाणि। तेषामपर्याप्तकानामपि तान्येव। परंतु पल्योपमासंख्येयभागोनानि। पर्याप्तसंज्ञिपंचेन्द्रियस्य सागरोपमसहस्रं। तस्यैवापर्याप्तस्य तदेव परंतु पल्योपमासंख्येयभागोनं। तथा चोक्तम्। एक्कं पणवीसं पि य पंचासं तह सयं सहस्रं च। ताणं सायरसंखा ठिदि एसा मोहणीयस्स। अयं तु विशेषो मोहनीयस्येयं स्थितिः सप्तगुणा सप्तहता च कर्तव्या। कोऽर्थः पूर्ववत् सागराणां सप्तभागान्कृत्वा त्रयो भागा ग्रहीतव्याः। किंतु एकः सागरः परिपूर्णः। पंचविंशतिसागराः परिपूर्णाः पंचाशत्सागराः परिपूर्णाः, शतं सागराः परिपूर्णाः, सहस्रसागराश्च परिपूर्णा गृह्यन्ते इत्यर्थः। **२८.** इतरेषामिति–पर्याप्तैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया–संज्ञिपंचेन्द्रियाणां एकं, पंचविंशतिः, पंचाशत्, शतं, सहस्रं चानुक्रमेण सागरोपमाणि यानि पूर्वमुक्तानि तेषां सप्तभागीकृतानां द्वौ भागौ गृह्येते। तथाहि–एकसागरोपमस्य सप्तभागाः क्रियन्ते। तेषां मध्ये द्वौ भागौ एकेन्द्रियाणां नामगोत्रयोः परा स्थितिर्भवति। पंचविंशतिसागराणां सप्तभागाः क्रियन्ते तेषां मध्ये द्वौ भागौ गृह्येते द्वीन्द्रियाणां नामगोत्रयोः परा स्थितिर्भवति। पंचाशत्सागरोपमानां सप्तभागाः क्रियन्ते तेषां मध्ये द्वौ भागौ गृह्येते त्रीन्द्रियाणां नामगोत्रयोः परा स्थितिर्भवति। शतसागराणां सप्तभागाः क्रियन्ते तेषां मध्ये द्वौ भागौ गृह्येते चतुरिन्द्रियाणां नामगोत्रयोः परा स्थितिर्भवति। सहस्रसागराणां सप्तभागाः क्रियन्ते तन्मध्ये द्वौ भागौ गृह्येते असंज्ञिपंचेन्द्रियाणां नामगोत्रयोः परा स्थितिर्भवति। अपर्याप्तैकद्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेन्द्रियाणां द्वौ द्वावेव भागौ परन्तु पल्योपमासंख्येयभागहीनौ वेदितव्यौ। **२९.** शेषाणामिति–असंज्ञिन आयुषः स्थितिः पल्योपमासंख्येयभागो भवति कस्माद्यतो–ऽसंज्ञिपंचेन्द्रियस्तिर्यङ्नरके स्वर्गे वा पल्योपमासंख्येयमायुर्बध्नाति। एकेन्द्रिया विकलेन्द्रियास्तु पूर्वकोटि–प्रमाणमायुर्बद्ध्वा पश्चाद्विदेहे उत्पद्यन्ते। **३०.** द्वादशेति–द्वादशमुहूर्ता चतुर्विंशतिघटिकाप्रमाणा इत्यर्थः। एतां स्थितिं सूक्ष्मसांपरायगुणस्थाने बध्नाति इति वेदितव्यम्। प्रकृतीनामनुक्रमोल्लंघनं सूत्राणां लघुत्वार्थं ज्ञातव्यम्।

## [31]नामगोत्रयोरष्टौ ॥१९॥

मुहूर्ता इत्यनुवर्तते। अपरा स्थितिरिति च।

**अवस्थापितप्रकृतिजघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—**

## शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥२०॥

शेषाणां पंचानां प्रकृतीनामन्तर्मुहूर्ताऽपरा स्थितिः। ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणां जघन्या स्थितिः सूक्ष्मसाम्पराये, मोहनीयस्य अनिवृत्तिबादरसाम्पराये। आयुषः संख्येयवर्षायुष्कतिर्यक्षु मनुष्येषु च।

**आह—उभयी स्थितिरभिहिता ज्ञानावरणादीनाम् अथानुभवः किं लक्षण इत्यत आह—**

## विपाकोऽनुभवः[32] ॥२१॥

विशिष्टो नानाविधो वा पाको विपाकः। पूर्वोक्तकषायतीव्रमन्दादिभावास्रवविशेषाद्विशिष्टः पाको विपाकः। अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभवभावलक्षणनिमित्तभेदजनितवैश्वरूप्यो नानाविधः पाको विपाकः। असावनुभव इत्याख्यायते। शुभपरिणामानां प्रकर्षभावाच्छुभप्रकृतीनां प्रकृष्टोऽनुभवः। अशुभप्रकृतीनां निकृष्टः। अशुभपरिणामानां प्रकर्षभावादशुभप्रकृतीनां प्रकृष्टोऽनुभवः। शुभप्रकृतीनां निकृष्टः। स एवं प्रत्ययवशादुपात्तोऽनुभवो द्विधा प्रवर्तते, स्वमुखेन परमुखेन च। सर्वासां मूलप्रकृतीनां स्वमुखेनैवानुभवः। उत्तरप्रकृतीनां तुल्यजातीयानां परमुखेनापि भवति आयुर्दर्शन–चारित्रमोहवर्जानां। न हि नरकायुर्मुखेन तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्वा विपच्यते। नापि दर्शनमोहश्चारित्रमोहमुखेन। चारित्रमोहो वा दर्शनमोहमुखेन।

**आह—अभ्युपेमः प्रागुपचितनानाप्रकारकर्मविपाकोऽनुभव इति। इदं तु न विजानीमः किमयं प्रसंख्यातोऽप्रसंख्यातः? इत्यत्रोच्यते [33]प्रसंख्यातोऽनुभूयत[34] इति ब्रूमहे। कुतः? यतः—**

## स यथानाम ॥२२॥

ज्ञानावरणस्य फलं ज्ञानाभावो, दर्शनावरणस्य फलं दर्शनशक्त्युपरोध इत्येवमाद्यन्वर्थ–सञ्ज्ञानिर्देशात्सर्वासां कर्मप्रकृतीनां सविकल्पानामनुभवसम्प्रत्ययो जायते।

**आह - यदि विपाकोऽनुभवः प्रतिज्ञायते, तत्कर्मानुभूतं सत्किमाभरणवदवतिष्ठते, आहोस्विन्निष्पीत-सारं प्रच्यवते? इत्यत्रोच्यते -**

## ततश्च निर्जरा ॥२३॥

पीडानुग्रहावात्मने प्रदायाभ्यवहृतौदनादिविकारवत्पूर्वस्थितिक्षयादवस्थानाभावात्कर्मणो निवृत्तिर्निर्जरा। सा द्विप्रकारा। विपाकजा इतरा च। तत्र चतुर्गतावनेकजातिविशेषावघूर्णिते संसारमहार्णवे चिरं परिभ्रमतः शुभाशुभस्य कर्मणः क्रमेण परिपाककालप्राप्तस्यानुभवोदयावलिस्रोतोऽनु–प्रविष्टस्यारब्धफलस्य या निवृत्तिः सा विपाकजा निर्जरा। यत्कर्माप्राप्तविपाककालमौपक्रमिकक्रिया–विशेषसामर्थ्यादनुदीर्णं बलादुदीर्योदयावलिं प्रवेश्य वेद्यते आम्रपनसादिपाकवत् सा अविपाकजा निर्जरा। चशब्दो निमित्तान्तरसमुच्चयार्थः। ''तपसा निर्जरा च इति'' वक्ष्यते ततश्च भवति अन्यतश्चेति।

---

**३१.** नामेति–इयमपि स्थितिर्दशमगुणस्थाने वेदितव्या। **३२.** अनुभव इति कोऽर्थः–आत्मनि फलस्य दानं, कर्मदत्तफलानामात्मना स्वीकरणमित्यर्थः। **३३.** अन्वर्थसञ्ज्ञः सन्प्रसंख्यातः। **३४.** प्रसंख्यातः सन्ननुभूयते ज्ञायत इत्यर्थः।

किमर्थमिह निर्जरानिर्देशः क्रियते संवरात्परा निर्देष्टव्या उद्देशवत्। लघ्वर्थमिह वचनम्। तत्र हि पाठे विपाकोऽनुभव इति पुनरनुवादः कर्त्तव्यः स्यात्।

आह अभिहितोऽनुभवबन्धः। इदानीं प्रदेशबन्धो वक्तव्यः। तस्मिंश्च वक्तव्ये सति, इमे निर्देष्टव्याः, किंहेतवः? कदा? कुतः? किंस्वभावाः? कस्मिन्? किंपरिमाणाश्चेति।

**तदर्थमिदं क्रमेण परिगृहीतप्रश्नापेक्षभेदं सूत्रं प्रणीयते—**

## नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥२४॥

नाम्नः प्रत्यया नामप्रत्ययाः नामेति सर्वाः कर्मप्रकृतयोऽभिधीयन्ते, स यथानामेति वचनात्। अनेन हेतुभाव उक्तः। सर्वेषु भवेषु सर्वतः। [३५]दृश्यतेऽन्यतोऽपीति तसि कृते सर्वतः। अनेन कालोपादानं कृतम्। एकैकस्य हि जीवस्यातिक्रान्ता अनन्ता भवाः। आगामिनः संख्येया, असंख्येया अनन्तानन्ता वा भवन्तीति। योगविशेषान्निमित्तात्कर्मभावेन पुद्गला आदीयन्त इति निमित्तविशेषनिर्देशः कृतो भवति। सूक्ष्मादिग्रहणं[३६] कर्मग्रहणयोग्यपुद्गलस्वभावानुवर्तनार्थं, ग्रहणयोग्याः पुद्गलाः सूक्ष्मा न स्थूला इति। एकक्षेत्रावगाहवचनं क्षेत्रान्तरनिवृत्त्यर्थम्। स्थिता इति वचनं क्रियान्तरनिवृत्त्यर्थम, स्थिता न गच्छन्त इति। सर्वात्मप्रदेशेष्विति वचनमाधारनिर्देशार्थम्। नैकप्रदेशादिषु कर्मप्रदेशा वर्तन्ते, क्व तर्हि? ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च सर्वेष्वात्मप्रदेशेषु व्याप्य स्थिता इति। अनन्तानन्तप्रदेशवचनं परिमाणान्तरव्यपोहार्थम्, न संख्येया न चासंख्येया नाप्यनन्ता इति। ते खलु पुद्गलस्कन्धा अभव्यानन्तगुणाः सिद्धानन्त-भागप्रमितप्रदेशा घनांगुलस्यासंख्येयभागक्षेत्रावगाहिनः एकद्वित्रिचतुःसंख्येयासंख्येयसमयस्थितिकाः पञ्चवर्णपञ्चरसद्विगन्धचतुःस्पर्शस्वभावा अष्टविधकर्मप्रकृतियोग्या योगवशादात्मनाऽऽत्मसात्क्रियन्ते। इति प्रदेशबन्धः समासतो वेदितव्यः।

आह बन्धपदार्थानन्तरं पुण्यपापोपसंख्यानं [३७]चोदितं तद्बन्धेऽन्तर्भूतमिति [३८]प्रत्याख्यातं। तत्रेदं वक्तव्यं कोऽत्र पुण्यबन्धः कः पापबन्ध इति?

**तत्र पुण्यबन्धप्रकृतिपरिगणनार्थमिदमारभ्यते—**

## सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥

शुभं प्रशस्तमिति यावत्। तदुत्तरैः प्रत्येकमभिसम्बध्यते शुभमायुः, शुभं नाम, शुभं गोत्रमिति। शुभायुस्त्रितयं तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्देवायुरिति। शुभनाम सप्तत्रिंशद्विकल्पं तद्यथा—मनुष्यगतिर्देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, पञ्च [३९]शरीराणि, त्रीण्यङ्गोपाङ्गानि, समचतुरस्रसंस्थानं, वज्रर्षभनाराचसंहननं, प्रशस्तवर्णरसगन्धस्पर्शाः, मनुष्यदेवगत्यानुपूर्व्यद्वयमगुरुलघुपरघातोच्छ्वासातपोद्योतप्रशस्तविहायो-

---

**३५.** अन्यतोऽपि इति सूत्रेण सप्तम्यर्थे तम्। **३६.** सूक्ष्मादिग्रहणमिति–कर्मप्रदेशाः सूक्ष्मा वर्तन्ते न तु स्थूलाः यस्मिन्नाकाशप्रदेशे आत्मप्रदेशो वर्तते तस्मिन्नेवाकाशप्रदेशे अनंतानंताः कर्मप्रदेशा वर्तन्ते। तेन एकक्षेत्रावगाह इत्युच्यते। **३७.** जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वमिति सूत्रव्याख्याने। **३८.** तत्रैव। **३९.** दशविधस्य बन्धनसंघातद्वयस्याप्यत्रैवान्तर्भावः।

गतयस्त्रसबादरपर्याप्तिप्रत्येकशरीरस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तयो निर्माणं तीर्थकरनाम चेति। शुभमेकमुच्चैर्गोत्रं। सद्वेद्यमिति एता द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतयः पुण्यसञ्ज्ञाः।

**अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥**

अस्मात्पुण्यसञ्ज्ञककर्मप्रकृतिसमूहादन्यत्कर्म पापमित्युच्यते। तद् द्व्यशीतिविधं तद्यथा - ज्ञानावरणस्य प्रकृतयः पञ्च, दर्शनावरणस्य नव, मोहनीयस्य षड्विंशतिः, पञ्चान्तरायस्य। नरकगतितिर्यग्गती, चतस्रो जातयः, पञ्च संस्थानानि, पञ्च संहननान्यप्रशस्तवर्णगन्धरसस्पर्शाः नरकगतितिर्यग्गत्यानुपूर्व्यद्वयमुपघाताप्रशस्तविहायोगतिस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तिसाधारणशरीरास्थिराशुभ-दुर्भगदुःस्वरानादेयायशःकीर्तयश्चेति नामप्रकृतयश्चतुस्त्रिंशत्। असद्वेद्यं नरकायुर्नीचैर्गोत्रमिति। एवं व्याख्यातौ बन्धपदार्थः सप्रपञ्चः। अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानप्रत्यक्षप्रमाणगम्यस्तदुपदिष्टागमानुमेयः।

**॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायामष्टमोऽध्यायः॥**

# अथ नवमोऽध्यायः

**बन्धपदार्थो निर्दिष्टः। इदानीं तदनन्तरोद्देशभाजः संवरस्य निर्देशः प्राप्तकाल इत्यत इदमाह—**

## आस्रवनिरोधः संवरः ॥१॥

अभिनवकर्मादानहेतुरास्रवो व्याख्यातः। तस्य निरोधः संवर इत्युच्यते। स द्विविधो भावसंवरो द्रव्यसंवरश्चेति। तत्र संसारनिमित्तक्रियानिवृत्तिर्भावसंवरः। तन्निरोधे तत्पूर्वकर्मपुद्गलादानविच्छेदो द्रव्यसंवरः। इदं विचार्यते – कस्मिने [१]गुणस्थाने कस्य संवर इति ? उच्यते। मिथ्यादर्शनकर्मोदयवशीकृत

१. कस्मिन्गुणस्थाने – अत्र गुणस्थानानां स्वरूपं निरूप्यते – १. तत्त्वार्थविपरीतरुचिर्मिथ्यादृष्टिः प्रथमं गुणस्थानं भवति। दर्शनमोहस्य भेदास्त्रयः सम्यक्त्वमिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वविकल्पात्। तेषामुदयाभावे अनन्तानुबंधिक्रोधमानमायालोभानां चोदयाभावे सति प्रथमं सम्यक्त्वमौपशमिकं नाम समुत्पद्यते। तस्य कालोऽन्तर्मुहूर्त्तः। २. तस्यांतर्मुहूर्तमध्ये उत्कर्षेण आवलिकाषट्के उद्धरिते सति जघन्येनैकस्मिंश्च समये उद्धरिते सति अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभानां मध्येऽन्यतमस्योदये सति शेषस्य मिथ्यादर्शनकारणस्यानुदये सति सासादनसम्यग्दृष्टिर्जीव उच्यते। तद्द्वितीयं गुणस्थानं भवति। सासादनसम्यग्दृष्टेर्मिथ्यादर्शनानुदयेऽपि अनंतानुबंध्यन्यतमोदयाद्यज्ज्ञानत्रयं तदज्ञानत्रयमेव। कथमिति चेद्यस्मात्कारणात्तेऽनन्तानुबंधिनः कषाया अनंतमिथ्यादर्शनानुबंधान्मिथ्यादर्शनोदयलक्षणं फलमुत्पादयंति। मिथ्यादर्शनमेवात्मनि प्रवेशयंति। परिहृतसासादनगुणः पुमानवश्यमेव मिथ्यात्वगुणस्थानं गच्छति। मिश्रादिषु न गच्छति न चटति इति सासादनवर्णनं। ३.सम्यङ्मिथ्यात्वकर्मोदयात्स्तोककलुषपरिणामः पुमान् भवति। क्षीणाक्षीणमदशक्तिकोद्रवोत्पादितमनाक्कलुषपरिणामवत्तेन कारणेन सम्यङ्मिथ्यादृष्टिर्जीवस्तत्त्वार्थरुच्यरुचिरूपो भवति, सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः पुरुषस्य यज्ज्ञानत्रयं तत्सत्यासत्यरूपं वेदितव्यं। ४. चारित्रमोहकर्मोदयाज्जीवोऽतीवाविरतो भवति। सोऽसंयतसम्यग्दृष्टिरुच्यते। ५. श्रावकव्रतानि प्रतिपालयन्देशविरतो भवति तत्पंचमं गुणस्थानं। ६. अप्रमत्तोऽपि सन्नंतर्मुहूर्तं प्रमादं भजन्प्रमत्तसंयतो भवति तत्षष्ठं गुणस्थानं। ७. यो जंघासेवनादि निद्रादिप्रमादं न भजते स पुमानप्रमत्तसंयतो भवति तत्सप्तमं गुणस्थानं। अपूर्वकरणं, अनिवृत्ति–बादरसांपरायसंज्ञं, सूक्ष्मसांपरायसंज्ञं च। एतानि त्रीणि गुणस्थानानि भवंति तेषु त्रिषु द्वे श्रेणी वर्तेते। उपशमश्रेणिःक्षपकश्रेणिश्च। यस्यामात्मा मोहनीयं कर्म उपशमयन्नारोहति सा उपशमश्रेणिः। यस्यामात्मा मोहनीयं कर्म क्षपयन्नारोहति सा क्षपकश्रेणिरुच्यते। तत्रोपशमश्रेणिमानष्टमं नवमं दशम एकादशं च गुणस्थानं गत्वा पतति। क्षपकश्रेणिमान्पुमान् अष्टमं नवमं दशमं च गुणस्थानं गत्वैकादशं गुणस्थानं वर्जयित्वा द्वादशं क्षीणकषायसंज्ञं आरोहति। अपूर्वकरणेऽष्टमगुणस्थाने उपशमकः क्षपकश्च वर्तते। स अपूर्वान्करणान्परिणामान्प्राप्नोति। तेन तदष्टमं गुणस्थानं अपूर्वकरणमित्युच्यते। अस्मिन्गुणस्थाने कर्मोपशमः कर्मक्षयो वा न वर्तते। किंतु सप्तमनवमगुणस्थानयोर्मध्ये पतितत्वादुपशमकःक्षपकश्चोपचारेणोच्यते घृतघटवत्। यथा मृण्मयोऽपि घटो घृतघट उच्यते घृतसमीपवर्तित्वात्। अस्मिन्गुणस्थाने नानाजीवापेक्षयान्तर्मुहूर्त्तस्यैकस्मिन्नपि क्षणेऽन्योन्यमवश्यमेव परिणामा विषमा भवन्ति। प्रथमक्षणे ये परिणामा उत्पन्नास्ते परिणामा अपूर्वाश्च परिणामा द्वितीयादिषु क्षणेषूत्पद्यन्ते तेनेदं गुणस्थानमपूर्वकरणमित्यन्वर्थसंज्ञं भवति। अथानिवृत्तिबादरसांपरायगुणस्थानस्वरूपमुच्यते–सांपरायस्य कषायस्य सूक्ष्मतयोपशमात्क्षपणाच्च सूक्ष्मसांपरायसंज्ञं दशमं गुणस्थानं भवति। तत्रोपशमकाः क्षपकाश्च जीवा भवन्ति। उपशांतमोहसंज्ञं त्वेकादशं गुणस्थानं भवति सर्वस्योपशमात्। क्षीणमोहस्तु द्वादशं गुणस्थानं सर्वस्य मोहस्य क्षपणाद्भवति। संप्राप्तकेवलज्ञानदर्शनो जीवो यत्र भवति तत्सयोगिजिनसंज्ञं त्रयोदशं गुणस्थानं। पंचलघ्वक्षरकालस्थितिकं अयोगिजिनसंज्ञं चतुर्दशं गुणस्थानं वेदितव्यम्।

आत्मा मिथ्यादृष्टिः। तत्र मिथ्यादर्शनप्राधान्येन यत्कर्म आस्रवति तन्निरोधाच्छेषे सासादनसम्यग्दृष्ट्यादौ तत्संवरो भवति। किं पुनस्तन्मिथ्यात्वं नपुंसकवेदनरकायुर्नरकगत्येक-द्वित्रिचतुरिन्द्रिय-जातिहुण्डसंस्थानासम्प्राप्तासृपाटिकासंहनननरकगति-प्रायोग्यानुपूर्व्यातपस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तक-साधारणशरीरसंज्ञकषोडश-प्रकृतिलक्षणम्। असंयमस्त्रिविधः। अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानोदयविकल्पात्। तत्प्रत्ययस्य कर्मणस्तदभावे संवरोऽवसेयः। तद्यथा-निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्ध्यनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभस्त्रीवेदतिर्यगायुस्तिर्यग्गतिचतुःसंस्था-नचतुःसंहनन-तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्योद्योताप्रशस्तविहायोगतिदुर्भगदुःस्वरानादेयनीचैर्गोत्रसंज्ञिकानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामनन्तानुबन्धिकषायोदयकृतासंयमप्रधानास्रवाणामेकेन्द्रियादयः सासादन-सम्यग्दृष्ट्यन्ता बन्धकाः। तदभावे तासामुत्तरत्र संवरः। अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभ-मनुष्यायुर्मनुष्यगत्यौदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गवज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम्नां दशानां प्रकृतीनामप्रत्याख्यानकषायोदयकृतासंयमहेतुकानामेकेन्द्रियादयोऽसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्ता बन्धकाः। तदभावादूर्ध्वं तासां संवरः। सम्यङ्मिथ्यात्वगुणेनायुर्न बध्यते प्रत्याख्यानावरणक्रोध-मानमायालोभानां चतसृणां प्रकृतीनां प्रत्याख्यानकषायोदयकारणासंयमास्रवाणामेकेन्द्रियप्रभृतयः संयतासंयतावसाना बन्धकाः। तदभावादुपरिष्टात्तासां संवरः। प्रमादोपनीतस्य तदभावे निरोधः। प्रमादेनोपनीतस्य कर्मणः प्रमत्तसंयतादूर्ध्वं तदभावान्निरोधः प्रत्येतव्यः। किं पुनस्तद्? असद्वेद्यारतिशोकास्थिराशुभा-यशःकीर्तिविकल्पं। देवायुर्बन्धारम्भस्य प्रमाद एव हेतुरप्रमादोऽपि तत्प्रत्यासन्नस्तदूर्ध्वं तस्य संवरः। कषाय एवास्रवो यस्य कर्मणो न प्रमादादिस्तस्य तन्निरोधे निरासोऽवसेयः। स च कषायः प्रमादादिविरहितस्तीव्रमध्यमजघन्यभावेन त्रिषु गुणस्थानेषु व्यवस्थितः। तत्रापूर्वकरणस्यादौ संख्येयभागे द्वे कर्मप्रकृती निद्राप्रचले बध्येते। तत ऊर्ध्वं संख्येयभागे त्रिंशत्प्रकृतयो देवगतिपञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरसमचतुरस्रसंस्थानवैक्रियिकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गवर्णगन्ध-रसस्पर्शदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यागुरुलघूपघातोच्छ्वासप्रशस्तविहयोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिर-शुभसुभगसुस्वरादेयनिर्माणतीर्थकराख्या बध्यन्ते। तस्यैव चरमसमये चतस्रः प्रकृतयो हास्यरतिभय-जुगुत्सासंज्ञा बन्धमुपयांति। ता एतास्तीव्रकषायास्रवास्तदभावान्निर्द्दिष्टाद्भागादूर्ध्वं संव्रियन्ते। अनिवृत्ति-बादरसाम्परायस्यादिसमयादारभ्य संख्येयेषु भागेषु पुंवेदक्रोधसञ्जलनौ बध्येते। तत ऊर्ध्वं शेषेषु

---

अपूर्वकरणगुणस्थानमादिं कृत्वा क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्तेषु गुणस्थानेषु उत्तरोत्तरेषु जीवस्योत्कृष्ट-परिणामविशुद्धिर्वेदितव्या। निकृष्टत्वेन मिथ्यात्वगुणस्थानस्य कालोऽन्तर्मुहूर्तो भवति। अभव्यापेक्षया मिथ्यात्वगुणस्थानस्य काल उत्कृष्टोऽनाद्यनन्तः। भव्यस्य मिथ्यात्वगुणस्थाने कालो अनादिसान्तः। सासादनस्य काल उपशमसम्यक्त्वकालस्य अन्तर्मुहूर्त्तलक्षणस्य प्रान्ते निकृष्ट एकसमय उत्कृष्ट आवलिषट्कम्। मिश्रस्य कालोऽन्तर्मुहूर्त्तः। असंयतसम्यग्दृष्टेर्निकृष्टः कालोऽन्तर्मुहूर्त्तः। उत्कृष्टः कालः षट्षष्टिसागरोपमाणि। देशसंयतस्य कालो निकृष्टो मुहूर्तमात्रः। उत्कृष्टस्तु पूर्वकोटी किंचिदूनः। प्रमत्तसंयतादिक्षीणकषायान्तानां उत्कृष्टः कालोऽन्तर्मुहूर्त्तः। सयोगिजिनकालः पूर्वकोटी किंचिदूना। जघन्यकालस्तु परमागमाद्वेदितव्यः। उपशमकश्रेणौ सर्वत्रोत्कृष्टः कालोन्तर्मुहूर्त्तमात्रं।

संख्येयेषु भागेषु मानमायासञ्ज्वलनौ बन्धमुपगच्छतः। तस्यैव चरमसमये लोभसंज्वलनो बन्धमेति। ता एताः प्रकृतयो मध्यमकषायास्रवास्तदभावे निर्दिष्टस्य भागस्योपरिष्टात्संवरमाप्नुवन्ति। पञ्चानां ज्ञानावरणानां, चतुर्णां दर्शनावरणानां, यशः कीतेरुच्चैर्गोत्रस्य पंचानामन्तरायाणां च मन्दकषायास्रवाणां सूक्ष्मसाम्परायो बन्धकः। तदभावादुत्तरत्र तेषां संवरः। केवलेनैव योगेन सद्वेद्यस्योपशान्तकषाय-क्षीणकषायसयोगानां बन्धो भवति। तदभावादयोगकेवलिनस्तस्य संवरो भवति।

**उक्तः संवरस्तद्भेद-प्रतिपादनार्थमाह—**

**स [२]गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥२॥**

यतः संसारकारणादात्मनो गोपनं भवति सा गुप्तिः। प्राणिपीडापरिहारार्थं सम्यगयनं समितिः। इष्टे स्थाने धत्ते इति धर्मः। शरीरादीनां स्वभावानुचिन्तनमनुप्रेक्षा। क्षुदादिवेदनोत्पत्तौ कर्मनिर्जरार्थं सहनं परीषहः। परीषहस्य जयः परीषहजयः। चारित्रशब्द आदिसूत्रे व्याख्यातार्थः। एतेषां गुप्त्यादीनां संवरक्रियायाः साधकतमत्वात्। करणनिर्देशः। संवरोऽधिकृतोऽपि स इति तच्छब्देन परामृश्यते गुप्त्यादिभिः साक्षात्सम्बन्धार्थः। किं प्रयोजनम्? अवप्रयोजनमवधारणार्थम्। स एष संवरो गुप्त्यादिभिरेव नान्येनोपायेनेति। तेन तीर्थाभिषेकदीक्षाशीर्षोपहारदेवताराधनादयो निवर्तिता भवन्ति। रागद्वेषमोहोपात्तस्य कर्मणोऽन्यथा निवृत्त्यभावात्।

**संवरनिर्जराहेतुविशेषप्रतिपादनार्थमाह—**

**तपसा निर्जरा च ॥३॥**

तपो धर्मेऽन्तर्भूतमपि पृथगुच्यते उभयसाधनत्वख्यापनार्थं संवरं प्रति प्राधान्यप्रतिपादनार्थं च। [३]ननु च तपोऽभ्युदयाङ्गमिष्टं देवेन्द्रादिस्थानप्राप्तिहेतुत्वाभ्युपगमात्, कथं निर्जराङ्गं स्यादिति? नैष दोषः एकस्यानेककार्यदर्शनादग्निवत्। यथाऽग्निरेकोऽपि क्लेदनभस्माङ्गारादिप्रयोजन उपलभ्यते तथा तपोऽभ्युदयकर्मक्षयहेतुरित्यत्र को विरोधः।

**संवरहेतुत्वादादावुद्दिष्टाया गुप्तेः स्वरूपप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

**सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥४॥**

योगो व्याख्यातः 'कायवाङ्मनःकर्म योग' इत्यत्र। तस्य स्वेच्छाप्रवृत्तिनिवर्तनं निग्रहः। विषयसुखाभिलाषार्थप्रवृत्तिनिषेधार्थं सम्यग्विशेषणम्। तस्मात् [४]सम्यग्विशेषणविशिष्टात् संक्लेशा-

२. गुप्त्यादीनां निरुक्तय एवम्। भवकारणान्मनोवाक्कायव्यापारादात्मनो गोपनं रक्षणं गुप्तिः। सम्यगयनं जंतुपीडापरित्यागार्थं वर्तनं प्रवृत्तिः समितिः। संसारसागरादुद्धृत्य इन्द्रनरेन्द्रचन्द्रादिवंदिते पदे आत्मानं धरतीति धर्मः। क्षुत्तृषादिवेदनोत्पत्तौ उपार्जितकर्मनिर्जरणार्थं परिसमन्तात्सहनं परीषहः। तस्य जयः परीषहजयः। ३. नन्विति—ननु तपः खलु अभ्युदयदायकमागमे प्रतिपादितं, संवरनिर्जरासाधकं कथं? तथा चोक्तं—दाणे लब्भइ भोउ पर इंदत्तणु जि तवेण। जम्मणमरणविवज्जियउ पउ लब्भइ णाणेण। साधूक्तं भवता। एकमपि तप इंद्रादिपदं ददाति संवरनिर्जरे च करोति। यथैकमपि छत्रं छायां करोति घर्मजलनिषेधनं च कुर्यात्। एकस्याप्यनेककार्यविलोकनात्। ४. सम्यगिति—सम्यक्प्रकारेण लोकसत्कारख्यातिपूजालाभाकांक्षारहितप्रकारेण योगस्य कायवाङ्मनःकर्मलक्षणस्य निरोधः सम्यग्योगनिग्रहो विषयसुखाभिलाषार्थप्रवृत्तिनिषेधः। यः सम्यग्योगनिग्रहो मनोवाक्कायव्यापारनिषेधनं सा गुप्तिरित्युच्यते। योगनिग्रहे सति आर्तरौद्रध्यानलक्षणसंक्लेशप्रादुर्भावो न भवति। तस्मिंश्च सति कर्म नास्रवति। तेन गुप्तिः संवरप्रसिद्ध्यर्थं वेदितव्या।

प्रादुर्भावपरात्कायादियोगनिरोधे सति तन्निमित्तं कर्म नास्रवतीति संवरप्रसिद्धिरवगन्तव्या। सा त्रितयी कायगुप्तिर्वाग्गुप्तिर्मनोगुप्तिरिति।

**तत्राशक्तस्य मुनेर्निरवद्यप्रवृत्तिख्यापनार्थमाह—**

## ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥

सम्यगित्यनुवर्तते तेनेर्यादयो विशेष्यन्ते। [५]सम्यगीर्या, [६]सम्यग्भाषा, सम्यगेषणा[७] सम्यगादाननिक्षेपौ[८], [९]सम्यगुत्सर्ग इति। ता एताः पंच समितयो विदितजीवस्थानादिविधेर्मुनेः प्राणिपीडापरिहाराभ्युपाया वेदितव्याः। तथा प्रवर्तमानस्यासंयमपरिणामनिमित्तकर्मास्रवात्संवरो भवति।

**तृतीयस्य संवरहेतोर्धर्मस्य भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥

किमर्थमिदमुच्यते? आद्यं प्रवृत्तिनिग्रहार्थम्, तत्रासमर्थानां प्रवृत्त्युपायप्रदर्शनार्थं द्वितीयम्। इह पुनर्दशविधधर्माख्यानं समितिषु प्रवर्तमानस्य प्रमादपरिहारार्थं वेदितव्यम्। शरीरस्थितिहेतुमार्गणार्थं परकुलान्युपगच्छतो भिक्षोर्दुष्टजनाक्रोशप्रहसनावज्ञाताडनशरीरव्यापादनादीनां सन्निधाने कालुष्यानुत्पत्तिः क्षमा। जात्यादिमदावेशादभिमानाभावो मार्दवं माननिर्हरणम्। योगस्यावक्रता आर्जवम्। [१०]प्रकर्षप्राप्तलोभान्निवृत्तिः शौचम्। [११]सत्सु प्रशस्तेषु जनेषु साधुवचनं सत्यमित्युच्यते। ननु चैतद्भाषासमितावन्तर्भवति? नैष दोषः—समितौ प्रवर्तमानो मुनिः साधुष्वसाधुषु च भाषाव्यवहारं कुर्वन् हितं मितं च ब्रूयात् अन्यथा रागादनर्थदण्डदोषः स्यादिति वाक्समितिरित्यर्थः। इह पुनः सन्तः प्रव्रजितास्तद्भक्ता वा ये तेषु साधु सत्यं [१२]ज्ञानचारित्रलक्षणादिषु बह्वपि कर्तव्यमित्यनुज्ञायते, धर्मोपबृंहणार्थं।

---

५. ईर्येति—तीर्थयात्राधर्मकार्याद्यर्थं गच्छतो मुनेश्चतुःकरमात्रमार्गनिरीक्षणपूर्वकं सावधानदृष्टेरव्यग्रचेतसः सम्यग्विज्ञातजीवस्थानस्वरूपस्य सम्यगीर्यासमितिर्भवति। कानि तानि जीवस्थानानीति? तत्स्वरूपनिरूपणार्थमियं गाथा – बादरसुहुमेगिंदिय बितिचउरिंदिय असण्णिसण्णीय। पज्जत्तापज्जत्ता भूदा य चउद्दसा होंति। ६. सम्यग्भाषासमितिरुच्यते—हितं परिमितमसंदिग्धं सत्यमनसूयं प्रियंकर्णामृतप्रायमशंकाकरं कषायानुत्पादकं सभास्थानयोग्यं मृदु धर्माविरोधि देशकालाद्युचितं हास्यादिरहितं वचोऽभिधानं सम्यग्भाषासमितिर्भवति। ७. सम्यगेषणासमितिः—शरीरदर्शनमात्रेण प्राप्तमयाचितममृतसंज्ञं उद्गमोत्पादनादिदोषरहितमजिनहिंग्वादिभिरस्पृष्टं परार्थनिष्पन्नं काले भोजनग्रहणं सम्यगेषणासमितिर्भवति। ८. सम्यगादाननिक्षेपसमितिः – धर्मोपकरणग्रहणे सम्यगवलोक्य मयूरबर्हेण प्रतिलिख्य तदभावे वस्त्रादिना प्रतिलिख्य स्वीकरणं विसर्जनं च सम्यगादाननिक्षेपसमितिः। एतेन गोपुच्छमेषरोमादिभिः प्रतिलेखनं मुनेः प्रतिषिद्धं भवति। ९. सम्यगुत्सर्गसमितिरुच्यते—प्राणिनामविरोधेनांगमलत्यजनं शरीरस्य च स्थापनं दिगंबरस्योत्सर्गसमितिः। एते पंच प्राणिपीडापरिहारस्याभ्युपाया अवसातव्याः। १०. प्रकर्षेति—उत्कृष्टतासमागतगाद्ध्र्यपरिहरणं शौचमुच्यते। मनोगुप्तौ मानसः परिस्पंदः सर्वोऽपि निषिध्यते। तन्निषेधे योऽसमर्थस्तस्य परकीयवस्तुषु अनिष्टप्रणिधानपरिहरणं शौचमिति मनोगुप्तिशौचयोर्महान्भेदः। भगवत्याराधनायां तु शौचस्य लाघवमित्यपरसंज्ञा वर्तते। ११. सत्स्विति—सत्सु दिंगबरेषु महामुनिषु तदुपासकेषु च श्रेष्ठेषु लोकेषु साधु यद्वचनं तत्सत्यमभिलप्यते। व्रतादित्रयविषयस्य सत्यस्य लक्षणविभागार्थमाह—''असत्यविरतौ सत्यं सत्स्वसत्स्वपि यन्मतम्। वाक्समित्यां मितं तद्धि धर्मे सत्स्वेव तद्बहु।'' सत्स्वसत्सु च बह्वप्युच्यमानं व्रतसत्यं। सत्स्वसत्सु च मितमुच्यमानं समितिसत्यम्। सत्स्वेव प्रभूतमल्पं चोच्यमानं धर्मसत्यमित्यर्थः। इति सत्यप्ररूपणम्। १२. उद्देशपरीक्षयोर्ग्रहणमादिशब्देन।

समितिषु[१३] वर्तमानस्य [१४]प्राणीन्द्रियपरिहारस्संयमः। कर्मक्षयार्थं तप्यत इति तपः। तदुत्तरत्र वक्ष्यमाणद्वादशविकल्पमवसेयम्। संयतस्य योग्यं ज्ञानादिदानं त्यागः। उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्कारापोहाय ममेदमित्यभिसन्धिनिवृत्तिराकिञ्चन्यम्[१५]। नास्ति किंचनास्याकिंचनः तस्य भावः कर्म वा आकिंचन्यम्। अनुभूताङ्गनास्मरणकथाश्रवणस्त्रीसंसक्तशयनासनादिवर्जनाद्ब्रह्मचर्यंपरिपूर्णमवतिष्ठते। स्वतन्त्रवृत्ति-निवृत्त्यर्थो वा गुरुकुलावासो ब्रह्मचर्यम्। दृष्टप्रयोजनपरिवर्जनार्थमुत्तमविशेषणम्। तान्येवं भाव्यमानानि धर्मव्यपदेशभाञ्जि स्वगुणप्रतिपक्षदोषसद्भावभावनाप्रणिहितानि संवरकारणानि भवन्ति।

**आह क्रोधाद्यनुत्पत्तिः क्षमादिविशेषप्रत्यनीकालम्बनादित्युक्तं, तत्र कस्मात्क्षमादीनयमवलम्बते नान्यथा प्रवर्तत इत्युच्यते। यस्मात्तप्तायःपिण्डवत्क्षमादिपरिणतेनात्महितैषिणा कर्तव्याः—**

## अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्त्रवसंवरनिर्जरालोक बोधिदुर्लभधर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥७॥

इमानि शरीरेन्द्रियविषयोपभोगपरिभोगद्रव्याणि समुदायरूपाणि, जलबुद्बुदवदनस्थितस्वभावानि, गर्भादिष्ववस्थाविशेषेषु सदोपलभ्यमानसंयोगविपर्ययाणि, मोहादत्राज्ञो नित्यतां मन्यते। न किञ्चित्संसारे समुदितं ध्रुवमस्ति आत्मनो ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावादन्यदिति चिन्तनमनित्यतानुप्रेक्षा। एवं ह्यस्य चिन्तयतस्तेष्वभिष्वङ्गाभावाद् भुक्तोज्झितगन्धमाल्यादिष्विव वियोगकालेऽपि विनिपातो नोत्पद्यते ॥९॥

यथा—मृगशावस्यैकान्ते बलवता क्षुधितेनामिषैषिणा व्याघ्रेणाभिभूतस्य न किञ्चिच्छरणमस्ति—तथा जन्मजरामृत्युव्याधिप्रभृतिव्यसनमध्ये परिभ्रमतो जन्तोः शरणं न विद्यते। परिपुष्टमपि शरीरं भोजनं प्रति सहायीभवति न व्यसनोपनिपाते। यत्नेन संचितोऽर्थोऽपि न भवान्तरमनुगच्छति। संविभक्तसुखदुःखाः सुहृदोऽपि न मरणकाले परित्रायन्ते। बांधवाः समुदिताश्च रुजा परीतं न परिपालयन्ति। अस्ति चेत्सुचरितो धर्मो व्यसनमहार्णवे तारणोपायो भवति। मृत्युना नीयमानस्य सहस्रनयनादयोऽपि न शरणम्। तस्माद्भवव्यसनसङ्कटे धर्म एव शरणं सुहृदर्थोऽप्यनपायी, नान्यत्किंचिच्छरणमिति भावना अशरणानुप्रेक्षा। एवं ह्यस्याध्यवस्यतो नित्यमशरणोऽस्मीति भृशमुद्विग्नस्य सांसारिकेषु भावेषु ममत्वनिरासो भवति। भगवदर्हत्सर्वज्ञप्रणीत एव मार्गे प्रतिपन्नो भवति ॥२॥

कर्मविपाकवशादात्मनो भवान्तरावाप्तिः संसारः। स पुरस्तात्पंचविधपरिवर्तनरूपेण व्याख्यातः। तस्मिन्ननेकयोनिकुलकोटिबहुशतसहस्रसंकटे संसारे परिभ्रमन् जीवः कर्मयन्त्रानुप्रेरितः पिता भूत्वा

---

**१३.** स संयमो द्विविधोऽपहृतसंज्ञक उपेक्षासंज्ञकश्च। तत्रापहृतसंज्ञकस्त्रिविधस्तद्यथाप्रासुकवसतिभोजनादि-मात्रबाह्यसाधनस्य स्वाधीनज्ञानादिकस्य मुनेर्जन्तूपनिपाते आत्मानं ततोऽपहृत्य दूरीकृत्य जीवान्पालयत उत्कृष्टः संयमो भवति। मृदुना मयूरपिच्छेन प्रमृज्य जंतून्परिहरतो मध्यमः संयमः। उपकरणान्तरेण सुपिच्छालाभे मृदुवस्त्रादिना प्रमृज्य परिहरतो निकृष्टः संयम इत्युपहृतसंयमस्त्रिविधः। उपेक्षासंयम उच्यते – देशकालविधानज्ञस्य परेषामनुपरोधेन व्युत्सृष्टकायस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य मुने रागद्वेषयोरनभिषंग उपेक्षासंयमः। **१४.** प्राणव्यपरोपणषडिन्द्रियविषयपरिहरणं संयमः। **१५.** आकिंचन्यमिति तदाकिंचन्यं चतुर्विधं। स्वस्य परस्य च जीवितलोभपरिहरणं, स्वस्य परस्य चारोग्यलोभपरिहरणं स्वस्य परस्य चेन्द्रियलोभपरित्यजनं, स्वस्य परस्य चोपभोगलोभोज्झनं चेति।

भ्राता पुत्रः पौत्रश्च भवति। माता भूत्वा भगिनी भार्या दुहिता च भवति। स्वामी भूत्वा दासो भवति। दासो भूत्वा स्वाम्यपि भवति नट इव रङ्गे। अथवा किं बहुना स्वयमात्मनः पुत्रो भवतीत्येवमादि-संसारस्वभावचिन्तनं संसारानुप्रेक्षा एवं ह्यस्य भावयतः संसारदुःखभयादुद्विग्नस्य ततो निर्वेदो भवति। निर्विण्णश्च संसारप्रहाणाय प्रतियतते ॥३॥

जन्मजरामरणावृत्तिमहादुःखानुभवनं प्रति एक एवाहं न कश्चिन्मे स्वः परो वा विद्यते। एक एव जायेऽहम्। एक एव म्रिये। न मे कश्चित् स्वजनः परजनो वा व्याधिजरामरणादीनि दुःखान्यपहरति। बन्धुमित्राणि श्मशानं नातिवर्तन्ते। धर्म एव मे सहायः सदा अनपायीति चिन्तनमेकत्वानुप्रेक्षा। एवं ह्यस्य भावयतः स्वजनेषु प्रीत्यनुबन्धो न भवति। परजनेषु च द्वेषानुबन्धो नोपजायते। ततो निःसङ्गतामभ्युपगतो मोक्षायैव घटते ॥४॥

**शरीरादन्यत्वचिन्तनमन्यत्वानुप्रेक्षा।** तद्यथा बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यपि लक्षणभेदादन्योऽहमैन्द्रियकं शरीरमनिन्द्रियोऽहमज्ञं शरीरं, ज्ञोऽहमनित्यं शरीरं, नित्योऽहमाद्यन्तवच्छरीरमनाद्यन्तोऽहं, बहूनि मे शरीरशत-सहस्राण्यतीतानि संसारे परिभ्रमतः। स एवाहमन्यस्तेभ्य इत्येवं शरीरादप्यन्यत्वं मे किमङ्ग ? पुनर्बाह्येभ्यः-परिग्रहेभ्य इत्येवं ह्यस्य मनःसमादधानस्य शरीरादिषु स्पृहा नोत्पद्यते। ततस्तत्त्वज्ञानभावनापूर्वके वैराग्यप्रकर्षे सति आत्यन्तिकस्य मोक्षसुखस्यावाप्तिर्भवति ॥५॥

शरीरमिदमत्यन्ताशुचियोनि शुक्रशोणितसंवर्धितमवस्करवदशुचिभाजनं त्वङ्मात्रप्रच्छादितमति-पूतिरसनिष्यन्दिस्रोतोबिलमङ्गारवदात्मभावमाश्रितमप्याश्वेवापादयति। स्नानानुलेपनधूपप्रघर्षवा-समाल्यादिभिरपि न शक्यमशुचित्वमपहर्तुमस्य। सम्यग्दर्शनादि पुनर्भाव्यमानं जीवस्यात्यन्तिकीं शुद्धिमा-विर्भावयतीति तत्त्वतो भावनमशुचित्वानुप्रेक्षा। एवं ह्यस्य संस्मरतः शरीरनिर्वेदो भवति। निर्विण्णश्च जन्मोदधितरणाय चित्तं समाधत्ते ॥६॥

आस्रवसंवरनिर्जराः पूर्वोक्ता अपि इहोपन्यस्यन्ते तद्गतगुणदोषभावनार्थं। तद्यथा - आस्रवा इहामुत्रापाययुक्ता महानदीस्रोतोवेगतीक्ष्णा इन्द्रियकषायाव्रतादयः। तत्रेन्द्रियाणि तावत्स्पर्शनादीनि वनगज-वायसपन्नगपतङ्गहरिणादीन् व्यसनार्णवमवगाहयन्ति। तथा कषायादयोऽपीह वधबन्धपरिक्लेशादीन् जनयन्ति। अमुत्र च नानागतिषु बहुविधदुःखप्रज्वलितासु भ्रमयन्तीत्येवमास्रवदोषानुचिंतनमास्रवानुप्रेक्षा। एवं ह्यस्य चिन्तयतः क्षमादिषु श्रेयस्त्वबुद्धिर्न प्रच्यवते। सर्व एते आस्रवदोषाः कूर्मवत्संवृतात्मनो न भवन्ति ॥७॥

यथा महार्णवे नावो विवरपिधानेऽसति क्रमात्स्रुतजलाभिप्लवे सति तदाश्रयाणां विनाशोऽवश्यंभावी, छिद्रपिधाने च निरुपद्रवमभिलषितदेशान्तरप्रापणं, तथा कर्मागमद्वारसंवरणे सति नास्ति श्रेयःप्रतिबन्ध इति संवरगुणानुचिंतनं संवरानुप्रेक्षा। एवं ह्यस्य चिंतयतः संवरे नित्योद्युक्तता भवति। ततश्च निःश्रेयसपदप्राप्तिरिति ॥८॥

निर्जरा वेदनाविपाकजा इत्युक्तम्। सा द्वेधा–अबुद्धिपूर्वा कुशलमूला चेति। तत्र नरकादिषु गतिषु

कर्मफलविपाकजा अबुद्धिपूर्वा सा अकुशलानुबन्धा। परीषहजये कृते कुशलमूला सा शुभानुबन्धा निरनुबन्धा चेति। इत्येवं निर्जराया गुणदोषभावनं निर्जरानुप्रेक्षा। एवं ह्यस्यानुस्मरतः कर्मनिर्जरायै प्रवृत्तिर्भवति ॥९॥

लोकसंस्थानादिविधिर्व्याख्यातः। समन्तादनन्तस्यालोकाकाशस्य बहुमध्यदेशभाविनो लोकस्य संस्थानादिविधिर्व्याख्यातः। तत्स्वभावानुचितनं लोकानुप्रेक्षा। एवं ह्यस्याध्यवस्यतस्तत्त्वज्ञानविशुद्धिर्भवति ॥१०॥

एकस्मिन्निगोतशरीरे जीवाः सिद्धानामनन्तगुणाः एवं सर्वलोको निरंतरं निचितः स्थावरैरतस्तत्र त्रसता वालुकासमुद्रे पतिता वज्रसिकताकणिकेव दुर्लभा। तत्र च विकलेन्द्रियाणां भूयिष्ठत्वात्पञ्चेन्द्रियता गुणेषु कृतज्ञतेव कृच्छ्रलभ्या। तत्र च तिर्यक्षु पशुमृगपक्षिसरीसृपादिषु बहुषु सत्सु मनुष्यभावश्चतुष्पथे रत्नराशिरिव दुरासदः। तत्प्रच्यवे च पुनस्तदुपपत्तिर्दग्धतरुपुद्गलतद्भावोपपत्तिवद्दुर्लभा। तल्लाभे च देशकुलेन्द्रियसम्पन्नीरोगत्वान्युत्तरोत्तरतोऽतिदुर्लभानि। सर्वेष्वपि तेषु लब्धेषु सद्धर्मप्रतिलम्भो यदि न स्याद्व्यर्थं जन्म, वदनमिव दृष्टिविकलं। तमेवं कृच्छ्रलभ्यं धर्ममवाप्य विषयसुखे रञ्जनं भस्मार्थं चन्दनदहनमिव विफलम्। विरक्तविषयसुखस्य तु तपोभावनाधर्मप्रभावनासुखमरणादिलक्षणः समाधिर्दुरवापः। तस्मिन् सति बोधिलाभः फलवान् भवतीति चिन्तनं बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा। एवं ह्यस्य भावयतो बोधिं प्राप्य प्रमादो न कदाचिदपि भवति ॥११॥

अयं जिनोपदिष्टो धर्मोऽहिंसालक्षणः, सत्याधिष्ठितो, विनयमूलः, क्षमाबलो, ब्रह्मचर्यगुप्त, उपशमप्रधानो, नियतिलक्षणो, निष्परिग्रहतालम्बनः। तस्यालाभादनादिसंसारे जीवाः परिभ्रमन्ति दुष्कर्मविपाकजं दुःखमनुभवन्तः। अस्य पुनः प्रतिलम्भे विविधाभ्युदय-प्राप्तिपूर्विका निःश्रेयसोपलब्धिर्नियतेति चिन्तनं धर्मस्वाख्यातत्वानुप्रेक्षा। एवं ह्यस्य चिन्तयतो धर्मानुरागात्सदा प्रतियत्नपरो भवति ॥१२॥

एवमनित्यत्वाद्यनुप्रेक्षासन्निधाने उत्तमक्षमादिधारणान्महान्संवरो भवति। मध्ये अनुप्रेक्षावचनमुभयार्थम्। अनुप्रेक्षा हि भावयन्नुत्तमक्षमादींश्च प्रतिपालयति। परीषहांश्च जेतुमुत्सहते।

**के पुनस्ते परीषहाः किमर्थं वा सह्यन्त इतीदमाह—**

## मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिसोढव्याः[१६] परीषहाः ॥८॥

संवरस्य प्रकृतत्वात्तेन मार्गो विशिष्यते। संवरमार्ग इति। तदच्यवनार्थं निर्जरार्थं च परिषोढव्याः परीषहाः। क्षुत्पिपासादिसहनम्। जिनोपदिष्टान्मार्गादप्रच्यवमानास्तन्मार्गपरिक्रमणपरिचयेन कर्मागमद्वारं संवृण्वन्त औपक्रमिकं कर्मफलमनुभवन्तः क्रमेण निर्जीर्णकर्माणो मोक्षमाप्नुवन्ति।

**तत्स्वरूपसंख्यासम्प्रतिपत्त्यर्थमाह—**

---

१६. 'सोढः' जैनेन्द्र ५१४/८१ इतिषाच प्रतिवाध।

## क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोग-तृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥९॥

क्षुदादयो वेदनाविशेषा द्वाविंशतिः। एतेषां सहनं मोक्षार्थिना कर्तव्यम्। तद्यथा – भिक्षोर्निरवद्याहार-गवेषिणस्तदलाभे ईषल्लाभे च अनिवृत्तवेदनस्याकालेऽदेशे च भिक्षां प्रति निवृत्तेच्छस्यावश्यकपरिहाणिं मनागप्यसहमानस्य स्वाध्यायध्यानभावनापरस्य बहुकृत्वः स्वकृतपरकृतानशनावमौदर्यस्य नीरसाहारस्य तप्तभ्राष्ट्रपतितजलबिन्दुकतिपयवत्सहसा परिशुष्कपानस्योदीर्णक्षुद्वेदनस्यापि सतो भिक्षालाभाद-लाभमधिकगुणं मन्यमानस्य क्षुद्बाधां प्रत्यचिन्तनं क्षुद्विजयः ॥१॥

जलस्नानावगाहनपरिषेकपरित्यागिनः, पतत्रिवदनियतासनावसथस्यातिलवणस्निग्धरूक्ष-विरुद्धाहारग्रैष्मातपपित्तज्वरानशनादिभिरुदीर्णां शरीरेन्द्रियोन्माथिनीं पिपासां प्रत्यनाद्रियमाणप्रतीकारस्य पिपासानलशिखां धृतिनवमृद्घटपूरितशीतसुगन्धिसमाधिवारिणा प्रशमयतः पिपासासहनं प्रशस्यते ॥२॥

परित्यक्तप्रच्छादनस्य पक्षिवदनवधारितालयस्य वृक्षमूलपथशिलातलादिषु हिमानीपतन-शीतलानिलसम्पाते तत्प्रतीकारप्राप्तिं प्रति निवृत्तेच्छस्य पूर्वानुभूतशीतप्रतीकारहेतुवस्तुनामस्मरतो ज्ञानभावनागर्भागारे वसतः शीतवेदनासहनं परिकीर्त्यते ॥३॥

निवाते निर्जले ग्रीष्मरविकिरणपरिशुष्कपतितपर्णव्यपेतच्छायातरुण्यटव्यन्तरे यदृच्छ-योपनिपतितस्यानशनाद्यभ्यन्तरसाधनोत्पादितदाहस्य, दवाग्निदाहपरुषवातातपजनितगलतालुशोषस्य तत्प्रतीकारहेतून् बहूननुभूतानचिन्तयतः, प्राणिपीडापरिहारावहितचेतसश्चारित्ररक्षणमुष्णसहनमित्युपवर्ण्यते ॥४॥

दंशमशकग्रहणमुपलक्षणं। यथा काकेभ्यो रक्ष्यतां सर्पिरिति उपघातोपलक्षणं काकग्रहणं, तेन दंशमशकमक्षिकापिशुकपुत्तिकामत्कुणकीटपिपीलिकावृश्चिकादयो गृह्यन्ते। तत्कृतां बाधामप्रतीकारां सहमानस्य, तेषां बाधां त्रिधाऽप्यकुर्वाणस्य निर्वाणप्राप्तिमात्रसंकल्पप्रावरणस्य तद्वेदनासहनं दंशमशक-परीषहक्षमेत्युच्यते ॥५॥

जातरूपवन्निष्कलङ्कजातरूपधारणमशक्यप्रार्थनीयं याचनरक्षणहिंसनादिदोषविनिर्मुक्तं निष्परिग्र-हत्वान्निर्वाणप्राप्तिं प्रत्येकं साधनमनन्यबाधनं नाग्न्यं बिभ्रतो, मनोविक्रियाविप्लुतिविरहात् स्त्रीरूपाण्य-त्यन्ताशुचिकुणपरूपेण भावयतो रात्रिन्दिवं ब्रह्मचर्यमखण्डमातिष्ठमानस्याचेलव्रतधारणमनवद्यमवगन्त-व्यम् ॥६॥

संयतस्येन्द्रियेष्टविषयसम्बधं प्रतिनिरुत्सुकस्य, गीतनृत्यवादित्रादिविरहितेषु शून्यागारदेवकुलतरु-कोटरशिलागुहादिषु स्वाध्यायध्यानभावनारतिमास्कन्दतो, दृष्टश्रुतानुभूतरतिस्मरणतत्कथाश्रवणकाम-शरप्रवेशनिर्विवरहृदयस्य प्राणिषु सदा सदयस्यारतिपरीषहजयोऽवसेयः ॥७॥

एकान्तेष्वारामभवनादिप्रदेशेषु नवयौवनमदविभ्रममदिरापानप्रमत्तासु प्रमदासु बाधमानासु, कूर्मवत्संहतेन्द्रियहृदयविकारस्य ललितस्मितमृदुकथितसविलासवीक्षणप्रहसनमदमन्थरगमनमन्मथशर-

व्यापारविफलीकरणस्य स्त्रीबाधापरीषहसहनमवगन्तव्यम् ॥८॥

दीर्घकालमुषितगुरुकुलब्रह्मचर्यस्याधिगतबन्धमोक्षपदार्थतत्त्वस्य, संयमायतनभुक्तिहेतोर्देशान्तरातिथेर्गुरुणाऽभ्यनुज्ञातस्य, पवनवन्निःसंगतामंगीकुर्वतो, बहुशोऽनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागादिबाधापरिक्रांतकायस्य, देशकालप्रमाणापेतमध्वगमनं संयमविरोधि परिहरतो, निराकृतपादावरणस्य, परुषशर्कराकण्टकादिव्यथनजातचरणखेदस्यापि सतः पूर्वोचितयानवाहनादिगमनमस्मरतो यथाकालमावश्यकापरिहाणिमास्कन्दतश्चर्यापरीषहसहनमवसेयम् ॥९॥

श्मशानोद्यानशून्यायतनगिरिगुहागह्वरादिष्वनभ्यसापूर्वेषु निवसत, आदित्यस्वेन्द्रियज्ञानप्रकाशपरीक्षितप्रदेशे प्रकृतनियमक्रियस्य, निषद्यां नियमितकालामास्थितवतः, सिंहव्याघ्रादिविविधभीषणध्वनिश्रवणान्निवृत्तभयस्य चतुर्विधोपसर्गसहनादप्रच्युतमोक्षमार्गस्य वीरासनोत्कुटिकाद्यासनादविचलितविग्रहस्य तत्कृतबाधासहनं निषद्यापरीषहविजय इति निश्चीयते ॥१०॥

स्वाध्यायध्यानाध्वश्रमपरिखेदितस्य मौहूर्तिकीं खरविषमप्रचुरशर्कराकपालसंकटातिशीतोष्णेषु भूमिप्रदेशेषु निद्रामनुभवतो, यथाकृतैकपार्श्वदण्डायितादिशायिनः प्राणिबाधापरिहाराय पतितदारुवद् व्यपगतासुवदपरिवर्तमानस्य, ज्ञानभावनावहितचेतसोऽनुष्ठितव्यंतरादिविविधोपसर्गादप्यचलितविग्रहस्यानियमितकालां तत्कृतबाधां क्षममाणस्य शय्यापरीषहक्षमा कथ्यते ॥११॥

मिथ्यादर्शनोद्दृप्तामर्षपरुषावज्ञानिन्दासभ्यवचनानि[१७] क्रोधाग्निशिखाप्रवर्धनानि शृण्वतोपि तदर्थेष्वसमाहितचेतसः, सहसा तत्प्रतीकारं कर्तुमपि शक्नुवतः, पापकर्मविपाकमभिचिन्तयतस्तान्याकर्ण्य तपश्चरणभावनापरस्य कषायविषलवमात्रस्याप्यनवकाशमात्यहृदयं कुर्वत आक्रोशपरिषहसहनमवधार्यते ॥१२॥

निशितविशसनमुशलमुद्गरादिप्रहरणताडनपीडनादिभिर्व्यापाद्यमानशरीरस्य, व्यापादकेषु मनागपि मनोविकारमकुर्वतो मम पुराकृतदुष्कर्मफलमिदमिमे वराकाः किं कुर्वन्ति, शरीरमिदं जलबुद्बुदवद्विशरणस्वभावं व्यसनकारणमेतैर्बाबाध्यते, संज्ञानदर्शनचारित्राणि मम न केनचिदुपहन्यन्ते इति चिन्तयतो[१८] वासीतक्षणचन्दनानुलेपनसमदर्शिनो वधपरीषहक्षमा मन्यते ॥१३॥

बाह्याभ्यन्तरतपोऽनुष्ठानपरस्य, तद्भावनावशेन निस्सारीकृतमूर्तेः पटुतपनतापनिष्पीतसारतरोरिव विरहितच्छायस्य, त्वगस्थिशिराजालमात्रतनुयन्त्रस्य प्राणवियोगे सत्यप्याहारवसतिभेषजादीनि दीनाभिधानमुखवैवर्ण्याङ्गसञ्ज्ञादिभिरयाचमानस्य भिक्षाकालेऽपि विद्युदुद्योतवत् दुरुपलक्ष्यमूर्तेर्याचनापरीषहसहनमवसीयते ॥१४॥

वायुवदसङ्गादनेकदेशचारिणोऽभ्युपगतैककालसम्भोजनस्य वाचंयमस्य तत्समितस्य वा

---

**१७.** परुषवचनावज्ञावचननिन्दावचनासभ्यवचनानीति सम्बन्धः। **१८.** तदुक्तम् – अज्ञानभावादशुभाशयाद्वा। करोति चेत्कोऽपि नरः खलत्वम्। तथाऽपि सद्भिः शुभमेव चिन्त्यं। न मथ्यमानेऽप्यमृते विषं हि। १॥ अन्यच्च–आकृष्टोऽहं हतो नैव हतो वा न द्विधा कृतः। मारितो न हतो धर्मो मदीयोऽनेन बन्धुना ॥२॥

सकृत्स्वतनुदर्शनमात्रतन्त्रस्य पाणिपुटमात्रपात्रस्य बहुषु दिवसेषु बहुषु च गृहेषु भिक्षामनवाप्याप्य-संक्लिष्टचेतसो दातृविशेषपरीक्षानिरुत्सुकस्य लाभादप्यलाभो मे परमं तप इति सन्तुष्टस्यालाभ-विजयोऽवसेयः ॥१५॥

सर्वाशुचिनिधानमिदमनित्यमपरित्राणमिति शरीरे [१९]निःसङ्कल्पत्वाद्विगतसंस्कारस्य गुणरत्नभाण्ड-सञ्चयप्रवर्धनसंरक्षणसन्धारणकारणत्वादभ्युपगतस्थितिविधानस्याक्षम्रक्षणवद्व्रणानुलेपनवद्वा बहूपकार-माहारमभ्युपगच्छतो विरुद्धाहारपानसेवनवैषम्यजनितवातादिविकाररोगस्य युगपदनेकशतसंख्याव्याधि-प्रकोपे सत्यपि तद्वशवर्तितां विजहतो, जल्लौषधिप्राप्त्याद्यनेकतपोविशेषर्द्धियोगे सत्यपि शरीरनिस्पृहत्वा-त्तत्प्रतिकारानपेक्षिणो रोगपरीषहसहनमवगन्तव्यम् ॥१६॥

तृणग्रहणमुपलक्षणं कस्यचिद् व्यधनदुःखकारणस्य। तेन शुष्कतृणपरुषशर्कराकण्टकनिशित-मृत्तिकाशूलादिव्यधनकृतपादवेदनाप्राप्तौ सत्यां तत्राप्रणिहितचेतसश्चर्याशय्यानिषद्यासु प्राणिपीडापरिहारे नित्यमप्रमत्तचेतसस्तृणादिस्पर्शबाधापरीषहविजयो वेदितव्यः ॥१७॥

अप्कायिकजन्तुपीडापरिहारायामरणादस्नानव्रतधारिणः, पटुरविकिरणप्रतापजनितप्रस्वेदात्तपवना-नीतपांसुनिचयस्य, सिध्मकच्छूदद्रूदीर्णकण्डूयायामुत्पन्नायामपि कण्डूयनविमर्दनसङ्घट्टनविवर्जितमूर्तेः [२०]स्वगतमलोपचयपरगतमलापचययोरसंकल्पितमनसः, सज्ज्ञानचारित्रविमलसलिलप्रक्षालनेन कर्ममलपङ्कजालनिराकरणाय नित्यमुद्यतमतेर्मलपीडासहनमाख्यायते केशलुञ्चसंस्काराभ्यामुत्पन्नखेद-सहनं मलसामान्यसहनेऽन्तर्भवतीति न पृथगुक्तम् ॥१८॥

सत्कारः पूजाप्रशंसात्मकः। पुरस्कारो नाम क्रियारम्भादिष्वग्रतः करणमामन्त्रणं वा, तत्रानादरो मयि क्रियते। चिरोषितब्रह्मचर्यस्य महातपस्विनः स्वपरसमयनिर्णयज्ञस्य बहुकृत्वः परवादिविजयिनः प्रणामभक्तिसम्भ्रमासनप्रदानादीनि मे न कश्चित्करोति। मिथ्यादृष्टय एवातीवभक्तिमन्तः किञ्चिदजानन्त-मपि सर्वज्ञसम्भावनया सम्मान्य स्वसमयप्रभावनं कुर्वन्ति। व्यन्तरादयः पुरा अत्युग्रतपसां प्रत्यग्रपूजां निर्वर्तयन्तीति मिथ्या श्रुतिर्यदि न स्यादिदानीं कस्मान्मादृशां न कुर्वन्तीति दुष्प्रणिधानविरहितचित्तस्य सत्कारपुरस्कारपरीषहविजयः प्रतिज्ञायते ॥१९॥

अङ्गपूर्वप्रकीर्णकविशारदस्य शब्दन्यायाध्यात्मनिपुणस्य मम पुरस्तादितरे भास्करप्रभाभिभूत-खद्योतोद्योतवन्नितरां नावभासन्त इति विज्ञानमदनिरासः प्रज्ञापरीषहजयः प्रत्येतव्यः ॥२०॥

अज्ञोऽयं न वेत्ति पशुसम इत्येवमाद्यवक्षेपवचनं सहमानस्य परमदुश्चरतपोऽनुष्ठायिनो नित्यमप्रमत-चेतसो मेऽद्यापि विज्ञानातिशयो नोत्पद्यत इति अनभिसन्दधतोऽज्ञानपरीषहजयोऽवगन्तव्यः ॥२१॥

परमवैराग्यभावनाशुद्धहृदयस्य विदितसकलपदार्थतत्त्वस्यार्हदायतनसाधुधर्मपूजकस्य चिरन्तन-प्रव्रजितस्याद्यापि मे ज्ञानातिशयो नोत्पद्यते। महोपवासाद्यनुष्ठायिनां प्रातिहार्यविशेषाः प्रादुरभूवन्निति प्रलापमात्रमनर्थिकेयं प्रव्रज्या। विफलं व्रतपरिपालनमित्येवमसमादधानस्य दर्शनविशुद्धियोगाददर्शन-

---

१९. रागद्वेषरहितत्वात्। २०. ममाङ्गे मलं वर्तते, अस्य भिक्षोरङ्गे कीदृशं नैर्मल्यं वर्तते इति।

परीषहसहनमवसातव्यम् ॥२२॥

एवं परिषहान् सहमानस्यासंक्लिष्टचेतसो रागादिपरिणामास्रवनिरोधान्महान्संवरो भवति।

**आह किमिमे परिषहाः सर्वे संसारमहाटवीमतिक्रमितुमभ्युद्यतमभिद्रवन्ति उत कश्चित्प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते– अमी व्याख्यातलक्षणाः क्षुदादयश्चारित्रान्तराणि प्रतिभाज्याः नियमेन पुनरनयोः प्रत्येतव्याः–**

## [२१]सूक्ष्मसाम्परायच्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधालाभरोगतृणस्पर्शमलप्रज्ञाज्ञानानि। 'चतुर्दश' इति वचनादन्येषां परीषहाणामभावो वेदितव्यः। आह युक्तं तावद्वीतरागच्छद्मस्थे मोहनीयाभावाद्वक्ष्यमाणनाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याऽऽक्रोशयाचनासत्कारपुरस्कारादर्शनानि इति तत्कृताष्टपरीषहाभावाच्चतुर्दशनियमवचनम्। सूक्ष्मसाम्पराये तु मोहोदयसद्भावाच्चतुर्दशेति नियमो नोपपद्यत इति। तदयुक्तम्। सन्मात्रत्वात्। तत्र हि केवललोभसञ्ज्वलनकषायोदयः सोऽप्यतिसूक्ष्मः। ततो वीतरागच्छद्मस्थकल्पत्वाच्चतुर्दशेति नियमस्तत्रापि युज्यते। ननु मोहोदयसहायाभावान्मन्दोदयत्वाच्च क्षुदादिवेदनाभावात्तत्सहनकृतपरीषहव्यपदेशो न युक्तिमवतरति ? तन्न–किं कारणम्। शक्तिमात्रस्य विवक्षितत्वात्। सर्वार्थसिद्धिदेवस्य सप्तमपृथिवीगमनसामर्थ्यव्यपदेशवत्।

**आह यदि शरीरवत्यात्मनि परीषहसन्निधानं प्रतिज्ञायते अथ भगवति उत्पन्नकेवलज्ञाने कर्मचतुष्टयफलानुभवनवशवर्तिनि कियन्त उपनिपतन्तीत्यत्रोच्यते। तस्मिन्पुनः–**

## एकादश जिने ॥११॥

निरस्तघातिकर्मचतुष्टये जिने वेदनीयसद्भावात्तदाश्रया एकादशपरीषहाः सन्ति। ननु मोहनीयोदयसहायाभावात्क्षुदादिवेदनाभावे परीषहव्यपदेशो न युक्तः ? सत्यमेवमेतत् – [२२]वेदनाभावेऽपि द्रव्यकर्मसद्भावापेक्षया परीषहोपचारः क्रियते। निरवशेषनिरस्तज्ञानावरणे युगपत्सकलपदार्थावभासिकेवलज्ञानातिशये चिन्तानिरोधाभावेऽपि तत्फलकर्मनिर्हरणफलापेक्षया ध्यानोपचारवत्। [२३]अथवा ''एकादश जिने न सन्तीति'' वाक्यशेषः कल्पनीयः सोपस्कारत्वात्सूत्राणां। 'कल्प्यो हि वाक्यशेषो वाक्यं च वक्तर्यधीनम्' इत्युपगमात्। मोहोदयसहायीकृतक्षुदादिवेदनाभावात्।

**आह यदि सूक्ष्मसाम्परायादिषु व्यस्ताः परीषहा अथ समस्ताः क्वेति–**

---

**२१.** छद्मस्थेति–केवलज्ञानकेवलदर्शनावरणद्वयं छद्मस्थशब्देनोच्यते। छद्मनि तिष्ठतीति छद्मस्थः। छद्मस्थश्चासौ वीतरागश्च छद्मस्थवीतरागः। अन्तर्मुहूर्तेन समुत्पद्यमानकेवलज्ञानः क्षीणकषायो द्वादशे गुणस्थाने वर्तमानः साधुश्च छद्मस्थवीतराग इत्युच्यते। **२२.** वेदनाभावेपीति–तेन बुभुक्षादिलक्षणे वेदनोदयो भगवति न वर्तते कथं कवलाहारः स्यात्? तथा चोक्तमार्षे – न भुक्तिः क्षीणमोहस्य तवानंतसुखोदयात्। क्षुत्क्लेशबाधितो जन्तुः कवलाहारभुग्भवेत्। असद्वेद्योदयाद्भुक्तिं त्वयि यो योजयेदधीः। मोहानिलप्रतीकारे तस्यान्वेष्यं जरद्घृतम्। असद्वेद्यविषं घातिविध्वंसध्वस्तशक्तिकं। त्वय्यकिंचित्करं मंत्रशक्त्येवापबलं विषं। असद्वेद्योदयो घातिसहकारिव्यपायतः त्वय्यकिंचित्करो नाथ! सामान्या हि फलोदयः। पंचविंशतितमे पर्वणि श्लोकचतुष्टयमिदं महापुराणे। **२३.** अथवेति–एकेन अधिका न दश परीषहा जिने एकादश जिने इति व्याख्यानं तु प्रमेयकमलमार्तण्डे वर्तते।

### [२४]बादरसाम्पराये सर्वे ॥१२॥

साम्परायः कषायः बादरः साम्परायो यस्य स बादरसाम्पराय इति। नेदं गुणस्थानविशेषग्रहणम्। किं तर्हि? अर्थनिर्देशः। तेन प्रमत्तादीनां संयतानां ग्रहणं। तेषुहि [२५]अक्षीणकषायदोषत्वात्सर्वे सम्भवन्ति। कस्मिन् पुनश्चारित्रे सर्वेषां सम्भवः? सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसंयमेषु प्रत्येकं सर्वेषां सम्भवः।

**आह गृहीतमेतत्परीषहाणां स्थानविशेषावधारणं, इदं तु न विद्मः कस्याः प्रकृतेः कः कार्य इत्य-त्रोच्यते—**

### [२६]ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥

इदमयुक्तं वर्तते। किमत्रायुक्तं—ज्ञानावरणे सत्यज्ञानपरीषह उपपद्यते, प्रज्ञापरीषहः पुनस्तदपाये भवतीति कथं ज्ञानावरणे स्यादित्यत्रोच्यते—क्षायोपशमिकी प्रज्ञा अन्यस्मिन् ज्ञानावरणे सति मदं जनयति। न सकलावरणक्षये इति ज्ञानावरणे सतीत्युपपद्यते।

**पुनरपरयोः परीषहयोः प्रकृतिविशेषनिर्देशार्थमाह—**

### दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥१४॥

यथासंख्यमभिसम्बन्धः। दर्शनमोहे अदर्शनपरीषहः, लाभान्तराये अलाभपरीषह इति।

**आह यद्याद्ये मोहनीयभेदे एकः परीषहोऽथ द्वितीयस्मिन् कति भवन्तीत्यत्रोच्यते—**

### चारित्रमोहे [२७]नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः ॥१५॥

पुंवेदोदयादिनिमित्तत्वान्नाग्न्यादिपरीषहाणां मोहोदयनिमित्तत्वं प्रतिपद्यामहे। निषद्यापरीषहस्य कथम्? तत्रापि प्राणिपीडापरिहारार्थत्वात्। [२८]मोहोदये सति प्राणिपीडापरिणामः सञ्जायत इति।

**अवशिष्टपरीषहप्रकृतिविशेषप्रतिपादनार्थमाह—**

### वेदनीये शेषाः ॥१६॥

उक्ता एकादश परीषहाः। तेभ्योऽन्ये शेषा वेदनीये सति भवन्तीति वाक्यशेषः। के पुनस्ते? क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलपरीषहाः।

**आह [२९]व्याख्यातनिमित्तलक्षणविकल्पाः प्रत्यात्मनि प्रादुर्भवन्तः कति युगपदवतिष्ठन्त इत्यत्रोच्यते-**

### एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोन्नविंशतेः ॥१७॥

आङभिविध्यर्थः। तेन एकोनविंशतिरपि क्वचित् युगपत्सम्भवंतीत्यवगम्यते। तत्कथमिति चेदुच्यते

---

**२४.** बादरेति—बादरः स्थूलः सांपरायः कषायो यस्मिनुगुणस्थाने तद्बादरसांपरायं तद्योगान्मुनिरपि बादरसांपरायस्तस्मिन्सर्वे परीषहा भवन्ति, अस्यायमर्थःबादर सांपराय इत्युक्ते नवममेव गुणस्थानं केवलं न गृहीतव्यं किंत्वर्थबलेन प्रमत्तसंयताप्रमत्तसंयतापूर्वकरणानिवृत्तिकरणगुणस्थानचतुष्टयं ग्राह्यम्। **२५.** अक्षीणाशयत्वादित्यप्यन्यः पाठः। **२६.** ज्ञानावरणेति—ज्ञानावरणं यस्यमुनेः स ज्ञानावरणस्तस्मिञ्ज्ञानावरणेऽथवा ज्ञानस्यावरणं ज्ञानावरणं तस्मिञ्ज्ञानावरणे कर्मणि सति। **२७.** स्त्रीत्यादि—स्तृणाति आच्छादयति परगुणान्निजदोषानिति स्त्री। निषीदन्त्युपविशन्ति यस्यां सा निषद्या। चारित्रमोहे कर्मणि सत्युदिते एते सप्त परीषहाः पुंवेदोदयादिनिमिता भवन्ति। मोहोदये सति प्राणिपीडा भवति। प्राणिपीडापरिहारार्थं निषद्यापरीषह उत्पद्यते। **२८.** प्राणिपीडापरिहारसद्भावे मोहनीयनिमित्तत्वं कथमित्याशङ्कायामाह चारित्रमोहोदये सति। **२९.** ज्ञानावरणादि।

–शीतोष्णपरीषहयोरेकः, शय्यानिषद्याचर्याणामन्यतम एव भवत्येकस्मिन्नात्मनि। कुतः? विरोधात्। ततस्त्रयाणामपगमे युगपदेकात्मनीतरेषां सम्भवादेकोनविंशतिविकल्पा बोद्धव्याः। ननु प्रज्ञाज्ञानयोरपि विरोधाद्युगपदसम्भवः? श्रुतज्ञानापेक्षया प्रज्ञापरीषहोऽवधिज्ञानापेक्षया अज्ञान–परीषह इति नास्ति विरोधः।

**आह उक्ता गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयाः संवरहेतवः पञ्च। संवरहेतुश्चारित्रसंज्ञो वक्तव्य इति तद्भेदप्रदर्शनार्थमुच्यते–**

## सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययथाख्यातमिति चारित्रम् ॥१८॥

अत्र चोद्यते–दशविधे धर्मे संयम उक्तः स एव चारित्रमिति पुनर्ग्रहणमनर्थकमिति। नानर्थकम् – धर्मेऽन्तर्भूतमपि चारित्रमन्ते गृह्यते मोक्षप्राप्तेः साक्षात्कारणमिति ज्ञापनार्थम्। सामायिकमुक्तं। क्व? दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकमित्यत्र। तद्द्विविधम्–नियतकालमनियतकालञ्च। स्वाध्यायादि नियतकालम्। ईर्यापथाद्यनियतकालम्। [३०]प्रमादकृतानर्थप्रबन्धविलोपे सम्यक्प्रतिक्रिया छेदोपस्थापना, विकल्पनिवृत्तिर्वा। [३१]परिहरणं परिहारः प्राणिवधान्निवृत्तिः। तेन विशिष्टा शुद्धिर्यस्मिंस्तत्परिहार–विशुद्धिचारित्रम्। अतिसूक्ष्मकषायत्वात्सूक्ष्मसाम्परायचारित्रम्। मोहनीयस्य[३२] निरवशेषस्योपशमात्क्षयाच्च आत्मस्वभावावस्थापेक्षालक्षणं यथाख्यातचारित्र मित्याख्यायते। पूर्वचारित्रानुष्ठायिभिराख्यातं न तत्प्राप्तं प्राङ्मोहक्षयोपशमाभ्यामित्यथाख्यातम्। अथशब्दस्यानन्तर्यार्थवृत्तित्वान्निरवशेषमोहक्षयोपशमानन्तर–माविर्भवतीत्यर्थः। तथाऽऽख्यातमिति वा यथात्मस्वभावोऽवस्थितस्तथैवाख्यातत्वात्। इतिशब्दः परिसमाप्तौ द्रष्टव्यस्ततो यथाख्यातचारित्रात्सकलकर्मक्षयपरिसमाप्तिर्भवतीति ज्ञाप्यते। सामायिकादी–नामानुपूर्व्यवचनमुत्तरोत्तरगुणप्रकर्षज्ञापनार्थम्।

**आह उक्तं चारित्रं तदनन्तरमुद्दिष्टं यत् तपसा निर्जरा चेति तस्येदानीं तपसो विधानं कर्तव्यमित्य–त्रोच्यते। तत् द्विविधम् बाह्यमभ्यन्तरं च। तत्प्रत्येकं षड्विधम्। तत्र बाह्यभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह–**

---

**३०.** प्रमादेति–प्रमादेन कृतो योऽनर्थप्रबन्धो हिंसादीनामव्रतानामनुष्ठानं तस्य विलोपे सर्वथा परित्यागे सम्यगागमोक्तविधिना प्रतिक्रिया पुनर्व्रतारोपणं छेदोपस्थापना। छेदेन दिवसपक्षमासादिप्रव्रज्याहापनेन उपस्थापना व्रतारोपणं छेदोपस्थापना। संकल्पविकल्पनिषेधो वा छेदोपस्थापना भवति। **३१.** परिहरणेति–परिहरणं परिहारः प्राणिवधनिवृत्तिरित्यर्थः। परिहारेण विशिष्टा शुद्धिः कर्ममलकलंकप्रक्षालनं यस्मिंश्चारित्रे तत्परिहारविशुद्धिचारित्रं इति वा विग्रहः। तल्लक्षणं यथा – द्वात्रिंशद्वर्षजातस्य बहुकालतीर्थपादसेविनः प्रत्याख्याननामधेयनवमपूर्वोक्तसम्यगाचारवेदिनोऽतिपुष्कलचर्यानुष्ठायिनस्तिस्रःसंध्या वर्जयित्वा द्विगव्यूतिगामिनो मुनेः परिहारविशुद्धिचारित्रं भवति। तथा चोक्तम्–बत्तीसवास जम्मे वासपुधत्तं च तित्थरमूले। पच्चक्खाणं पढिदो संझूणदुगाउय विहारो। त्रिवर्षादुपरि नवमवर्षाभ्यन्तरे वर्षपृथक्त्वमुच्यते। तीसं वासो इत्यपि पाठान्तरं। **३२.** मोहनीयस्येति–सर्वस्य मोहनीयस्योपशमः क्षयो वा वर्तते यस्मिंस्तत्परमौदासीन्यलक्षणं जीवस्वभावदशं यथाख्यातचारित्रं यथात्मनः शुद्धस्वभावः स्थितस्तथैवाख्यातः कथित आत्मनो यस्मिंश्चारित्रे तद्यथाख्यातमिति निरुक्तेः। यथाख्यातस्याथाख्यातमिति द्वितीया संज्ञा वर्तते। तत्रायमर्थः–चिरंतनचारित्रविधायिभिर्यदुत्कृष्टं चारित्रमाख्यातं कथितं तादृशं चारित्रं पूर्वं जीवेन न प्राप्तं अथानंतरं मोहक्षयोपशमाभ्यां तु प्राप्तं यच्चारित्रं तत् अथाख्यातमुच्यते।

## [३३]अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥

दृष्टफलानपेक्षं संयमप्रसिद्धिरागोच्छेदकर्मविनाशध्यानागमावाप्त्यर्थमनशनम्। संयम-प्रजागरदोष-प्रशमसन्तोषस्वाध्यायादिसुखसिद्ध्यर्थमवमौदर्यम्। भिक्षार्थिनो मुनेरेकागारादिविषयः सङ्कल्पचित्तावरोधो वृत्तिपरिसंख्यानमाशानिवृत्त्यर्थमवगन्तव्यम्। इन्द्रियदर्पनिग्रहनिद्राविजयस्वाध्यायसुखसिद्ध्यद्यर्थो घृतादि-वृष्यरसपरित्यागश्चतुर्थं तपः। शून्यागारादिषु विविक्तेषु जन्तुपीडारहितेषु संयतस्य शय्यासनमाबाधात्यय-ब्रह्मचर्यस्वाध्यायध्यानादिप्रसिद्ध्यर्थं कर्तव्यमिति पञ्चमं तपः। आतपस्थानं वृक्षमूलनिवासो निरावरणशयनं बहुविधप्रतिमास्थानमित्येवमादिः कायक्लेशः षष्ठं तपः। तत्किमर्थम्? देहदुःखतितिक्षा-सुखानभिष्वङ्गप्रवचनप्रभावनाद्यर्थम्। परीषहस्यास्य च को विशेषः—यदृच्छयोपनिपतितः परीषहः। स्वयंकृतः कायक्लेशः। बाह्यत्वमस्यकुतः ? बाह्य-द्रव्यापेक्षत्वात्पर-प्रत्यक्षत्वाच्च बाह्यत्वम्।

**अभ्यन्तरतपोभेददर्शनार्थमाह—**

## [३४]प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्[३५] ॥२०॥

कथमस्याभ्यन्तरत्वम्। मनोनियमनार्थत्वात्। प्रमाददोषपरिहारः प्रायश्चित्तम्। पूज्येष्वादरो विनयः। कायचेष्टया द्रव्यान्तरेण चोपासनं वैयावृत्त्यम्। ज्ञानभावनाऽऽलस्यत्यागः स्वाध्यायः। आत्माऽऽत्मीय-सङ्कल्पत्यागो व्युत्सर्गः। चित्तविक्षेपत्यागो ध्यानम्।

**तद्भेदप्रतिपादनार्थमाह—**

## नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥

यथाक्रममिति वचनान्नवभेदं प्रायश्चित्तम्। विनयश्चतुर्विधः। वैयावृत्त्यं दशविधम्। स्वाध्यायः पञ्चविधः। द्विविधो व्युत्सर्ग इत्यभिसम्बध्यते। प्राग्ध्यानादितिवचनं ध्यानस्य बहुवक्तव्यत्वात्पश्चाद्वक्ष्यत इति।

**आद्यस्य भेदस्वरूपनिर्ज्ञानार्थमाह—**

---

**३३.** अनशनादीति—अशनपानखाद्यस्वाद्यादिभेदचतुर्विधाहारपरित्याग उपवासः। चतुर्थषष्ठाष्टमदशमद्वादशचतुर्दश-पक्षमासद्विमासत्रिमासादिवर्षान्तं, यावद्यत्क्रियते तदनशनं। संयमज्ञानादिहेतोर्यत्स्तोकं भुज्यते तदवमौदर्यम्। आशानिरासार्थं एकमंदिरादिप्रवृत्तिविधानं, तद्विषये संकल्पविकल्पचिंतानियंत्रणं, वृत्तेर्भोजनप्रवृत्तेःपरि समन्तात्संख्यानं मर्यादागणनमिति यावत् वृत्तिपरिसंख्यानमुच्यते। इन्द्रियमदनिद्रादिनिग्रहार्थं रसस्य वृषस्य घृतादेः परित्यागः परिहरणं रसपरित्यागः। घृतदुग्ध-दधीक्षुरसतैललवणषड्रसानां वा मधुरकटुकाम्लकषायतीक्ष्णपंचरसानां वा मध्ये एकरसग्रहणं अन्यत्यजनं उत्कृष्टरसपरित्यागस्तपः। यत्पंचरसग्रहणमेकरसत्यजनं तज्जघन्यं रसत्यागतपः। **३४.** प्रायश्चित्तादीति—प्रकृष्टोऽयः शुभावहो विधिर्यस्य साधुलोकस्य स प्रायः प्रकृष्टचारित्रः। प्रायस्य साधुलोकस्य चित्तं यस्मिन्कर्मणि तत्प्रायश्चित्तं आत्मशुद्धिकरं कर्म। अथवा गतः प्रणष्टः अयः प्रायः अपराधस्तस्य चित्तं शुद्धिः प्रायश्चित्तं। कारस्करादित्वात्सकारागमः। श्लोकः—प्राय इत्युच्यते लोकश्चित्तं तस्य मनो भवेत्। तस्य शुद्धिकरं कर्म प्रायश्चित्तं तदुच्यते। तत्र प्रमादोत्पन्नदोषनिषेधनं प्रायश्चित्तम्। **३५.** शरीरप्रवृत्त्या यात्रादि-गमनेन द्रव्यान्तरेण वा यो ग्लानो मुनिस्तस्य पादमर्द्दनादिभिराराधनं वैयावृत्यमुच्यते।

## [३६]आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ॥२२॥

तत्र गुरवे प्रमादनिवेदनं दशदोषविवर्जितमालोचन् जं दिट्ठं बादरं च सुहुमं च। छण्णं सद्दाउलियं बहुजण अव्वत्त तस्सेवी।१।इति दश दोषाः। मिथ्या दुष्कृताभिधानादभिव्यक्तप्रतिक्रियं प्रतिक्रमणम्। संसर्गे सति विशोधनात्तदुभयम्। संसक्तान्नपानोपकरणादिविभजनं विवेकः। कायोत्सगादिकरणं व्युत्सर्गः।

---

**३६.** आलोचनेत्यादि–एकान्तनिषण्णाय प्रसन्नचेतसे विज्ञातदोषदेशकालाय गुरवे तादृशेन शिष्येण विनयसहितं यथाभवत्येवमवंचनशीलेन शिशुवत्सरलबुद्धिनात्मप्रमादप्रकाशनं निवेदनं दशदोषरहित–मालोचनमुच्यते। दशदोषाणां विवरणम्–आकंपितं – उपकरणादिदानेन गुरोरनुकम्पामुत्पाद्यालोचयति। अनुमानितं–वचनेनानुमान्य चालोचयति। यद्दृष्टं–यल्लोकैर्दृष्टं तदेवालोचयति। बादरं–स्थूलमेवालोचयति। सूक्ष्मं–सूक्ष्ममल्पमेव दोषमालोचयति। छन्नं केनचित्पुरुषेण निजदोषः प्रकाशितो भगवन् यादृशो दोषोऽनेन प्रकाशितस्तादृशो ममापि वर्तते इति प्रच्छन्नमालोचयति। शब्दाकुलं–शब्दाकुलं यथा भवत्येवं यथा गुरुरपि न शृणोति तादृशकोलाहलमध्ये आलोचयति। बहुजनं – बहून्गुरुजनान्प्रत्यालोचयति। अव्यक्तं–अव्यक्तस्य अप्रबुद्धस्याग्रे आलोचयति। तत्सेवी–यो गुरुस्तं दोषं सेवते तदग्रे आलोचयति। दशदोषरहितमालोचनं यदि पुरुष आलोचयति तदैको गुरुरेक आलोचकः पुमानिति पुरुषस्य द्व्याश्रयालोचनं भवति। स्त्री चेदालोचयति तदा चंद्रसूर्यदीपादिप्रकाशे एको गुरुर्द्वे स्त्रियौ। अथवा द्वौ गुरु एका स्त्री इत्येवं द्व्याश्रयं आलोचनं भवति। आलोचनरहितमालोचयतो वा प्रायश्चित्तमकुर्वतो महदपि तपोऽभिप्रेतफलप्रदं न भवति। प्रतिक्रमणं हि गुरुणानुज्ञातेन शिष्येणैव कर्तव्यं। आलोचनां प्रदाय प्रतिक्रमणाचार्येणैव कर्तव्यं। तदुभयं–शुद्धस्याप्यशुद्धत्वेन यत्र संदेहविपर्ययौ भवतोऽशुद्धस्यापि शुद्धत्वेन यत्र निश्चयो भवति तत्र तदुभयं आलोचनम्। प्रतिक्रमणद्वयं भवति। विवेकः –यद्वस्तु नियमितं भवति तद्वस्तु चेन्निजपाणिभाजने पतति मुखमध्ये वा समायाति। यस्मिन्वस्तुनि गृहीते वा कषायादिकमुत्पद्यते, तस्य सर्वस्य वस्तुनस्त्यागो विवेकनाम प्रायश्चित्तं भवति। व्युत्सर्गः–नियतकालं कायस्य वाचो मनसश्च त्यागो व्युत्सर्ग उच्यते। तपः–उपवासादिकं षड्विधं बाह्यं तपस्तपोनाम प्रायश्चित्तं। छेदः –दिवसपक्षमासादिविभागेन दीक्षाहापनम्। परिहारः–दिवसपक्षमासादिविभागेन दूरतः परिवर्जनं परिहारः। उपस्थापना – महाव्रतानां मूलच्छेदनं विधाय पुनरपि दीक्षाप्रापणं उपस्थापनानाम प्रायश्चित्तं भवति।

१. अत्राचार्यमपृष्ट्वा तापनादिकरणे आलोचना भवति। २. पुस्तकपिच्छादिपरोपकरणग्रहणे आलोचना भवति। ३. परोक्षे प्रमादत आचार्यादिवचनाकरणे आलोचना भवति। ४. आचार्यमपृष्ट्वाचार्यप्रयोजनेन गत्वा गमने आलोचनं भवति। ५. परसंघमपृष्ट्वा स्वसंघागमने आलोचना भवति। ६. देशकालनियमेनावश्यकर्तव्यस्य व्रतविशेषस्य धर्मकथादिव्यासंगेन विस्मरणे सति पुनः करणे आलोचना भवति। ७. एवं विधेऽन्यस्मिन्कार्यस्खलने आलोचनैव प्रायश्चित्तं भवति। १. षडिंद्रियेषु वागादिदुःपरिणामे प्रतिक्रमणं भवति। २. आचार्यादिषु हस्तपादादिसंघट्टने प्रतिक्रमणं भवति। ३. व्रतसमितिगुप्तिषु स्वल्पातिचारे प्रतिक्रमणं भवति। ४. पैशून्यकलहादिकरणे प्रतिक्रमणं भवति। ५. वैयावृत्यस्वाध्यायादिप्रमादे प्रतिक्रमणं भवति। ६. गोचरगतस्य लिंगोत्थाने प्रतिक्रमणं भवति। ७. परसंक्लेशकरणादौ च प्रतिक्रमणं भवति। दिवसरात्र्यन्ते भोजनगमनादौ आलोचना प्रतिक्रमणं भवति। लोचनखच्छेदस्वप्नेन्द्रियातिचाररात्रिभोजनेषु उभयं। पक्षमास–चातुर्माससंवत्सरादिदोषादौ चोभयं भवति। मौनादिना विना लोचविधाने व्युत्सर्गः। उदरकृमिनिर्गमे व्युत्सर्गः। हिममशकादिमहावातादिसंहर्षातिचारे (रोमांचे) व्युत्सर्गः। आर्द्रभूम्युपरिगमने व्युत्सर्गः। हरिततृणोपरिगमने व्युत्सर्गः, कर्दमोपरिगमने व्युत्सर्गः। जानुमात्रजलप्रवेशे व्युत्सर्गः। परनिमित्तवस्तुनः स्वोपयोगविधाने व्युत्सर्गः। नावादिना नदीतरणे व्युत्सर्गः। पुस्तकपतने व्युत्सर्गः प्रतिमापतने व्युत्सर्गः। पंचस्थावरविघातादृष्टदेशतनुमलविसर्गादिषु व्युत्सर्गः। पक्षादिप्रतिक्रमणक्रियान्तरव्याख्यानप्रवृत्त्यादिषु व्युत्सर्ग एव प्रायश्चित्तं। उच्चारप्रस्रवणादिषु च प्रसिद्धो व्युत्सर्गः एव। उपवासादिकरणं छेदकरणं, परिहारकरणं, उपस्थापनाकरणं सर्वमेवैतत्परमागमाद्वेदितव्यं। नवविधप्रायश्चित्तफलं भावप्रसादनं, अनवस्थाया अभावः, शल्यपरिहरणं, धर्मदार्ढ्यादिकं च वेदितव्यम्।

अनशनावमौदर्यादिलक्षणं तपः। दिवसपक्षमासादीनां प्रव्रज्याहापनं छेदः। पक्षमासादिविभागेन दूरतः परिवर्जनं परिहारः। पुनर्दीक्षाप्रापणमुपस्थापना।

**विनयविकल्पप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## ज्ञानदर्शनचारित्रोपचारा ॥२३॥

विनय इत्यधिकारेणाभिसन्बन्धः क्रियते। ज्ञानविनयो दर्शनविनयश्चारित्रविनयः उपचारविनयश्चेति। सबहुमानं[३७] मोक्षार्थं ज्ञानग्रहणाभ्यासस्मरणादिर्ज्ञानविनयः। शङ्कादिदोषविरहितं तत्त्वार्थश्रद्धानं दर्शनविनयः। [३८]तद्वतश्चारित्रसमाहितचित्तता चारित्रविनयः। प्रत्यक्षेष्वाचार्यादिष्वभ्युत्थानाभि–गमनाञ्जलि–करणादिरुपचारविनयः, परोक्षेष्वपि कायवाङ्मनोभिरञ्जलिक्रिया गुणसङ्कीर्तनानुस्मरणादिः।

**वैयावृत्त्यभेदप्रतिपादनार्थमाह—**

## आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसङ्घसाधुमनोज्ञानाम् ॥२४॥

वैयावृत्यं दशधा भिद्यते। कुतः? विषयभेदात्। आचार्यवैयावृत्त्यमुपाध्यायवैयावृत्त्यमित्यादि। तत्र आचरन्ति तस्माद्व्रतानीत्याचार्यः। मोक्षाय शास्त्रमुपेत्य तस्मादधीयत इत्युपाध्यायः। महोपवासाद्यनुष्ठायी तपस्वी। [३९]शिक्षाशीलः शैक्षः। रुजादिक्लिष्टशरीरो ग्लानः। [४०]गणः स्थविरसन्ततिः। दीक्षकाचार्यशिष्यसंस्त्यायः कुलम्। [४१]चातुर्वर्ण्यश्रमणनिवहः सङ्घः। चिरप्रव्रजितः साधुः। [४२]मनोज्ञो लोकसम्मतः। तेषां व्याधिपरीषहमिथ्यात्वाद्युपनिपाते कायचेष्टया द्रव्यान्तरेण वा तत्प्रतीकारो वैयावृत्त्यं समाध्याध्यानविचिकित्साभावप्रवचनवात्सल्याद्यभिव्यक्त्यर्थं।

**स्वाध्यायविकल्पविज्ञापनार्थमाह—**

## वाचनाप्रच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥२५॥

निरवद्यग्रन्थार्थोभयप्रदानं वाचना। [४३]संशयच्छेदाय निश्चितबलाधानाय वा परानुयोगः प्रच्छना। अधिगतार्थस्य मनसाभ्यासोऽनुप्रेक्षा। घोषशुद्धपरिवर्त्तनमाम्नायः। धर्मकथाद्यनुष्ठानं धर्मोपदेशः। स एष पञ्चविधः स्वाध्यायः किमर्थः?

---

**३७.** सबहुमानमिति–अनलसेन देशकालद्रव्यभावादिशुद्धिकरणेन बहुमानेन मोक्षार्थं ज्ञानग्रहणं ज्ञानाभ्यासो ज्ञानस्मरणादिकं यथाशक्ति ज्ञानविनयो वेदितव्यः। **३८.** तद्वत इति–ज्ञानदर्शनवतः पुरुषस्य चारित्रे विदिते सति तस्मिन्पुरुषे भावतोऽतिभक्तिविधानं भावतः स्वयं चारित्रानुष्ठानं च चारित्रविनयो भवति। विनयफलं–विनये कृते सति ज्ञानलाभो भवत्याचारविशुद्धिश्च संजायते, सम्यगाराधनादिकं पुमांल्लभते इति विनयफलं ज्ञातव्यम्। **३९.** आचार्येति सूत्रे–शिक्षाशीलः शास्त्राभ्यासशीलः। **४०.** स्थविरेति–वृद्धमुनिसमूहो गणः। **४१.** संघः–ऋषिमुनियत्यनगारलक्षणश्चातुर्वर्ण्यश्रमणसमूहः, ऋष्यार्यिकाश्रावकश्राविकासमूहो वा। **४२.** मनोज्ञः वक्त्रादिगुणविराजितो लोकाभिसंमतो विद्वान्मुनिर्मनोज्ञ उच्यते। तादृशोऽसंयतसम्यग्दृष्टिर्वा मनोज्ञ उच्यते। एतेषां दशविधानां व्याधौ सति प्रासुकौषधभक्तपानादिपथ्यवस्तुवसतिका–संस्तरणादिभिर्वैयावृत्त्यं कर्तव्यं धर्मोपकरणैः परीषहविनाशनैः। मिथ्यात्वादिसंभवे सम्यक्त्वे प्रतिष्ठापनं। बाह्यद्रव्यासंभवे कायेन श्लेष्माद्यन्तर्मलाद्यपनयनादिकं तदनुकूलानुष्ठानं च वैयावृत्त्यमुच्यते। तत्फलं – समाधिप्राप्तिर्विचिकित्साया अभावः, प्रवचनवात्सल्यादि प्राकट्यं च वेदितव्यम्। **४३.** संशयेति–प्रच्छना प्रश्नः अनुयोगः शास्त्रार्थं जानन्नपि गुरुं पृच्छति संदेहविनाशाय। निश्चितोऽप्यर्थः किमर्थं पृच्छ्यते? ग्रंथार्थप्रबलतानिमित्तं। सा प्रच्छना। निजोन्नतिपरप्रतारणोपहासादिनिमित्तं यदि भवति सदा संवरस्य हेतुभूता न भवति।

प्रज्ञातिशय: प्रशस्ताध्यवसाय:, परमसंवेगस्तपोवृद्धिरतिचारविशुद्धिरित्येवमाद्यर्थ:।

**व्युत्सर्गभेदनिर्ज्ञानार्थमाह—**

## बाह्याभ्यन्तरोपध्यो: ॥२६॥

[४४]व्युत्सर्जनं व्युत्सर्गस्त्याग:। स द्विविध:—बाह्योपधित्यागोऽभ्यन्तरोपधित्यागश्चेति। अनुपात्तं वास्तुधनधान्यादि बाह्योपधि:। क्रोधादिरात्मभावोऽभ्यन्तरोपधि:। कायत्यागश्च नियतकालो यावज्जीवं वाभ्यन्तरोपधित्याग इत्युच्यते। स किमर्थ:? निस्सङ्गत्वनिर्भयत्वजीविताशाव्युदासाद्यर्थ:।

**यद्बहुवक्तव्यं ध्यानमिति पृथग्व्यवस्थापितं तस्येदानीं भेदाभिधानं प्राप्तकालं। तदुल्लंघ्य तस्य प्रयोक्तृस्वरूपकालनिर्द्धारणार्थमुच्यते—**

## उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥२७॥

आद्यं त्रितयं संहननमुत्तमं। [४५]वज्रर्षभनाराचसहननं, वज्रनाराचसंहननं, नाराचसंहननमिति। तत्त्रितयमपि ध्यानस्य साधनं भवति। मोक्षस्य तु आद्यमेव। तदुत्तमसंहननं यस्य सोऽयमुत्तमसंहननस्त-स्योत्तमसंहननस्येत्यनेन प्रयोक्तृनिर्देश:। अग्रं मुखम्। एकमग्रमस्येत्येकाग्र:। नानार्थावलम्बनेन चिन्ता परिस्पन्दवती, तस्या अन्याशेषमुखेभ्यो व्यावर्त्य एकस्मिन्नग्रे नियम एकाग्रचिन्तानिरोध इत्युच्यते अनेन ध्यानस्वरूपमुक्तं भवति। मुहूर्त इति कालपरिमाणम्। अन्तर्गतोमुहूर्तोऽन्तर्मुहूर्त्त:। आ अन्तर्मुहूर्तादित्यनेन कालावधि: कृत:। तत: परं दुर्धरत्वादेकाग्रचिन्ताया:। चिन्ताया निरोधो यदि ध्यानं निरोधश्चाभावस्तेन ध्यानमसत्खरविषाणवत्स्यात्? नैष दोष: – अन्यचिन्तानिवृत्त्यपेक्षयाऽसदिति चोच्यते, स्वविषयाकार-प्रवृत्ते: सदिति च। अभावस्य भावान्तरत्वाद्धेत्वङ्गत्वादिभिरभावस्य वस्तुधर्मत्वसिद्धेश्च। अथवा, नायं भावसाधन: ''निरोधनं निरोध इति''। किं तर्हि? कर्मसाधन: ''निरुध्यत इति निरोध:''। चिन्ता चासौ निरोधश्च चिन्तानिरोध इति। एतदुक्तं भवति–ज्ञानमेवापरिस्पन्दमानमपरिस्पन्दाग्नि–शिखावदवभासमानं ध्यानमिति।

**तद्भेदप्रदर्शनार्थमाह—**

## आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥२८॥

ऋतं दु:खं, अर्दनमर्तिर्वा, तत्र भवमार्तम्। रुद्र: क्रूराशयस्तस्य कर्म, तत्र भवं वा रौद्रम्। धर्मो व्याख्यात: धर्मादनपेतं धर्म्यम्, शुचिगुणयोगाच्छुक्लम्। तदेतच्चतुर्विधं ध्यानं द्वैविध्यमश्नुते। कुत:? प्रशस्ताप्रशस्तभेदात्। अप्रशस्तमपुण्यास्रवकारणत्वात्। कर्मनिर्दहनसामर्थ्यात्प्रशस्तम्।

**किं पुनस्तदिति चेदुच्यते—**

## परे मोक्षहेतू[४६] ॥२९॥

---

४४. व्युत्सर्जनमिति – महाव्रते, धर्मे, प्रायश्चित्तेऽन्यत्र च यद्यप्यनेकवारानुक्तो व्युत्सर्गस्तथापि न पुनरुक्तदोष:। कस्यचित्पुरुषस्य क्वचित्त्यागे शक्तिरिति पुरुषशक्त्यपेक्षयानेकत्र भणनमुत्तरोत्तरोत्साहात्त्यगार्थं वानेकत्र भणनं न दोषाय।
४५. वज्रर्षभेति – त्रिषूत्तमसंहननेषु आद्यसंहननेनैव मोक्षो भवति अपरसंहननद्वयेन तु ध्यानं भवत्येव। परं मुक्तिर्न भवति।
४६. मोक्षेति–धर्म्यध्यानं पारंपर्येण मोक्षहेतुस्तद्गौणतया मोक्षकारणमुपचर्यते। शुक्लध्यानं तु साक्षात्तद्भवे मोक्षकारणं। उपशमश्रेण्यपेक्षया तु तृतीये भवे मोक्षदायकं।

परमुत्तरमन्त्यं तत्सामीप्याद्धर्म्यमपि परमित्युपचर्यते। द्विवचनसामर्थ्याद्गौणमपि गृह्यते। परे मोक्षहेतू इति वचनात्पूर्वे आर्त्तरौद्रे संसारहेतू इत्युक्तं भवति। कुतः? तृतीयस्य साध्यस्याभावात्। तत्रार्तं चतुर्विधम्।

**तत्रादिविकल्पलक्षणनिर्देशार्थमाह—**

**आर्तममनोज्ञस्य[४७] सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥३०॥**

अमनोज्ञमप्रियं विषकण्टकशत्रुशस्त्रादि, तद्बाधाकारणत्वादमनोज्ञमित्युच्यते। तस्य सम्प्रयोगे, स कथं नाम मे न स्यादिति सङ्कल्पश्चिन्ताप्रबन्धः स्मृतिसमन्वाहारः [४८]प्रथममार्त्तमित्याख्यायते।

**द्वितीयस्य विकल्पस्य लक्षणनिर्देशार्थमाह—**

**विपरीतं मनोज्ञस्य[४९] ॥३१॥**

कुतो विपरीतं? पूर्वोक्तात्। तेनैतदुक्तं भवति – मनोज्ञस्येष्टस्य स्वपुत्रदारधनादेर्विप्रयोगे तत्सम्प्रयोगाय सङ्कल्पश्चिन्ताप्रबन्धो [५०]द्वितीयमार्त्तमवगन्तव्यम्।

**तृतीयस्य विकल्पस्य लक्षणप्रतिपादनार्थमाह—**

**वेदनायाश्च[५१] ॥३२॥**

वेदनाशब्दः सुखे दुःखे च वर्तमानोऽपि, आर्त्तस्य प्रकृतत्वात् दुःखवेदनायां प्रवर्तते, तस्या वातादिविकारजनितवेदनाया उपनिपाते तस्या अपायः कथं नाम मे स्यादिति संकल्पश्चिन्ता-प्रबन्धस्तृतीयमार्त्तमुच्यते।

**तुरीयस्यार्त्तस्य लक्षणनिर्देशार्थमाह—**

**निदानं[५२] च ॥३३॥**

भोगाकाङ्क्षातुरस्यानागतविषयप्राप्तिं प्रति मनःप्रणिधानं सङ्कल्पश्चिन्ताप्रबन्धस्तुरीयमार्त्तं निदान-मित्युच्यते।

**तदेतच्चतुर्विधमार्तं किंस्वामिकमिति चेदुच्यते—**

**तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥३४॥**

अविरता असंयतसम्यग्दृष्ट्यन्ताः। देशविरताः संयतासंयताः। प्रमत्तसंयताः पञ्चदशप्रमादोपेताः

---

४७. अमनोज्ञेति–न मनो जानाति इत्यमनोज्ञं अप्रियं वस्तु चेतनमचेतनं च। तत्र चेतनं कुत्सितरूपं दुर्गंधशरीरदौर्भाग्यादिसहितं कलत्रादिकं। त्रासाद्युत्पादकमुद्वेगजननं च शत्रुसर्पादिकं च। अचेतनं परप्रयुक्तं शस्त्रादिकं विषकंटकादिकं च बाधाविधानहेतुत्वात्। ४८. प्रथममिति–अनिष्टसंयोगजापरनामकं प्रथममार्त्तध्यानं। ४९. मनोज्ञेति – मनो जानाति चित्ताय रोचते इति मनोज्ञं तस्यमनोज्ञस्य प्रियस्य वस्तुनः। ५०. द्वितीयमिति–इष्टवियोगजापर–नामकं द्वितीयमार्त्तध्यानं। ५१. वेदनायाश्चेति–अत्र चकारः परस्परसमुच्चये वर्तते। नायमर्थो न केवलं मनोज्ञस्य विपरीतं वेदनायाश्च विपरीतं। वेदनायाः कस्माद्विपरीतं? मनोज्ञात्तेनायमर्थो वेदनाया दुःखस्य संप्रयोगे सति तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारस्तृतीयं आर्त्तं भवति। वेदनायाः पीडितस्यास्थिरचित्तस्य परित्यक्तधीरत्वस्य वेदनासन्निधाने सति कथमेतस्या वेदनाया विनाशो भविष्यतीति वेदनावियोगाय पुनः पुनश्चितनं अंगविक्षेपणं, आक्रंदनं वाष्पजलविमोचनं, पापोऽयं रोगो मामतीव बाधते, कदायं विनंक्ष्यतीति स्मृतिसमन्वाहारस्तृतीयमार्त्तध्यानं पीडाचिन्तनं भवतीत्यर्थः। ५२. निदानं चेति–अत्र चकार आर्त्तेन सह समुच्चीयते। तेनायमर्थः। न केवलं पूर्वोक्तप्रकारत्रितयमार्त्तं भवति किंतु निदानं च चतुर्थमार्तध्यानं भवति। अनागतभोगाकांक्षा निदानमुच्यते।

क्रियानुष्ठायिनः। तत्राविरतदेशविरतानां चतुर्विधमार्त्तं भवति [५३]असंयमपरिणामोपेतत्वात्। प्रमत्तसंयतानां तु निदानवर्ज्यमन्यदार्त्तत्रयं प्रमादोदयोद्रेकात्कदाचित्स्यात्।

**व्याख्यातमार्त्तं संज्ञादिभिः। द्वितीयस्य संज्ञाहेतुस्वामिनिर्द्धारणार्थमाह–**

## हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥३५॥

हिंसादीन्युक्तलक्षणानि, तानि रौद्रध्यानोत्पत्तेर्निमित्तीभवन्तीति हेतुनिर्देशो विज्ञायते। तेन हेतुनिर्देशे-नानुवर्तमानः स्मृतिसमन्वाहारोऽभिसम्बध्यते। हिंसायाः स्मृतिसमन्वाहार इत्यादि। तद् रौद्रध्यान-मविरतदेशविरतयोर्वेदितव्यम्। अविरतस्य भवतु रौद्रध्यानं देशविरतस्य कथम्? तस्यापि हिंसाद्यावेशाद्वित्तादिसंरक्षणतन्त्रत्वाच्च कदाचिद्भवितुमर्हति। तत्पुनर्नारकादीनामकारणं सम्यग्दर्शन-सामर्थ्यात्संयतस्य तु न भवत्येव। तदारम्भे संयमप्रच्युतेः।

**आह परे मोक्षहेतू उपदिष्टे। तत्राद्यस्य मोक्षहेतोर्ध्यानस्य भेदस्वरूपस्वामिनिर्देशः कर्तव्य इत्यत आह –**

## आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥३६॥

**विचयनं विचयो विवेको विचारणमित्यर्थः।** आज्ञापायविपाकसंस्थानानां विचय आज्ञापाय-विपाकसंस्थानविचयः। स्मृतिसमन्वाहार इत्यनुवर्तते, स प्रत्येकं सम्बध्यते–आज्ञाविचयाय स्मृति-समन्वाहार इत्यादि तद्यथा–उपदेष्टुरभावान्मन्दबुद्धित्वात्कर्मोदयात्सूक्ष्मत्वाच्च पदार्थानां हेतुदृष्टान्तोपरमे सति सर्वज्ञ-प्रणीतमागमं प्रमाणीकृत्य इत्थमेवेदं नान्यथावादिनो जिना इति गहनपदार्थ-श्रद्धानमर्थावधारणमाज्ञा विचयः। अथवा–स्वयं विदितपदार्थतत्त्वस्य सतः परं प्रतिपिपादयिषोः स्वसिद्धान्ताविरोधेन तत्त्वसमर्थनार्थं तर्कनयप्रमाणयोजनपरः स्मृतिसमन्वाहारः सर्वज्ञा-ज्ञाप्रकाशनार्थत्वादाज्ञाविचय इत्युच्यते। जात्यन्धवन्मिथ्यादृष्टयः सर्वज्ञप्रणीतमार्गाद्विमुखा मोक्षार्थिनः सम्यङ्मार्गापरिज्ञानात्सुदूरमेवापयन्तीति सन्मार्गापायचिन्तनमपायविचयः। अथवा–मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्रेभ्यः कथं नाम इमे प्राणिनोऽपेयुरिति स्मृतिसमन्वाहारोऽपायविचयः। कर्मणां ज्ञानावरणादीनां द्रव्यक्षेत्रकालभवभावप्रत्ययफलानुभवनं प्रति प्रणिधानं विपाकविचयः। लोकसंस्थानस्वभावविचयाय स्मृतिसमन्वाहारः संस्थानविचयः। [५४]उत्तमक्षमादिलक्षणो धर्म उक्तः। तस्मादनपेतं धर्म्यं ध्यानं चतुर्विकल्पमवसेयम्। तदविरतदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां भवति।

**त्रयाणां ध्यानानां निरूपणं कृतम्। इदानीं शुक्लध्यानं निरूपयितव्यम्। तद्वक्ष्यमाणचतुर्विकल्पम्। तत्राद्ययोः स्वामिनिर्देशार्थमिदमुच्यते–**

---

५३. असंयमेति–प्रमत्तसंयतानां चतुर्विधमप्यार्त्तं भवत्यन्यत्र निदानात्। देशविरतस्यापि निदानं न स्यात्सशल्य-व्रतित्वाघटनात् अथवा स्वल्पनिदानशल्येनाणुव्रतित्वाविरोधाद्देशव्रतस्य चतुर्विधमप्यार्तं संगच्छते एव प्रमत्तसंयतानां तु प्रमादस्योदयाधिक्यात्कदाचित्संभवति। नारायणास्तु निदानकरणकाले मिथ्यादृष्टय एव ज्ञेयाः। **५४.** उत्तमेति–धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दसविहो धम्मो। चारित्तं खलु धम्मो जीवाण य रक्खणं धम्मो। तस्मादुक्तलक्षणाद्धर्मादनपेतं अपरिच्युतं ध्यानं धर्म्यमुच्यते। ईदृग्विधं चतुर्विधमपि धर्म्यमप्रमत्तसंयतस्य साक्षाद्भवति। अविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्तसंयतानां तु गौणवृत्त्या धर्म्यध्यानं वेदितव्यमिति।

## शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥

वक्ष्यमाणेषु शुक्लध्यानविकल्पेषु आद्ये शुक्लेध्याने पूर्वविदो भवतः श्रुतकेवलिन इत्यर्थः। चशब्देन धर्म्यमपि समुच्चीयते। तत्र व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरिति [५५]श्रेण्यारोहणात्प्राग्धर्म्यं, श्रेण्योः शुक्ले इति व्याख्यायते।

**अवशिष्टे कस्य भवत इत्यत्रोच्यते –**

## [५६]परे केवलिनः ॥३८॥

प्रक्षीणसकलज्ञानावरणस्य केवलिनः सयोगस्यायोगस्य च परे उत्तरे शुक्लध्याने भवतः।

**यथासंख्यं तद्विकल्पप्रतिपादनार्थमिदमुच्यते–**

## पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥३९॥

पृथक्त्ववितर्कमेकत्ववितर्कं, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रियानिवर्ति चेति चतुर्विधं शुक्लध्यानं वक्ष्यमाणलक्षणमुपेत्य सर्वेषामन्वर्थत्वमवसेयम्।

**तस्यालम्बनविशेषनिर्धारणार्थमाह–**

## [५७]त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥४०॥

योगशब्दो व्याख्यातार्थः कायवाङ्मनःकर्म योग इत्यत्र। उक्तैश्चतुर्भिः शुक्लध्यानविकल्पैस्त्रि-योगादीनां चतुर्णां यथासंख्येनाभिसम्बन्धो वेदितव्यः। त्रियोगस्य पृथक्त्ववितर्कं, त्रिषु योगेष्वेक-योगस्यैकत्ववितर्कं, काययोगस्य सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, अयोगस्य व्युपरतक्रियानिवर्तीति।

**तत्राद्ययोर्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते–**

## एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४१॥

एक आश्रयो ययोस्ते एकाश्रये। **उभे अपि परिप्राप्तश्रुतज्ञाननिष्ठेनारभ्येते इत्यर्थः।** वितर्कश्च वीचारश्च वितर्कवीचारौ, सह वितर्कवीचाराभ्यां वर्तेते इति सवितर्कवीचारे। पूर्वे पृथक्त्वैकत्ववितर्के इत्यर्थः।

---

**५५.** श्रेण्यारोहणादिति–सकलश्रुतधरस्या–पूर्वकरणात्पूर्वं धर्म्यध्यानं चतुर्थात्सप्तमं यावद्धर्म्यध्यानमुदीरितम्। अपूर्वकरणेऽनिवृत्तिकरणे सूक्ष्मसांपराये उपशान्तकषाये चेति गुणस्थानचतुष्टये पृथक्त्ववितर्कवीचारं नाम प्रथमं शुक्लध्यानं भवति। क्षीणकषायगुणस्थाने तु एकत्ववितर्कावीचारं भवति। द्रव्यं चैकमणुं चैकं पर्यायं चैकमग्रिमम्। चिन्तयत्येकयोगेन यत्रैकत्वं तदुच्यते ॥१॥ अणुशब्देनात्रात्मा ग्राह्यः सूक्ष्मत्वेन, न तु परमाणुर्ग्राह्यः। **५६.** परे इति–सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति सयोगस्य, व्युपरतक्रियानिवर्ति अयोगस्य। सूक्ष्मक्रिया पादविहरणात्मक–क्रियारहिता कायोत्सर्गेण वा पद्मासनेनैव गमनं तस्या अप्रतिपातो अविनाशो विद्यते यस्मिन्शुक्लध्याने तत्सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति। व्युपरता विनष्टा सूक्ष्मापि क्रिया व्युपरतक्रिया तस्यां सत्यां अतिशयेन वर्तते इत्येवंशीलं यच्छुक्लध्यानं तद् व्युपरतक्रियानिवर्ति। **५७.** त्र्येकयोगादीति–मनोवचनकायानामवष्टंभेनात्म-प्रदेशपरिस्पंदनं आत्मप्रदेशचलनमीदृग्विधं पृथक्त्ववितर्कमाद्यम्। त्रिषु योगेषु मध्ये मनोवचनकायानां मध्येऽन्यतमावलंबनेनात्म-प्रदेशपरिस्पदनं द्वितीयमेकत्ववितर्कम्। काययोगावलंबनेनात्मप्रदेशचलनं तृतीयम्। एकमपि योगमनवलम्ब्यात्मप्रदेशपरिस्पदनं चतुर्थम्।

**तत्र यथासंख्यप्रसंगेऽनिष्टनिवृत्त्यर्थमिदमुच्यते—**

## अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥

पूर्वयोर्यत् द्वितीयं तदवीचारं प्रत्येतव्यम्। एतदुक्तं भवति—आद्यं सवितर्कं सवीचारं च भवति, द्वितीयं सवितर्कमवीचारं चेति।

**अथ वितर्कवीचारयोः कः प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—**

## वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥

विशेषेण तर्कणमूहनं वितर्कः श्रुतज्ञानमित्यर्थः। अथ को वीचारः?

## वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ॥४४॥

अर्थोध्येयः द्रव्यं पर्यायो वा। व्यञ्जनं वचनम्। योगः कायवाङ्मनःकर्मलक्षणः। संक्रान्तिः परिवर्तनम्। द्रव्यं विहाय पर्यायमुपैति, पर्यायं त्यक्त्वा द्रव्यमित्यर्थसंक्रान्तिः। एकं श्रुतवचनमुपादाय वचनान्तरमालम्बते, तदपि विहायान्यदिति व्यंजनसंक्रान्तिः। काययोगं त्यक्त्वा योगान्तरं गृह्णाति, योगान्तरं त्यक्त्वा काययोगमिति योगसंक्रान्तिः। एवं परिवर्तनं वीचार इत्युच्यते। संक्रान्तौ सत्यां कथं ध्यानमिति चेत्—[५८]ध्यानसन्तानमपि ध्यानमुच्यते इति न दोषः। तदेतत्सामान्यविशेषनिर्दिष्टं चतुर्विधं धर्म्यं शुक्लं च पूर्वोदितगुप्त्यादिबहुप्रकारोपायं संसारनिवृत्तये मुनिर्ध्यातुमर्हति कृतपरिकर्मा। तत्र [५९]द्रव्यपरमाणुं [६०]भावपरमाणुं वा ध्यायन्नाहितवितर्कसामर्थ्यादर्थव्यंजने, कायवचसी च, पृथक्त्वेन संक्रामता मनसाऽपर्याप्तबालोत्साहवदव्यवस्थितेनानिशितेनापि शस्त्रेण चिरात्तरुं छिन्दन्निव, मोहप्रकृतीरुपशमयन्क्षपयंश्च पृथक्त्ववीचारध्यानभाग्भवति। स एव पुनः समूलतूलं मोहनीयं निर्दिधक्षन्ननन्तगुणविशुद्धियोगविशेषमाश्रित्य, बहुतराणां ज्ञानावरणसहायीभूतानां प्रकृतीनां बन्धं निरुन्धन्, स्थितिह्रासक्षयौ च कुर्वन्, श्रुतज्ञानोपयोगे निवृत्तार्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिरविचलितमनाः क्षीणकषायो वैडूर्यमणिरिव निरुपलेपो ध्यात्वा, पुनर्न निवर्तत इत्युक्तमेकत्ववितर्कम्। एवमेकत्ववितर्क-शुक्लध्यान-वैश्वानरनिर्दग्धघातिकर्मेन्धनः प्रज्वलितकेवलज्ञानगभस्तिमण्डलो मेघपञ्जरनिरोधनिर्गत इव घर्मरश्मिर्वाभासमानो भगवांस्तीर्थंकर इतरो वा केवली लोकेश्वराणामभिगमनीयोऽर्चनीयश्चो-त्कर्षेणायुषः पूर्वकोटीं देशोनां विहरति। स यदाऽन्तर्मुहूर्त्तशेषायुष्कस्तत्तुल्यस्थितिवेद्यनामगोत्रश्च भवति, तदा सर्वं वाङ्मानसयोगं बादरकाययोगं च परिहाप्य सूक्ष्मकाययोगालम्बनः सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-ध्यानमास्कन्दितुमर्हतीति। यदा पुनरन्तर्मुहूर्त्तशेषायुष्कस्ततोऽधिकस्थितिशेषकर्मत्रयो भवति सयोगी तदाऽऽत्मोपयोगातिशयस्य सामायिकसहायस्य विशिष्टकरणस्य महासंवरस्य लघुकर्मपरिपाचनस्याशेष-कर्मरेणुपरिसातनशक्तिस्वाभाव्याद्दण्डकपाटप्रतरलोकपूरणानि स्वात्मप्रदेशविसर्पणतश्चतुर्भिः समयैः कृत्वा समुपहतप्रदेशविसरणः समीकृतस्थितिशेषकर्मचतुष्टयः पूर्वशरीरप्रमाणो भूत्वा सूक्ष्मकाययोगेन

---

५८. ध्यानेति – ध्यानसंतानमपि ध्यानं भवत्येव बहुत्वाद्दोषो न विमृश्यते। ५९. द्रव्यपरमाणुं द्रव्यस्य सूक्ष्मत्वं। ६०. भावपरमाणुं भावस्य पर्यायस्य सूक्ष्मत्वं।

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानं ध्यायते। ततस्तदनन्तरं समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिध्यानमारभते। समुच्छिन्न-प्राणापानप्रचारसर्वकायवाङ्मनोयोगसर्वप्रदेशपरिस्पन्दनक्रियाव्यापारत्वात्समुच्छिन्नक्रियानिवर्तीत्युच्यते। तस्मिन्समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिनि ध्याने सर्वबन्धास्रवनिरोधसर्वाशेषकर्मशातनसामर्थ्योपपत्तेरयोगिकेवलिनः सम्पूर्णयथाख्यातचारित्रज्ञानदर्शनं सर्वसंसारदुःखजालपरिष्वङ्गोच्छेदजननं साक्षान्मोक्षकारणमुपजायते। स पुनरयोगकेवली भगवांस्तदा ध्यानातिशयाग्निनिर्दग्धसर्वमलकलङ्कबन्धनो निरस्तकिट्टधातुपाषाण-जात्यकनकवल्लब्धात्मा परिनिर्वाति[६१]। तदेतत् द्विविधं तपोऽभिनवकर्मास्रवनिरोध-हेतुत्वात्संवरकारणं, प्राक्तनकर्मरजोविधूननिमित्तत्वान्निर्जराहेतुरपि भवति।

**अत्राह सम्यग्दृष्टयः किं सर्वे समनिर्जरा आहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—**

### सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्ष-पकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥४५॥

त एते दश सम्यग्दृष्ट्यादयः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः। तद्यथा—भव्यः पञ्चेन्द्रियः सञ्ज्ञी पर्याप्तकः पूर्वोक्तकाललब्ध्यादिसहायः परिणामविशुद्ध्या वर्द्धमानः क्रमेणापूर्वकरणादिसोपानपंक्त्योत्प्ल-वमानो बहुतरकर्मनिर्जरो भवति। स एव पुनः प्रथमसम्यक्त्वप्राप्तिनिमित्तसन्निधाने सति सम्यग्दृष्टिर्भवन्न-संख्येयगुणनिर्जरो भवति। स एव पुनश्चारित्रमोहकर्मविकल्पाप्रत्याख्यानावरणक्षयोपशमनिमित्तपरिणाम-प्राप्तिकाले विशुद्धिप्रकर्षयोगात् श्रावको भवन् ततोऽसंख्येयगुणनिर्जरो भवति। स एव पुनः प्रत्याख्यानावरणक्षयोपशमकारणपरिणामविशुद्धियोगाद्विरतव्यपदेशभाक् सन् ततोऽसंख्येयगुणनिर्जरो भवति। स एव पुनरनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभानां वियोजनपरो भवति [६२]यदा तदा परिणाम-विशुद्धिप्रकर्षयोगात्ततोऽसंख्येयगुणनिर्जरो भवति। स एव पुनर्दर्शनमोह-प्रकृतित्रयतृणनिचयं निर्दिधक्षन् परिणामविशुद्ध्यतिशययोगाद्दर्शनमोहक्षपकव्यपदेशभाक् तेष्वेव पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति। एवं स क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा श्रेण्यारोहणाभिमुखश्चारित्रमोहोपशमं प्रति व्याप्रियमाणो विशुद्धि-प्रकर्षयोगादुपशमकव्यपदेशमनुभवन् पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति। स एव पुनरशेषचारित्र-मोहोपशम-निमित्तसन्निधाने परिप्राप्तोपशान्तकषायव्यपदेशः पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति। स यदा निःशेषचारित्रमोहक्षपणकारणपरिणामाभिमुखः क्षीणकषायव्यपदेशमास्कन्दन्पूर्वोक्तादसंख्येय-गुणनिर्जरो भवति। स एव द्वितीयशुक्लध्यानानलनिर्दग्धघातिकर्मनिचयःसन् जिनव्यपदेशभाक् पूर्वोक्तादसंख्येयगुणनिर्जरो भवति।

**आह सम्यग्दर्शनसन्निधानेऽपि यद्यसंख्येयगुणनिर्जरत्वात्परस्परतो न साम्यमेषां, किं तर्हि श्रावकवदमी विरतादयो गुणभेदान्न निर्ग्रन्थतामर्हन्तीत्युच्यते। नैतदेवम्। कुतः? यस्माद्गुणभेदादन्योऽन्य-विशेषेऽपि नैगमादिनयव्यापारात्सर्वेऽपि हि भवन्ति—**

---

**६१.** परिनिर्वातीति-अनंतसुखं मोहक्षयात्। अनंतज्ञानदर्शने ज्ञानावरणदर्शनावरणयोः क्षयात्। अनंतवीर्य-मन्तरायक्षयात्। आयुःक्षयाज्जन्ममरणक्षयः। नामक्षयादमूर्तत्वं। नीचोच्चकुलक्षयो गोत्रक्षयात्। वेद्यक्षयादिन्द्रिय-जनितसुखक्षयः। **६२.** अविरतादिचतुर्षु, इत्यधिकः पाठस्तालपत्रपुस्तके वर्तते।

## पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ॥४६॥

उत्तरगुणभावनापेतमनसो व्रतेष्वपि क्वचित्कदाचित्परिपूर्णतामपरिप्राप्नुवन्तोऽविशुद्धाः [६३]पुलाक-सादृश्यात्पुलाका इत्युच्यन्ते। नैर्ग्रन्थ्यं प्रति स्थिता अखण्डितव्रताः शरीरोपकरण-विभूषानुवर्तिनोऽविविक्त-परिच्छदा[६४] मोहशबलयुक्ता बकुशाः। शबलपर्यायवाची बकुशशब्दः। कुशीला द्विविधाः। प्रतिसेवनाकुशीलाः कषायकुशीला इति। अविविक्तपरिग्रहाः परिपूर्णोभयाः कथञ्चिदुत्तर-गुणविराधिनः प्रतिसेवनाकुशीलाः। वशीकृतान्यकषायोदयाः सञ्ज्वलनमात्रतन्त्राः कषायकुशीलाः। उदकदण्डराजिवदनभिव्यक्तोदयकर्माण ऊर्ध्वं मुहूर्तादुद्भिद्यमानकेवलज्ञानदर्शनभाजो निर्ग्रन्थाः। प्रक्षीणघातिकर्माणः [६५]केवलिनो द्विविधाः स्नातकाः। त एते पञ्चापि निर्ग्रन्थाः। चारित्रपरिणामस्य प्रकर्षाप्रकर्षभेदे सत्यपि नैगमसंग्रहादिनयापेक्षया सर्वेऽपि ते निर्ग्रन्थाः इत्युच्यन्ते।

**तेषां पुलाकादीनां भूयोऽपि विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—**

## संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥४७॥

त एते पुलाकादयः संयमादिभिरष्टभिरनुयोगैः साध्या व्याख्येयाः। तद्यथा – पुलाकबकुशप्रतिसेवना-कुशीला द्वयोः संयमयोः सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्वर्तन्ते। कषायकुशीला द्वयोः संयमयोः परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराययोः पूर्वयोश्च। निर्ग्रन्थस्नातका एकस्मिन्नेव यथाख्यातसंयमे सन्ति। श्रुतंपुलाकबकुशप्रति-सेवनाकुशीला [६६]उत्कर्षेणाभिन्नाक्षरदशपूर्वधराः। कषायकुशीला निर्ग्रन्थाश्चतुर्दशपूर्वधराः। जघन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु। बकुशकुशीलनिर्ग्रन्थानां श्रुतमष्टौ [६७]प्रवचनमातरः। स्नातका अपगतश्रुताः केवलिनः। प्रतिसेवना-पञ्चानां मूलगुणानां [६८]रात्रिभोजनवर्जनस्य च पराभियोगाद्बलादन्यतमं प्रतिसेवमानः पुलाको भवति। बकुशो द्विविधः-उपकरणबकुशः शरीरबकुशश्चेति। तत्रोपकरणबकुशो बहुविशेषयुक्तोपकरणाकांक्षी, [६९]शरीरसंस्कारसेवी शरीरबकुशः। प्रतिसेवनाकुशीलो मूलगुणान-विराधयन्नुत्तरगुणेषु काञ्चिद्विराधनां प्रतिसेवते। कषायकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकानां प्रतिसेवना नास्ति। तीर्थमिति सर्वे सर्वेषां तीर्थकराणां तीर्थेषु भवन्ति। लिङ्गं द्विविधं द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गं चेति। भावलिङ्गं प्रतीत्य पञ्च निर्ग्रन्था लिङ्गिनो भवन्ति। द्रव्यलिङ्गं प्रतीत्य[७०] भाज्याः। लेश्या-पुलाकस्योत्तरास्तिस्रः। बकुशप्रति-

---

**६३.** पुलाकसादृश्यात् पुलाका उच्यते मलिनतंदुलसमानत्वात्पुलाकाः कथ्यन्ते। भक्तसिक्त्थे च संक्षेपे सारधान्ये पुलाकवागिति वचनात्। **६४.** अविविक्तेति–अविविक्तशब्देन असंयतः, परिच्छदशब्देन परिवारः। अनुमोदनं अनुमतिः। शबलशब्देन कर्बुरत्वं तद्युक्ता बकुशा इत्यर्थः। शबलपर्यायवाचको बकुशशब्दो वेदितव्यः। **६५.** द्विविधाः केवलिनः तीर्थकर–केवलीतरकेवलिभेदात्। **६६.** अभिन्नेति–अभिन्नाक्षराणि एकेनाप्यक्षरेण अन्यूनानि दशपूर्वाणि भवतीत्यर्थः। **६७.** प्रवचनेति–समितिगुप्तिप्रतिपादकं आगमं जानंतीत्यर्थः। **६८.** रात्रिभोजनेति–रात्रिभोजनवर्जनस्य विराधकः कथमिति चेदुच्यते –श्रावकादीनामुपकारोऽनेन छात्रेण भविष्यतीति छात्रादिकं रात्रौ भोजयतीति विराधकः स्यात्। **६९.** शरीरेति–वपुरभ्यंगमर्दनक्षालनविलेपनादिसंस्कारभागी शरीरबकुशः प्रतिपाद्यते। **७०.** द्रव्यलिंगं प्रतीत्येति – तत्किं? केचिदसमर्था महर्षयःशीतकालादौ कंबलशब्दवाच्यं कौशेयादिकं गृह्णान्ति, न तत्प्रक्षालयन्ति, न सीव्यन्ति, न प्रयत्नादिकं कुर्वन्ति, अपरकाले परिहरन्ति। केचिच्छरीरे उत्पन्नदोषाल्लज्जितत्वात्तथा कुर्वन्तीति व्याख्यान–माराधनाभगवतीप्रोक्ताभिप्रायेणापवादरूपं

सेवनाकुशीलयोः षडपि। कृष्णलेश्यादित्रितयं तयोः कथमिति चेदुच्यते–तयोरुपकरणासक्तिसंभवा-दार्तध्यानं कदाचित्सम्भवति, आर्तध्यानेन च कृष्णादिलेश्यात्रितयं सम्भवतीति। कषायकुशीलस्य चतस्र उत्तराः। सूक्ष्मसाम्परायस्य निर्ग्रन्थस्नातकयोश्च शुक्लैव केवला। अयोगा अलेश्याः। उपपादः–पुलाकस्योत्कृष्ट उपपाद उत्कृष्टस्थितिदेवेषु सहस्रारे। बकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोर्द्वाविंशति-सागरोपमस्थितिषु आरणाच्युतकल्पयोः। कषायकुशीलनिर्ग्रन्थयोस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिषु सर्वार्थसिद्धौ। सर्वेषामपि जघन्यः सौधर्मकल्पे द्विसागरोपमस्थितिषु। स्नातकस्य निर्वाणमिति। स्थानम् –असंख्येयानि संयमस्थानानि कषायनिमित्तानि भवन्ति। तत्र सर्वजघन्यानि लब्धिस्थानानि पुलाककषायकुशीलयोस्तौ युपगदसंख्येयानि स्थानानि गच्छतस्ततः पुलाको व्युच्छिद्यते। कषायकुशीलस्ततोऽसंख्येयानि स्थानानि गच्छत्येकाकी। ततः कषाय–कुशीलप्रतिसेवनाकुशीलबकुशा युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छन्ति। ततो बकुशो व्युच्छिद्यते। ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा प्रतिसेवनाकुशीलो व्युच्छिद्यते। ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा कषायकुशीलो व्युच्छिद्यते। अत ऊर्ध्वमकषायस्थानानि निर्ग्रन्थः प्रतिपद्यते। सोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा व्युच्छिद्यते। अत ऊर्ध्वमेकं स्थानं गत्वा स्नातको निर्वाणं प्राप्नोति। तेषां संयमलब्धिरनन्तगुणा भवति।

**॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां नवमोऽध्यायः॥**



ज्ञातव्यं। उत्सर्गापवादयोरपवादो विधिर्बलवानिति उत्सर्गेण तावद्यथोक्तमाचेलक्यं प्रोक्तमस्ति। आर्यासमर्थ-दोषवच्छरीराद्यपेक्षयापवादव्याख्याने न दोषः। अमुमेवाधारं गृहीत्वा जैनभासाः केचित्सचेलत्वं मुनीनां स्थापयन्ति। तन्मिथ्या साक्षान्मोक्षकारणं निर्ग्रंथलिङ्गमिति वचनात्। अपवादव्याख्यानमुपकरणकुशीलापेक्षया कर्तव्यम्।

# अथ दशमोऽध्यायः

**आह – अन्ते निर्दिष्टस्य मोक्षस्येदानीं स्वरूपाभिधानं प्राप्तकालमिति। सत्यमेवं। मोक्षप्राप्तिः केवलज्ञानावाप्तिपूर्विकेति केवलज्ञानोत्पत्तिकारणमुच्यते–**

## मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्[1]॥ १॥

इह वृत्तिकरणं न्याय्यम्। कुतः? लघुत्वात्। कथम्? क्षयशब्दस्याकरणात्, विभक्त्यन्तरनिर्देशस्य-चाभावाच्चशब्दस्य चाप्रयोगाल्लघुसूत्रं भवति ''मोहज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयात्केवलम्'' इति। सत्यमेतत्। क्षयक्रमप्रतिपादनार्थो वाक्यभेदेन निर्देशः क्रियते–प्रागेव मोहं क्षयमुपनीयान्तर्मुहूर्तं क्षीणकषायव्यपदेशमवाप्य ततो युगपत् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणां क्षयं कृत्वा केवलमवाप्नोतीति। तत्क्षयहेतुः केवलोत्पत्तिरिति हेतुलक्षणो विभक्तिनिर्देशः कृतः। कथं प्रागेव मोहं क्षयमुपनीयते? इति चेदुच्यते भव्यः सम्यग्दृष्टिः परिणामविशुद्ध्या वर्धमानो असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतप्रमत्ता-प्रमत्तगुणस्थानेषु कस्मिंश्चिन्मोहस्य सप्त प्रकृतीः क्षयमुपनीय क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा क्षपक-श्रेण्यारोहणाभिमुखोऽधःप्रवृत्तिकरणमप्रमत्तस्थाने[2] प्रतिपद्यापूर्वकरणप्रयोगेणापूर्वकरणक्षपक-गुणस्थानव्यपदेशमनुभूय तत्राभिनवशुभाभिसन्धितनूकृतपापप्रकृतिस्थित्यनुभागो विवर्धितशुभ-कर्मानुभवोऽनिवृत्तिकरणप्राप्त्यानिवृत्तिबादरसाम्परायक्षपकगुणस्थानमधिरुह्य तत्र कषायाष्टकं नष्टं कृत्वा, नपुंसकवेदनाशं समापाद्य, स्त्रीवेदमुन्मूल्य नोकषायषट्कं पुंवेदे प्रक्षिप्य, क्षपयित्वा पुंवेदं क्रोधसंज्वलने, क्रोधसञ्जलनं मानसंज्वलने, मानसंज्वलनं मायासंज्वलने, मायासंज्वलनं लोभसंज्वलने, क्रमेण [3]बादरकिट्टिविभागेनविलयमुपनीय लोभसंज्वलनं तनूकृत्य सूक्ष्मसाम्परायक्षपकत्वमनुभूय निरवशेषं मोहनीयं निर्मूलकषायं कषित्वा क्षीणकषायतामधिरुह्यावतारितमोहनीयभार उपान्त्यप्रथमे समये निद्राप्रचले प्रलयमुपनीय, पञ्चानां ज्ञानावरणानां, चतुर्णां दर्शनावरणानां, पञ्चानामन्तरायाणां चान्तमन्ते समुपनीय, तदनन्तरं ज्ञानदर्शनस्वभावं केवलपर्यायमप्रतर्क्यविभूतिविशेषमवाप्नोति।

---

१. केवलमिति–ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्चकारादायुस्त्रिकनामत्रयोदशकक्षयाच्च केवलमुत्पद्यते। त्रिषष्टिप्रकृति-क्षयात्केवलज्ञानं भवतीत्यर्थः। अष्टाविंशतिप्रकृतयो मोहस्य। पंच ज्ञानावरणस्य, नव दर्शनावरणस्य, पंचान्तरायस्य, मनुष्यायुर्वर्ज्यमायुस्त्रयं, साधारणातपपंचेन्द्रियरहितचतुर्जाति-नरकगतिनरकगत्यानुपूर्व्यस्थावरसूक्ष्मतिर्यग्गतितिर्यग्गत्यानु-पूर्व्योद्योतेतिलक्षणास्त्रयोदश नामकर्मणः प्रकृतयश्चेति त्रिषष्टिः। २. अथाप्रवृत्तिकरणं–अपूर्वचारित्रं। अथवा अथ अनंतरं प्रवृत्तकरणं कथ्यते तदपि किं? परिणामविशेषा इत्यर्थः। कीदृशास्तेऽथाप्रवृत्तकरणशब्दवाच्या विशिष्ट परिणामा इति चेदुच्यते। एकस्मिन्नेकस्मिन्समये एकैकजीवस्यासंख्येयलोकमानावच्छिन्नाः परिणामा भवंति। तत्राप्रमत्तादिगुणस्थाने पूर्वपूर्वसमये प्रवृत्ता यादृशाः परिणामास्तादृशा एव अथानंतरमुत्तरसमयेषु आ समन्तात्प्रवृत्ता विशिष्टचारित्ररूपाः परिणामा अथाप्रवृत्तकरण-शब्दवाच्या भवन्ति। ३. बादरकिट्टीति–कोर्थः? उपायद्वारेण (शुद्धपरिणामादिना) फलं भुक्त्वा निर्जीर्यमाणं उद्धृतं शेषमुपहतशक्तिकं कर्म किट्टीति आज्यकिट्टिवत्। सा किट्टिर्द्विधा बादरकिट्टिसूक्ष्मकिट्टिभेदात्। इति किट्टिशब्दस्यार्थो वेदितव्यः।

**आह कस्माद्धेतोर्मोक्षः किंलक्षणश्चेत्यत्रोच्यते—**

**बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥**

मिथ्यादर्शनादिहेत्वभावादभिनवकर्माभावः पूर्वोदितनिर्जराहेतुसन्निधाने चार्जित-कर्मनिरासः। ताभ्यां बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यामिति हेतुलक्षणविभक्तिनिर्देशः। ततो भवस्थितिहेतुसमीकृतशेषकर्मावस्थि तस्य युगपदात्यन्तिकःकृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः प्रत्येतव्यः। कर्माभावो द्विविधः—यत्नसाध्योऽयत्नसाध्यश्चेति। तत्र चरमदेहस्य नरकतिर्यग्देवायुषामभावो न यत्नसाध्योऽसत्त्वात्। यत्नसाध्य इत ऊर्ध्वमुच्यते— असंयतसम्यग्दृष्ट्यादिषु चतुर्षु गुणस्थानेषु कस्मिंश्चित्सप्तप्रकृतिप्रक्षयः क्रियते। निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धिनरकगतितिर्यग्गत्येकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिनरकगतितिर्यग्गतिप्रायोग्यानु-पूर्व्यातपोद्योतस्थावरसूक्ष्मसाधारणसञ्ज्ञिकानां षोडशानां कर्मप्रकृतीनामनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने युगपत्क्षयः क्रियते। ततः परं तत्रैव कषायाष्टकं नष्टं क्रियते, नपुंसकवेदः स्त्रीवेदश्च तत्रैव क्षयमुपयाति। नोकषायषट्कं च सहैकेनैव प्रहारेण विनिपातयति। ततः पुंवेदसंज्वलनक्रोधमानमायाः क्रमेण तत्रैवात्यान्तिकं ध्वंसमास्कन्दन्ति। लोभसंज्वलनः सूक्ष्मसाम्परायान्ते यात्यन्तं। निद्राप्रचले क्षीणकषाय-वीतरागच्छद्मस्थस्योपान्त्यसमये प्रलयमुपव्रजतः। पञ्चानां ज्ञानावरणानां, चतुर्णां दर्शनावरणानां, पञ्चानामन्तरायाणां च तस्यैवान्त्यसमये प्रक्षयो भवति। अन्यतरवेदनीयदेवगत्यौदारिकवैक्रियिकाहारक-तैजसकार्मणशरीरसंस्थानषट्कौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गषट्संहननपञ्चाप्रशस्तवर्णपञ्चप्रश-स्तवर्णगन्धद्वयपञ्चप्रशस्तरस–पञ्चाप्रशस्तरस–स्पर्शाष्टक–देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यागुरुलघूपघात-परघातोच्छ्वासप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगत्यपर्याप्तकशरीरस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगसुस्वरदुःस्वरानादेया-यशःकीर्तिनिर्माणनामनीचैर्गोत्राख्या द्वासप्ततिप्रकृतयोऽयोगकेवलिन उपान्त्यसमये विनाशमुपयान्ति। अन्यतरवेदनीयमनुष्यायुर्मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजातिमनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यत्रसबादरपर्याप्तक-सुभगादेययशःकीर्तितीर्थकरनामोच्चैर्गोत्रसञ्ज्ञिकानां त्रयोदशानां प्रकृतीनामयोगकेवलिनश्चरमसमये विच्छेदो भवति।

**आह किमासां पौद्गलिकीनामेव द्रव्यकर्मप्रकृतीनां निरासान्मोक्षोऽवसीयत उत भाव-कर्मणोऽपीत्यत्रोच्यते-**

**औपशमिकादिभव्यत्वानां[४] च ॥३॥**

किं? मोक्ष इत्यनुवर्तते। भव्यत्वग्रहणमन्यपारिणामिकनिवृत्त्यर्थम्। तेन पारिणामिकेषु भव्यत्व-स्यौपशमिकादीनां च भावानामभावान्मोक्षो भवतीत्यवगम्यते।

आह यद्यपवर्गो भावोपरतेः प्रतिज्ञायते नन्वौपशमिकादिभावनिवृत्तिवत्सर्वक्षायिकभावनिवृत्तावपि

---

४. भव्यत्वानामिति – भव्यत्वं हि पारिणामिको भावस्तेन भव्यत्वग्रहणेन पारिणामिकेषु भावेषु भव्यत्वस्यैव प्रक्षयो मोक्षो भवति। नान्येषां जीवत्वसत्वस्तुत्वामूर्तत्वादीनां पारिणामिकानां क्षयो वर्तते तत्क्षये शून्यत्वप्रसंगात्। ननु द्रव्यकर्मनाशे तन्निमित्तानामौपशमिकादीनां भावानां स्वयमेवाभावः सिद्धः किमनेन सूत्रेणेति चेत्सत्यं नायमेकान्तो, निमित्ताभावेऽपि कार्यभावदर्शनात् दंडाद्यभावेऽपि घटादिदर्शनात्। अथवा सामर्थ्याल्लब्धस्यापि भावकर्मक्षयस्य सूत्रं तु स्पष्टार्थम्।

व्यपदेशो मुक्तस्य प्राप्नोतीति। स्यादेतदेवं, यदि विशेषो नोच्यते अस्त्यत्र विशेष इत्यपवाद-विधानार्थमिदमुच्यते—

**अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥४॥**

अन्यत्रशब्दापेक्षया 'का' निर्देशः? केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यो अन्यत्रान्यस्मिन्नयं विधिरिति। यदि चत्वार एवावशिष्यन्ते अनन्तवीर्यादीनां निवृत्तिः प्राप्नोति—नैष दोषः—ज्ञानदर्शनाविना-भावित्वादनन्तवीर्यादीनामविशेषः। अनन्तसामर्थ्यहीनस्यानन्तावबोधवृत्त्यभावाज्ज्ञानमय-पर्यायत्वाच्च सुखस्येति। अनाकारत्वान्मुक्तानामभाव इति चेन्न—अतीतानन्तरशरीराकारत्वात्।

स्यान्मतं यदि शरीरानुविधायी जीवस्तदभावात्स्वाभाविकलोकाकाशपरिमाणत्वात्तावद्विसर्पणं प्राप्नोति? नैष दोषः। कुतः? कारणाभावात्। नामकर्मसम्बन्धो हि संहरणविसर्पणकारणं, तदभावात्पुनः संहरणविसर्पणाभावः। यदि कारणाभावान्न संहरणं न विसर्पणं तर्हि गमनकारणाभावादूर्ध्वगमनमपि न प्राप्नोति। अधस्तिर्यग्गमनाभाववत्। ततो यत्र मुक्तस्तत्रैवावस्थानं प्राप्नोतीत्यत्रोच्यते—

**तदनंतरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥५॥**

तस्यानंतरं। कस्य? सर्वकर्मविप्रमोक्षस्य। आङ्भिविध्यर्थः। ऊर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्।

**अनुपदिष्टहेतुकमिदमूर्ध्वगमनं कथमध्यवसातुं शक्यमित्यत्रोच्यते—**

**पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥६॥**

आह—हेत्वर्थः पुष्कलोऽपि दृष्टान्तसमर्थनमन्तरेणाभिप्रेतार्थसाधनाय नालमित्यत्रोच्यते—

**आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥७॥**

पूर्वसूत्रे विहितानां हेतूनामत्रोक्तानां दृष्टान्तानां च यथासंख्यमभिसम्बन्धो भवति। तद्यथा—कुलालप्रयोगापादितहस्तदण्डचक्रसंयोगपूर्वकं भ्रमणमुपरतेऽपि तस्मिन्पूर्वप्रयोगादासंस्कारक्षयाद् भ्रमति। एवं भवस्थेनात्मनाऽपवर्गप्राप्तये बहुशो यत्प्रणिधानं कृतं तदभावेऽपि तदावेशपूर्वकं मुक्तस्य गमन-मवसीयते। किं च असङ्गत्वाद्यथा मृत्तिकालेपजनितगौरवमलाबुद्रव्यं जलेऽधःपतितं जलक्लेदविश्लिष्ट-मृत्तिकाबन्धनं लघुसदूर्ध्वमेव गच्छति, तथा कर्मभाराक्रान्तिवशीकृत आत्मा तदावेशवशात्संसारेऽनियमेन गच्छति। तत्सङ्गविप्रमुक्तौ तूपर्येवोपयाति। किं च बन्धच्छेदात्—यथा बीजकोशबन्धच्छेदादेरण्डबीजस्य गतिर्दृष्टा तथा मनुष्यादिभवप्रापकगतिजातिनामादिसकलकर्मबन्धच्छेदान्मुक्तस्योर्ध्वगतिरवसीयते। किं च तथागतिपरिणामात्—यथा तिर्यक्प्लवनस्वभावसमीरणसम्बन्धनिरुत्सुका प्रदीपशिखा स्वभावादुत्पतति तथा मुक्तात्माऽपि नानागतिविकारकारणकर्मनिरावरणे सत्यूर्ध्वगतिस्वभावत्वादूर्ध्वमेवा-रोहति।

**आह यदि मुक्त ऊर्ध्वगतिस्वभावो लोकान्तादूर्ध्वमपि कस्मान्नोत्पततीत्यत्रोच्यते—**

## [५]धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥

गत्युपग्रहकारणभूतो धर्मास्तिकायो नोपर्यस्तीत्यलोके गमनाभावः। तदभावे च लोकालोकविभागाभावः प्रसज्यते।

**आह अमी परिनिर्वृत्ता गतिजात्यादिभेदकारणाभावादतीतभेदव्यवहारा एवेति। अस्तिकथञ्चिद्भेदोऽपि। कुतः—**

## क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥९॥

क्षेत्रादिभिर्द्वादशभिरनुयोगैः सिद्धाः साध्या विकल्प्या इत्यर्थः। प्रत्युत्पन्नभूतानुग्रहतन्त्रनयद्वयविवक्षावशात्। तद्यथा—क्षेत्रेण तावत्कस्मिन्क्षेत्रे सिध्यन्ति? प्रत्युत्पन्नग्राहिनयापेक्षया सिद्धिक्षेत्रे, स्वप्रदेशे, आकाशप्रदेशे वा सिद्धिर्भवति। भूतग्राहिनयापेक्षया जन्म प्रति पञ्चदशकर्मभूमिषु, संहरणं प्रति मानुषक्षेत्रे सिद्धिः। कालेन—कस्मिन्काले सिद्धिः? प्रत्युत्पन्ननयापेक्षया एकसमये सिद्ध्यन् सिद्धो भवति। भूतप्रज्ञापननयापेक्षया जन्मतोऽविशेषेणोत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्जातः सिध्यति। विशेषेणावसर्पिण्यां सुषमदुःषमाया अन्त्ये भागे, दुःषमसुषमायां च जातः सिध्यति। न तु दुःषमायां जातो दुःषमायां सिध्यति। अन्यदा नैव सिध्यति। संहरणतः[६] सर्वस्मिन्काले उत्सर्पिण्यामवसर्पिण्यां च सिध्यति। गत्या—कस्यां गतौ सिद्धिः? सिद्धगतौ, मनुष्यगतौ वा। लिङ्गेन[७]—केन सिद्धिः? अवेदत्वेन त्रिभ्यो वा वेदेभ्यः सिद्धिर्भावतो न द्रव्यतः, द्रव्यतः पुल्लिङ्गेनैव। अथवा निर्ग्रन्थलिंगेन सग्रन्थलिंगेन वा सिद्धिर्भूतपूर्वनयापेक्षया। तीर्थेन—केन तीर्थेन सिद्धिः—? द्वेधा तीर्थङ्करेतरविकल्पात्। इतरे द्विविधाः सति तीर्थकरे सिद्धा असति चेति। चारित्रेण केन सिध्यति? [८]अव्यपदेशेनैकचतुःपञ्चविकल्पचारित्रेण वा सिद्धिः। स्वशक्तिपरोपदेशनिमित्तज्ञानभेदात् प्रत्येकबुद्धबोधितविकल्पाः। ज्ञानेन केन? एकेन द्वित्रिचतुर्भिश्च ज्ञानविशेषैः सिद्धिः। आत्मप्रदेशव्यापित्वमवगाहनम्। तत् द्विविधम्। उत्कृष्टजघन्यभेदात्। तत्रोत्कृष्टं पञ्चधनुःशतानि पञ्चविंशत्युत्तराणि। [९]जघन्यमर्धचतुर्थारत्नयो देशोनाः। मध्ये विकल्पाः। एकस्मिन्नवगाहे

---

५. धर्मास्तिकायेति—संते वि धम्मदव्ये अहो ण गच्छेइ तह य तिरियं वा। उड्ढं गमणसहावो मुक्को जीवो हवे जम्हा।
६. संहरणत इति—तत्संहरणं द्विप्रकारं स्वकृतं परकृतं च। चारणविद्याधराणामेव स्वकृतं। देवचारणविद्याधरैः परकृतं। अन्यदेति—दुःषमदुषमायां जातो, सुषमसुषमायां जातः, सुषमायां जातोऽन्त्यभागरहितायां सुषमदुःषमायां च जातो नैव सिध्यति।
७.लिंगेनेति—लिंगशब्देन निर्ग्रंथलिंगेन सिद्धिर्भवति। भूतनयापेक्षया सग्रंथलिंगेन वा सिद्धिर्भवति। साहरणासाहरणे इति वचनात्। पूर्वं निर्ग्रंथः पश्चात् उपसर्गादाभरणादिकं केनचित्कृतं यथा त्रयः पाण्डवाः साभरणा मोक्षं गताः। उपसर्गवशाद्सग्रंथत्वं पांडवादिवत्। ७. ज्ञानेनैकेनैव इत्यपि पाठभेदः। ८. अव्यपदेशेनेति—व्यपदेशरहितेनएषोऽहं सर्वसावद्यत्यागाद्विरतोऽस्मीत्येवंरूपेण सामायिकेन। ऋजुसूत्रनयादेकेन यथाख्यातेन सिद्धिर्भवति। परिहारविशुद्धिसंज्ञकचारित्ररहितैश्चतुर्भिश्चारित्रैः सिद्धिर्भवति।
९. जघन्यमिति—यः किल षोडशे वर्षे सप्तहस्तपरिमाणशरीरो भविष्यति स गर्भाष्टमे वर्षे अर्द्धचतुर्थारत्निप्रमाणो भवति। तस्य च मुक्तिर्भवति। मध्ये नानाभेदावगाहनेन सिद्धिर्भवति। सूत्राणां संख्यां प्रतिपादयन्श्लोकः—

त्रयस्त्रिंशत्त्रिपंचाशन्नवत्रिंशदनुक्रमात्। चत्वारिंशत्सहैकेन द्विचत्वारिंशत्संमता।
सप्तविंशन्नवत्रिंशत्सप्तविंशतिका मताः। चत्वारिंशत्ससप्ताभिर्नवसूत्रपदाः स्मृताः।

सिध्यति। किमन्तरं? सिध्यतां सिद्धानामनन्तरं जघन्येन द्वौ समयौ, उत्कर्षेणाष्टौ। अन्तरं जघन्येनैकः समयः, उत्कर्षेण षण्मासाः। संख्या–जघन्येन एकसमये एकः सिध्यति। उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः। क्षेत्रादिभेदभिन्नानां परस्परतः संख्याविशेषोऽल्पबहुत्वम्। तद्यथा–प्रत्युत्पन्ननयापेक्षया सिद्धिक्षेत्रे सिध्यतां नास्त्यल्पबहुत्वं। भूतपूर्वनयापेक्षया तु उच्यते। क्षेत्रसिद्धा द्विविधाः–जन्मतः संहरणतश्च। तत्राल्पे संहरणसिद्धाः। जन्मसिद्धाः संख्येयगुणाः। क्षेत्राणां विभागः–कर्मभूमिरकर्मभूमिः, समुद्रो द्वीप, ऊर्ध्वमधस्तिर्यगिति। तत्र स्तोका ऊर्ध्वलोकसिद्धाः। अधोलोकसिद्धाः संख्येयगुणाः। तिर्यग्लोक-सिद्धाः संख्येयगुणाः। सर्वतः स्तोकाः समुद्रसिद्धाः, द्वीपसिद्धाः संख्येयगुणाः। एवं तावदविशेषेण सर्वतः स्तोका लवणोदसिद्धाः। कालोदसिद्धाः संख्येयगुणाः। जम्बूद्वीपसिद्धाः संख्येयगुणाः। धातकी-खण्डसिद्धाः संख्येयगुणाः। पुष्करद्वीपसिद्धाः संख्येयगुणाः। एवं कालादिविभागेऽपि यथागममल्पबहुत्वं वेदितव्यम् ॥१०॥

**इति तत्त्वार्थवृतौ सवार्थसिद्धिसंज्ञिकायां दशमोऽध्यायः समाप्तः।**

**स्वर्गापवर्गसुखमाप्तुमनोभिरार्यैर्जैनेन्द्रशासनवरामृतसारभूता ।**
**सर्वार्थसिद्धिरिति सद्भिरुपात्तनामा तत्त्वार्थवृत्तिरनिशं मनसा प्रधार्या ॥१॥**
**तत्त्वार्थवृत्तिमुदितां विदितार्थतत्त्वाः शृण्वन्ति ये परिपठन्ति च धर्मभक्त्या।**
**हस्ते कृतं परमसिद्धिसुखामृतं तैर्मर्त्यामरेश्वरसुखेषु किमस्ति वाच्यम् ॥२॥**
**येनेदमप्रतिहतं सकलार्थतत्त्वमुद्योतितं विमलकेवललोचनेन।**
**भक्त्या तमद्भुतगुणं प्रणमामि वीरमारान्नरामरगणार्चितपादपीठम्।**

❑ ❑ ❑

## आचार्य पूज्यपाद स्तुति

आचार्य श्री विद्यासागर कृत

**पूज्यपाद गुरु पाद में प्रणाम हो सौभाग्य।**
**पाप ताप संताप घट, और बढ़े वैराग्य॥**

(सर्वोदय शतक, ३)

**सुरनर ऋषिवर से सदा पूजित जिनके पाद।**
**पूज्यपाद को नित नमूँ पाऊँ परम प्रसाद॥**

(इष्टोपदेश)

**थे पूज्यपाद, वृषपाल, वशी, वरिष्ठ,**
**थे आपके न रिपु, मित्र, अनिष्ट, इष्ट।**
**मैं पूज्यपाद यति को प्रनमूं त्रिसंध्या,**
**'विद्यादिसागर' बनूँ, तज दूँ अविद्या॥**